Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

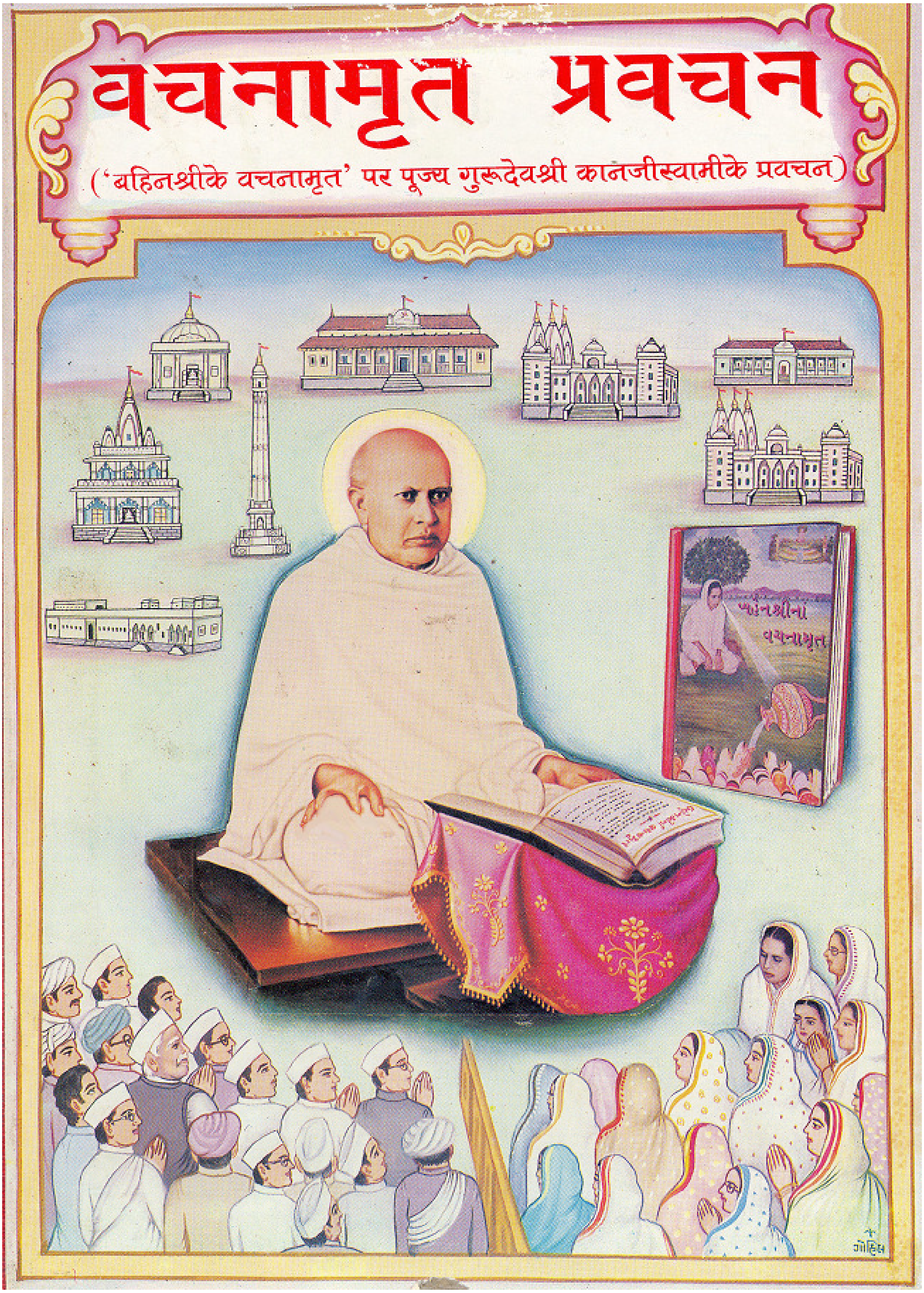

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-१९४

ॐ

नमः परमात्मने ।

श्री

वचनामृत-प्रवचन

(दूसरा भाग)

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृत

पर

परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

卐

संकलनकार :

ब्र. चन्दूलाल खीमचन्द झोबालिया

卐

हिन्दी रूपान्तरकार :

मगनलाल जैन

卐

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-३६४२५० (सौराष्ट्र)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथमावृत्ति : ३,०००

वीर सं. २५२३ बि.सं. २०५४ ई.स. १९९७

मूल्य : रू. ४५=००

कम्प्यूटर टाइप सेटिंग :
Arihant computer graphics
Jain Vidhyarthi Gruh compound,
SONGADH-364250

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
जैन विद्यार्थी गृह, सोनगढ-364250
Phone : (02846) 44381

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated by Dr Vinod Shah Blackburn, UK who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of VachanAmrut Pravachan Part 2 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	23 May 2010	First electronic version

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

• પરમોપકારી પૂજ્ય ગુરુદેવ શ્રી કાનજી સ્વામી •

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी परमपूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंका प्रकाशन करना वह हम सब मुमुक्षुओंका कर्त्तव्य है। तदनुसार 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंका यह दूसरा भाग प्रकाशित करते हुए अति हर्ष होता है।

इस ग्रन्थमें पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन अध्यात्मके गहन रहस्योंका उद्‌घाटन करनेवाले हैं, जो पढ़नेसे सहज ही अनुभवमें आता है। पूज्य गुरुदेवश्रीके ऐसे प्रवचन प्रकाशित करनेका सुअवसर हमें प्राप्त हुआ उसे हम अपना सद्‌भाग्य समझते हैं और इस कार्य द्वारा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति भक्ति-उल्लास व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवने अपने जीवनकालमें अपने पवित्र जीवनसे तथा भवछेदक वाणीसे हम पर अवर्णनीय उपकार किया है तदुपरान्त अभी उनकी अनुपस्थितिमें भी उनकी टेप-अवतीर्ण वाणी तथा पुस्तकारूढ़ प्रवचनों द्वारा अपने पर वे महान उपकार कर रहे हैं। उनके प्रति उपकृतभावसे भीगी हुई भक्ति अपने हृदयमें निरंतर रहे यही भावना।

इस ग्रन्थका प्रकाशन करनेके लिये टेप-रिकॉर्ड परसे अनेक ब्रह्मचारी बहिनोंने प्रवचन उतार दिये हैं तदर्थ उनके आभारी हैं। उन लिखे हुए प्रवचनों परसे, पूज्य गुरुदेवके अंतःवासी आत्मार्थी विद्वान ब्रह्मचारी भाई श्री चन्दुभाईने—जिन्होंने ३६ वर्ष तक निरंतर पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें रहकर उनकी सर्वतोमुखी अमूल्य सेवाभक्तिका अनन्य लाभ लिया है उन्होंने—अति परिश्रमपूर्वक तथापि अति उल्लसितभावसे उनका सुन्दर संकलन करके प्रवचनोंका प्रेस-मैटर तैयार कर दिया है, इस हेतु हम उनके अत्यन्त उपकृत हैं। उन्होंने यह कार्य हाथमें न लिया होता तो ऐसा सर्वांग-संतोषकारक संकलन नहीं बन पाता तथा ऐसा पूर्ण सावधानीपूर्वक प्रूफ-संशोधन भी नहीं हो पाता।

इस ग्रन्थका अनुवाद श्री मगनलालजी जैनने तथा सुन्दर मुद्रण-कार्य शीघ्रतासे कर देनेके लिये स्मृति ऑफसेट तथा अरिहंत कॉम्प्युटर ग्राफिक्सके संचालकोंने किया है; अतः उन सबका आभार मानते हैं।

अंतमें, इस ग्रन्थके स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षुजन आत्मकल्याण साधें ऐसी भावना है।

भाद्रपद कृष्णा दूज, सं. २०५३
(पू. बहिनश्रीकी ८४वीं जन्मजयन्ती)
दिनाङ्क : २०-८-९७

ट्रस्टीगण
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़–३६४२५०

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ॐ

नमः श्रीसद्गुरुदेवाय।

प्रस्तावना

भारतवर्षकी भव्य वसुंधरा संतरत्नोंकी पुण्य जन्मस्थली है। पवित्र आर्यभूमिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। उसमें सौराष्ट्रका भी प्रमुख स्थान है। बाईसवें तीर्थंकरदेव श्री नेमिनाथ भगवानके समुद्भवसे सौराष्ट्रकी भूमि पावन हुई है। अर्वाचीन युगमें भी अध्यात्मप्रधान जैनाकाशमें चमकते हुए नक्षत्रोंके समान समीपसमयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञ संत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबहिन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओंकी जगतको भेट देकर सौराष्ट्रकी वसुंधरा पुण्यभूमि बनी है।

परम देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामीकी दिव्यध्वनि द्वारा पुनः प्रवाहित एवं गुरुपरम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परमपावन अध्यात्मप्रवाहको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसार आदि प्राभृत-भाजनोंमें सूत्रबद्ध करके चिरंजीव किया है उस पुनीत प्रवाहके अमृतका पान करके, अंतरके पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूतिसमृद्ध आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके जिन्होंने सौराष्ट्र—गुजरातमें, समग्र भारतवर्षमें तथा विदेशमें भी शुद्धात्मतत्त्वप्रमुख अध्यात्मविद्याका पवित्र आन्दोलन प्रसारित कर बीसवीं—इक्कीसवीं सदीके विषमय भौतिकयुगमें दुःखार्त जीवोंका उद्धार किया है उन जिनशासनप्रभावक परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी शुद्धात्मसुधारसस्यंदी मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ-धड़कता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्यझरता जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेश एवं अन्य अनेकानेक उपकारोंका वर्णन चाहे जितने संक्षिप्त रूपमें किया जाय तथापि अनेक पृष्ठ भर जायँगे इसलिये पूज्य गुरुदेवका संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन इस वचनामृत-प्रवचन ग्रन्थमें अन्यत्र दिया है।

'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके प्रवचनकार परमोपकारी परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी शुद्धात्मदृष्टिवंत, स्वरूपानुभवी, वीतराग देव-गुरुके परमभक्त, बालब्रह्मचारी, समयसार आदि अनेक गहन शास्त्रोंके पारगामी, स्वानुभवस्यंदी भावश्रुतलब्धिके धनी, सततज्ञानोपयोगी, वैराग्यमूर्ति, नयाधिराज शुद्धनयकी प्रमुखतासहित सम्यक् अनेकान्तरूप अध्यात्मतत्त्वके उत्तम व्याख्यानकार एवं आश्चर्यकारी प्रभावना उदयके धारक अध्यात्मयुगस्रष्टा महापुरुष हैं। उनके यह प्रवचन पढ़ते ही पाठकको उनका गाढ़ अध्यात्मप्रेम, शुद्धात्म-अनुभव, स्वरूपकी ओर ढलती हुई परिणति, वीतरागभक्तिके रंगमें रंगा हुआ चित्त, ज्ञायकदेवके तलका स्पर्श करनेवाला अगाध श्रुतज्ञान एवं प्रभावशाली परम कल्याणकारी वचनयोगका खयाल आ जाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवने अध्यात्मनवनीत समान इस 'वचनामृत'के प्रत्येक बोलको हर ओरसे छनकर उन संक्षिप्त सूत्रवाक्योंके विराट अर्थोंको इन प्रवचनोंमें खोला है। सबके अनुभवमें आये हों ऐसे घरेलू प्रसंगोंके अनेकों उदाहरणों द्वारा, अतिशय सचोट तथापि सुगम ऐसे अनेक न्यायों द्वारा तथा अनेक यथोचित दृष्टान्तों द्वारा पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के अर्थगम्भीर सूक्ष्मभावोंको अतिशय स्पष्ट एवं सरल बनाया है। जीवके कैसे भाव रहें तब जीव–पुद्गलका स्वतंत्र परिणमन समझमें आया कहा जाय, कैसे भाव रहें तब आत्माका यथार्थ स्वरूप समझमें आया माना जाय, भूतार्थ ज्ञायक निज ध्रुवतत्त्वका कैसा आश्रय हो तो द्रव्यदृष्टि परिणमी कही जाय, कैसे-कैसे भाव रहें तब स्वावलम्बी पुरुषार्थका आदर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-वीर्यादिककी प्राप्ति हुई कही जाय,—आदि मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत विषय मनुष्यके जीवनमें होनेवाली अनेक घटनाओंके सचोट उदाहरण देकर ऐसे स्पष्ट किये गये हैं कि आत्मार्थीको उस-उस विषयका स्पष्ट भावभासन होकर अपूर्व गंभीर अर्थ दृष्टिगोचर हों और वह, शुभभावरूप बंधमार्गमें मोक्षमार्गकी कल्पना छोड़कर, शुद्धभावरूप यथार्थ मोक्षमार्गको समझकर, सम्यक् पुरुषार्थमें लग जाय। इस प्रकार 'वचनामृत'के स्वानुभूतिदायक गंभीर भावोंको, आरपार उतर जाय ऐसी प्रभावकारी भाषामें तथा अतिशय मधुर, नित्य-नवीन वैविध्यपूर्ण शैलीसे अत्यन्त स्पष्टरूपसे समझाकर गुरुदेवने आत्मार्थी जगतपर असीम उपकार किया है। 'वचनामृत'की सादी भाषाके गर्भमें छिपे हुए अनमोल तत्त्वरत्नोंके मूल्य स्वानुभवविभूषित गुरुदेवने जगतविदित किये हैं।

यह परम पुनीत प्रवचन स्वानुभूतिके पंथको अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्रकाशित करते हैं इतना ही नहीं, किन्तु साथ-साथ मुमुक्षुजीवोंके हृदयमें स्वानुभवकी रुचि एवं पुरुषार्थ जागृत करके, कुछ अंशमें सत्पुरुषके प्रत्यक्ष उपदेश जैसा चमत्कारिक कार्य करते हैं। प्रवचनोंकी वाणी इतनी सहज, भावार्द्र, चेतनवंती और जोरदार है कि चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके स्वानुभवस्यंदी चैतन्यभाव ही मानो मूर्तिमंत होकर वाणी-प्रवाहरूपसे बह रहे न हों! ऐसी अत्यंत भाववाहिनी—अंतर्वेदनको अति उग्ररूपसे व्यक्त करती, शुद्धात्मा—ज्ञायक—के प्रति अपार प्रेमसे छलकती, हृदयस्पर्शी जोरदार वाणी सुपात्र पाठकके हृदयको आन्दोलित कर देती है और उसकी विपरीत रुचिको क्षीण करके शुद्धात्मरुचिको जागृत करती है। प्रवचनोंके प्रत्येक पृष्ठमें शुद्धात्ममहिमाका अत्यंत भक्तिमय वातावरण गूँज रहा है और उसके प्रत्येक शब्दमेंसे मधुर अनुभवरस टपक रहा है। उस शुद्धात्मभक्तिरससे और अनुभवरससे मुमुक्षुका हृदय भीग जाता है, उसे शुद्धात्माकी लय लगती है, शुद्धात्माके सिवा सर्व भाव उसे तुच्छ भासते हैं और पुरुषार्थ 'चल पड़ूँ, चल पड़ूँ' होने लगता है। ऐसी अपूर्व चमत्कारिक शक्ति पुस्तकारूढ़ प्रवचनवाणीमें क्वचित् ही देखनेमें आती है।

इस प्रकार अध्यात्मतत्त्वविज्ञानके गहन रहस्य अमृत-झरती वाणीमें समझाकर और साथ-साथ शुद्धात्मरुचिको जागृत करके, पुरुषार्थको प्रेरणा देकर, प्रत्यक्ष सत्समागमकी झाँकी करानेवाले, ये प्रवचन जैनसाहित्यमें अद्वितीय हैं। प्रत्यक्ष सत्समागमके वियोगमें मुमुक्षुओंको ये प्रचवन अनन्य आधारभूत हैं। निरालम्बी पुरुषार्थ समझाना और प्रेरित करना वही उद्देश होनेके साथ 'वचनामृत'के सर्वांग स्पष्टीकरणस्वरूप इन प्रवचनोंमें समस्त शास्त्रोंके सर्व प्रयोजनभूत तत्त्वोंका तलस्पर्शी दर्शन आ गया है। श्रुतामृतका सुखसिन्धु मानों इन प्रवचनोंमें लहरा रहा है। यह प्रवचनग्रन्थ हजारों प्रश्नोंके निराकरणका महाकोष है, शुद्धात्मतत्त्वकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

रुचि उत्पन्न करके परके ओरकी रुचि नष्ट करनेकी परम औषधि है, स्वानुभूतिका सुगम पंथ है और भिन्न भिन्न कोटिके सर्व आत्मार्थियोंको अत्यन्त उपकारक है। परम पूज्य गुरुदेवने इन अमृतसागर समान प्रवचनोंकी भेट देकर भारतवर्षके मुमुक्षुओंको निहाल कर दिया है।

स्वरूपसुधा प्राप्त करनेके इच्छुक जीवोंको इन परम पवित्र प्रवचनोंका बारम्बार मनन करने योग्य है। संसार-विषवृक्षको छेदनेका वह अमोघ शस्त्र है। डालियों-पत्तोंको पकड़े बिना वे मूलपर ही आघात करते हैं। इस अल्पायु मनुष्यभवमें जीवका सर्वप्रथम कर्त्तव्य एक निज शुद्धात्माका बहुमान, प्रतीति एवं अनुभव है। वे बहुमानादि करानेमें ये प्रवचन परम निमित्तभूत हैं। मुमुक्षु अतिशय उल्लासपूर्वक उनका अभ्यास करके, उग्र पुरुषार्थसे उनमें कहे हुए भावोंको सम्पूर्णतया हृदयमें उतार कर, शुद्धात्माकी रुचि, प्रतीति तथा अनुभव करके, शाश्वत परमानन्दको प्राप्त करो।

परमोपकारी परमकृपालु परम पूज्य गुरुदेवश्रीने जिनके 'वचनामृत' पर ये सुन्दर भाववाही प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति स्वानुभूतिपरिणत पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके संक्षिप्त परिचयके साथ, पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयमें वर्तती—उनकी आध्यात्मिक पवित्रता, स्वानुभूति तथा लोकोत्तर प्रशान्त जीवन सम्बन्धी—विशिष्ट महिमाका और पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभवदशामेंसे प्रवाहित 'वचनामृत'के विषयमें पूज्यपाद गुरुदेवश्रीके उच्चारे हुए पवित्र उद्गारोंका, आत्मार्थी जीवोंके लाभ हेतु यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

जिनकी पवित्र परिणतिमेंसे भव्यजनकल्याणकारी 'वचनामृत'का पुनीत प्रवाह बहा है उन महान आत्माकी अंतरंग सहजदशाका—शुद्धज्ञायकभावसमर्पित सर्वस्व लोकोत्तर जीवनका क्या वर्णन हो सकता है? उन पवित्रात्मा पूज्य बहिनश्री—चम्पाबेनका जन्म वि. सं. १९७० भाद्रपद कृष्णा २, शुक्रवार, तदनुसार ता. ७-८-१९१४के शुभदिन वढवाण शहरमें हुआ था। पिताजीका नाम श्री जेठालाल मोतीचन्द शाह, माताजीका नाम तेजबा। श्री व्रजलालभाई तथा विद्वान श्री हिम्मतलालभाई—ये दो भाई दो बहिनें—इसप्रकार चार भाई-बहिनोंमें चम्पाबेन सबसे छोटीं। पूज्य चम्पाबेनका प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व—अंतर तथा बाह्य—अति गम्भीर और महान है। बचपनसे ही वैराग्यप्रेम, कुशाग्रबुद्धि, चिन्तनशील स्वभाव तथा दृढ़ निर्णयशक्ति आदि अनेक गुण उनमें सहज उपलब्ध हैं।

वैराग्यभीना और सत्यशोधक उनका हृदय आत्माकी प्राप्तिके लिये तड़पता था। पूज्य गुरुदेवका सत्समागम हुआ, उनकी अध्यात्मामृतझरती अमोघ वज्रवाणीने बहिनश्रीका अंतरंग सत्त्व झलका दिया। निजशुद्धात्मदर्शन—सम्यक्त्व प्राप्त करनेकी आकांक्षा तीव्र बनी। उन्होंने सर्व शक्ति आत्मामें केन्द्रित करके दिन-रात दृष्टिकी निर्मलता तथा स्वात्मानुभूतिकी साक्षात् प्राप्तिके लिये अथक्, अविरत पुरुषार्थ किया, और अन्तमें तीव्र तड़पके परिणामस्वरूप मात्र अठारह वर्षकी छोटी उम्रमें ही वि. सं. १९८९, चैत्र कृष्णा दसवींके दिन वांकानेरमें अपना अप्रतिम पुरुषार्थ सफल किया—भवसंततिछेदक, कल्याणबीज सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, निज भगवान आत्माका अद्‌भुत साक्षात्कार हुआ और परिणतिमें अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय निर्मल निर्विकल्प स्वात्मानुभूतिका मंगलमय अमृतझरना बहने लगा। अहा! धन्य हैं वे महान आत्मा, धन्य है उनका ध्येयलक्षी अचल पुरुषार्थ और धन्य है उनका अवतार कि जिसमें उन्होंने अवतारसंततिके छेदनका महान कार्य किया!

दिन-प्रतिदिन उस अमृतझरनेकी—सुधासिक्त आत्मसाधनाकी परिणति वृद्धिंगत होने लगी, और साथ ही साथ सोनगढ़में वि. सं. १९९३, वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन ज्ञानपरिणतिमें जातिस्मरण ज्ञानकी सातिशय निर्मलता भी प्रगट हुई। पूज्य गुरुदेवको स्वयंको कुछ बातोंका—अमुक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए ऊँची देहवाले राजकुमार, तीर्थंकरत्व इत्यादिका—जो 'भास' होता था उनका स्पष्ट सत्य निराकरण पूज्य बहिनश्रीके स्मरणज्ञानने कर दिया। पूज्य गुरुदेवके भूत, वर्तमान और भावी भवोंका आश्चर्यकारी अनुसंधान—गतभवमें श्रेष्ठीपुत्ररूपमें श्री सीमंधर भगवानकी सभामें प्रत्यक्ष श्रवण किया था वह—उनके स्मरणज्ञानने दिया। उस पवित्र अनुसंधानज्ञान द्वारा मुमुक्षु समाज पर विशिष्ट उपकार हुआ है।

परम पूज्य अध्यात्मयुगस्रष्टा करुणासागर गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका समस्त मुमुक्षु जगत पर अनंत-अनंत उपकार है। उनके विविध उपकारोंमेंसे एक महान उपकार यह है कि उन्होंने जिनके 'वचनामृत' पर स्वयं भावविभोर होकर यह अद्भुत प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति धन्यावतार भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र अलौकिक अंतरंगदशाकी यथार्थ पहिचान करायी है।

सुधास्यंदी-स्वात्मानुभूतिपरिणत, विशिष्टज्ञानविभूषित पूज्य बहिनश्रीकी सहज प्रशमरसझरती पवित्र मुद्रा ही मानों, साधकका मूर्त रूप हो तदनुसार सम्यक् मोक्षमार्गका मूल उपदेश दे रही है। शास्त्रोपम-गम्भीर तथापि सरल ऐसे उनके 'वचनामृत' विविध कोटिके सर्व जीवोंको अति उपकारक होते हैं, चमत्कारिक विशदतासे वस्तुस्वरूपको—शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी मुख्यतापूर्वक अनेकान्त सुसंगत द्रव्य–पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्वको—हस्तामलकवत् दर्शाते हैं और साधक जीवोंकी अटपटी अंतर परिणतिकी अविरुद्धरूपसे स्पष्ट सूझ देते हैं। कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री बहिनश्रीकी पवित्र दशाकी और 'वचनामृत'की महिमा बतलाते हुए सभामें अनेकबार अति प्रसन्नताका अनुभव करते थे। पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूतिविभूषित पवित्रता, अनेक भव सम्बन्धी धर्मविषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और 'वचनामृत'की विशिष्टताका मुक्तकण्ठसे प्रकाश करते हुए गुरुदेवकी प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओंकी दृष्टि समक्ष आज भी स्पष्ट तैरती है।

प्रशममूर्ति, धन्यावतार, गुणगम्भीर, उदारचित्त तथा देव–गुरुकी परमभक्त पूज्य बहिनश्री अंतरमें अतिमहान और बाह्यमें अति निर्लेप हैं। उनका आत्मलक्षी अंतरंग जीवन और उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्भुतदशा वर्णनातीत है। उनके विशुद्ध गहन व्यक्तित्व पर, उनकी दशाके पारखी पूज्य गुरुदेवने उन्हें 'भगवती' एवं 'जगदम्बा'के असाधारण विशेषण दिये हैं वह उनकी सहज अंतरंगदशाके तथा उनकी महानताके यथार्थ द्योतक हैं। हमेशा तोल-तोलकर वचन उच्चारनेवाले, तीक्ष्णदृष्टिवंत, गहन विचारक, स्वरूपानुभवी परम पूज्य गुरुदेवश्री अन्य किसी भी व्यक्तिको जिन विशेषणोंसे कभी विशेषित नहीं करते थे, ऐसे उपरोक्त दो महिमापूर्ण विशेषणोंसे पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनको अनेकबार प्रसन्नतापूर्वक बिरदाते थे, वही वास्तविकता पूज्य बहिनश्रीकी अद्भुत महत्ता अपने हृदयमें दृढ़रूपसे स्थापित करनेके लिये पर्याप्त है। इन विशेषणों द्वारा पूज्य गुरुदेवने संक्षेपसे उनके प्रति अहोभाव व्यक्त करता हुआ अपना हार्द प्रगट किया है। अहा! गुरुदेवके हार्दको तथा उन विशेषणोंकी मर्मभरी गहराईको हम गम्भीरतासे समझें, गुरुदेवके दिये हुए अध्यात्मबोधको जीवनमें बुन लेनेवाली इन 'भगवती माता'की

आत्मसाधनाके आदर्शको दृष्टि समक्ष रखें और उनके जीवनमेंसे प्राप्त होनेवाली प्रेरणा द्वारा हम अपने आत्मार्थको साधें।

सचमुच 'भगवती माता' पूज्य बहिनश्री मात्र भारतवर्षकी ही नहीं, अपितु दृष्टिगम्य जगतकी अद्वितीय महिलारत्न हैं, मुमुक्षुसमाजकी शिरोमणि हैं, मुमुक्षुमहिला-समाजकी सिरछत्र हैं, कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंकी जीवनाधार हैं और आत्मार्थियोंकी महान आदर्श हैं।

स्वानुभूतिविभूषित पूज बहिनश्रीके असाधारण गुणगंभीर व्यक्तित्वका परिचय देते हुए पूज्य गुरुदेव स्वयं प्रसन्न हृदयसे सभामें अनेकबार प्रकाशित करते कि :—

''बहिनोंके महान भाग्य हैं कि चम्पाबेन जैसी 'धर्मरत्न' इस कालमें पैदा हुई हैं। बहिन तो भारतका अनमोल रतन हैं। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ उनको अंतरसे जागृत हुआ है। उनकी अंतरंग स्थिति कोई और ही है। उनकी सुदृढ़ निर्मल आत्मदृष्टि तथा निर्विकल्प स्वानुभूतिका जोड़ इस कालमें मिलना दुर्लभ है...असंख्य अरब वर्षका उन्हें जातिस्मरण ज्ञान है। बहिन जब ध्यानमें बैठती हैं तब कई बार तो अंतरमें भूल जाती हैं कि 'मैं महाविदेहमें हूँ या भरतमें' !!....बहिन तो अपने अंतरमें—आत्माके कार्यमें—ऐसी लीन हैं कि उन्हें बाहरकी कुछ पड़ी ही नहीं है। प्रवृत्तिका उन्हें किंचित् भी रस नहीं है। उनकी बाह्यमें प्रसिद्धि हो यह उन्हें स्वयंको बिलकुल अच्छा नहीं लगता। परन्तु हमें ऐसा भाव आता है कि बहिन कई वर्षतक छिपी रहीं, अब लोग बहिनको पहिचानें।''

—ऐसे वात्सल्योर्मिभरे भावोद्‌गारभरी पूज्य गुरुदेवकी मंगल वाणीमें जिनकी आध्यात्मिक पवित्र महिमा सभामें अनेकबार प्रसिद्ध हुई है उन पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके, उन्होंने महिला—शास्त्रसभामें तथा ब्रह्मचारिणी बहिनोंके समक्ष चर्चामें उच्चारे हुए—उनकी स्वानुभवस्यंदी ज्ञानधारामेंसे प्रवाहित—आत्मार्थ-पोषक वचनामृत लिपिबद्ध हों तो अनेक मुमुक्ष जीवोंको महान आत्मलाभका कारण होगा, ऐसी बहुत समयसे समाजके अनेक भाई-बहिनोंको उत्कट भावना वर्तती थी! उस शुभभावनाको साकार करनेमें, कुछ ब्रह्मचारिणी बहिनोंने पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी प्रवचनधारा तथा चर्चामेंसे अपनेको विशेष लाभ हो ऐसे वचनामृत लिख लिये थे, उनमेंसे विशिष्ट बोल चुनकर एक संग्रह तैयार किया गया, जो 'बहिनश्रीके वचनामृत' नामक पुस्तकरूपमें श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट—सोनगढ़की ओरसे वि. सं. २०३३में पूज्य बहिनश्रीकी ६४वीं जन्मजयन्ती-उत्सवके मंगल-अवसर पर प्रकाशित किया गया।

इस 'वचनामृत' पुस्तकका गहन अध्ययन करके, जिस प्रकार कुशल जौहरी रत्नको परख लेता है उसीप्रकार उसमें भरे हुए गंभीर भावोंको पूज्य गुरुदेवने तुरन्त परख लिया और श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़के अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशीसे कहा—''भाई! इस पुस्तककी लाख प्रतियाँ छपाओ।' (अभी तक—पाँच वर्षके अल्प समयमें ८६००० प्रतियाँ गुजराती, हिन्दी, मराठी तथा कन्नड़—इसप्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं।) अध्यात्मतत्त्व समझनेके लिये यह पुस्तक ध्यानपूर्वक पढ़नेको पूज्य गुरुदेव विशेषरूपसे कहते और नवागंतुकको प्रसन्नतासे भेट देते थे।

इस आत्मार्थिप्रिय अमूल्य पुस्तककी महत्ता, विभिन्न प्रसंगों पर निकले हुए गुरुदेवके मंगलमय पवित्र उद्‌गारोंमें देखें :—

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समयसर प्रकाशित हो गई। बहिनको कहाँ बाहर आनेकी इच्छा है, किन्तु पुस्तकने उन्हें प्रगट कर दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव अति गम्भीर हैं। मैंने पूरी पढ़ ली है। एकबार नहीं लेकिन पच्चीसबार पढ़े तब भी संतोष न हो ऐसी पुस्तक है। दस हजार पुस्तकें छपवाकर हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के सब ग्राहकोंको भेट देना चाहिये ऐसा मुझे विचार आया।' (पूज्य गुरुदेवके भाव-अनुसार हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको यह पुस्तक भेट दी गई थी।)

''परिणमनमेंसे निकले हुए शब्द हैं। बेनकी तो निवृत्ति बहुत। निमृत्तिमेंसे आये हुए शब्द हैं। पुस्तकमें तो समयसारका सार आ गया है—अनुभवका सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' तो ऐसी वस्तु प्रगट हो गई है कि भारतमें सर्वत्र इसका प्रकाशन होना चाहिये।''

'यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी हैं कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात बाकी नहीं है। थोड़े शब्दोंमें द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगतके भाग्य कि ऐसी सादी भाषामें पुस्तक प्रकाशित हो गई। वीतरागके भावका रटन और मंथन है। सारे देशमें ढिंढोरा पिटेगा। जहाँ पुस्तक हाथमें आयी वहीं कहा कि एक लाख पुस्तकें छपना चाहिये।'

'मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है—सम्पूर्ण समयसारका सार आ गया है इसलिये सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक बाहर लोगोंके हाथमें पहुँचेगी तो डंका बजेगा। इसे पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जायँगे—ऐसी बात है। जगतको लाभका कारण है।'

''बेनकी पुस्तक (वचनामृत) बड़ी ऊँची है। सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्दमेंसे आयी हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है—माल भरा है। अति गम्भीर! थोड़े शब्दोंमें बहुत गंभीरता! यह तो अमृतधाराकी वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंगका सार है, सारमें सार तत्त्व आ गया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'की अपेक्षा यह पुस्तक अलौकिक है। जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु प्रगट हुई!''

'जो आनन्दमें जमकर बैठ गया है, जो अतीन्द्रिय आनन्दके ग्रास ले रहा है तथा जो अतीन्द्रिय आनन्दको गटागट पी रहा है ऐसे धर्मीका (—साधकका) यह स्वरूप बहिनके मुखसे (वचनामृतमें) आया है। बिलकुल सादी भाषा। प्रभुके समवसरणमें ऐसी बात चलती थी, भाई! अरे! यह बात बैठ जाय तो निहाल हो जाय! जिनेश्वरका जो आदेश है वह बहिन कह रही हैं।'

पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे अनेकबार 'वचनामृत'की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर मुमुक्षुसमाजने 'वचनामृत' पर प्रवचन द्वारा उसके गहन भावोंको समझानेकी प्रार्थना पूज्य गुरुदेवसे की। पूज्य गुरुदेवने भक्तोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और प्रवचन दिये। प्रवचनोंमें 'वचनामृत'के भावोंको खूब रसपूर्वक स्पष्ट किया। 'वचनामृत'में ४३२ बोल हैं; उन पर १८१ प्रवचन हुए हैं। वे प्रवचन चार भागोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनमेंसे यह पहला भाग है।

'बहिनश्रीके वचनामृत'में समादिष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयोंपर पूज्य गुरुदेवने इस प्रवचन ग्रन्थमें जो अद्भुत छानबीन की है—तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किये हैं, उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि—अहा! इसमें ऐसे अलौकिक भाव भरे हैं। सचमुच, पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के गहन भावोंको खोलकर मुमुक्षुओंपर महान उपकार किया है।

T-2

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये प्रवचन पूज्य बहिनश्रीकी चरणोपासिका कुछ ब्रह्मचारी बहिनों तथा मुमुक्षु भाई-बहिनोंने टेप-रिकॉर्डमेंसे उतार दिये हैं। उनका यह संकलन तैयार किया गया है। यह संकलन अध्यात्मप्रेमी आदरणीय विद्वद्वर्य भाईश्री हिंमतलाल जेठालाल शाहने अथक परिश्रम लेकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाँच लिया है तथा प्रूफ-संशोधनमें भी सहयोग दिया है। वास्तवमें उनके अमूल्य सहयोग बिना इन प्रवचनोंका ऐसे सुन्दररूपमें तैयार होना असम्भव था। इस हेतु कृतज्ञतापूर्वक उनका जितना आभार मानूँ उतना कम है। भावनगरनिवासी धर्मप्रेमी भाईश्री शशिकान्तभाई सेठने भी इन प्रवचनोंका बड़ा भाग जाँच दिया है। वे तथा टेपमेंसे उतार देनेवाले भी धन्यवादके पात्र हैं।

अंतमें, हम—अध्यात्मतत्त्व पिपासु जीव, पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूति-रसधारामेंसे प्रवाहित इस शुद्धात्मस्पर्शी 'वचनामृत' पर परमोपकारी कृपासिंधु पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवप्रधान समस्त निजात्मवैभव खोलकर दिये हुए इन विशद प्रवचनोंके गहरे अवगाहन द्वारा भवसंततिछेदक स्वानुभूति साधनेकी प्रबल प्रेरणा प्राप्त कर अपने साधनापंथको सुधास्यंदी बनाएँ—यही भावना।

भाद्रपद कृष्णा २, सं. २०३८
(पूज्य बहिनश्रीकी ८४वीं जन्मजयंती)
ता. २०-८-६७

—संकलयिता

* * *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अध्यात्मयुगस्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

[संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन]

भरतक्षेत्रकी वर्तमान चौबीसीके चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट और भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि निर्ग्रंथ संतों द्वारा सुरक्षित, तर्कशुद्ध अबाधित सुविज्ञान-सिद्धान्तोंकी कसौटी पर पार उतर सके ऐसा, अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म कालदोषके कारण वैज्ञानिक भूमिकासे च्युत होकर रूढ़िग्रस्त साँप्रदायिकतामें और क्रियाकांडमें फँस गया था ऐसे इस युगमें—विक्रमकी २०–२१वीं शताब्दिमें—भारतवर्षके जीवोंके महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने अवतार लेकर आत्मसाधनाके अध्यात्मपथको प्रकाशित किया, संप्रदायकी कैदमेंसे बाहर निकालकर जिन्होंने हजारों जीवोंमें शुद्ध आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक नये मुमुक्षुसमाजका सर्जन किया, स्वयंकी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञान-कलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्योंको खोलकर जिन्होंने 'तुझमें सब भरा पड़ा है' ऐसा घोषित करके प्रत्येक जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटा—इत्यादि अनेक प्रकारसे भारतवर्षके धर्मपिपासु जीवों पर जिनका अनंत-अनंत उपकार है ऐसे अध्यात्मयुगस्रष्टा परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका संक्षिप्त ★जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन यहाँ प्रस्तुत किया है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका पवित्र जन्म सौराष्ट्रके उमराला गांवमें वि. सं. १९४७ वैशाख सुदी दूज, रविवारके शुभ दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें हुआ था। गुरुदेवश्रीकी मातुश्री उजमबा व पिताश्री मोतीचंदभाई जातिसे दशाश्रीमाली वणिक एवं धर्मसे स्थानकवासी जैन थे। बचपनसे ही उनके मुखपर वैराग्यकी सौम्यता और आंखोंमें बुद्धि और वीर्यकी प्रतिभा झलकती थी। स्कूलमें तथा जैनशालामें भी प्रायः प्रथम नंबर ही रखते थे।

ग्यारह वर्षकी उम्रमें एक बार जैनशालाकी सीढ़ियोंसे उतरते समय संप्रदायके एक साधुको वैराग्यकी मस्त चालसे जाते हुए देखकर इस होनहार महापुरुषके हृदयमें गहरी छाप पड़ी तथा अन्तर्मनमें ऐसा लगा कि 'अहा! कैसी वैराग्यकी धुन! झुके हुए नेत्रोंके साथ कैसी मस्त चाल! नितांत अकेले, कोई साथी–संगी नहीं! कैसी अवधूत दशा!' इस प्रकार बचपनसे ही वैरागी मस्त जीवनके प्रति उनका चित्त समर्पित हो जाता था। पाठशालाके लौकिक ज्ञानसे उनको संतोष नहीं होता था; उनको अंतरंगमें लगता रहता कि 'जिसकी खोजमें मैं हूँ वह यह नहीं है।' कभी कभी यह दुःख तीव्र हो जाता, और एक बार तो माँसे बिछुड़े बालककी भाँति, यह बाल-महात्मा सत्के वियोगमें बहुत रोये थे।

छोटी उम्रमें ही माताका (वि. सं. १९५९में) व पिताजीका (वि. सं. १९६३में) वियोग हुआ।

★ जीवनवृत्तका कुछ भाग आदरणीय पं. श्री हिंमतलाल जे. शाहके लेखोंमेंसे शब्दशः लिया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वे पालेजमें पिताजीकी दुकान पर बैठने लगे। व्यापारमें उनका वर्तन प्रामाणिक और सरल था। एक बार बड़ौदाकी अदालतमें जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीशके समक्ष सत्य घटना स्पष्टतासे बता दी। उनके मुखपर झलकती सरलता, निर्दोषता और निर्भीकताकी न्यायाधीश पर छाप पड़ी, और उनका कहा हुआ सारा विवरण यथार्थ है, ऐसा विश्वास आ जानेसे उसे संपूर्णरूपसे मान्य रखा।

वे कभी कभी नाटक देखने जाते थे; अतिशय आश्चर्यकी बात तो यह है कि नाटकका श्रृंगारिक प्रभाव होनेके बदले किसी वैराग्यप्रेरक दृश्यकी उन पर गहरी छाप पड़ती थी और वह कितने ही दिनों तक रहती थी। कभी कभी तो नाटक देखकर आनेके बाद पूरी रात वैराग्यकी धुन रहती। एक बार नाटक देखकर आनेके बाद उसकी धुनमें 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाला बारह कड़ीका एक काव्य उन्होंने बनाया था। अहा! सांसारिक रसके प्रबल निमित्तोंको भी महान आत्माएँ वैराग्यका कैसा निमित्त बना लेती हैं।

दुकान पर भी वे वैराग्यप्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। उनका मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनका आत्मा अन्दर कुछ और ही शोधमें था। उनके अन्तरका झुकाव सदा धर्म व सत्यकी शोधके प्रति ही था। उनका धार्मिक अभ्यास, उदासीन जीवन और सरल अंतःकरण देखकर सगे-संबंधी उनको 'भगत' कहते थे। सगाईके संदेश आने पर उन्होंने अपने बड़े भाई खुशालभाईको स्पष्ट कह दिया कि 'मेरी सगाई नहीं करना, मेरे आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा है और मेरे दीक्षा लेनेके भाव हैं।' खुशालभाई और सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा बहुत समझाने पर भी उन महात्माके वैराग्यभीने चित्तको संसारमें रहना पसंद नहीं आया! उन्होंने योग्य गुरुके लिये बहुत शोध की। सौराष्ट्र, गुजरात व राजस्थानसे बहुतसे साधुओंसे मिले, पर कहीं भी मन स्थिर नहीं हुआ। अन्तमें बोटाद संप्रदायके श्री हीराचंदजी महाराजके हाथसे दीक्षा लेनेका निश्चित हुआ। विक्रम संवत् १९७०के मागशिर सुदी ९वीं, रविवारके दिन उमरालामें बड़ी धूमधामसे दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न हुआ।

दीक्षा लेकर तुरन्त ही गुरुदेवश्री श्वेतांबरके आगमोंका कड़ा अभ्यास करने लगे। उन्होंने चारेक वर्षमें ४५ आगम, लाखों श्लोकोंकी टीका सहित, विचारपूर्वक पढ़ लिये। वे संप्रदायकी रीति अनुसार चारित्र भी कठोर पालते थे। थोड़े ही समयमें उनकी आत्मार्थिताकी, ज्ञान-पिपासाकी और चारित्रकी सुवास स्थानकवासी जैन संप्रदायमें खूब फैल गयी थी।

गुरुदेवश्री प्रारम्भसे ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ ही उनका जीवनमंत्र था। 'केवली भगवानने देखा होगा तब मोक्ष होगा'—ऐसी काललब्धि और भवितव्यताकी पुरुषार्थहीनता भरी बातें कोई करे तो वे सहन नहीं कर सकते थे। वे दृढ़तासे कहते थे कि जो पुरुषार्थी हैं उसके अनन्त भव होते ही नहीं; केवलीभगवानने भी उसके अनन्त भव देखे ही नहीं; पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ बाधक नहीं होते।'

दीक्षापर्यायके कालमें उन्होंने श्वेतांबरके शास्त्रोंका खूब मननपूर्वक अभ्यास किया। उन्होंने एक लाख श्लोकप्रमाण टीकायुक्त भगवतीसूत्र सत्रह बार पढ़ा। हर कार्य करते समय उनका लक्ष सत्यकी शोधके प्रति ही रहता था। फिर भी वे जिसकी शोधमें थे वह उन्हें अभी तक मिला नहीं था, अथकरूप उल्लसितवीर्यसे उनकी शोधवृत्ति चालू ही थी; तब—

विक्रम संवत् १९७८में विधिकी किसी धन्य घड़ीमें श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत समयसार नामका महान ग्रंथ गुरुदेवश्रीके करकमलमें आया। उसे पढ़ते ही उनके हर्षका पार न रहा। जिसकी शोधमें वे थे वह उन्हें मिल गया। गुरुदेवश्रीके अन्तर्नयनोंने समयसारमें अमृतके सरोवर छलकते देखे। एकके पीछे एक गाथाएं पढ़ते हुए उन्होंने घूंट भर-भरके वह अमृत पिया। ग्रंथाधिराज समयसारने गुरुदेवश्री पर अपूर्व, अलौकिक, अनुपम उपकार किया और उनके आत्मानन्दका पार न रहा। गुरुदेवश्रीके अन्तर्जीवनमें परम पवित्र परिवर्तन हुआ, भूली हुई परिणति निज घरकी ओर ढली—उपयोगका प्रवाह सुधासिंधु ज्ञायकदेवकी ओर ढला। उनकी ज्ञानकला अपूर्व रीतिसे खिल उठी।

विक्रम संवत् १९९१ तक स्थानकवासी संप्रदायमें रहकर गुरुदेवश्रीने सौराष्ट्रके अनेक प्रमुख शहरोंमें चातुर्मास किया। और शेषकालमें सैकड़ों छोटे–बड़े नगरोंको पावन किया। हजारों श्रोताओंको उनके उपदेशके प्रति बहुमान जागृत हुआ। क्रियाकांडमें लुप्त हुए अध्यात्मधर्मका बहुत उद्योत हुआ। उनके प्रवचनमें ऐसे अलौकिक अध्यात्मिक न्याय आते थे कि जो अन्यत्र कहीं भी सुननेको न मिले हों। 'जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बंधे वह भाव भी हेय है।.....शरीरके रोमरोममें तीव्र रोग हो तो भी वह दुःख नहीं, दुःखका स्वरूप ही कुछ और है।....व्याख्यान सुनकर बहुत जीव समझें तो मुझे बहुत लाभ हो ऐसा माननेवाले व्याख्याता मिथ्यादृष्टि हैं।.....इस दुखमें समता नहीं रखूंगा तो कर्मबन्धन होगा–ऐसे भावसे समता रखना वह भी मोक्षमार्ग नहीं।....पाँच महाव्रत भी मात्र पुण्यबंधके कारण हैं।' ऐसे हजारों अपूर्व न्याय व्याख्यानमें अत्यन्त स्पष्ट रीतिसे लोगोंको समझाते थे। प्रत्येक प्रवचनमें वे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन पर अत्यन्त अत्यन्त भार देते थे। वे कहते थे कि–"शरीरकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़कनेवालेके उपर भी क्रोध न किया–ऐसा व्यवहारचारित्र भी इस जीवने अनंत बार पालन किया, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवोंकी हिंसाके पापसे भी मिथ्यादर्शनका पाप अनन्तगुना है।....सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यक्त्वका निर्णय स्वयं ही कर सकता है। सम्यग्दृष्टि संपूर्ण ब्रह्मांडके भावोंको पी गया होता है।....सम्यक्त्व वह कोई और ही वस्तु है।...सम्यग्दर्शन शून्य क्रियाएं बिना एकाईकी बिंदी हैं।....सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है।....हीरेकी कीमत तो हजारों रूपया होती है परन्तु उसके पहल पाड़ते समय खिरी हुई रजका मूल्य भी सैकड़ों रुपया होता है; वैसे सम्यक्त्वहीरेकी कीमत तो अमूल्य है, वह मिले तो तो कल्याण हो जाय परन्तु न मिले तो भी 'सम्यग्दर्शन यह कोई जुदी ही वस्तु है'–इस प्रकार उसकी महिमा समझकर उसे प्राप्त करनेकी उत्कंठारूप रज भी बहुत लाभकारी है।....मात्र जानना ही ज्ञान नहीं। सम्यक्त्व सहित जानना वही ज्ञान है। ग्यारह अंग मुखाग्र हों परन्तु सम्यग्दर्शन न हो तो वह अज्ञान है।....आजकल तो सभी अपने अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे हैं। सम्यग्दृष्टिको तो मोक्षके अनंत अतीन्द्रिय सुखकी वानगी प्राप्त हो गयी है। वह वानगी मोक्षसुखके अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है।" इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी अद्भुत महिमा अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टांतोंसे वे लोगोंको ठसा देते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। और वे संप्रदायमें थे तबसे ही इसका स्पष्ट रीतिसे प्रतिपादन करते थे। प्रथम सत्य समझनेकी मुख्य आवश्यकता

है ऐसा वे अति दृढ़तापूर्वक पहलेसे ही कहते थे और प्रवचनके प्रारम्भमें एक गाथा बोलते थे—'संबुज्झह जंतवो....' जिसका सारांश था कि—हे जीवों! तुम सम्यक् प्रकारसे समझो समझो! इस प्रकार वे प्रारम्भसे ही सत्य समझनेका उपदेश देते थे।

जैनधर्म पर उनकी अनन्य श्रद्धा, सारा विश्व न माने तो भी अपनी मान्यतामें स्वयं अकेले टिके रहनेकी उनकी अजब दृढ़ता और अनुभवके बलपूर्वक निकलती उनकी न्यायसंगत वाणी बड़े बड़े नास्तिकोंको भी विचारमें डाल देती थी और बहुतोंको आस्तिक बना देती थी। उनका सिंहनाद पात्र जीवोंके हृदयकी गहराईको स्पर्शकर उनके आत्मिक वीर्यको उछाल देता था। अहा! सत्य और अनुभवके जोरसे सारे जगतके अभिप्रायोंके सामने जूझते इस अध्यात्मयोगीकी गर्जना जिन्होंने सुनी होगी उनके कानोंमें उसकी झंकार अभी भी गूंजती होगी! थोड़े ही वर्षोंमें उनके प्रखर ज्ञान, कड़े चारित्र और प्रवचनकौशल्यकी सुवास इतनी अधिक फैल गई कि स्थानकवासी जैनसमाज उनको साधुके रूपमें 'काठियावाडके कोहनूर' कहती थी।

लघु वयसे ही गुरुदेवका वैरागी, चिन्तनपूर्ण, बुद्धिप्रतिभायुक्त, ध्येयलक्षी भक्तजीवन था। बालब्रह्मचारीरूपसे दीक्षित होकर उच्चतम कोटिके स्थानकवासी साधुके रूपमें विचरण करते समय, 'भवभ्रमणका अंत लानेका सच्चा उपाय क्या?', 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पाया, फिर पीछो पटक्यो, वहाँ क्या करना बाकी रहा?'—इस विषयमें गहरा मंथन व अभ्यास करके उन्होंने खोज निकाला कि—मार्ग कोई जुदा ही है; वर्तमानमें तो शुरुआत ही उल्टी है। क्रियाकांड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप निश्चित कर स्वानुभव करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूपरमणता वह मुनिमार्ग है। साथमें होनेवाले बाह्य व्रत-नियम तो अधूरेपनकी–अपरिपक्वताकी प्रगटता है। मोक्षमार्गकी मूल बातमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है ऐसा गुरुदेवश्रीने अन्तरसे खोज निकाला।

समयसार-प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव और वास्तविक निर्ग्रंथमार्ग बहुत समयसे भीतर सत्य लगता था, और बाह्यमें वेश तथा आचरण अलग था,–यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी; इसलिये उन्होंने सोनगढ़में योग्य समय–विक्रम संवत् १९९१ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर-जयंती), मंगलवारके दिन—'परिवर्तन' किया, स्थानकवासी सम्प्रदायका त्याग किया। संप्रदायका त्याग करनेवालोंको किस किस प्रकारकी अनेक महाविपत्तियां सहनी पड़ती है, उन पर कैसी कैसी अघटीत निंदाकी भडियाँ बरसती हैं, वह सब उनके ख्यालमें था, फिर भी उस निडर और निस्पृह महात्माने उसकी कुछ भी परवाह न की। सत्‌के प्रति परम भक्तिमें सब प्रकारकी प्रतिकूलताका भय व अनुकूलताका राग अत्यंत गौण हो गया। जगतसे बिलकुल निरपेक्षरूप हजारोंके जनसमुदायमें गर्जनेवाला सिंह सत्‌के लिये सोनगढ़के एकांत स्थलमें जा बैठा।

उनके 'परिवर्तन'से स्थानकवासी संप्रदायमें बहुत खलबली हुई, विरोध हुआ। परन्तु गुरुदेवश्री काठियावाड़के स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे। उनके पीछे काठियावाड़ पागल बना हुआ था। इसलिये 'गुरुदेवश्रीने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा' ऐसा विचार कर धीरे-धीरे लोगोंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बहने लगा। सांप्रदायिक मोह अत्यन्त दुर्निवार होने पर भी, सत्‌के

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थी जीवोंकी संख्या तीनों कालमें अत्यन्त अल्प होने पर भी, सांप्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भयको छोड़कर सोनगढ़की ओर बहता सत्संगार्थी जनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही गया।

पूज्य गुरुदेव कहते थे : जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो वस्तुस्वभाव—आत्मधर्म है। उसका अन्य किसी धर्मके साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्मके साथ समन्वय करना वह रेशम और टाटके समन्वय जैसा व्यर्थ है। दिगंबर जैनधर्म वही वास्तविक जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगंबरत्वके बिना कोई जीव मुनिपना और मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

गुरुदेव सम्प्रदायमें थे तभीसे प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रताकी श्रद्धा उनके अंतरमें ओतप्रोत हो गयी थी। मैं एक स्वतंत्र पदार्थ हूं, मुझे कोई कर्म रोक नहीं सकते—ऐसा वे बारम्बार कहते थे। वह विशेष स्पष्टतासे समझनेके लिये जामनगरमें चातुर्मासके समय आत्मार्थी श्री हिंमतभाई जे. शाहने प्रश्न पूछा—'महाराज! दो जीवोंके १४८ कर्मप्रकार सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग–सभी बिलकुल एक समान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षणमें समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकारके?' गुरुदेवने कहा : 'भिन्न-भिन्न प्रकारके।' पुनः प्रश्न किया : 'दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूरी है और आवरण भी बिलकुल एक समान है, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकारके कैसे कर सकते हैं?' गुरुदेवने तुरन्त ही दृढ़तासे उत्तर दिया : 'अकारण पारिणामिक द्रव्य है', अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं ऐसे भावसे स्वतंत्रतया परिणमन करनेवाला द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव स्वाधीनतासे करनेमें वस्तुतः कौन रोक सकता है? वह स्वाधीनतासे अपना सब कुछ कर सकता है। स्वाधीनताका कैसा सुन्दर स्पष्टीकरण!

परमपूज्य गुरुदेवके उपदेशमें मुख्य वजन 'समझ' पर था। 'तुम समझो; समझे बिना सब व्यर्थ है' इस प्रकार वे बारम्बार कहते थे। 'कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—एक रजकणको भी हिलानेकी सामर्थ्य नहीं रखता, तो फिर देहादिकी क्रिया आत्माके हाथ कहाँसे हो? ज्ञानी व अज्ञानीमें प्रकाश और अंधकार जैसा महान अन्तर है, और वह यह है कि अज्ञानी परद्रव्य तथा रागद्वेषका–शुभाशुभ भावका—कर्ता होता है और ज्ञानी अपनेको शुद्ध अनुभव करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। उस कर्तृत्व बुद्धिको छोड़नेका महा पुरुषार्थ प्रत्येक जीवका कर्तव्य है। वह कर्तृत्वबुद्धि ज्ञान बिना नहीं छूटती। इसलिये तुम ज्ञान करो।'—यह उनके उपदेशका प्रधान स्वर था।

परम पूज्य गुरुदेवके ज्ञानको सम्यक्त्वकी छाप तो बहुत समयसे लगी थी। वह सुधास्यंदी सम्यग्ज्ञान सोनगढ़के विशेष निवृत्तिवाले स्थानमें अद्‌भुत सूक्ष्मताको प्राप्त हुआ; नई-नई ज्ञानकला खूब खिली। अमृतकलशमें जिस प्रकार अमृत घोला जाता हो उसीप्रकार गुरुदेवके परम पवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मामें तीर्थंकरदेवके वचनामृत खूब घोले गये—घोंटे गये। अन्दर घोंटा गया वह अमृत कृपालु गुरुदेव हजारों मुमुक्षुओंको प्रवचनमें परोसते थे व निहाल करते थे।

समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्रों पर प्रवचन देते समय गुरुदेवके शब्द-शब्दमें बहुत गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती, जिससे श्रोताजन शास्त्रका मर्म सरलतासे समझ जाते। जिस अनन्त ज्ञान और आनन्दमय पूर्ण दशाको प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने दिव्यध्वनि द्वारा वस्तुस्वरूपका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

निरूपण किया, उस परम पवित्र दशाका सुधास्यंदी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रगट करके सद्गुरुदेवने अपनी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रोमें रहे हुए गूढ़ रहस्योंको समझाकर मुमुक्षुओं पर महान-महान उपकार किया है। गुरुदेवकी वाणी सुनकर सैकड़ों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे और उल्लासमें आकर कहते थे : 'गुरुदेव! आपके प्रवचन अपूर्व हैं; उनका श्रवण करते हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जिस बातको समझाओ हमको उसमेंसे नया-नया ही जाननेको मिलता है। नव तत्त्वका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, निश्चय-व्यवहारका स्वरूप या व्रत-तप-नियमका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस-जिस विषयका स्पष्टीकरण आपके श्रीमुखसे सुनते हैं उसमें हमें अपूर्व भाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। आपके शब्द-शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रगट होता है।'

पूज्य गुरुदेवकी प्रवचनशैली भी अद्भुत थी। कठिन गिने जानेवाले अध्यात्म-विषयको भी खूब स्पष्टतासे, अनेक सरल दृष्टांतों द्वारा, शास्त्रीय शब्दोंका बहुत ही कम प्रयोग करके घरेलू भाषामें समझाते थे, कि जिससे कम पढ़े-लिखे सामान्य लोग भी सरलतासे समझ जायें। गुरुदेवश्री प्रवचन करते-करते अध्यात्ममें ऐसे मग्न हो जाते, परमात्मदशाके प्रति अगाध भक्ति उनके मुखारविंद पर ऐसी झलकती, कि श्रोताओं पर भी उसकी छाप पड़ती। अध्यात्मकी जीवंतमूर्ति गुरुदेवश्रीकी देहके अणु-अणुमेंसे मानों अध्यात्मरस झरता हो ऐसी चमत्कारभरी उनकी प्रतिभा थी। पूज्य गुरुदेवका प्रवचन सुननेवालोंको इतना तो स्पष्ट लगता था कि 'यह कोई विशिष्ट प्रकारका पुरुष है; जगतसे यह कुछ और ही कहता है, अपूर्व कहता है; इसके कथनके पीछे कोई अजब दृढ़ता और जोर है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आता।' अहा! इस कलिकालमें, अन्तरमें ऐसा अलौकिक पवित्र परिणमन—केवलज्ञानका अंश, और बाह्यमें ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्वका अंश, इन दोनोंका सुयोग देखकर मुमुक्षुओंका हृदय नाच उठता था।

अहो! परम प्रभावक अध्यात्ममूर्ति गुरुदेवकी उस मोहविनाशिनी वज्रवाणीकी तो क्या बात, उनके दर्शन भी महापुण्यके थोक उछलें तब प्राप्त होते! इस अध्यात्ममस्त महापुरुषके समीप संसारकी आधि-व्याधि-उपाधि फटक भी नहीं सकती थी। संसारतप्त प्राणियोंको उनके पवित्र समागममें परम विश्रांति मिलती थी। जो वृत्तियां महाप्रयत्नसे भी नहीं दबतीं वे पूज्य गुरुदेवके सान्निध्यमें अपने आप शांत हो जाती हैं—ऐसा अनुभव बहुतसे मुमुक्षुओंको होता था। आत्माका निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्षका सुख आदि आध्यात्मिक भावोंकी जो श्रद्धा अनेक तर्कोंसे नहीं हो पाती वह गुरुदेवके दर्शन तथा समागमसे सहजमात्रमें हो जाती। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवरस-झरते पवित्र ज्ञान और चारित्रने मुमुक्षुओं पर महा कल्याणकारी अनुपम उपकार किया है।

सनातन सत्य वीतराग दिगम्बर जैनमार्ग अंगीकृत करनेके बादके वर्षोंमें शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनवृत्तांतके साथ संबंध रखनेवाले, मुमुक्षुओंको उपकारभूत हों ऐसे, प्रभावनाके अनेक सुयोग बन गये।

विक्रम संवत् १९९४की वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनको आत्मध्यानमयी विमल अनुभूतिमेंसे उपयोग बाहर आनेपर, उपयोगकी स्वच्छतामें अनेक भवान्तर सम्बन्धी सहज स्पष्ट जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूज्य गुरुदेवको अनेक वर्षोंसे अपने भूत-भविष्यके भवके साथ सम्बन्धवाला जो अस्पष्ट 'भास' होता था उसका स्पष्ट हल बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञान द्वारा मिलनेसे स्वयंके मनोमन्दिरमें एक प्रकारका उजाला हुआ और उनकी धर्मपरिणतिको एक असाधारण नवीन बल मिला। बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानकी बातें आत्मार्थियोंको उपकारक हो ऐसी लगनेसे पूज्य गुरुदेवश्री उसके कितने ही तथ्य धीरे-धीरे मुमुक्षुओंके समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे थे, जिसे सुनकर आत्मार्थिजन अत्यन्त आह्लादित होते थे और उनके श्रद्धाजीवनमें, भक्तिजीवनमें तथा 'इस अल्पायुषी मनुष्यपर्यायमें निज कल्याण अवश्य कर लेना योग्य है'—ऐसे उद्यमजीवनमें नई चमक आ जाती थी।

जहाँ 'परिवर्तन' हुआ था वह मकान छोटा था इसलिये भक्तोंने संवत् १९९५में प्रवचन तथा पूज्य गुरुदेवके निवास हेतु एक मकान बनवाया और उसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' रखा। परम पूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवको समयसार परमागमके प्रति अतिशय भक्ति होनेके कारण, स्वाध्यायमन्दिरमें उसके उद्घाटनके दिन—ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी, रविवारके दिन—प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके पवित्र करकमलोंसे श्री समयसार परमागमकी मंगल प्रतिष्ठा की गई। समयसार सर्वोत्तम शास्त्र है–ऐसा गुरुदेव बारम्बार कहते थे। समयसारकी बात करते ही उन्हें अति उल्लास आ जाता था। समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष दे ऐसी है—ऐसा गुरुदेवश्री कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके सभी शास्त्रों पर उन्हें अत्यन्त प्रेम था। 'भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवका हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'—ऐसा वे अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे, उस विषयमें पूज्य गुरुदेवको अंशमात्र भी शंका नहीं थी। वे कुंदकुंदाचार्यदेवके विदेहगमनके सम्बन्धमें अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे पुकार करके कहते थे कि—'कल्पना नहीं करना, इन्कार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानो तो भी ऐसी ही है, न मानो तो भी ऐसी ही है; यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमंधर भगवानके प्रति गुरुदेवश्रीको अतिशय भक्तिभाव था। कभी-कभी सीमंधर भगवानके विरहमें परम भक्तिवंत गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी।

पूज्य गुरुदेवश्रीने संवत् १९९५में माघ कृष्णा त्रयोदशीके दिन २०० मुमुक्षुओंके संघ सहित शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी पावन यात्रा अति उत्साह और भक्तिपूर्वक की। उसी वर्ष चैत्र कृष्णा एकमके दिन स्वाध्यायमन्दिरमें भगवानकी दिव्यध्वनि 'ॐ'के शिलापट्टकी स्थापना की गई थी। तत्पश्चात् राजकोटके मुमुक्षुओंका अति आग्रह होनेसे चातुर्मास करनेके लिये पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे। वहाँ 'आनन्दकुंज'में दस महिने तक रहकर, समयसार, आत्मसिद्धि और पद्मनंदिपंचविंशतिका पर अपूर्व प्रवचन किये। पूज्य गुरुदेवकी नित्य-नई निर्मल ज्ञानपर्यायोंमेंसे सहज स्फुरित जड़-चेतनके विभागके, निश्चय-व्यवहारकी संधिके तथा अन्य अनेक आध्यात्मिक न्याय सुनकर राजकोटके हजारों लोग पावन हुए। वहाँ निशदिन आध्यात्मिक आनन्दका सुन्दर वातावरण गूँज उठा।

-3

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राजकोटसे सोनगढ वापिस लौटते समय पूज्य गुरुदेवने ३०० भक्तोंके साथ, २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभुके दीक्षा, केवल और निर्वाण—तीन कल्याणकोंसे पावन हुए गिरिराज गिरनारतीर्थकी अत्यन्त भक्ति तथा उल्लास सहित यात्रा की। पहली टूंक पर दिगंबर जिनमन्दिरमें एवं दीक्षाकल्याणक-धाम सहस्राम्रवनमें जमी हुई भक्तिकी धुन तथा निर्वाणस्थल पाँचवीं टूंक पर पूज्य गुरुदेव परम अध्यात्मरसमें तराबोर बनकर—

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!'

—आदि पद गाते हुए भक्ति कराते थे उस समय प्रसरित हुआ भक्तिभीना शांत आध्यात्मिक वातावरण—उन सबके पवित्र संस्मरण तो भक्तोंके स्मरणपट पर उत्कीर्ण हो गये हैं।

विहारके समय मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े गांवोंमें पूज्य गुरुदेव वीतराग सद्धर्मका डंका बजाते गये। लोगोंको गुरुदेवके प्रति भक्ति उमड़ पड़ती, भव्य स्वागत-समारोह होते और हजारोंकी संख्यामें प्रवचनसभा छलक उठती। गुरुदेवका प्रभावना–उदय देखकर, तीर्थंकरभगवान तथा समर्थ आचार्यभगवन्त जब विचरते होंगे उस समय धर्मका, भक्तिका व अध्यात्मका कैसा वातावरण फैल जाता होगा उसका तादृश चित्र कल्पनाचक्षु समक्ष खड़ा होता था।

संवत् १९९७ के वैशाख मासमें पूज्य गुरुदेवश्री विहार पूर्ण कर सोनगढ़ पधारे। उसके बाद तुरंत ही श्री नानालालभाई जसाणी तथा उनके भाइयोंने श्री सीमंधरभगवानके जिनमंदिरका निर्माणकार्य प्रारम्भ किया, जिसमें श्री सीमंधरस्वामी आदि जिनभगवंतोंकी वीतरागभाववाही प्रतिमाओंकी पंचकल्याणकविधिपुरस्सर मंगल प्रतिष्ठा संवत् १९९७ के फाल्गुन शुक्ला दूजके शुभ दिन हुई। प्रतिष्ठामहोत्सवके आठों दिन पूज्य गुरुदेवके मुखारविंदसे भक्तिरसभीनी अलौकिक वाणी छूटती थी। बिछुडे हुए सीमंधरभगवानका (भले स्थापना-अपेक्षासे) मिलन होनेसे पूज्य गुरुदेवश्रीको कोई अद्भुत आनन्दोत्साह था। प्रतिष्ठाके पूर्व श्री सीमंधरभगवानकी प्रतिमाके प्रथम दर्शनके समय पूज्य गुरुदेवश्रीकी आँखोंसे विरहवेदनाके आँसू बहने लगे थे। सीमंधरभगवान जब मंदिरमें प्रथम पधारे तब गुरुदेवश्रीको भक्तिरसकी मस्ती चढ़ गई और सारा देह भक्तिरसके मूर्त स्वरूप जैसा शांत–शांत दिखने लगा। गुरुदेवश्रीसे साष्टांग प्रणमन हो गया और भक्तिरसमें अत्यन्त एकाग्रताके कारण शरीर ज्योंका त्यों थोड़े समय तक निश्चेष्टरूपसे पड़ा रहा। भक्तिका यह अद्भुत पावन दृश्य, पासमें खड़े मुमुक्षुओंसे सहा नहीं जाता था; उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और चित्तमें भक्ति उमड़ पड़ी। पूज्य गुरुदेवने प्रतिष्ठा भी अपने पवित्र हस्तसे, भक्तिभावमें मानों शरीरका भान भूल गये हों ऐसे अपूर्व भावसे की थी।

दोपहरके प्रवचन बाद पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें इस जिनमन्दिरमें प्रतिदिन पौनघंटा भक्ति होती थी। प्रवचन सुनते समय आत्माके सूक्ष्म स्वरूपके प्रणेता वीतराग जिनेन्द्रभगवन्तका माहात्म्य हृदयमें स्फुरित हुआ हो, जिससे तुरन्त ही जिनमन्दिरमें भक्ति करते हुए, वीतरागदेवके प्रति पात्र जीवोंको अद्भुत भक्तिभाव उल्लसित होता था। इस प्रकार जिनमन्दिर ज्ञान व भक्तिके सुन्दर सुमेलका निमित्त बना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

इसके एक साल बाद श्री समवसरण-मन्दिर बना। उसमें श्री सीमन्धरभगवानकी अतिशय भाववाहि चतुर्मुख जिनप्रतिमा बिराजमान है। समवसरणकी सम्पूर्ण रचना अत्यन्त आकर्षक और शास्त्रोक्त विधि अनुसार है। मुनियोंकी सभामें श्री सीमंधरभगवानके सामने अत्यन्त भावपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रीमद्‌भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवकी अति सौम्य मुद्रावन्त निर्ग्रंथ प्रतिमा है। प्रतिष्ठा महोत्सव सं. १९९९के ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन हुआ था। श्री समवसरणके दर्शन करते समय, श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्रके तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर परमात्माके समवसरणमें पधारे थे वह, पूज्य गुरुदेवने पूर्वभवमें प्रत्यक्ष देखा हुआ भव्य प्रसंग उनकी आंखोंके समक्ष खड़ा हुआ और उसके साथ संकलित अनेक पवित्र भाव हृदयमें प्रस्फुरित होनेसे उनका हृदय भक्ति और उल्लाससे भर आया। समवसरणमें भक्तिके समय 'रे! रे! सीमन्धरनाथना विरहा पड्या आ भरतमां' यह पंक्ति आने पर, भगवानके विरह-वेदनसे पूज्य गुरुदेवका भक्तहृदय अत्यन्त द्रवीभूत हो गया था और नेत्रोंमेंसे अश्रुकी धारा बह निकली थी; उस विरहव्यथाका भक्तिभीना दृश्य अभी भी मुमुक्षुओंकी दृष्टि समक्ष घूमता है। श्री समवसरणमन्दिर बननेसे मुमुक्षुओंको समवसरणमें बिराजमान जिनेन्द्रभगवानके पावन दर्शनके साथ साथ सीमन्धर-कुन्दकुन्द मिलनका मधुर प्रसंग दृष्टिगोचर करनेका निमित्त प्राप्त हुआ।

वि. सं. १९९९ के श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके रोज—श्री महावीरभगवानकी दिव्यध्वनि छूटनेके पावन दिन, वीरशासनजयंतीके मंगल दिन—सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवने परमागम श्री प्रवचनसार पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया था। उसमें ज्ञेय अधिकार पर व्याख्यान देते समय, अनेक वर्षोंमें भक्तोंने जो सुना था उससे भी अधिक, कोई अचिंत्य, अद्‌भुत और अपूर्व ऐसे श्रुतका स्रोत पूज्य गुरुदेवश्रीके अन्तर आत्मामेंसे—उनकी निर्मल भावश्रुतज्ञानकी पर्यायमेंसे–बहने लगा। द्रव्यानुयोगके अश्रुतपूर्व अद्‌भुत न्यायोंसे भरा हुआ वह आश्चर्यकारी स्रोत जिन्होंने बराबर श्रवण किया होगा उनको उसकी महिमा अन्तरंगमें अंकित होगी। बाकी उसका वर्णन तो क्या हो सके? उस श्रुतामृतका पान करते समय ऐसा लगता था कि यह तो कोई सातिशय आश्चर्यकारी आत्मविभूति देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ! या कोई अचिंत्य श्रुतकी निर्मल श्रेणी देखनेका सुभाग्य संप्राप्त हुआ!

सं. १९९९ की भाद्रपद शुक्ला पंचमीको—दशलक्षण पर्युषणपर्वके प्रारम्भके दिन—सोनगढ़में कुमार जैन युवकोंके लिये, तत्त्वज्ञानका अभ्यास करानेके प्रयोजनसे, ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किया गया था। उसमें तीन वर्षका अभ्यासक्रम रखा गया था। उसमें शामिल होनेवाले ब्रह्मचारी भाई प्रतिदिन तीन घण्टे नियत की हुई धार्मिक पुस्तकोंका शिक्षण प्राप्त करते थे, प्राप्त किये हुए उस शिक्षणको एकांतमें स्वाध्याय और परस्पर चर्चा द्वारा दृढ़ करते थे व पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जिनेन्द्रभक्ति इत्यादि दैनिक क्रममें सम्मिलित होते थे; इसप्रकार सारा ही दिन धार्मिक प्रवृत्तिमें व्यतीत होता था।

ज्ञानध्यानरत गुरुदेवको अन्तरमें भावश्रुतकी लब्धि नये-नये न्यायोंसे जैसे-जैसे दिन-प्रतिदिन खिलती जा रही थी वैसे-वैसे उनका पुनीत प्रभावना-उदय भी प्रबलरूपसे वृद्धिंगत होता जा रहा था। सं. १९९९ की फाल्गुन शुक्ला पंचमीके दिन झालावाड़ होकर चातुर्मास हेतु राजकोट जानेके लिये पुनः विहार हुआ। पूज्य गुरुदेव, अमृत बरसते महामेघकी भाँति, मार्गमें आनेवाले हरेक ग्राममें अध्यात्म-अमृतकी झड़ी बरसाते थे और अनेकों—हजारों—तृषावन्त जीवोंकी तृषा शांत करते थे। जैनेतर भी पूज्य

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरुदेवका आध्यात्मिक उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। जैनदर्शनमें मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड ही नहीं हैं किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा है ऐसा समझमें आने पर उन्हें जैनदर्शनके प्रति बहुमान प्रगटता था। पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रसारित आत्मविचारके प्रबल आन्दोलनोंसे प्रभावित होकर कितने ही अजैन तो वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके श्रद्धालु हो गये थे। सचमुच गुरुदेवने आत्मसाधनाका अध्यात्म-पंथ दरशाकर भारतमें तथा विदेशमें हजारों जीवोंको जागृत किया है। सौराष्ट्रमें तो दिगम्बर जैनधर्मका नवसर्जन उन्हींने किया है। पूज्य गुरुदेवने अन्तरसे खोजा हुआ स्वानुभवप्रधान अध्यात्ममार्ग—दिगम्बर जैनधर्म ज्यों ज्यों प्रसिद्ध होता गया त्यों त्यों अधिकाधिक जिज्ञासु आकर्षित हुए; ग्राम-ग्राममें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई। सम्प्रदायत्यागसे जगी विरोधकी आँधी शाँत हो गई। पूज्य गुरुदेवका प्रभावना उदय दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होता गया।

मात्र बड़ी उम्रमें गृहस्थ ही नहीं किन्तु छोटी उम्रके बच्चे भी पूज्य गुरुदेवके तत्त्वज्ञानमें उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। गुरुदेवके भक्त हजारोंकी संख्यामें बढ़ने लगे। संवत् १९९८ से प्रतिवर्ष विद्यार्थियोंको धार्मिक शिक्षा देने हेतु ग्रीष्मशिबिर खोला जाता था, विद्यार्थी उसमें उत्साहसे भाग लेते थे, लिखित परीक्षाएँ ली जातीं और पुरस्कार दिये जाते। सं. २००४ से श्रावण मासमें प्रौढ़ गृहस्थोंके लिये भी शिक्षणशिबिर चलता है।

पूज्य गुरुदेवके भक्त देश-विदेशमें जगह-जगह निवास करते हैं, उन्हें गुरुदेवके अध्यात्म-उपदेशका नियमित लाभ प्राप्त हो तदर्थ सं. २००० के मगसिर महीनेसे 'आत्मधर्म' गुजराती मासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् करीब डेढ वर्ष बाद हिन्दी 'आत्मधर्म'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। बीचमें कुछ वर्षो तक 'सद्गुरुप्रवचन-प्रसाद' नामका दैनिक प्रवचन-पत्र प्रकाशित होता था। तदुपरान्त समयसार, प्रवचनसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-ग्रन्थ इत्यादि अध्यात्मसाहित्यका विपुल मात्रामें—लाखोंकी संख्यामें—प्रकाशन हुआ, हजारों प्रवचन टेप-रिकार्ड किये गये, जिनसे पूज्य गुरुदेवका अध्यात्म-उपदेश घर—घरमें गूंजने लगा।

पूज्य गुरुदेवके मंगल प्रतापसे सोनगढ़ 'अध्यात्म-तीर्थधाम'के रूपमें बदल गया। सोनगढ़का शांत अध्यात्ममय वातावरण और वैविध्यपूर्ण धार्मिक कार्यक्रम देखकर बाहरसे आनेवाले जिज्ञासु मुग्ध हो जाते थे। सोनगढ़में उत्सव, मात्र रूढ़िगत शैलीसे नहीं किन्तु तदनुरूप भावभीने वातावरणमें एक विशिष्ट अनोखी शैलीसे मनाये जाते थे। कुछ दिन यहाँ रहनेवाले जिज्ञासुको फिर कहीं और जगह जाना अच्छा नहीं लगता था और उसे ऐसा लगता था कि—वास्तवमें आत्मार्थीकी अध्यात्म-साधनाका पोषक एवं प्रोत्साहक शांत धार्मिक वातावरण गुरुदेवके इस पवित्र धाम जैसा अन्यत्र कहीं नहीं है?

सं. २००२ की ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन दिगम्बर जैन समाजके सुप्रसिद्ध अग्रिम नेता, इन्दौरके श्री सेठ हुकमचन्दजी पूज्य गुरुदेवकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर, गुरुदेवके दर्शन तथा सत्संग हेतु सोनगढ़ आये। वे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुनकर एवं भक्ति आदिका अध्यात्मरसयुक्त वातावरण देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे विशिष्ट बातें सुनकर तथा समवसरणकी रचना देखकर उन्हें अति प्रसन्नता हुई। श्री सेठ हुकमचन्दजीके आनेके बाद दिगम्बर समाजका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष बढ़ने लगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धीरे-धीरे सोनगढ़ एक अध्यात्मविद्याका अनुपम केन्द्र—तीर्थधाम बन गया। बाहरसे हजारों मुमुक्षु भाई-बहिन, दूर-दूरसे अनेक दिगम्बर जैन, पण्डित, त्यागी, ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशका लाभ लेने हेतु आने लगे।

पूज्य गुरुदेवका पावन प्रभावना-उदय बढता गया, जिज्ञासुओं की आमद बढ़ती हुई, उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमन्दिर छोटा लगने लगा। इसलिये जिसमें ढाई हजार लोग अच्छी तरह बैठकर प्रवचन सुन सकें ऐसा विशाल, बीचमें खम्भे रहित, अनेक पौराणिक सुन्दर चित्रों एवं तत्त्वबोधक सुन्दर सैद्धांतिक सुवाक्योंसे सुशोभित 'श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन-मंडप'का निर्माण हुआ। संवत् २००३ की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाके दिन उसका उद्‌घाटन करते हुए श्री सेठ हुकमचन्दजी आनन्दविभोर होकर बोले कि—'मेरे हृदयमें ऐसा भाव आ जाता है कि अपनी सारी सम्पत्ति इस सद्धर्मकी प्रभावना हेतु न्योच्छावर कर दूँ तब भी कम है।'

तत्पश्चात् फाल्गुन शुक्ला तीजके दिन वींछिया ग्राममें, सोनगढ़के बाद सर्व प्रथम दिगम्बर जिनमन्दिरका श्री सेठ हुकमचंदजीके शुभ हस्तसे शिलारोपण हुआ।

संवत् २००३ की चैत्र-कृष्णा तीजको सोनगढ़में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषदका वार्षिक अधिवेशन पं. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री (बनारस)की अध्यक्षतामें हुआ। उस अधिवेशनका प्रसंग अत्यन्त प्रभावशाली था। सोनगढ़का अध्यात्ममय वातावरण देखकर तथा पूज्य गुरुदेव द्वारा हो रही दिगम्बर जैनधर्मकी अध्यात्मतत्त्वप्रचार-प्रमुख अभिवृद्धिको देखकर सभी विद्वान खूब ही प्रभावित हुए थे।

पूज्य गुरुदेवका समग्र जीवन ब्रह्मचर्यके अद्‌भुत तेजसे अतिशय देदीप्यमान था। उनको पहलेसे ही ब्रह्मचर्यका असीम प्रेम था। दीक्षित पर्यायमें उन्हें मात्र शास्त्रस्वाध्याय एवं तत्त्वचिंतनकी ही धुन रहती थी। चारित्रका पालन भी वे सख्तीसे करते थे; स्त्रियोंके प्रति न तो वे कभी दृष्टि डालते और न ही कभी उनसे वार्तालाप करते थे। सम्प्रदायमें एक बार उनके गुरुने कहा : 'कानजी! इस बहिनको शास्त्रकी गाथा समझा दो।' पूज्य गुरुदेवने उनकी बातका अस्वीकार करते हुए सविनय कहा कि—'महाराज! स्त्रियोंके सम्पर्कमें आना पड़े ऐसा कोई कार्य मुझे कभी न सोंपे।' अहा! कैसा प्रबल वैराग्य! ब्रह्मचर्यका कैसा अद्‌भुत रंग! पूज्य गुरुदेव, स्त्रियोंके प्रति अत्यन्त उपेक्षावृत्तिसे, मात्र पुरुषोंकी सभा पर दृष्टि जाय इस प्रकार, प्रवचनमें कुछ टेढ़े पुरुषाभिमुख बैठते थे; स्त्रियोंको न तो कभी सम्बोधन करते और न उनके साथ कभी प्रश्नोत्तर। दो बारके प्रवचनोंके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि पुरुषोंके कार्यक्रममें स्त्रियोंको आनेका सख्त प्रतिबन्ध था। पुरुषोंके धार्मिक शिबिरोंमें भी स्त्रियोंको बैठनेकी गुरुदेव सख्त मनाई करते थे। अकेली तो नहीं, किन्तु एकसे अधिक स्त्रियाँ भी, साथमें पुरुषकी उपस्थितिके बिना, उनके दर्शन करने नहीं आ सकती थीं। कोई स्त्रियाँ भूलसे भी यदि, दो प्रवचन तथा जिनेन्द्रभक्तिके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि अन्य कार्यक्रमोंमें आजायँ, तो पूज्य गुरुदेव जोरसे निषेध करते और उन्हें स्थान छोड़कर चले जानेको बाध्य होना पड़ता।

स्वानुभवसमृद्ध-शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मचर्यकी छाप समाज पर खूब पड़ती थी। उनके ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर निज हितार्थ कुछ कुमार भाइयोंने, अनेक कुमारिका बहिनोंने तथा अनेक दम्पतियोंने आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ली थी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २००५, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन छह कुमारिका बहिनोंने पूज्य गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार की। बादके वर्षोंमें क्रमशः ऐसी ही अन्य चौदह, आठ, नौ एवं ग्यारह कुमारिका बहिनोंने एक साथ, तथा अलग-अलग अन्य अनेक कुमारिका बहिनोंने भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर, पूज्य गुरुदेवके समक्ष ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ली। अहा! वास्तवमें इस भौतिक विलास-प्रचुर युगमें वीतरागविज्ञानके अध्ययन हेतु प्रशममूर्ति स्वात्मज्ञ पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी कल्याणकारी शरणमें जीवनको वैराग्यमें ढालनेका यह अनुपम आदर्श पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावनायोगका एक विशिष्ट अंग है।

गुरुदेवका प्रभाव एवं अध्यात्मका प्रचार भारतमें शीघ्रतासे फैलने लगा। सौराष्ट्रमें जगह-जगह दिगम्बर जिनमन्दिरोंकी तैयारी होने लगी। लोगोंकी जिज्ञासा बढ़ती गई और अधिकाधिक जिज्ञासु सोनगढ आकर लाभ लेने लगे।

पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावसे सौराष्ट्र-गुजरातमें दिगम्बर वीतराग जैनधर्मके प्रचारका एक अद्‌भुत अमिट आन्दोलन फैल गया। जो मंगल कार्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने गिरनार पर वादके समय किया था उसी प्रकारका दिगम्बर जैनधर्मकी सनातन सत्यताकी प्रसिद्धिका गौरवपूर्ण कार्य अहा! पूज्य गुरुदेवने श्वेताम्बर बहुल प्रदेशमें रहकर, अपने स्वानुभूतिमुद्रित सम्यक्त्वप्रधान सदुपदेश द्वारा हजारों स्थानकवासी-श्वेताम्बरोंमें श्रद्धाका परिवर्तन लाकर, सहजरूपसे तथापि चमत्कारिक ढंगसे किया। सौराष्ट्रमें नामशेष हो गये दिगम्बर जैनधर्मके—पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगसे जगह-जगह निर्मित दिगम्बर मन्दिर, उनकी मंगल प्रतिष्ठाएँ तथा आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा हुए—पुनरुद्धारका युग आचार्यवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके मन्दिरनिर्माण-युगका स्मरण कराता है। अहा! कैसा अद्‌भुत आचार्यतुल्य उत्तम प्रभावनायोग!

पूज्य गुरुदेवने दो-दो बार विशाल मुमुक्षु-संघ सहित की पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा उस अरसेमें पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे प्रवाहित सत्यतत्त्व-प्रकाशक प्रवचनों द्वारा हुई अभूतपूर्व प्रभावनाकी तो बात ही क्या! गाँव—गाँवमें भव्य स्वागत, चौराहे-चौराहे पर वधाई, उमड़ता हुआ मानवसमुदाय, श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते अभिनन्दन-समारोह;—जैन जनतामें धर्मोत्साहकी ऐसी लहर फैल जाती मानों तीर्थंकरभगवानका समवसरण आया हो! गुरुदेवकी अध्यात्मतत्त्व सम्बन्धी गर्जना सुनकर विरोधी काँप उठते, हजारों जिज्ञासुओंके हृदय प्रभावित होकर नाच उठते! अहा! तीर्थयात्राके दौरान हुई धर्म प्रभावनाका आनन्दोल्लासकारी चित्र प्रत्यक्षदर्शी मुमुक्षुओंके स्मृतिपट पर आज भी अंकित हैं।

अहो! उस अभूतपूर्व यात्राका क्या वर्णन हो सके! गुरुदेव जहाँ-जहाँ पधारते वहाँ ऐसा भव्य स्वागत होता कि वहाँकी अजैन जनता भी आश्चर्यमग्न हो जाती और प्रमोदमें बोल उठती कि—अहा कौन हैं यह सन्त पुरुष? अपनी नगरीमें हमने ऐसा भव्य और विशाल स्वागत नहीं देखा। इन्दौरमें हुआ असाधारण भव्य स्वागत तो विशिष्टरूपसे अविस्मरणीय है! पूज्य गुरुदेवके मंगल पदार्पणसे सर सेठ श्री हुकमचन्दजी तो अत्यन्त आनंदित हुए थे और उन्होंने अति आनन्दविभोर होकर हाथी-घोड़े तथा उनका सोने-मखमलका सारा कीमती साज-सामान पूज्य गुरुदेवकी स्वागतयात्राकी विशिष्ट शोभा हेतु निकालनेका अपने लोगोंको आदेश दिया था। इन्दोरमें हुए पूज्य गुरुदेवके प्रवचन भी कोई अद्‌भूत थे। पण्डित, त्यागी और समाज खूब प्रभावित हुए थे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २०१३, फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन पूज्य गुरुदेवने लगभग दो हजार भक्तों सहित श्री सम्मेदशिखरकी जीवनमें प्रथम बार यात्रा की। (दूसरी बार सं. २०२३ में की) अहा! पहली टोंक पर—श्री कुन्थुनाथ भगवानकी टोंक पर—पूज्य गुरुदेवने सम्मेदशिखर तीर्थकी, वहाँसे मोक्ष पधारे तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियोंकी, निर्वाणधामके रूपमें सम्मेदशिखरकी शाश्वतताकी एवं तीर्थयात्राकी, अध्यात्मसाधनाके साथ सुसंगत जो अद्‌भुत महिमा बतलायी थी उस मधुर प्रसंगका सुस्मरण आज भी भक्तोंको आनन्दित कर देता है। मधुवनमें पाँचेक हजार श्रोताओंकी सभामें जो अद्‌भुत प्रवचनधारा बहती उससे विद्वान तथा त्यागी भी प्रभावित होते थे। इन्दौरनिवासी पं. श्री बंशीधरजी न्यायाचार्यने अपने भावभीने भाषणमें गद्‌गद्‌भावसे साहसपूर्वक समाजसे स्पष्ट कहा था कि—अनन्त चौबीसीके तीर्थंकरों तथा आचार्योंने सत्य दिगम्बर जैनधर्मको अर्थात् मोक्षमार्गको प्रगट करनेवाला जो सन्देश दिया था वह इन कानजीस्वामीकी वाणीमें हमें सुनायी दे रहा है।

सं. २०१५में करीब सातसौ भक्तों सहित गुरुदेवने दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी मंगल यात्रा हेतु प्रस्थान किया। कुन्दाद्रि, रत्नप्रतिमाओंका धाम मूडबिद्री, विश्वविख्यात बाहुबलिधाम—श्रवणबेलगोला, कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि पोन्नूर आदि दक्षिण भारतके तथा मध्य भारतके अनेक तीर्थधामोंकी अति आनन्दपूर्वक मंगल यात्रा की। प्रवासके मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े नगरोंमें अध्यात्मविद्याकी वर्षा की। गाँव-गाँवमें भव्य स्वागत एवं अभिनन्दन-समारोह हुए। पूज्य गुरुदेवके दक्षिण भारतमें पदार्पणसे वहाँका समाज अति आनन्दित हुआ था और लोग उल्लास व्यक्त करते थे कि—जिस प्रकार श्री भद्रबाहुस्वामी हजारों शिष्यों सहित उत्तर भारतसे पधारे थे, उसी प्रकार अहा! श्री कानजीस्वामी हजारों भक्तों सहित पश्चिम भारतसे दक्षिण भारतमें पधारे और धर्मका महान उद्योत किया। (वि. सं. २०२० में दक्षिण भारतकी दूसरी बार यात्रा की थी।)

अध्यात्ममूर्ति स्वानुभूतिसम्पन्न पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनागगनके धर्मोद्योतकारी अपार प्रसंगसितारोंको गिननेसे गिना नहीं जा सकता। एक घटना याद करो और दूसरी भूलो—ऐसी तो अनेक अद्‌भुत शासनप्रभावनापूर्ण घटनाओंसे पूज्य गुरुदेवका जीवन विभूषित है। सोनगढ पूज्य गुरुदेवके पावन सत्समागम तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र छायामें अध्यात्मतत्त्वाभ्यासपूर्वक जीवन जीने हेतु, गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार करके, रहनेवाली कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंके लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविकाब्रह्मचर्याश्रम'की स्थापना हुई; संगमरमरनिर्मित गगनचुम्बी भव्य मानस्तंभ, श्री महावीर भगवानके विशाल भव्य जिनबिम्बयुक्त तथा समयसारादि परमागमोंकी सुन्दर कारीगरीसे अत्यंत सुशोभित अनुपम एवं अद्‌भुत 'श्री महावीरकुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममन्दिर' आदिके निर्माणकार्य हुए तथा उनके प्रतिष्ठामहोत्सव मनाये गये; सौराष्ट्र, गुजरात और हिन्दीभाषी प्रदेशोंमें अनेक नगरों एवं ग्रामोंमें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई, दिगम्बर जिनमन्दिर तथा समवसरण आदि रचे गये और उनकी भव्य प्रतिष्ठाएँ हुईं; तथा विदेश (नाइरोबी) प्रवास और वहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरकी भव्य प्रतिष्ठा तथा अध्यात्मतत्त्वोपदेश द्वारा सनातन सत्य जैनधर्मका प्रचार हुआ।—इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके पावन प्रभावना-उदययोगमें विविधरंगी धर्मोद्योत हुआ। अहा! पूज्य गुरुदेव द्वारा हुए धर्मप्रभावनाके उन पावन प्रसंगोंके संस्मरण आज भी भक्तोंके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

तनको रोमांचित तथा मनको प्रफुल्लित कर देते हैं! वास्तवमें पूज्य गुरुदेवने इस युगमें एक प्रभावक आचार्य जैसा अद्‌भुत एवं अनुपम कार्य किया है।

पूज्य गुरुदेवके पुनित प्रतापसे सोनगढका जीवन ही जगतसे बिलकुल निराला था। प्रतिदिन प्रातः देव-गुरुके दर्शन, जिनेन्द्रपूजा, दो बार पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मरस झरते प्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति, भगवानकी आरती और तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम नियमित चलते थे; तदुपरान्त सत्‌साहित्यकी—मूल शास्त्रों तथा प्रवचनोंकी—लाखों पुस्तकें और 'आत्मधर्म' पत्र प्रकाशित हुए। सोनगढमें तथा सौराष्ट्र, गुजरात और भारतके अन्य नगरोमें अनेक पंचकल्याणकपुरस्सर जिनबिम्ब–प्रतिष्ठाएँ, वेदी–प्रतिष्ठाएँ हुई। उस हेतु तथा तीर्थयात्राके निमित्तसे भारतवर्षमें अनेक बार गुरुदेवके जिनशासनप्रभावकारी मंगलविहार हुए, लाखों लोगोंने गुरुदेवकी अश्रुतपूर्व अध्यात्मदेशना श्रवण की और हजारों लोगोमें धार्मिक रुचि उत्पन्न हुई! इस तरह विविध प्रकारसे कल्पनातीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेव द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना-प्रयत्नके साहजिक रीतिसे हुआ है। गुरुदेवने धर्मप्रभावनाके लिये कभी किसी योजनाका विचार नहीं किया था। मन्दिर बनवानेकी, प्रतिष्ठाएँ करानेकी, पुस्तकें छपवानेकी या धार्मिक शिक्षण–शिबिर चलानेकी–ऐसा किसी प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें वे कभी नहीं पड़ते थे। वह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। मुनिको कोई कर्मप्रक्रमके परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रवृत्तिका कार्यभार नहीं लेते–इस प्रवचनसारकी बातका विवरण करते हुए, मानों अपने हृदयकी बात शास्त्रमेंसे निकल आयी हो इस प्रकार, वे बड़े प्रफुल्लित हो उठते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था! जगत जगतकी जाने, मुझे अपना करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' यह कबीरने गाया है परन्तु गुरुदेवको तो जीवित ही 'मेरे लिये कोई है नहि दुनिया' ऐसी परिणति जीवनमें ओतप्रोत हो गई थी। अहा! कैसी आश्चर्यकारी निस्पृह दशा!

जिन्होंने जो सुधाझरती आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किया था, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' ऐसे विविध प्रकारसे सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती, जिसकी गहरी आत्मार्थप्रेरक छाप श्रोताओंके हृदयपट पर अंकित हो जाती। मुख्यतया इस प्रकार उनके द्वारा सहजरूपसे धर्मका उद्योत हो गया था।

पूज्य गुरुदेवके निमित्तसे ऐसी प्रबल बाह्य प्रभावना होने पर भी वह स्वयं सहजरूपसे हो गई थी। गुरुदेवको बाह्यमें किंचित् मात्र रस नहीं था। उनका जीवन तो आत्माभिमुख था। उनका दैनिक क्रम प्रायः निज ज्ञान, ध्यान एवं शास्त्रस्वाध्यायमें व्यतीत होता था। देवदर्शन, शास्त्रप्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति और तत्त्वचर्चाके सिवा अन्य प्रवृत्तिके प्रति उपेक्षाभाव वर्तता था। न कभी किसीके साथ इधर–उधरकी बातें करते और न कभी पुस्तक प्रकाशनादि बाह्य कार्योंमें रुचि बतलाते। गुरुदेवकी परिणति ऐसी आत्मोन्मुख एवं वैराग्यपरिणत थी कि उन्हें सरस–नीरस आहारके प्रति लक्ष भी नहीं जाता था। वे हमेशा सादा आहार लेते थे। जो भी आहार आये उसे उपेक्षित एवं उदासन भावसे ग्रहण कर लेते थे। उनका जीवन मात्र आत्माभिमुख था। वे जगतसे बिलकुल उदास–उदास थे। गुरुदेवके परम पावन आदर्श जीवनसे, उनकी पवित्र आत्मसाधनासे, प्रभावित होनेके कारण जिज्ञासुओंके दल हजारोंकी संख्यामें पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मरसझरती वाणीके प्रति आकर्षित हुए। हजारों भक्तोंके श्रद्धाजीवन एवं

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भक्तिजीवन गुरुदेवके पुनीत चरणोंमें अर्पित हुए। अहा! गुरुदेवके प्रतापसे, मरुस्थलमें मीठे कुएकी भाँति, पंचम कालके इस भौतिक विलासके विषमय युगमें चतुर्थ कालका अंश—धर्मकालका प्रवर्तन हुआ। वास्तवमे गुरुदेवने इस कालमें अनेकान्तसुसंगत शुद्धात्मविद्याके नवयुगका प्रवर्तन किया है।

सचमुच तो पूज्य गुरुदेव इन सब कार्योंके 'कर्त्ता' थे ही नहीं, वे तो अंतरसे केवल उनके 'ज्ञाता' ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। बाह्य कार्य तो 'अकर्ता'भावसे—ज्ञाताभावसे सहजरूपसे हो गये थे। स्वानुभूतिसमन्वित भेदज्ञानधारामेंसे प्रवाहित शुद्धात्मदृष्टिजनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याणका मार्ग बतलाया यही वास्तवमें उनका हमारे ऊपर असाधारण महान-महान मुख्य उपकार है। वे बारम्बार कहते थे—अल्पायुषी मनुष्यभवमें निज कल्याण साधना तथा उसके कारणभूत सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। सम्यग्दर्शनका माहात्म्य अपार है।

श्रीमद्राजचंद्रजीने कहा है 'अनंत कालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।' अरेरे! इस भवान्तकारी सम्यग्दर्शन—निजशुद्धात्मदर्शन—विना अनादिकालसे अनन्त-अनन्त जीव संसारपरिभ्रमणके दुःख भोग रहे हैं। जीव चाहे जितने व्रत-तपादि क्रियाकाण्ड करे या शास्त्रोंका ज्ञान कर ले, किन्तु जब तक रागको और परलक्षी ज्ञानकी दृष्टि तथा उसकी महिमा छोड़कर भीतर त्रैकालिक आत्मस्वभावकी महिमा न समझे, अन्तर्मुख दृष्टि न करे तब तक उसकी गति संसारकी ओर है। उसमेंसे जो कोई विरल जीव सुगुरुगमसे तत्त्वको समझकर अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणति अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मानुभूति—प्राप्त कर ले उसीने वास्तवमें, संसारमार्ग पर चले जानेवाले विशाल पान्थसमुदायसे अलग होकर, मोक्षमार्ग पर अपना प्रयाण प्रारंभ किया है। भले ही वह धीमी गतिसे चलता हो, असंयमदशा हो, अंतरमें साधनाका—स्थिर हो जानेका उग्र पुरुषार्थ न हो, तथापि उसकी दिशा मोक्षके ओरकी है, उसकी जाति मोक्षमार्गीकी है। सम्यग्दर्शनका ऐसा अद्भुत माहात्म्य कल्याणार्थीके हृदयमें उतर जाना चाहिये।

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टि होनेका इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार कर लेनेका अमोघ उपाय बतलानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष—उपकारी सम्यग्दृष्टिके माहात्म्यकी तो बात ही क्या? ऐसे अपने परम-उपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशयमाहात्म्यवन्त कृपालु कहानगुरुदेवके प्रति अपना सर्वस्व न्योच्छावर कर दें तो वह भी कम है।

पूज्य गुरुदेवने 'भगवान आत्मा....भगवान आत्मा....ज्ञायक' ऐसी ज्ञायकदेवकी मधुर ध्वनि सदैव जीवन्तपर्यन्त गुँजायी। भौतिक जगतमें जहाँ विशाल जनसमुदाय आत्माके अस्तित्व सम्बन्धमें भी शंकाशील है, वहाँ गुरुदेवने युक्ति तथा स्वानुभवके अत्यन्त बलपूर्वक भेरी बजाई कि—एक ज्ञायक आत्मा ही मैं हूं, मैं सर्वके उपर तैरता परम पदार्थ हूँ। वे आत्माकी मस्तीमें गाते थे कि—'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उलंघी हो जाय जिनेश्वर'। उन्हें आश्चर्य होता कि—यह, भीतर दृष्टिके समक्ष ही, परम निधान—समृद्धिसे भरपूर ज्ञायकतत्त्व—विद्यमान है उसका उल्लंघन करके—उसे लाँघकर—जगत क्यों चला जाता है? 'यह वस्तु सच्ची', 'यह वस्तु यहाँ यह दिख रही' इस प्रकार दृश्य वस्तुको वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवालेको वह क्यों नहीं देखता? क्यों उसे लाँघकर चला जाता है?

T-4.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व दृश्य वस्तुओंके द्रष्टाकी—परम–निधानकी—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगमसे होती है। अहा! ऐसे उस पवित्र गुरुगमके दाता अपने परमोपकारी गुरुदेव अपनेको परम सौभाग्यसे प्राप्त हुए।

पूज्य गुरुदेव कहते थे कि—विश्वके सर्व द्रव्य परिपूर्ण स्वतंत्र हैं। सभी द्रव्योंके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्यका शरीरादि पर द्रव्योंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्ध भावको स्वयं ही करता है। यहां स्वाभाविकरूपसे ही प्रश्न होता है कि ''(श्री प्रवचनसार–शास्त्रमें कहे अनुसार) शुभ या अशुभ परिणमनमें 'शुभ या अशुभ' आत्मा बने''—ऐसा आप कहते हैं और साथ ही ''आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धताका आश्रय करना मोक्षमार्ग है''—ऐसा भी आपका कहना है; इन दोनों बातोंका मेल किस प्रकार है।

इस अत्यन्त–अत्यन्त महत्वकी बातका स्पष्टीकरण गुरुदेव इस प्रकार करते थेः—स्फटिकमणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; वह लालीरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह लाली स्फटिककी ही है, वस्त्रकी बिलकुल नहीं; परन्तु वह लाली लालरंगके चूरेकी, हिंगड़ेकी या कुकुंमकी लाली जैसी नहीं है; लाल दशाके समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता विद्यमान है। उसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिलकुल नहीं; परन्तु शुभाशुभ दशाके समय भी सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है। जिस प्रकार स्फटिकमणिको लाल हुआ देखकर कोई बालक रोने लगे कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मैला हो गया', किन्तु जौहरी तो उस लालीके समय ही विद्यमान निर्मलताकी मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दुःखी-दुःखी हो जाता है, परन्तु ज्ञानी शुभाशुभपनेके समय ही विद्यमान शुद्धताको मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्त्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिक भाव कहो—यह सब एकार्थ हैं ऐसा गुरुदेव कहते थे।

आत्मा 'भविष्यमें' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमानमें ही' वह सामर्थ्य-अपेक्षासे सम्पूर्ण विज्ञानघन है, अनन्तानन्दका पिण्ड है, निर्विकारी है, जिसकी ज्ञानीको स्पष्ट अनुभवसहित प्रतीति होती है। गुरुदेव कहते कि—**'तेरो सरूप न दुंदकी दोहीमें, तोहीमें है तोही सूझत नाहीं'**। तेरा स्वरूप राग-द्वेषादि द्वन्द्वकी दुविधामें नहीं है, इसी समय राग–द्वेष रहित है; उसकी सुझसे ही मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। उसकी सूझके बिना तू संसारमें परिभ्रमण करता है।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धत्त्वके–ध्रुवत्त्वके भान बिना शुद्ध परिणति नहीं होती। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वयका अर्थ मात्र 'वह....वह....वह' इतना ही नहीं, किन्तु केवलज्ञान सामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तसुखसामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तवीर्यादिसामर्थ्यसे भरपूर ऐसा 'वह..वह...वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा परमपारिणामिक भाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्धज्ञायकका गुरुदेव सतत अनुभव कर रहे थे इससे उनको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निरन्तर आंशिक शुद्धपरिणति वर्तती थी। उनके साथ वर्तनेवाला प्रयोजनभूत विषयोंका-द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व, निश्चय–व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादिका—ज्ञान भी उनको विशदतापूर्वक सम्यक्‌रूपसे परिणमता था जिससे शास्त्रोंके लुप्तप्राय हो गये सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगतमें खूब प्रचलित हुए।

वे कहते थे कि—'अहो जीवों! अशुभ तथा शुभ दोनों भाव बन्धके कारण हैं, मोक्षके नहीं।' 'तो मोक्षका कारण कौन?' 'शुद्ध भाव।' 'कषाय कम करें उतना तो शुद्ध भाव होगा न?' दृढ़तासे उत्तर मिलता कि 'वह तो शुभ भाव है; निरन्तर शुद्ध ऐसे निज आत्मपदार्थको श्रद्धना–जानना और उसमें लीन होना वह शुद्ध भाव है'। 'अशुद्धभावके समय भी शुद्ध? अशुद्ध और शुद्ध एकसाथ कैसे हो सकते हैं?' 'हो सकते हैं। **यद्‌ विशेषेपि सामान्यं एकमात्रं प्रतीयते।** अशुद्ध विशेषोंके समय भी सामान्य तो एकरूप —शुद्धरूप रहता है।' शुभाशुभ पर्यायके समय भी भीतर स्वभावमें सामर्थ्यरूपसे परिपूर्ण भरपूर शुद्धता भरी पड़ी है वह बात, श्री पंचाध्यायीके **'सन्त्येनकेत्र दृष्टान्ता हेमपद्मजलाऽनलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैन्धवाः॥'**—इस श्लोकमें कहे गये सुवर्ण, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र एवं लवणके दृष्टांतो द्वारा गुरुदेव समझाते थे। विशेष-अपेक्षासे होनेवाली अशुद्धताके समय भी सामान्य अपेक्षासे रहनेवाली द्रव्यकी शुद्धता. समझाते हुए गुरुदेव कहते कि—द्रव्य-अपेक्षासे वर्तमानमें शुद्धता विद्यमान न हो तो किसीकाल पर्यायशुद्धता हो ही नहीं सकती। जहाँ अज्ञानी विशेषोंका आस्वादन करते हैं वहीं ज्ञानी सामान्यके आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। यही संक्षेपमें बन्धमार्ग और मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य है।

पूज्य गुरुदेवने भारतवर्षमें सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूतिकी महिमाका पावन युगप्रवर्तन किया।

जिस प्रकार श्री प्रवचनसारमें आचार्यभगवानने जगतके समक्ष घोषित किया है कि 'श्रामण्यको अंगीकार करनेका जो यथानुभूत—हमने स्वयं अनुभव किया हुआ—मार्ग उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं', उसी प्रकार अध्यात्मविद्या–युगस्रष्टा पूज्य गुरुदेवने भी स्वयं अनुभव करके अत्यन्त दृढ़तापूर्वक सिंहनाद किया कि 'अनुभव करके कहते हैं कि स्वानुभूतिका मार्ग ही मोक्षका उपाय है, तुम निर्भयरूपसे इस मार्ग पर चले आओ।'

स्वानुभूति होने पर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है। उस सम्बन्धमें गुरुदेव कहते थे कि—स्वानुभूति होने पर, अनाकुल–आह्लादमय, एक, समस्त विश्व पर तैरता विज्ञानघन परमपदार्थ—परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्‌रूपसे देखनेमें—श्रद्धनेमें ही नहीं आता; इसलिये बिना स्वानुभूतिके सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ ही नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना? स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका किसी भी प्रकार निर्णय करनेको गुरुदेव भारपूर्वक कहते थे। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सतपना और स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वोंका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—गुरुदेवने भारतव्यापी प्रचार किया। तीर्थंकरदेवों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक सत्य तो गुरुदेव द्वारा विविध माध्यमोंसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशित हुए ही; साथ ही साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्धद्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिमाणिक भाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसे बाहर लाकर पूज्य गुरुदेवने अथाह उपकार किया है।

जीव परद्रव्यकी क्रिया तो नहीं करता, किन्तु विकारकालमें भी स्वभाव-अपेक्षासे निर्विकार रहता है, अपूर्ण दशाके समय भी परिपूर्ण रहता है, सदाशुद्ध है, कृतकृत्य भगवान है। जिस प्रकार रंगित दशाके समय स्फटिकमणिके विद्यमान निर्मल स्वभावकी प्रतीति हो सकती है, उसीप्रकार विकारी, अपूर्ण दशाके समय भी जीवके विद्यमान निर्विकारी, परिपूर्ण स्वभावकी प्रतीति हो सकती है। ऐसे शुद्धस्वभावके अनुभव बिना मोक्षमार्गका प्रारम्भ भी नहीं होता, मुनिपनेका पालन भी नरकादिक दुःखोंके भयसे या अन्य किसी हेतुसे किया जाता है। 'मैं कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, सहजानन्द हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये' ऐसी परम उपेक्षारूप, सहज उदासीनतारूप, स्वाभाविक तटस्थतारूप मुनिपना द्रव्यस्वभावके अनुभव बिना कभी नहीं आता। ऐसे शुद्धद्रव्य–स्वभावके—ज्ञायकस्वभावके निर्णयके पुरुषार्थकी ओर, उसकी लगनकी और आत्मार्थियोंको मोड़कर, भवभ्रमणसे आकुलित मुमुक्षुओं पर गुरुदेवने अकथ्य उपकार किया है।

जिस प्रकार पूज्य गुरुदेवका तात्त्विक उपदेश हमें सत्य मार्गकी ओर उन्मुख करता है उसी प्रकार उनके ध्येयनिष्ठ जीवनका प्रत्यक्ष परिचय, उनका सत्संग हमारे समक्ष आत्मार्थीजीवनका आदर्श उपस्थित करके हमें पुरुषार्थकी प्रेरणा देता था। 'इस महँगे मनुष्यभवमें भवभ्रमणके अन्तका ही उपाय करना' यह एक ही जीवनध्येय गुरुदेवका पहलेसे ही था। उस ध्येयको उन्होंने समग्र जीवन समर्पित किया था। उसीके लिये अध्ययन, उसीका मंथन, उसीका प्रयत्न, वही उपदेश, वही बात, वही चर्चा, वही धुन, उसीके स्वप्न, उसीकी भनक,—उनका समस्त जीवन उसी हेतु था। गत अनेक वर्षोमें जगतमें विविध आन्दोलन आये और गये, अनेक राजकीय, सामाजिक, धार्मिक झंझावात हुए, किन्तु मेरु समान अचल गुरुदेवके ध्येयनिष्ठ जीवनको वे लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सके। 'इस एक भवके सुखाभासके हेतु कल्पित व्यर्थ प्रयत्नसे क्या लाभ? मुझे तो एक भवमें अनन्त भवोंका अन्त करना है' ऐसे भावपूर्वक, फिर जन्म न हो उसके उपायकी धुनमें वे निज अन्तर्मुख जीवनमें अत्यन्त लीन रहे।भवन्तके उपायके सिवाय अन्य सब उन्हें अत्यन्त तुच्छ लगता था।

पूज्य गुरुदेवका अंतर सदा 'ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक, ध्रुव....ध्रुव....ध्रुव, शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध, परमपारिणामिकभाव'—इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनभावसे निरन्तर–जागृतिमें या निद्रामें—परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसारादिके प्रवचन करते हुए या चर्चा–वार्तामें वे ज्ञायकके स्वरूपका और उसकी महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहो! वे स्वतंत्रता और ज्ञायकके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थीयोंको सच्चा मुक्तिका मार्ग बतालाया!

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह–अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भाव भरे;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकमहीं तन्मय बनी ज्ञातृत्वने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो।

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे अपने गुरुदेव।

वे द्रव्य-अपेक्षासे 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभवते थे तथापि पर्याय-अपेक्षासे 'हम कब सिद्धपना प्रगट करेंगे!' इस प्रकार भावना भी भाते थे। सिद्धत्वकी तो क्या, किन्तु संयमकी भावनारूप भी वे परिणमते थे। 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल जहँ छाया जी, चरणकरणगुणधार महामुनि मधुकर मन लोभायाजी' ऐसे अनेक बार भावविभोर ललकारसे तथा 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो?...' इस प्रकार हृदयकी गहराईसे दैनिक प्रवचनोमें तथा श्री जिनबिम्ब–प्रतिष्ठामें दीक्षाकल्याणकके प्रासंगिक प्रवचनमें विविध प्रकारसे संयमकी भावना भाते हुए गुरुदेवकी पावन मूर्ति भक्तोंकी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपनेको पूर्ण शुद्ध देखें—मानें तथापि संयमकी भावना भायें?' हाँ; शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण शुद्ध अपनेको देखते–मानते हुए भी व्यक्ति–अपेक्षासे शुद्ध होनेकी भावना ज्ञानीको अवश्य होती है। गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणतिरूप परिणमित हो रहे थे। वास्तवमें तो शुद्धस्वरूपके दृष्टा सम्यग्दृष्टि जीवको ही सच्ची संयमकी भावना होती है, क्योंकि वह संयमपरिणतिका सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टिको सच्ची संयमकी भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयमकी खबर नहीं है।

'बहिनश्री केवचनामृत'के ३०८वें बोलमें कहा है कि :—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगता, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव शक्ति-अपेक्षाके इस बोलका बारम्बार उल्लासपूर्वक स्मरण करते थे, उसी प्रकार व्यक्ति–अपेक्षाका सिद्धत्व प्राप्त करनेकी भावनाका ४०१ वाँ बोल भी अनेक बार उल्लसितभावसे याद करके प्रसन्नतापूर्वक कहते थे:—देखो! बहिन कैसी भावना भाती हैं? 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है।...अब हम स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।

ऐसा अनेकान्तसुसंगत यथार्थ संधिवाला पूज्य गुरुदेवका जीवन हमें सच्चा मार्ग बतला रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभ भावोंमें संतुष्ट न होकर ध्रुव तत्त्वके आलम्बनके पुरुषार्थकी प्रबल प्रेरणा दे रहा है; तथा 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढताके साथ साथ 'हम अपने मूल वतनमें जानेके लिये तरस रहे हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहना चाहिये, नहीं तो 'ध्रुव तत्त्व'की समझके प्रकारमें ही कुछ भूल है ऐसी चेतावनी देकर, दीपस्तम्भरूप रहकर, हमारी जीवननौकाको चट्टानी मार्गसे बचाकर, हमें सच्चे मार्ग पर लगाते हैं। श्री सद्गुरुदेवकी स्तुतिमें हम गाते हैं न—

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग बिन वह नाव भी तारे नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

इसकालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य हैं;
मम पुण्यराशी फलि अहो! गुरुकहान नाविक आ मिले।।

—अहा! इस प्रकार परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवका स्वानुभवविभूषित पवित्र जीवन तथा अध्यात्मोपदेश हमें अत्यन्त उपकारक हो रहे हैं।

वस्तुतः पूज्य गुरुदेवने स्वानुभूति प्रधानताके एक अद्‌भुत युगका प्रवर्तन किया है। **'मेरो धनी नहि दूर दिसंतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीकै'** ऐसा प्रबल सिंहनाद करके गुरुदेवने सर्वज्ञ-वीतरागप्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिनशासनकी मन्द हुई ज्योतिमें नया तेल डालकर आत्मार्थी जीवों पर वास्तवमें महान अनहद उपकार किया है।

ऐसे चमत्कारपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान-भक्तिके नवयुगका सृजन करनेवाले महान-महान उपकारी परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने जीवनके अन्तिम क्षण तक अपने स्वानुभवसमृद्ध ज्ञानभण्डारमेंसे भक्तोंको खूब–खूब दिया; भारतके सुपात्र जीवोंको निहाल कर दिया। ९१ वर्षकी उम्र तक अविरतरूपसे वीतराग–विज्ञानका वितरण किया। अन्तमें भक्तोंके भाग्य क्षीण हुए। वि. सं. २०३७ मगसिर कृष्णा सप्तमी, शुक्रवार (ता. २८–११–१९८०)के दिन भक्तोंके परमाधार गुरुदेवने भक्तोंको निराधार छोड़कर अंतर ज्ञायककी साधनायुक्त समाधिपरिणाममें स्वर्गकी ओर महाप्रयाण किया।

अहो! कृपालु गुरुदेवकी उपकारभरपूर महिमाका तो क्या वर्णन हो!

श्रीमद्‌राजचन्द्रजीने गुरुमहिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि—

अहो! अहो! श्री सद्‌गुरु, करुणासिन्धु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार।

शुं प्रभुचरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तु चरणाधीन।

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन।

परम कृपालु पूज्य गुरुदेवकी अपार उपकारमहिमा, उनकी परम-भक्त प्रशममूर्ति धन्यावतार आत्मज्ञानी पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके विविध प्रसंगो पर बोले गये शब्दोंमें कहकर पूज्य गुरुदेवका 'संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन' समाप्त करता हूँ :—

"पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुतिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। यह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परमउपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो।''

''तीर्थंकर भगवन्तो द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानवीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहें हैं। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।''

''गुरुदेवने शास्त्रोंके गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूपसे रखा है! हमें कहीं सत्य ढूँढनेको जाना नहीं पड़ा। गुरुदेवका कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ',—इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है....।''

''...(श्री कहानगुरुदेवने) अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो।''

—यह है प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके श्रीमुखसे विभिन्न अवसरों पर प्रवाहित, आध्यात्मिक युगपुरुष परम-कृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी उपकारगरिमायुक्त लोकोत्तर महिमा। ऐसे सातिशय महिमावन्त महापुरुषके पावन योगसे भारतवर्षका आध्यात्मिक क्षेत्र उज्ज्वल हुआ है। शुद्धात्मदृष्टिका सुधापान करानेवाले इन तिरते पुरुषके सत्समागमका लाभ लेनेवाले महान भाग्यशाली बने हैं।

परमपूज्य परमोपकारी गुरुदेवके चरणोंमें—उनकी मांगलिक पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्ग-दर्शक उपदेशोंको और अनेकानेक उपकारोंको दृष्टि समक्ष रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक भावभीनी वन्दना हो। उनके द्वारा प्रकाशित स्वानुभूतिका पावन पंथ जगतमें सदा जयवन्त वर्ते और हमें सत्पुरुषार्थकी प्रेरणाका अमृतपान निरन्तर कराता रहे।

सोनगढ़
सं. २०३६, भाद्रपद कृष्णा दूज
पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी ८४वीं जयंती —*ब्र० चन्दुलाल खीमचन्द झोबालिया*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मंगलकारी 'तेज'दुलारी

मंगलकारी 'तेज'दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणोंसे मंडित अवनी आज सुमंगल है,.....मंगल०

फाल्गुन कृष्णा दशमी मंगल, वांकानेर सुमंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल ज्ञानमहोत्सवका यह अवसर अनुपम मंगल है,.....मंगल०

मंगल शिशुलीला अति उज्जवल, मीठे बोल सुमंगल हैं,
शिशुवयका वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,.....मंगल०

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरणमें कुंदप्रभुका दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनिका स्मरण मधुरतम मंगल है,.....मंगल०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल हैं,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल हैं;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,.....मंगल०

दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपदमें मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तव गुणको आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें.....मंगल०

વૈરાગી અંતર્મુખી, મંથન પારાવાર; જ્ઞાતાનું તલ સ્પર્શીને, કર્યો સફળ અવતાર

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

परमात्मने नमः ।

श्री

वचनामृत–प्रवचन

(भाग दूसरा)

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृत
पर
परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन

प्रवचन–४६

वचनामृत–१२६

पर्यायके ऊपरसे दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि लगाये तो मार्ग मिलता ही है। जिसे लगन लगी हो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। अंतरसे ऊब जाये, थकान लगे, सचमुचकी थकान लगे, तो पीछे मुड़े बिना न रहे ।।१२६।।

'पर्यायके ऊपरसे दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि लगाये तो मार्ग मिलता ही है।'

क्या कहते हैं? मात्र सत्य सिद्धांत ही भरे हैं। वर्तमान दशा–पर्याय–अवस्थामें जो रागादि होते हैं, विचारोंकी हलचल हो रही है, उस चलती हुइ वर्तमान दशा परसे दृष्टि हटा दे। अरे! अभी तो बाहरसे–स्त्री, बच्चे, मकान और रुपया–पैसा आदि परसे–दृष्टि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हटाना कठिन लगता है! यहाँ तो कहते है कि–प्रभु! तुझमें दो भाव हैं : (१) त्रैकालिक भाव और (२) वर्तमान बदलती हुई दशारूप भाव। जिस प्रकार सोना वह तत्त्व है, द्रव्य है; उसका पीलापन, चिकनापन और वजन वह उसके गुण हैं जो कि स्थायी हैं; तथा कुण्डल, कड़े, अँगूठी आदि गहने वह उसकी पर्यायें हैं, दशा हैं; उसी प्रकार भगवान आत्मा सुवर्ण समान त्रैकालिक द्रव्य है; ज्ञान-आनन्दादि गुण सोनेके पीलेपन आदि गुणोंकी भाँति उसकी शक्तियाँ हैं–गुण हैं; और सोनेमें कुण्डलादिकी भाँति वर्तमान वर्तती पर्याय पलट जाय, राग करे, द्वेष करे, ज्ञानकी न्यूनाधिक दशा हो वे सब पर्यायें है। उन पर्यायों पर अनादिसे तेरी दृष्टि है। तुझे हित करना हो तो वह दृष्टि छोड़ दे।

अरे! यह भी कोई बात है! तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर भगवान भी पर हैं, तू उन परसे अपना लक्ष हटा दे; उनकी श्रद्धाका जो राग है उसका भी लक्ष छोड़ दे। उसे तो छोड़ दे किन्तु उस रागको जाननेवाली जो वर्तमान ज्ञानकी दशा वह 'राग है' ऐसा जो जानती है–उस पर्यायके ऊपरकी दृष्टि भी छोड़कर द्रव्य पर दृष्टि लगा।

द्रव्य अर्थात् वस्तु–त्रैकालिक चैतन्यधातु; उस पर दृष्टि डाल। अन्य किसी प्रकार उद्धार नहीं है भाई! क्रियाकाण्ड सम्बन्धी दया-दान-व्रत सम्बन्धी, जो परिणाम–उन्हें 'मैं करता हूँ' ऐसे भाव भी मिथ्याभ्रम है। उन परिणामोंको जाननेवाली वर्तमान दशा है उस पर तेरी जो दृष्टि है वह भी छोड़ दे; क्योंकि वह पर्याय-अंश है और वस्तु तो त्रैकालिक ध्रुव है।

अहा! परम सत्य परमात्मस्वरूपी नाथ भीतर विराजमान है। अपनी ऋद्धि-सिद्धिमें कैसे वृद्धि हो उसकी तुझे खबर नहीं है। भीतर जहाँ ऋद्धि पड़ी है वहाँ जा। अनादिसे वर्तमान दशा पर ही तेरी दृष्टि है, उसे छोड़कर एक समयकी पर्यायके पीछे जो परिपूर्ण ध्रुव तत्त्व है वहाँ दृष्टि लगा। अहा! भाषा बड़ी संक्षिप्त किन्तु भाव बहुत गहरे!

अरेरे! ऐसा सत्य जिसे सुननेको नहीं मिलता, वह विचार कब करेगा और अंतरमें कब जायेगा? यह जीवन यों ही बीतता जा रहा है! बाहरी बातोंको छोड़कर अपने ध्रुव स्वरूप पर दृष्टि करना हो तो अनित्यके ऊपरसे उठाकर ध्रौव्य पर दृष्टि लगा दे; तुझे जरूर आत्मज्ञान होगा।

त्रैकालिक सत् चैतन्य प्रभु–तेरा ध्रुव तत्त्व–उस पर तूने कभी दृष्टि नहीं की। वर्तमान रागादिकी अथवा अल्प ज्ञानादिकी जो पर्याय है उस क्षणिक दशा पर ही तेरी दृष्टि है। परको अपना मानना वह तो महान भ्रमणा है ही; परंतु जानने–देखनेकी वर्तमान दशा जो तेरी अपनी उत्पन्न की हुई है, तेरी है, तुझमें है, तेरे अपने द्रव्यका वर्तमान अंश–पर्याय है उस पर दृष्टि–पर्याय दृष्टि–वह भी मिथ्यात्व है। वह पर्यायदृष्टि अनादिकी है। पर्यायके ऊपरकी दृष्टि छोड़कर त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव पर तेरी दृष्टि कभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आयी नहीं है। मिथ्यात्व एवं रागके दुःखसे छूटनेका—विकल्प तोड़नेका—अन्य कोई उपाय नहीं है; भीतर त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभावकी—शुद्ध ज्ञायक परमभावकी दृष्टि करना एक ही उपाय है।

स्त्री, पुत्र, परिवार अथवा देव-शास्त्र-गुरु जो कि पर वस्तु हैं वे तेरे नहीं हैं। उनकी ओर दृष्टि करे तब भी वे तेरे नहीं हैं और दृष्टि नहीं करे तो भी तेरे नहीं है—वे तुझमें हैं ही नहीं। परन्तु तुझमें तेरी जो वर्तमान अल्पज्ञताकी दशा है, पर्याय है वह दशा तूने स्वयं ही उत्पन्न की हुई, तुझमें ही है, परन्तु है वर्तमान क्षणिक पर्यायमें; त्रैकालिक आनन्दका नाथ जो वस्तुस्वभाव उसमें नहीं है। उस ज्ञानकी दशाके ऊपरसे भी दृष्टि हटा ले और द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि लगा तो मार्ग मिलेगा ही। अहा! बड़ी अलौकिक बात है!

शरीर, वाणी आदि तो आत्मा हैं ही नहीं, परंतु आत्माने वर्तमान दशामें जो राग किया उसकी भी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो उससे भी गहरे, रागको जाननेवाली तेरी जो पर्याय है—उस वर्तमान बदलती दशा जितना अंश तुझमें है—उसके ऊपरकी दृष्टि भी छोड़ दे; क्योंकि उस क्षणिक दशामें त्रैकालिक परिपूर्ण आत्मा नहीं आता। वर्तमान दशा पर जो दृष्टि है उसे छोड़कर त्रैकालिक परिपूर्ण आत्मस्वभाव पर दृष्टि लगा तो अंतरसे मार्ग मिलेगा ही, मार्ग प्राप्त करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है।

क्या कहते हैं? कि 'पर्यायके ऊपरसे दृष्टि हटाकर द्रव्यके ऊपर द्रष्टि लगा तो मार्ग मिलेगा ही।' बात जरा सूक्ष्म है। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा द्रव्य-अपेक्षासे अपरिणामी ध्रुव भी है और पर्याय-अपेक्षासे बदलता भी है। द्रव्य और पर्याय—इस उभयात्मक आत्मवस्तुमें जीवको अनादिकालसे द्रव्यस्वभाव—ध्रुवस्वभाव पर दृष्टिका, रुचिके जोरका, अभिप्रायके भारका अभाव है; उसकी दृष्टि पर्याय पर ही है।

श्री प्रवचनसारकी ९३वीं गाथामें 'पर्ययमूढाः हि परसमयाः' कहा है। वहाँ 'ज्ञेय अधिकार'में आत्मादि छहों द्रव्योंको ज्ञेय कहा है। द्रव्य, गुण और पर्याय—ऐसे तीन प्रकार प्रत्येक वस्तुमें हैं। (१) त्रैकालिक शक्तिको धारण करनेवाला नित्य पदार्थ वह द्रव्य, (२) वस्तुमें साथ रहनेवाली शक्तियाँ वे गुण, और (३) उस द्रव्यकी तथा उसके गुणोंकी प्रतिसमय बदलनेवाली दशा वह पर्याय है।

जिसकी रुचि पर्यायमें है, जो पर्यायमें मोहित है उसे पर्यायमूढ़ बहिरात्मा कहा गया है।

प्रश्न :—पर्याय भी वस्तुका धर्म है, उसे न मानें तो वेदांत जैसी मान्यता हो जायगी; फिर 'पर्यायमूढ़' क्यों कहा?

उत्तर :—भाई! वस्तुमें पर्याय है तो अवश्य, परन्तु उस पर दृष्टि नहीं है, जोर नहीं है; रुचिका जोर मात्र निज ज्ञायक ध्रुव द्रव्य स्वभाव पर है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ज्ञान, आनन्दादि अनन्त-अनन्त सहज शक्तियोंका संग्रहालय है। उसकी पर्यायें बदलती रहती हैं। बदलती पर्यायोंकी अवधि एक समयकी है और नित्य स्थायी ध्रुव स्वभावकी अवधि त्रिकाल है। जो शरीरादि संयोगोंको तथा रागादि विभावको 'स्व'रूप मानता है वह जीव पर्यायद्रष्टि है। उसे त्रैकालिक ज्ञायक ध्रुवस्वभावकी दृष्टि, रुचि नहीं है; इसलिये उसे पर्यायमूढ़ कहा है।

शरीर, वाणी और कर्मादि आत्माकी वस्तु नहीं है; वास्तवमें तो राग-द्वेष और दया–दानके विकल्पादि समस्त विभाव आत्मवस्तुके मूल स्वभावमें नहीं हैं, उसकी पर्यायमें हैं। वह विभाव परिणमन उसके अपनेमें है, क्योंकि विभाव परिणमनके षट्कारकोंरूपसे स्वयं स्वतंत्र परिणमता है; वह विभाव परिणमन कर्मके कारण नहीं है। आत्मा अपने गुणों और पर्यायोंको–स्वधर्म स्वभावको–चूमता है, स्पर्शता है; किन्तु कर्म, शरीरादि परद्रव्यके गुण-पर्यायको नहीं चूमता, स्पर्श नहीं करता। यह बात श्री समयसारकी तीसरी गाथाकी टीकामें स्पष्टरुपसे समझायी है।

यहाँ तो यह कहना है कि तेरी दृष्टि अनादिकालसे परके ऊपर तथा अपनी क्षणिक पर्यायके ऊपर है उसे छोड़ दे। पर्यायकी दृष्टि अर्थात् पर्यायके ऊपर ही रुचि है उसे छोड़ दे। तुझे अपना कल्याण करना हो, आत्माका हित करना हो, सुखके मार्ग पर चलना हो–आनन्दके मार्ग पर जाना हो तो'पर्यायदृष्टि दुःख पंथ है' ऐसा समझकर उसे छोड़ और त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि लगा। अहाहा! शब्द थोडे किन्तु गम्भीरता अपार!

पर्यायके ऊपर दृष्टि अर्थात् शरीर, वाणी, कर्म तथा रागादि विभाव एवं अपूर्णता आदि पर दृष्टि। उसमें कर्म आदिका तो अस्तित्व ही आत्मासे भिन्न है। पर्यायका अस्तित्व अपनेमें है क्योंकि प्रमाणज्ञानका विषय द्रव्य एवं पर्यायस्वरूप संपूर्ण वस्तु है। पर्याय है अवश्य, परन्तु वह मात्र वर्तमान क्षणिक अंश है। उस पलटते अंशमें पूर्ण त्रैकालिक तत्त्व नहीं आ जाता। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्दादि त्रैकालिक गुण और उनकी वर्तमान पर्यायें वस्तुमें है अवश्य; परन्तु उस गुणभेद पर या वर्तमान पलटती पर्याय पर जो तेरी दृष्टि है, तेरी रुचिका वहाँ जो जोर है उसे छोड़ दे। उस पर्याय बुद्धिको छोड़कर भीतर भूतार्थ सत्य जो त्रैकालिक ध्रुव तत्त्व है उस पर दृष्टि लगा। उस पर रुचिका जोर लगाना वह तेरे हाथकी बात है, वहाँ दृष्टि देना वह तेरे पुरुषार्थका कार्य है।

पुरुषार्थ पूर्वक भीतर द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि लगाये तो अंतरका मार्ग अवश्य प्राप्त हो। कर्म रास्ता दें तो हो–ऐसा है ही नहीं; परन्तु वर्तमानमें जो त्रैकालिक ध्रुव एकाकार वस्तु ऐसा जो ज्ञायक द्रव्यस्वभाव उस पर दृष्टि देनेसे मार्गकी प्राप्ति होती ही है। उस द्रव्य पर दृष्टि अर्थात् रुचिका जोर देनेसे तुझे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा आंशिक स्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्थिरता होगी ही;–सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग अवश्य मिलेगा।

मार्ग स्वयं पर्याय है। एक ओर पर्याय दृष्टि छुड़ाई–पर्यायका जोर छुड़ाया और दूसरी ओर कहा कि द्रव्य पर दृष्टि दे तो मोक्षमार्गरूप पर्याय प्रगट होगी ही, अहाहा! खूब सरस! थोड़ेमें बहुत भरा है! ऐसी बातें हैं!

जिसे लगन लगी हो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं।'

जिसे उस ज्ञायक ध्रुवस्वभावकी लगन लगती है उसे अंतरमें स्वभावका पुरुषार्थ चलता ही है। त्रैकालिक ध्रुव सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु वह निश्चय आत्मा है और पर्याय वह व्यवहार-आत्मा है। व्यवहार-आत्माकी अर्थात् पर्यायकी दृष्टि छोड़कर, त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक आत्मा पर दृष्टि देनेसे मोक्षमार्गस्वरूप पर्यायका व्यवहार प्रगट होगा। मोक्षमार्ग भी व्यवहार है, क्योंकि वह निर्मल पर्याय है। अहाहा! गंभिरताका तो कोई पार नहीं है! जितना समझा जा सके उतना समझना भाई!

अहो! यह वीतरागका मार्ग! एक-एक गुण तथा एक-एक पर्यायकी बात है इसमें! अद्‌भुत बात है! अंतरमें अभेद द्रव्य पर दृष्टि दे तो मोक्षमार्गकी पर्याय अवश्य ही प्रगट होगी। आया कुछ समझमें? जिसे नित्य ज्ञायकस्वरूप चैतन्यतत्त्वकी लगन लगी है वह अंतरमें पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता, वह अंतर्मुख हुए बिना रहता ही नहीं। जिसे यथार्थ रूपसे पूर्णज्ञायक तत्त्वकी लगन लगी हो वह उस ओरका पुरुषार्थ अवश्य करता ही है।

अरे! यह बात बाहरके कारखानोंमें नहीं है, अंतरका कारखाना कोई और ही है भाई! पर द्रव्य उसके गुण और उसकी पर्यायें–यह बात छोड़ दी है; उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वे सब स्वतंत्र भिन्न हैं, आत्मा उनका कुछ नहीं कर सकता। वे आत्मामें हैं ही नहीं। फिर उनका प्रश्न ही क्या? आत्मामें तो उसकी अपनी पर्यायें और अपना ज्ञायक तत्त्व है

कारखाने, रुपये और मजदूर–वे तुझमें नहीं हैं। उन्हें अपना मानता है वह तेरी मान्यता ही झूठी है। अरे! वर्तमान रागादि विभावकी पर्याय जो तुझमें है उसे अपनी माने तो वह मान्यता भी झूठी है। शरीर, कर्म, पैसा, स्त्री-पुत्र, परिवार या देश आदि आत्मामें हैं ही नहीं; वे उनमें हैं, उन्हें अपना मानना वह बड़ी भ्रमणा है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि–आत्मामें जो अपनी पर्यायें हैं उनपर–अंश पर–दृष्टि रखनेसे त्रैकालिक तत्त्वका अनादर होता है। इसलिये एकबार तू पर्यायकी दृष्टि छोड़। अरे! उपदेशमें क्या कहें? पुरुषार्थ करके पर्यायको द्रव्यकी ओर ले जाना है। जहाँ द्रव्य पर दृष्टि गई वहाँ पर्यायदृष्टि छूट ही जाती है। अहो! वीतरागका मार्ग! एक-एक शब्द, एक-एक भावमें अपार गंभीरता भरी है।

जिसे अंतरकी लौ लगी है उसका वीर्य स्वोन्मुख हुए बिना नहीं रहता। 'रुचि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुयायी वीर्य'। यदि ज्ञायक तत्त्वकी रुचि हो तो वीर्य उस ओर ढले बिना रहता ही नहीं। जिसकी आवश्यकता लगे उसकी ओरका पुरुषार्थ होता ही है। द्रव्य स्वभावकी लगन लगेगी तो उस ओरका पुरुषार्थ भी अवश्य होगा ही। अहा! ऐसी बातें हैं। मात्र बाहरी पहाड़े पढ़कर धर्म मान बैठे हों उन्हें यह बात असह्य लगेगी भाई!

'अन्तरसे ऊब जाये, थकान लगे, सचमुचकी थकान लगे तो पीछे मुड़े बिना न रहे।'

अंतरसे थकान लगे। किससे? तो कहते हैं कि रागकी तथा वर्तमान पर्यायकी बुद्धिसे। एक पलटते अंशपर लक्ष है वह दुःख है, उससे थक जाय, सचमुच थक जाय। पर एवं पर्यायके ऊपर दृष्टि है वहाँ रागादि कषायभाव हुए बिना नहीं रहता, मिथ्यात्वभाव हुए बिना नहीं रहता। मिथ्यात्वभाव वह महान दुःख है। प्रतिकुल संयोग हैं इसलिये दुःख है वह तो निमित्तसे कथन है। उस मिथ्यात्वके महादुःखसे जिसे अंतरसे उसके प्रति अरुचि हुई हो, थकावट आयी हो, सचमुचकी थकावट आयी हो वह जीव पीछे हटे बिना नहीं रहेगा; पर्याय बुद्धिसे विमुख हुए बिना रहेगा ही नहीं। भगवान ज्ञायक आत्मा सुखका सागर है वहाँ दृष्टि लगाये बिना नहीं रहेगा।

*

वचनामृत–१२७

कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता। विभाव भी तेरे नहीं हैं तो बाह्य संयोग तो कहाँसे तेरे होंगे? १२७॥

'कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता।'

इस वाक्यमें चार 'क'कार आये हैं। आत्मा एक रजकणका भी कुछ कर नहीं सकता। क्या कहते हैं?कि–आँखकी पलक ऊँची-नीची करे, हाथ हिलाये, रोटीका कौर लेकर दाल सागमें डुबाये, बड़े बड़े भाषण करे आदि पर द्रव्यकी अवस्थाओंमें आत्मा कुछ नहीं कर सकता। अज्ञानके कारण जीव मानता है कि 'मैं परकी अवस्था करता हूँ'; परन्तु जड़की अवस्थाका जन्म वास्तवमें जड़से ही होता है। ऊँगलीका मुड़ना, रोटीका कौर टूटना आदि अवस्थारूप जड़ स्वयं ही परिणमता है, उस-रूप होना वह जड़का स्वकाल है, जड़का परिणमन है। आत्मासे जड़की अवस्था तीनकालमें नहीं होती।

प्रश्न :–मुर्दा रोटी खाता है?

उत्तर :–मुर्दा भी नहीं खाता और जिन्दा भी नहीं खाता। 'मैं खाता हूँ' ऐसा (अज्ञानी)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानता है। वास्तवमें खानेकी क्रिया ही जड़की है। अहा! बड़ा मुश्किल काम है!

यहाँ कहा जा रहा है कि कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता। इसके सामने एक पण्डितने कहा था कि–जीवको पर द्रव्यका कर्ता न माने वह दिगम्बर जैन ही नहीं है। अरे भगवान! यह क्या कहते हो? जहाँ प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायमें परिणमता है वहाँ परके साथ कर्ता-कर्मका सम्बन्ध कैसा?

जीव वाणी बोलता है, होंठ हिलाता है, तिनकेके दो टुकड़े कर सकता है—यह बात तीन कालमें सच्ची नहीं है।

प्रश्न :–चबाकर खाना चाहिये, क्योंकि पेटमें दाँत नहीं हैं–ऐसा कहा जाता है ना?

उत्तर :–खानेकी तथा चबानेकी क्रिया जड़में, जड़के कारण होती है; आत्मा जड़को—रोटीको—नहीं चबा सकता। आत्मा खानेके भाव—राग करता है, परन्तु परमें कुछ नहीं कर सकता। खाना वह तो जड़की क्रिया है। आत्मा सदा अपने द्रव्य-गुण-पर्यायमें वर्तता है उसके सिवा परके द्रव्य-गुण-पर्यायमें वह कुछ नहीं कर सकता परन्तु जीवको अनादिका भ्रम है कि आत्मा परका करता है। आत्मा शरीरमें न हो तो गर्दन सीधी न रहे, शरीर खड़ा नहीं रह सकता—यह मान्यता भ्रम है। वह अवस्था शरीरके परिणमनके कारण है। गर्दनका सीधा रहना वह आत्माके कारण नहीं है। कठिन बात है प्रभु!

'णमोकार' मंत्रमें 'लोए' तथा 'सव्व' पद अंतदीपक होनेसे आगेके चारों पदमें लगते हैं; 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं'—इस प्रकार। किसीका तर्क है कि अरिहंत भगवान मध्यलोकमें होते हैं, तीनों लोकमें नहीं होते; इसलिये 'णमोकार'में से 'लोए' शब्द निकाल देना चाहिये। अरे! अनादिनिधन मंत्रमेंसे शब्द निकाल देनेकी बात करना वह तो महान अनीति—पापकी बात है! प्रभु! केवल समुद्घातकी अपेक्षासे अरिहंतकी स्थिति समस्त लोकमें होती है। वह बतलानेके लिये भी 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं' लागू होता है।

तथा अन्य किसीका तर्क है कि–'णमो लोए सव्व साहूणं'में सव्वका अर्थ जैन तथा जैनेतर साधु—ऐसा करना चाहिये। यह भी मिथ्या कल्पना है। भाई! साधु किये कहा जाता है? आत्मज्ञान सहित तीन कषायका अभाव जिनके अंतरमें परिणमित हुआ है, जिनकी दशा को अतीन्द्रिय आनन्दके प्रचुर स्वसंवेदनकी मुहर–छाप लगी है, बाह्यमें जिनके वस्त्रका टुकड़ा भी न हो ऐसी निर्विकार नग्न दशा हो, वे ही 'साहूणं' पदमें आते हैं। उनके सिवा जो वस्त्र-पात्रधारी तथा अन्य परिग्रहवंत हैं उन्हें वीतरागता के मार्गमें साधु ही नहीं कहा जा सकता। जिसके अंतरंग शुद्ध भावलिंग हो उसीको सच्चा द्रव्यलिंग होता है। भाव रहित अकेला द्रव्यलिंग हो वह सच्चा साधु नहीं कहलाता। जहाँ अंतरमें आनन्दका ज्वार आया है ऐसा भावलिंग—भावमुनिपना—प्रगट हुआ है वहाँ उसके साथ द्रव्यलिंग होता ही है; बाह्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नग्न दशा न होकर वस्त्र सहित हो उसे भावलिंग प्रगट हो ऐसा कभी नहीं हो सकता। तथा वस्त्र रहित नग्न दशारूप द्रव्यलिंग है तो उससे भावलिंग प्रगट होगा ऐसा भी नहीं है।

प्रश्न :—तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते हैं तब वस्त्र उतारनेकी क्रिया करते हैं या नहीं?

उत्तर :—नहीं। विकल्प आये, परन्तु वस्त्र उतरनेकी क्रिया जड़की है वह जड़से होती है। आत्मा जड़की क्रिया नहीं कर सकता। कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता; तथापि मुनिपना होते समय वस्त्र उतरे बिना नहीं रहते। ऐसा होने पर भी आत्मा वस्त्र उतारनेकी क्रिया नहीं कर सकता।

व्यवहारनयके कथनमें ऐसा आता है कि दीक्षेच्छु ज्ञानी वस्त्र उतारता है, नग्नपना धारण करता है; परन्तु जड़का नग्नपना धारण करना वह आत्माकी क्रिया है ही नहीं; तथापि भावलिंगीके नियमसे नग्नपना होता ही है। अनादि जैनदर्शनका यह मार्ग है वस्त्र सहित मुनिपना मानना वह वीतराग जैनदर्शनकी रीति नहीं है।

प्रवचनसारकी चरणानुयोगसूचक चूलिकामें आता है : दीक्षार्थी ज्ञानी गुरुके निकट प्रार्थना करता है कि :—प्रभो! मुझे द्रव्य–भावलिंग–मुनिपना दो। गुरु अनुग्रह पूर्वक कहते हैं : 'लो, दिया।' यह तो व्यवहारका कथन है। शास्त्रमें किस स्थान पर किस नयका कथन है वह बराबर समझना चाहिये। समयसार, परमात्मप्रकाश तथा द्रव्यसंग्रह आदि शास्त्रमें आता है कि–प्रत्येक गाथाका शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ; आगमार्थ और भावार्थ—ऐसे पाँच प्रकारसे अर्थ समझना चाहिये। शास्त्रके किसी भी कथनको 'यह व्यवहारसे है या निश्चयसे है?' इस प्रकार नयार्थ आदि पाँचों बोल लागू करके समझना चाहिये।

भाई! यह तो गहन बात है! गहन मार्ग है! तू कौन? और कितना? तू अनंत शक्तिवान अवश्य है, परन्तु परकी क्रिया करनेमें बिलकुल असमर्थ! अपनी पर्याय करनेमें पूर्ण सामर्थ्यवान। परकी दयाका भाव आता है; परन्तु दयाका राग परको बचा सकता है ऐसा मानना वह ज्ञानस्वरूपको लांछन है। निर्दोष ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा—ज्ञानस्वरूप ज्ञान—वास्तवमें विकृत अवस्थाको भी कैसे करेगा? विकृत अवस्था करने जाय तो ज्ञान अज्ञान हो जाता है, ज्ञाता—साक्षी—नहीं रहता।

कोई भी पदार्थ दूसरेका किंचित् भी नहीं कर सकता। करे तो अपनी पर्यायका करता है; वह भी वास्तवमें अपनी निर्मल पर्यायका ही करता है। विकार करे वह उसकी वस्तुस्थिति नहीं है। विकार उसकी पर्यायमें होता है; परन्तु उसका कर्ता मात्र स्वयं अज्ञान भावसे ही है। क्योंकि चैतन्य ज्ञानज्योति तो मात्र जानने-देखनेका कार्य करती है; जिसमें चैतन्यका अंश नहीं है ऐसे अंधे रागमें ज्ञायकज्योति कैसे प्रकाशेगी?

'विभाव भी तेरे नहीं हैं तो बाह्य संयोग तो कहाँसे तेरे होंगे?'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जहाँ विभाव भी तेरे नहीं हैं वहाँ दूसरोंकी तो बात ही कैसी? अपने सिवा अन्य तत्त्वका तू कुछ नहीं कर सकता। दया-दानादिके भाव, पुण्य तथा पापके विकार स्थूल हैं, विभाव हैं, तेरे नहीं है। त्रैकालिक ज्ञानानन्दके नाथमें पुण्य-पापके कृत्रिम विभाव नहीं हैं, तो बाह्य संयोगी वस्तुएँ उसकी कहाँसे होंगी? विकृति तेरी दशामें हो वह तेरी मूल वस्तुमें नहीं है, तब शरीरादि अजीव तथा स्त्री-पुत्रादि अन्य जीव तेरे कहाँसे होंगे? तुझमें होनेवाली विकृत दशा—पूजा, भक्ति, व्रतादिके विभाव भाव—वह भी तेरे स्वभावमें नहीं हैं, तब जो बिलकुल पृथक् है और जिसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तुझसे बिलकुल भिन्न हैं वह संयोगी वस्तु कहाँसे तेरी होगी? किसके मकान? और किसके बाग-बगीचे? जब विभाव भी तेरे नहीं हैं वहाँ बाह्य संयोगी वस्तुएँ कैसी तेरी होंगी?

प्रश्न :—सबके साथ रहना और वे सब साथ रहनेवाले हमारे—ऐसा नहीं मानना?

उत्तर :—छहों द्रव्य एक स्थान पर भले हों उससे क्या? एक ही स्थानमें आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा जीवके प्रदेश, कालके अणु तथा पुद्‌गलके परमाणु—सब हैं तथापि एक-दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। एक आकाशके प्रदेश पर (समुद्‌घातको छोड़कर) एक जीवके असंख्य प्रदेश हैं तथापि कर्ता-कर्मका अथवा स्व-स्वामीपनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

एक जीव पूरा आकाशके एक प्रदेशमें नहीं रहता, एक जीवका असंख्यवाँ भाग रहता है और इस प्रकार अनंत जीवोंका—प्रत्येकका असंख्यवाँ भाग आकाशके एक प्रदेशमें रहता है; इसलिये एक प्रदेशमें जीवोंके कुल अनंत प्रदेश होते हैं। एक जीव पूरा आकाशके एक प्रदेशमें नहीं रहता, पूरा जीव आकाशके असंख्य प्रदेशमें रहे इतनी तो जीव द्रव्यकी महानता है।

—इस प्रकार छहों द्रव्य लोकमें एक साथ होने पर भी एक-दूसरेसे कुछ लेना-देना नहीं है। सब अपने अपने क्षेत्रमें रहते हैं। एक आकाश क्षेत्रमें एक साथ रहते हैं वह कथन भी व्यवहार है।

*

राजकोट ता. ३१-५-६७

सैंकड़ो वर्षोमें नहीं हुआ ऐसा आत्मा इस स्त्री—शरीरमें उत्पन्न हुआ है। समाजके इतने पुण्य कहाँ हैं कि यह बात बाहर प्रगट की जाय? लोगोंको जो बोले उसकी कीमत लगती है, यह (बहिनश्री चम्पाबेन) बोलतीं नहीं हैं इसलिये इनकी कीमत लोगोंकी समझमें नहीं आती। कम बोलें इसलिये मानों इन्हें कुछ आता ही न हो ऐसा लोग मानते हैं।

—पूज्य गुरुदेव।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–४७

ता. २४-७-७८

वचनामृत–१२८

आत्मा तो ज्ञाता है। आत्माकी ज्ञातृत्वधाराको कोई रोक नहीं सकता। भले रोग आये या उपसर्ग आये, आत्मा तो निरोग और निरूपसर्ग है। उपसर्ग आया तो पाण्डवोंने अंतरमें लीनता की; तीनने तो केवलज्ञान प्रगट किया। अटके तो अपनेसे अटकता है, कोई अटकाता नहीं है॥१२८॥

'आत्मा तो ज्ञाता है।'

आत्माका स्वभाव ज्ञायकपना है। वह किसी रागको या परको करे—ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। आत्मा त्रिकाल ज्ञायक—ज्ञाता है। उसके स्वभावका वर्णन करते हुए समयसार नाटकमें कहा है कि—

समता रमता उरंधता, ज्ञायकता सुखभास
वेदकता चैतन्यता ये सब जीव विलास॥

जिसके अस्तित्वमें 'यह कौनसी वस्तु है?' ऐसा ज्ञात हो, जिसकी विद्यमानतामें प्रत्येक प्रसंगका ज्ञान–जानकारी वर्तती है वह ज्ञायक आत्मा ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य है। यह शरीर, मन, वाणी, एवं रागादि हैं उन्हें जानने वाला विद्यमान तत्त्व तो ज्ञायक है। ऊर्ध्वताका अर्थ ऐसा किया है कि जिसके अस्तित्वमें–अग्रतामें 'यह शरीर है, यह राग है' ऐसा ज्ञात होता है वह प्रधान तत्त्व–ज्ञायक आत्मा है। ज्ञाताके अस्तित्वमें–विद्यमानतामें ज्ञात होता है; ज्ञाताकी ऊर्ध्वता, विद्यमानताके बिना 'यह राग है' ऐसा जानेगा कौन? प्रत्येक प्रसंगमें ज्ञाता तत्त्वकी—अपनी—उपस्थिति न हो तो 'यह है,...यह है....यह है.....'ऐसा जाना किसने? राग हुआ; परन्तु 'यह राग है' ऐसा किसने जाना? वह ज्ञाता–जाननेवाला वहाँ मुख्य है।

किसी भी प्रसंगमें विद्यमानता–ऊर्ध्वता–अग्रता तो ज्ञानकी है। ज्ञानकी ऊर्ध्वता—अस्तित्व—बिना 'यह है' ऐसा जानेगा कौन! 'यह प्रकाश है, यह प्रकाश है' ऐसा,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यदि ज्ञानका अस्तिस्व—विद्यमानता—न हो तो, जाना किसने? शरीरकी अथवा व्यापार-धन्धेकी चाहे जो क्रिया हो परन्तु 'यह है' ऐसा किसकी विद्यमानतामें ज्ञात हुआ? शरीर या राग आदि जो ज्ञात हुआ वह 'मेरी वस्तु है' ऐसा नहीं; जो जानना हुआ वह ज्ञानकी दशा है। ज्ञानकी विद्यमानतामें ज्ञात हुआ कि 'यह कर्म है,' कर्मको कहीं अपना ज्ञान नहीं है। जिसकी मुख्यतामें—ऊर्ध्वतामें यह सब ज्ञात होता है ऐसे ज्ञायक पदार्थकी विद्यमानता न हो तो किसकी सत्तामें यह ज्ञात होता है? परकी सत्तामें? या स्वकी सत्तामें? अहा! ऐसी बातें हैं!

सम्यग्दर्शन होने पर प्रथम ही 'यह ज्ञाता तत्त्व मैं हूँ, और उसके सिवा दया-दान, व्रतादिका राग आदि कोई वस्तु मेरी नहीं है' ऐसी निर्मल प्रतीति हो जाती है। व्यवहार-रत्नत्रयका राग आये, परन्तु उसका भी मैं ज्ञाता हूँ। 'यह है' ऐसा जानपना तो ज्ञाता–ज्ञायककी उपस्थिति बतलाता है। ज्ञाताके अस्तित्व बिना अन्य अस्तित्ववान वस्तु है—उसकी भी खबर नहीं पड़ेगी। अहा! आत्मा तो ऊर्ध्व है ना! भाई! 'समता, रमता, उरधता'में उरधताका अर्थ दो प्रकारसे होता है। समयसार-नाटकमें अर्थकारने 'उरधता'का अर्थ ऊर्ध्वगमन स्वभाव किया है। सिद्धदशा होने पर एक समयमें ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण जीव लोकाग्रमें जाता है—ऐसा अर्थ लिया है; परन्तु ऊर्ध्वता स्वभाव नित्य लें तो ज्ञायकरूपसे सदा विद्यमानता, अस्तित्व, उपस्थिति, प्रमुखता, अग्रता–ऐसा अर्थ है। श्रीमद्ने ऐसा अर्थ किया है।

जिसके अस्तित्वमें, उपस्थितिमें, विद्यमानतामें 'यह राग है', 'यह शरीरकी युवावस्था है,' 'वृद्धावस्था है,' 'यह रोगकी दशा है' आदि जाननेमें आया उस ज्ञानस्वभावकी—ज्ञायक पदार्थकी—ज्ञातारूपसे ऊर्ध्वताके बिना, उन दया आदिके भावोंसे भिन्न–ज्ञेय पदार्थोंसे भिन्न—अपनी ज्ञायकरूप उपस्थिति बिना, 'वे हैं' ऐसा जाना किसने? ज्ञाता तत्त्व तो आत्मा है।

'आत्माकी ज्ञातृत्वधाराको कोई रोक नहीं सकता।'

क्या कहा?—कि यह आत्माका स्वभाव मात्र ज्ञायकता है—ऐसा जहाँ अंतरमें ज्ञान हुआ वहाँ, जगतमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि उसकी ज्ञातृत्वधाराको–'मैं मात्र ज्ञाता ही हूँ'—ऐसी परिणमनधाराको रोक सके। ज्ञाता जाग उठा : मैं तो एक ज्ञायक चैतन्यतत्त्व हूँ, चैतन्य तो चैतन्यस्वभाव ही है; ऐसा जहाँ अनुभवमें आया वहाँ उसकी—आत्माकी—ज्ञाताधाराको कोई रोक नहीं सकता, स्थिर नहीं कर सकता, बाधा नहीं पहुँचा सकता।

'भले रोग आये या उपसर्ग आये, आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है।'

रोग तो जड़ शरीरकी दशा है, आत्मामें कहाँ रोगकी दशा आती है? आत्मा तो शरीरमें रोग हो उस काल भी ऊर्ध्वतासे रहकर सदा रोगसे पृथक् ऐसे ज्ञान द्वारा उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मात्र जानता ही है। अहा! ऐसी बात है! अरे, लोगोको व्यापार-धंधा तथा स्त्री, पुत्र और परिवारके झंझटमें कहाँ यह सब विचारनेकी—समझनेकी—फुरसत मिलती है! मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है दुनियाका अधिकांश समय पापकी परिणतिमें जाता है।

तथा, वहाँ कहा है कि—शास्त्रका ज्ञान होने पर भी यदि उसका प्रयोजन दूसरा है–पुजनेका, मान-प्रतिष्ठाका, पैसेका अथवा अन्य लाभका हो—तो वह ज्ञान भी अज्ञान है। ज्ञानका प्रयोजन तो सचमुच ज्ञातारूपसे रहना है, उसकी जगह ज्ञानको बाह्य प्रशंसा एवं महत्ताकी धारामें ले जाना वह ज्ञान ही नहीं है। भले ही ग्यारह अंग पढ़ गया हो परन्तु उससे क्या? शास्त्रके अनुसार सत्यको धारण कर ले, परन्तु उससे मान-बड़ाईका अयथार्थ प्रयोजन साधता हो तो उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते, क्योंकि सच्चा ज्ञान धारण कर लेने पर भी उसका प्रयोजन यथार्थ नहीं है।

अरे! वह मान और बड़ाई दुनिया माने और सभा संतुष्ट हो और स्वयं भी उससे प्रसन्न हो कि–मुझे कुछ आता है! दुनियामें मेरी बात प्रसिद्ध हुई! इसलिये मैं बड़ा हूँ—ऐसा जिसका प्रयोजन है उसका सब जानपना मिथ्याज्ञान है। पं. टोडरमलजीने बहुत स्पष्टीकरण किया है। अहा! उनकी बुद्धि और उनका क्षयोपशम! गोम्मटसारकी टीका रचनामें इतनी तल्लीनता थी कि माताने छह महिने तक सागमें नमक नहीं डाला उसकी भी खबर नहीं पड़ी! टीका पूर्ण होने पर उपयोग उस ओर गया और मातासे कहा कि–'सागमें नमक नहीं है'। अहा! कितनी एकाग्रता! सत्यको जाननेकी, लिखनेकी और प्रगट करनेकी कैसी लगन! वे कहते हैं कि–अज्ञानीमें वस्तु स्वरूप सम्बन्धी कुछ न कुछ स्वरूप विपर्यास, भेदाभेद विपर्यास तथा कारण विपर्यास होते ही हैं; परन्तु कदाचित्—कहते हैं कि—वे न हों, धारणाके बलसे सत्य हों, तथापि यदि अयथार्थ प्रयोजन साधे, पूजा, मान और बड़प्पनका प्रयोजन सिद्ध करे, तो वह सच्चा धारणा ज्ञान भी मिथ्याज्ञान ही है।

जो ज्ञान स्वरूपमें रहकर भीतर ज्ञानको साधे, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेनेके लिये जो ज्ञातृत्व किया है, वही सम्यग्ज्ञान है। सच्चा प्रयोजन तो वही है ना! अहा! ऐसी वीतरागताकी बात आत्मज्ञानी दिगम्बर संतोके सिवा अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

ज्ञाता आत्माकी निर्मलज्ञाता धाराको कोई रोक नहीं सकता; राग आये वह तो जड़ शरीरकी अवस्था है। शरीर तो वेदनाकी मूर्ति, व्याधियोंका मन्दिर है; प्रभु! तू तो ज्ञान एवं आनन्दका बिम्ब है। शरीरमें भले रोग आये, बैठा हो और ऊपरसे दीवार गिरे, साँप-बिच्छू काट ले, कोई पत्थर मारे, उससे आत्माको क्या? आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है। अहा! ऐसी बात है। वीतरागका मार्ग बड़ा सूक्ष्म है भाई!

यहाँ तो प्रथम सम्यग्दर्शनकी बात की है। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्माकी ज्ञाताधारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट होते ही साथमें स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट होता है; पश्चात् स्वरूपमें रमणताकी वृद्धि होने पर उसे विशेष चारित्र दशा आयेगी ही। मैं "मात्र ज्ञाता ही हूँ, शरीर एवं विभाव नहीं'—ऐसी भेदज्ञानकी धारा प्रगट होने पर अल्प स्वरूपाचरणचारित्र साथ होता ही है। चाहे जितने परिषह एवं उपसर्ग सहन करे परन्तु यदि ज्ञाताधारा जाननेमें—वेदनमें नहीं आयी, शरीर और रागसे भिन्न निरोग एवं निरुपसर्ग ऐसे निज ज्ञायक आत्माका भेदज्ञान नहीं हुआ तो वह सब सहन करना व्यर्थ है। रोग और उपसर्ग आये वह जड़की दशा है, वे कहीं आत्मामें नहीं आते। आत्मा कहीं रोगयुक्त या उपसर्गवाला नहीं हो जाता। आत्मा तो निरोग तथा निरूपसर्ग है।

'उपसर्ग आया तो पाण्डवोंने अंतरमें लीनता की, तीनने तो केवलज्ञान प्रगट किया।'

शत्रुंजय पर्वत पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—यह पाँचों पाण्डवमुनि दशामें—प्रचुर स्वसंवेदनरूप आनन्द दशामें—क्रिडा कर रहे थे। वहाँ दुर्योधनके भानजेने 'राज्य चाहिये है? लो राज्य!' ऐसा कहकर धधकते हुए लोहेके गहने पहनाये। ऐसी उपसर्ग दशामें भी उनकी ज्ञाताधाराके रोकनेमें, चोट पहुँचानेमें कोई समर्थ नहीं है। अंतरमें पूर्ण लीनता करके तीन पाण्डवोंने केवलज्ञान प्रगट किया।

शत्रुंजय तीर्थ यहाँसे (सोनगढसे) १४मी. दूर है। वहाँ लोकाग्रमें तीन पाण्डव—युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन—सिद्धरूपसे विराजते हैं। जहाँ सिद्धदशा हो वहाँ समश्रेणीसे लोकाग्रमें जाते हैं, इधर उधर नहीं जाते। ऊर्ध्व गमन स्वभावके कारण शत्रुंजय पर समश्रेणीसे लोकके अग्रभागमें सिद्ध भगवान रूपमें विराजते हैं। इसलिये वह तीर्थस्थान तथा यात्राका धाम है।

संवत् २०१३में सम्मेदशिखरकी यात्रा प्रथमवार की; उस समय किसीने प्रश्न किया था—महाराज साहब! इस यात्राका अर्थ क्या?

उत्तर दिया था कि—भाई! यात्राका हेतु ऐसा है कि–जिस स्थानसे तीर्थंकर तथा केवली सिद्ध हुए हों, उस स्थान पर ऊपर समश्रेणीसे लोकाग्रमें वे सिद्ध भगवन्त विराजते हैं ऐसी स्मृति हेतु यह यात्रा है। वह शुभभाव है, धर्म नहीं है; परन्तु ऐसा भाव साधक धर्मात्माको भी आये बिना नहीं रहता। सम्पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है इसलिये ऐसा भाव आता है, परन्तु यह धर्म या धर्मका कारण नहीं है। धर्मका सच्चा कारण वीतरागभाव है।

पाण्डव श्री नेमिनाथ भगवानके पास जानेको निकले थे। शत्रुंजय पहूँचकर समाचार सुने कि भगवान मोक्ष पधार गये हैं। पाण्डव तुरन्त शत्रुंजय पर्वत पर चढ़ गये और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्यानमें लीन हो गये। उपसर्ग-कालमें तीन पाण्डव तो केवलज्ञानको प्राप्त हुए। छोटे दोनों भाई भी वीतरागी संत थे, प्रचुर स्वसंवेदनरूप आनन्दकी मुहर-छाप वाले थे; वे कोई द्रव्यलिंगी नहीं थे, मात्र नग्नदशा और पंचमहाव्रतके विकल्पवाले नहीं थे, किन्तु रागादि रहित अंतर् आनन्दकी उग्र दशामें लीन थे। उन्हें किंचित् विकल्प आया कि—बड़े भाईयोंकी क्या स्थिति होगी? यह विकल्प तो शुभ था, परन्तु उससे केवलज्ञान अटक गया और सर्वार्थसिद्धिके देवकी तेतीस सागरकी आयुका बंध हो गया। देव और मनुष्य ऐसे दो भव बढ़ गये।

'अटके तो अपनेसे अटकता है कोई अटकाता नहीं है।'

यदि विकल्प किया तो अटका। वह अपनेसे अटका है, कर्मने नहीं अटकाया। दो भव करना थे इसलिये दोनों छोटे भाईयोंको विकल्प करवाया—ऐसा नहीं है। भान है कि विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है तथापि, शुभभावका कर्ता न होने पर भी, पुरुषार्थकी कमीके कारण विकल्प उठता है; उसे वे जानते हैं। उस विकल्पके कारण दो भव करने पड़ेंगे। अहा! यह तो मार्ग ही अलग है भाई! यह तो वीरोंका मार्ग है, इसमें कायरोंका काम नहीं है! अटके तो अपनेसे अटकता है, दूसरा कोई नहीं अटकाता। ज्ञानकी हीनाधिकदशा अपने परिणमनसे स्वयं ही करता है, उसमें ज्ञानावरणीय कर्म कुछ नहीं करता। कर्म तो निमित्त मात्र है। यहाँकी—प्रत्येक पदार्थके स्वतंत्र परिणमनकी—बात सुनकर किसीने एक त्यागीसे पूछा :—क्या यह बात बराबर है?

उत्तर मिला :—तुम्हीं समझ लो ना? किस प्रकार बराबर है? यह बराबर नहीं है। कोई भी कहे, भले अंगधारी कहे तब भी बराबर नहीं है।

अरेरे! क्या किया जाय? कितना क्षयोपशम था! समयसारकी टीका कंठस्थ थी; परन्तु दृष्टिमें अंतर था। ज्ञानावरणीय कर्म जीवमें कुछ नहीं करता—ऐसा नहीं, किन्तु ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञानको रोकता है, उसके कारण ज्ञानकी हीनदशा है—ऐसी उनकी मान्यता थी।

भाई! शास्त्रके यह कथन तो निमित्तकारणका ज्ञान करानेके लिये हैं। ज्ञानका हीनरूप परिणमन अपने उपादान कारणसे होता है। उसमें कर्म क्या करेगा?

"कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।"

भूलरूपसे स्वयं परिणमता है, उसमें कर्मका क्या दोष है? ज्ञानकी हीन दशा अथवा श्रद्धाकी विपरीतताका कर्ता तो मैं हूँ; कर्मके कारण होता है यह मान्यता बिलकुल झूठी है। कर्म कर्ता और जीवका विभावभाव कर्म—कार्य, यह बात बिलकुल असत्य है। आया कुछ समझमें?

यहाँ भी यही कहते हैं। वह अटके तो अपनेसे अटकता है, कर्म आदि कोई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे नहीं अटकाते। कर्मके कारण जीवमें विकार होता है यह मान्यता समस्त जैन संप्रदायोंमें घुस गई है। अरे! बहुत फेरफार हो गया है। पंथ भ्रष्ट होकर निकले हुए दूसरोंकी बात तो दूर रही, परन्तु जिसमें सनातन वस्तुस्थिति है ऐसे अनादि निधन वीतराग मार्गमें भी यह स्थिति पैदा हुई है! कर्म वह कौन? कर्म तो पर द्रव्य है। पर द्रव्य आत्माका स्पर्श नहीं करते क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने धर्म समूहको चूमता है—स्पर्शता है अन्य द्रव्यको नहीं। जहाँ कर्म आत्माका स्पर्श नहीं करता वहाँ वह ज्ञानको कैसे रोक सकेगा? ज्ञान स्वयं अपनेसे हीन होता है वहाँ ज्ञानावरणीय कर्म उसे हीन करता है ऐसा कहना वह तो निमित्त और व्यवहारनयका कथन है।

प्रश्न :—निमित्तको कारण क्यों कहा?

उत्तर :—निमित्त वह सच्चा कारण नहीं है, उसे आरोपित कारण कहा है। जीव स्वयं जैसे विकार भावरूप अपने उपादानकारणसे परिणमता है तब अनुकूल रूपसे जिस कर्मका उदय होता है उसे आरोपसे, उपचारसे, व्यवहारसे निमित्तकारण शास्त्रमें कहा है। जिनवाणीमें जो आरोपित कथन आया है उसे परमार्थतः सत्य मानना वह मिथ्यात्व है, उसका फल संसार है।

घाति कर्मके दो अर्थ हैं—भावघाति कर्म और द्रव्यघाति कर्म। जीव स्वयं अपनेसे विकार करे वह भावघातिकर्म है; उस काल उदयमें द्रव्यघाती कर्मको निमित्त कहा जाता है। अहा! ऐसी बात है!

पंचास्तिकाय संग्रहकी ६२वीं गाथामें आया है कि—विभाव पर्यायमें भी जीवके छहकारक और कर्म पुद्गलके छहकारक भिन्न-भिन्न हैं। निश्चयसे विकारी परिणामका कर्ता जीव स्वयं है। उसे पुद्गल कर्म कारक होकर करे—यह बात है ही नहीं।

अहा! कर्मकी यह चर्चा वि. सं. १९७१से हमारे बीच चली आ रही है। दीक्षा लेनेके बाद दूसरे ही वर्ष मैंने स्पष्ट कह दिया था कि—कर्म जीवमें बिलकुल कुछ नहीं करता; जो भी विकार होता है वह अपने विपरीत पुरुषार्थसे होता है। सीधा पुरुषार्थ करे तो विकार टलता है। कर्मका कोई अधिकार आत्मा पर है ही नहीं। निमित्तकी वस्तु निमित्तमें है। निमित्त है अवश्य, परन्तु वह परमें कुछ करता है वह बात मिथ्या है। अब तो कुछ विद्वान भी विचार करने लगे हैं और यह बात स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—पत्रोंमें भी छापतें हैं—कि सोनगढवाले 'निमित्त है' ऐसा मानते हैं, परन्तु 'निमित्तसे (उपादानमें) कुछ हो'—ऐसा नहीं मानते।

यहाँ तो कहते हैं कि—कोई इसे (जीवको) कुछ करता है, उपसर्ग देकर अटकाता है, ऐसा है ही नहीं। कर्म या दूसरा कोई पदार्थ उसे नहीं अटकाता, अन्य पदार्थका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतिबन्ध या रुकावट उसे नहीं है, अटके तो अपनेसे अटकता है। पंचास्तिकायकी १६३वीं गाथा की टीकामें आया है कि—वास्तवमें सौख्यका कारण स्वभावकी प्रतिकूलताका (स्वभावकी विपरीतता, विरूद्धता, उलटेपनका)अभाव है। स्वभावकी प्रतिकूलताका अर्थ क्या? आत्माका 'स्वभाव' वास्तवमें दर्शन और ज्ञान है। उन दोनोंको विषय प्रतिबंध—विषयमें रुकावट, विषयमें मर्यादितपना—होना वह 'प्रतिकूलता है' है। दर्शन एवं ज्ञानके विषयमें मर्यादितपना होना वह स्वभावकी प्रतिकूलता है वहाँ स्वभावकी विपरीतता अर्थात् दर्शन-ज्ञानके विषयमें रुकावट स्वयं करता है; कोई कर्म या उपसर्ग रुकावट करता है ऐसा नहीं कहा। अटके तो अपनेसे अटकता है कोई अटकाता नहीं है।

*

वचनामृत–११६

भगवानकी आज्ञासे बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायेगा। अनेकान्तका ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी॥१२६॥

'भगवानकी आज्ञासे बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायगा।'

भगवान सर्वज्ञ देव कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्यकी प्रत्येक समयकी पर्याय–विकारी या अविकारी–अपने कारकोंसे कर्ता-कारण आदिसे होती है। उसमें कुछभी फेरफार किया—कर्मके कारण विकार होता है, शुभराग धर्मका साधन होता है—कुछ गड़बड़ी की—भगवानकी आज्ञाके बाहर पाँव रखा—तो भटक मरेगा।

भगवान ऐसा कहते हैं कि परके कारण परमें कुछ नहीं होता, व्यवहार करते-करते धर्म नहीं होता, उसमें यदि कोई फेरफार किया कि अशुभ टलकर शुभ होता है ईतना तो लाभ होता है ना?–इस प्रकार भगवानकी आज्ञाके बाहर पाँव रखा, विपरीत मान्यता की, तो चार गतियोंमें परिभ्रमण होगा। शुभरागसे लाभ होगा ऐसा राग करने पर जिसकी दृष्टि है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है; उसके तो अशुभ भी नहीं टला है, क्योंकि प्रथम तो मिथ्यात्वभाव स्वयं ही अशुभ है।

प्रश्न :–व्यवहार भी भगवानकी आज्ञामें है ना?

उत्तर :–नहीं। ज्ञानस्वरूप होनेका अर्थात् अनुभूति करनेका ही भगवानका आदेश है; तथापि जिनवाणीमें परमार्थका हस्तावलम्ब, सहायक, सहचर और निमित्त देखकर व्यवहारका बहुत कथन किया है। यदि व्यवहारके उस आरोपित कथनको परमार्थ सत्य मानकर उसका आश्रय करे तो उसका फल संसार है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभरागसे जो धर्म मानता है, शुभ करते-करते आगे बढ़ा जायगा ऐसी जिसकी मान्यता है, उसकी दृष्टि मिथ्या है। मिथ्यात्वभाव स्वयं ही महा अशुभ है, इसलिये उसका अशुभ भी टला नहीं है। शुभमें धर्म मानना वह भगवानकी आज्ञासे बाहर है। यदि उसमें पाँव रखेगा तो डूब जायगा—नरक और निगोदमें चला जायगा। स्मरण रहे कि—प्रकृतिके—वस्तुस्वभावके विरुद्ध जानेसे नरक-निगोदमें जाना पड़ेगा। वस्त्रका एक टुकड़ा रखकर—तिलतुषमात्र परिग्रह रखकर—'स्वयं मुनि हैं' ऐसा मानें, मनायें, माननेवालेको अच्छा जानें वे 'णिगोदं गच्छदि' निगोदमें जायेंगे। कदाचित् किंचित् शुभभाव हों तो एकाध भव स्वर्गका मिलेगा, किन्तु तत्त्वज्ञानकी विराधना होनेसे, वहाँसे मरकर तिर्यंच होकर निगोदमें चले जायेंगे। बड़ी असह्य बात है भाई!

प्रश्न :—वस्त्रका टुकड़ा रखे, रखकर मुनिपना माने उसमें क्या हो गया?

उत्तर :—वस्त्रका टुकड़ा रखकर मुनिपना माननेका जो भाव है वह भाव मिथ्यात्व है। वस्त्रने मुनिपना नहीं अटकाया है, किन्तु वस्त्र हो तो ठीक रहे, वस्त्र हो तो परिषह सहन हो, शरीर तो ठीक रहे, निरोगता हो तो शरीरसे कुछ काम कर सकूँगा—ऐसी तेरी जो मान्यता है वह भ्रमणा है। उस भ्रमणाके भावमें मुनिपना आ ही नहीं सकता।

रागसे भिन्न होकर, 'आनन्द मेरा स्वरूप है' ऐसा अनुभव जिसे वर्तता है वह चक्रवर्ती राज करता हो, ९६ हजार रानियाँ हों, तथापि वह मोक्षार्थी है; और द्रव्यलिंगी साधु महाव्रतादिका पालन करता हो तथापि 'इस शुभ भावसे कल्याण होगा' ऐसी मान्यता होनेसे वह मोक्षमार्गमें नहीं है, संसारमार्गमें है।—ऐसी वीतरागकी आज्ञा है। इस आज्ञाके बाहर पाँव रखेगा तो नरक-निगोदमें भटकना पड़ेगा।

व्यवहार करते-करते निश्चय होगा; शुभमें तो आ ही गये हैं! अशुभसे तो बचते हैं! ऐसा करते-करते शुद्ध भी हो जायगा;—इस प्रकार भगवानके कहे हुए व्यवहारको भी यदि धर्म या धर्मका यथार्थ साधन मानेगा तो—भगवानने तो उसके आश्रयका फल संसार कहा है—संसारमें भटकेगा, नरक-निगोदमें जायगा। कठिन बात है भाई!

अरे! यह शरीर कब तक रहेगा! स्थिति पूर्ण होगी और राख बनकर उड़ जायेगा! तू कहाँका कहाँ चला जायेगा, भाई! तुझे अपनी दया नहीं है। मेरा क्या होगा?—इसका विचार भी नहीं आता। वर्तमान अनुकूलताका सेवन करके यदि स्वच्छंदसे भगवानकी आज्ञाके बाहर पाँव रखा तो भव सागरमें डूब जायगा।

'अनेकान्तका ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी।'

क्या कहते हैं? कि—अनेकान्तका ज्ञान कर अर्थात् आत्माके आश्रयसे धर्म होता है और व्यवहार—शुभराग—करते-करते धर्म नहीं होता; उसका नाम अनेकान्त है। धर्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चयसे भी होता है और व्यवहारसे भी होता है—ऐसा मानना वह भगवानकी आज्ञासे बाहरका एकान्त मिथ्यात्व है।

भाई! शास्त्रमें व्यवहारके कथन आयें उन्हें तू जानना, श्रद्धा करना कि वह छोड़ने योग्य है। व्यवहार जोकि छोड़ने योग्य है उसे आदरणीय मानने जायगा तो भगवानकी आज्ञाके विरुद्ध एकान्त मान्यतासे तू मर जायगा,भवसागरमें डूब जायगा।मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कहा है : निश्चयसे जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना; और व्यवहारनयसे जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना, क्योंकि व्यवहारनय स्वद्रव्य–परद्रव्यको, उनके भावोंको तथा कारण कार्यादिकको किसीके किसीमें मिलाकर निरूपण करता है, इसलिये ऐसे ही श्रद्धानसे मिथ्यात्व है, इसलिये उसका त्याग करना; तथा निश्चयनय स्व-परद्रव्यको, उनके भावोंको तथा कारण कार्यादिको यथावत् जैसे हैं वैसे निरूपण करता है, किसीके किसीमें नहीं मिलाता, इसलिये ऐसे ही श्रद्धानसे सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान अंगीकार करना।

प्रश्न :–व्रतादि करनेकी भी भगवानकी आज्ञा है ना?

उत्तर :—वह आज्ञा व्यवहारकी है या निश्चय की? व्यवहारकी आज्ञा है वह तो निमित्तादिका ज्ञान करानेके लिये कहा है। वह आदरणीय है और उससे लाभ है इसलिये नहीं कहा। अनेकान्तका ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी। मेरा मुझसे होता है, परसे नहीं होता; निश्चय धर्म अपने द्रव्यके आश्रयसे होता है व्यवहारके आश्रयसे नहीं होता—उसका नाम अनेकान्त है। ऐसा अनेकान्तका ज्ञान रखना। भगवानकी ऐसी आज्ञा है। निश्चयसे भी होता है और व्यवहारसे भी होता है इसे कुछ लोग अनेकान्त कहते हैं; क्या यह अनेकान्त है? यह तो मिथ्या अनेकान्त है। वास्तवमें तो निश्चयसे होता है और व्यवहारसे नहीं होता—यह सच्चा अनेकान्त है। मेरी पर्याय मुझसे है, परके कारण नहीं है; परकी पर्याय उससे है, मेरे कारण नहीं है। व्यवहार आता अवश्य है, परन्तु उससे निश्चयको सहायता मिलती है ऐसा नहीं है। व्यवहार आये, परन्तु वह संसारका कारण—बंधका कारण है। अहा! ऐसी बातें हैं! अज्ञानी और ज्ञानीकी मान्यतामें बड़ा अन्तर है। अनेकान्तका ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–४८

ता. २६-७-७८

वचनामृत–१३०

निज चैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है, उसमेंसे अनन्त रत्नोंकी प्राप्ति होगी। अनन्त गुणोंकी जो ऋद्धि प्रगट होती है वह अपनेमें है॥१३०॥

'निज चैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है, उसमेंसे अनन्त रत्नोंकी प्राप्ति होगी।'

श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरहनाथ वह तीर्थंकर थे और चक्रवर्ती भी थे। छह खण्ड साधनेका भाव वह विकल्प था। वे विकल्पके कर्ता नहीं थे ज्ञाता थे। बाहरसे देखने वालोंको छह खण्ड साधते दिखाई दें, परन्तु वास्तवमें तो अंतरमें अखण्डकी साधना करते थे। जिनकी दृष्टि स्वद्रव्य-स्वभाव पर है ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चक्रवर्ती छह खण्डको नहीं किन्तु ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुण-रत्नोंसे भरपूर निज अखण्ड ज्ञायक तत्त्वको साधते हैं। 'द्रव्य द्रष्टि प्रकाश' में भी आता है कि–ज्ञानी सम्यग्दृष्टि चक्रवर्तीने छह खण्डकी नहीं किन्तु अंतरमें आत्माके अखण्डपनेकी साधना की है।

चैतन्य चक्रवर्ती अनंत गुणरत्नोंके भरपूर है। आकाशके प्रदेशोंकी संख्याकी अपेक्षा आत्माके गुणोंकी संख्या अनन्तगुनी है। आकाशमें लोक तो असंख्य प्रदेशोमें है; उसके बाहर दशों दिशाओंमें अलोकाकाश है; उसके क्षेत्रका कोई अन्त है? वह तो दशों दिशाओंमें अनंत-अनंत अमाप है, तीनकालके समयोंकी अपेक्षा भी आकाशके प्रदेश अनन्त गुने हैं; उसकी अपेक्षा भी इस चैतन्य चक्रवर्ती—जीव—में अनन्तगुने गुण हैं।

चक्रवर्तीके जिस प्रकार ९६करोड़ पायदल, ९६ करोड़ ग्राम, ९६ हजार रानियाँ और १६ हजार देव आदि पुण्यका वैभव होता है; उसी प्रकार यह आत्मा निज चैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है, उसमें अनंतानंत गुणरत्नोंका वैभव भरा है। बाह्य चक्रवर्तीको तो १४ रत्न होते हैं और १६ हजार देव सेवा करते हैं, परन्तु यहाँ अंतरंग चैतन्य चक्रवर्तीके तो अनंतगुणरत्न एवं अनन्त दैवी–दिव्य–शक्तियाँ हैं। भगवान आत्मा–दिव्य शक्तियोंसे परिपूर्ण निज चैतन्यदेव– साधक दशामें ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनंत गुण रत्नोंकी साधना करता

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; साधना करते-करते पूर्ण हो तब वे अनंत गुणरत्न पर्यायमें पूर्ण प्रगट हो जाते हैं। इसलिये यहाँ कहा है कि निज चैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है, उसमेंसे अनन्त गुण रत्नोंकी प्राप्त होगी; कहीं बाहरसे—पूजा, भक्ति एवं व्रतादिके क्रियाकाण्ड अथवा शुभभावमें से—ज्ञान, आनन्द एवं शान्ति आदि अनन्त गुण नहीं आते। भगवानको अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख तथा अनंत वीर्य—यह जो अनंत चतुष्टय प्रगट हुए वे अंतरमें शक्तिरूपसे थे उसमेंसे—उसके आश्रयसे प्रगट हुए हैं। इस चैतन्यदेवमें भी भीतर भी अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अनंतगुण शक्तिरूपसे हैं, उनकी साधना करनेसे पर्यायमें प्रगट होंगे।

पं. टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशकके प्रारम्भमें पंच परमेष्ठीका स्वरूप बतलाया है। उसमें अरिहंतके स्वरूपमें कहा है : 'निजस्वभाव साधन द्वारा...अनंत चतुष्टयरूपसे विराजमान हुए हैं।' मुनिपना कैसा है? वहाँ कहा है : 'जो विरागी होकर समस्त परिग्रहका त्याग करके शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म अंगीकार करके अंतरंगमें तो उस शुद्धोपयोग द्वारा आप अपना अनुभव करते हैं...' वे जैन मुनि हैं। २८ मूल गुण अंगीकार किये इसलिये वे साधु हैं—ऐसा नहीं है; वह तो शुभ राग और विकल्प है। शुद्धोपयोगरूप साधन द्वारा निज आत्माका प्रचुर स्वसंवेदन न हो तो वह साधु ही नहीं है, धर्म ही नहीं है।

प्रश्न :—वर्तमान कालमें शुद्धोपयोग नहीं होता, तो शुभ-उपयोगमें सम्यग्दर्शन होता है ना?

उत्तर :—भाई! यदि इस कालमें शुद्धोपयोग नहीं है तो सम्यग्दर्शन भी नहीं है और धर्म भी नहीं है। इस काल वर्तमानमें भी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय तथा ध्याता-ध्यान-ध्येयके विकल्प—भेदविचार—छूटकर उपयोग आत्मामें अभेद हो सकता है। उपयोगका आत्मामें अभेद होना ही शुद्धोपयोग है।

द्रव्यसंग्रहकी ४७वीं गाथामें कहा है कि :—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह॥

निश्चय मोक्षमार्ग तथा व्यवहार मोक्षमार्ग दोनों ध्यानमें प्राप्त होते हैं। वह कहीं शुभके ध्यानकी बात नहीं है। निज शुद्धद्रव्यके आश्रयसे उपयोग शुद्ध हो तभी सम्यग्दर्शन अर्थात् मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है। बात सूक्ष्महै। अरे! लोगोंने आजकल मार्ग अस्तव्यस्त कर दिया है! ध्यानमें जितनी शुद्धि एवं शुद्धोपयोग प्रगट हुआ उतना निश्चय मोक्षमार्ग है और उस समय जो अबुद्धिपूर्वकका राग रहा है उसे आरोप करके व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। जगत, अभी श्रद्धाका ठिकाना नहीं है, मोक्षमार्ग कैसे हो उसकी खबर तक नहीं है और बाह्यमें—शुभमें—धर्म मान बैठा है! अरेरे! प्रभुका मार्ग तो वीरताका मार्ग है, उसमें कायरोंका काम नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संतोंने तो शुद्ध-उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार किया है। शुभ-उपयोग तो राग है, वह तो ज्ञाताका ज्ञेय है—आदरणीय नहीं है। पंचास्तिकाय संग्रहमें कहा है : तेरी प्रभुता तुझमें है। तेरी ईश्वरता तुझमें तुझसे है। तेरा उपयोग—रुचि जहाँ ईश्वर शक्ति सन्मुख होता है वहाँ अंतरमें प्रभुत्व शक्तिके कारण प्रभुताकी पर्याय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—प्रगट होती है, ध्याता-ध्यान-ध्येयकी एकाकार परिणति प्राप्त होती है। वह निश्चय मोक्षमार्ग है।

व्यवहाररत्नत्रय वास्तवमें मोक्षमार्ग है नहीं, किन्तु भीतर शुद्ध ज्ञायक आत्माके आश्रयसे जो निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ है उसके साथ रागकी मन्दताका सहचरपना—निमित्तपना देखकर उस शुभ रागको उपचारसे व्यवहारसे मोक्षमार्गका आरोप किया है। अहा! ऐसी बात है! वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके सिवा लोकमें कहीं इस बातकी गंध तक नहीं मिलती। अरे! कहींके कहीं अनर्थ करके वस्तुको बिगाड़ दिया है।

देव-शास्त्र-गुरु आदिमें भी जो राग है वह व्यवहार तथा बंधका कारण है। व्यवहार अभूतार्थ है इसलिये वह शुभभाव और पर्याय असत्य है, क्योंकि वह त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक वस्तु नहीं है। त्रैकालिक शुद्ध स्वरूपका उपयोग—श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव—करना उसका नाम धर्म है।

जिस माताने पेटमें सवा नौ महिने तक रखा उस माताका जीव (वर्तमानमें) कहाँ होगा? यह विचार कभी किया है? अरेरे! इस निराधार संसारमें माता, पिता और भाई तो कहीं चले गये! उन्हें यह धर्मकी बात सुननेको भी नहीं मिली थी। अहाहा! जिनका अस्तित्व त्रिकाल है वे जीव कहीं हैं तो अवश्य ही ना! इस मनुष्यपनेमें करने योग्य तो अपने चैतन्यदेवको प्राप्त करना–उसका अनुभव करना ही है; परन्तु उसका विचार करनेका जीवको अवकाश कहाँ है?!

वह दुनियाकी बात एक ओर रखो! इस भगवान आत्माकी अंतरमें दृष्टि करनेसे वह स्वयं चैतन्य- चक्रवर्ती है उसकी प्राप्ति होती है। उसका साधन व्रतादिके रागसे भिन्न करनेवाली प्रज्ञाछैनी है। उसके द्वारा चैतन्यचक्रवर्तीसे अनन्त गुणरत्नोंकी प्राप्ति होगी। गुणोंकी प्रप्ति होने पर पर्यायमें अनंत गुणकी निर्मल दशा प्रगट होगी! कुएमें हो तो हौदमें आये; भीतर शक्तिमें है वह पर्यायमें प्रगट होता है। भाई! यह धैर्यवानका कार्य है! बाहरसे त्याग कर दिया, कपड़े उतार दिये और नग्न हो गया इसलिये धर्म हो गया ऐसा नहीं है।

'अनंत गुणोंकी जो ऋद्धि प्रगट होती है वह अपनेमें है'।

केवलज्ञानके समय पर्यायमें जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुखादि अनंत ऋद्धि प्रगटेगी वह शक्ति तेरे अपनेमें है, वह कहीं बाहरसे नहीं आती। केवलीने जो अनंत ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एवं अनंत आनन्दादि पर्यायमें प्राप्त किये वे आये कहाँसे? कहीं बाहरसे, देव-गुरु आदि किन्हीं निमित्तोंमेंसे अथवा व्रत तपके शुभभावमेंसे आते हैं? अरे! पूर्व पर्यायमेंसे भी वह ऋद्धि नहीं आती। क्या कहा? कि—पूर्वमें चार ज्ञानकी पर्याय हो–साधक पर्याय हो–उसमेंसे केवलज्ञानकी पर्याय नहीं आती। वह पर्याय तो द्रव्यके आश्रयसे आती है।

अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रके तलमें रेती नहीं है, रत्न भरे हैं; उसी प्रकार इस 'स्वयंभू' भगवान आत्मामें ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुणरत्न भरे हैं। उस चैतन्य देव पर ध्यान देनेसे अनन्त गुण जो अपनेमें हैं वे पर्यायमें प्रगट होते हैं।

अहा! यह बात कैसे बैठे? प्रभु! यह बात कठिन है परन्तु असम्भव नहीं है, क्योंकि वह तो अपनी वस्तु है ना! अरेरे! यह बात उसे सुननेको न मिले, विचारनेको न मिले तो अंतरमें प्रयत्न कैसे करे? अरे! यह जीवन चला जा रहा है भाई! यहाँ कहते हैं कि–अनंत गुणोंकी निधि जो प्रगट होती है वह तेरे अपनेमें है, उसके लिये कहीं बाहर देखना पड़े ऐसा नहीं है।

*

वचनामृत–१३१

शुद्धोपयोगसे बाहर मत आना; शुद्धोपयोग ही संसारसे बचनेका मार्ग है। शुद्धोपयोगमें न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही। यदि प्रतीतिमें फेर पड़ा तो संसार खड़ा है॥१३१॥

'शुद्धोपयोगसे बाहर मत आना; शुद्धोपयोग ही संसारसे बचनेका मार्ग है।'

पूर्ण शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान निज आत्माकी जो दृष्टि हुई, उसका ज्ञान हुआ तथा उसका स्वरूपाचरण हुआ वह शुद्धोपयोग है। प्रभु! वहाँसे बाहर आयगा तो राग होगा। वह शुद्धोपयोग ही संसारसे उबरनेका मार्ग है इसलिये उसमेंसे बाहर मत आना। प्रथम, 'मार्ग यह है'—ऐसा श्रद्धा-ज्ञानमें निर्णय करे, फिर प्रयोग करे; परन्तु अभी ज्ञानमें ही सच्चे निर्णयका ठिकाना न हो, वह ज्ञान अंतरमें प्रयत्न कैसे करेगा?

व्यवहार करते-करते धर्म होगा—ऐसा मानने वालेकी रुचि तो राग पर है। अहा! शुद्धोपयोगसे बाहर नहीं आना, क्योंकि सचमुच तो वही मोक्षका मार्ग है। शुद्धोपयोग ही निश्चय मोक्षमार्ग है; बाहर आनेपर व्यवहार-रत्नत्रयका विकल्प आये वह तो बंधनका कारण है। देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा, पंचमहाव्रतके परिणाम, शास्त्र पठनके विकल्प—वह सब बंध मार्ग है। अरे! कठिन लगे ऐसा है भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—उसे बाह्य साधनके रूपमें नहीं लिया जा सकता ?

उत्तर :—अंतरमें शुद्धोपयोगरूप साधन किया हो तो उन व्रतादिमें बाह्य साधनका आरोप होता है; वास्तवमें वे साधन नहीं हैं।

'शुद्धोपयोगमें न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही।'

अहा! इस बोलमें 'शुद्धोपयोग' शब्द तीन बार आया है : (१) शुद्धोपयोगसे बाहर मत आना, अंतर् लीनता हो जाने पर बाहर मत आना; निर्विकल्पउपयोग हो जाने पर विकल्पमें मत आना; (२) शुद्धोपयोग ही संसारसे बचनेका मार्ग है; और (३) शुद्धोपयोगमें न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही।

शुद्धोपयोगमें न रह सके तो, व्यवहार तथा शुभ रागसे लाभ होगा ऐसा मत मानना। लाभ अर्थात् धर्म तो अंतरमें ध्रुवतत्त्वके आश्रयसे शुद्ध उपयोगसे होगा ऐसी प्रतीति छोड़ना नहीं। भीतर स्वरूपमें स्थिर न रह सके तो भक्ति, व्रत—तपके शुभभावमें बाहर आना; परन्तु प्रतीति तो सदा ऐसी ही रखना कि—शुद्धोपयोग वह एक ही मोक्षका कारण है, बाह्य विकल्प बंधके कारण हैं। अहा! यह ऐसी पुस्तक निकली है! जो आग्रही हो कर पढ़े हैं उन्हें तो 'यह सब एकान्त निश्चय है' ऐसा लगेगा। परन्तु भाई! निश्चय अर्थात् सत्य और एकान्त अर्थात् बिलकुल। शुद्ध उपयोग वह एक ही संसारसे उबरने—बचनेका उपाय है वह एकान्त सत्य है; बिलकुल सच्ची बात है। शुद्ध उपयोगमें यथार्थ प्रतीति रखना, अर्थात् सुभ उपयोगसे भी कल्याण होगा—ऐसी प्रतीति नहीं रखना।

प्रतीति तो यही रखना कि—दृष्टिमें जो निज शुद्धात्म द्रव्य लिया उसमें उपयोग, शुद्ध-उपयोग—ज्ञायकतत्वमें स्थिर होना—वह एक ही मोक्षका मार्ग है। अहा! भाषा सादी, लेकिन भाव बहुत गंभीर! दर्शनप्राभृतमें कहा है ना!—

थई जे शके करवुं अने नव थई शके ते श्रद्धवुं:
सम्यकृत्व श्रद्धावन्तने सर्वज्ञ जिनदेवे कह्युं।।२२।।

शुद्ध-उपयोगमें न रह सके तो श्रद्धा तो यथार्थ रखना ही। 'शुद्ध-उपयोग निचली दशामें कहाँसे होगा? इसलिये व्यवहार वह मोक्षका कारण है'—ऐसा नहीं करना। अरे! एकबार भी इस पुस्तककी बात सुने, मध्यस्थतासे पढ़े तो उसे ऐसा लगे कि—अहा! यह कोई विशेष वस्तु है! इसमें अमृतधाराकी वर्षा है प्रभु! इसमें तेरी बात है नाथ!

अहा प्रभु! तू कितना महान है? तेरी महानताका वर्णन हो रहा है। तेरी महानताके लिये किसी विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है कि क्षेत्र विशाल हो तो अनंतज्ञान, आनन्दादि—रहें। अंगुलके असंख्य भागमें निगोदके अनंत जीव हैं, उस एक-एक जीवमें अनंत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्दादि शक्तियाँ ठसाठस भरी हैं। विशाल क्षेत्र हो तभी विशाल गुण रहेगा ऐसा कुछ नहीं है। उसे विशाल क्षेत्रकी नहीं किन्तु स्वभावके सामर्थ्यकी—शक्तिकी—आवश्यकता है।

अहा! यह बात अन्यत्र मिलना कठिन है। भाई! क्या कहें? यह तो मान छोड़ देनेकी बातें हैं। किसका मान और किसका अपमान? तेरा मान तो तेरी वस्तुमें है। कहा है ना!–'लही भव्यता मोटुं मान, कवन अभव्य त्रिभुवन अपमान!' तीनलोकके नाथ ऐसा कहें कि—'यह सम्यकृत्वी है, इसने आत्मा जाना है।' यह तीनलोकके नाथका सम्मान प्राप्त हुआ, अब तुझे और, किसके सम्मानकी इच्छा है? और तीनलोकके नाथ ऐसा कहें कि—'यह अज्ञानी है, रागका आदर करनेवाला अपात्र है'—ऐसा अपमान भगवानकी ओरसे हुआ; उस जैसा दूसरा कौनसा अपमान होगा? भले ही दुनिया तुझे बड़ा माने लेकिन उससे क्या?

धर्मी स्वरूपमें पूर्ण स्थिर नहीं हो सकते इसलिये उन्हें राग आता है, शुभभाव आता है; परन्तु जितना राग है उतना दुःख है, और जितना आत्माका आश्रय प्रगट हुआ उतना आनन्द है।

प्रश्न:—कहते हैं ना, कि ज्ञानीको अकेला आनन्द है?

उत्तर:—अकेला आनन्द—संपूर्ण आनन्द—भगवानको होता है; अकेला दुःख मिथ्यादृष्टिको होता है; साधकको आनन्द और दुःख दोनों होते हैं। भाई! इस प्रकार एकान्तको मत खींचो। दृष्टिके विषयकी बात चलती हो तब ऐसा कहा जाता है कि–धर्मीको राग नहीं है और दुख भी नहीं है; परन्तु साथमें ज्ञान है वह कण-कणका ज्ञान करता है। जितना राग है उतना दुःख है, उपाधि है, मैल है—विभाव है—ऐसा गणधर भी जानते हैं।

प्रवचनसारमें (४७ नयोंमें) आता है कि—रागका कर्ता भी आत्मा है और भोक्ता भी आत्मा है। राग करने योग्य है ऐसा नहीं मानता, किन्तु अशक्तिके कारण जो राग होता है वह परिणमन जीवका अपना है—ऐसा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी गणधर मानते हैं। इसलिये यदि शुद्धोपयोगमें न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही।

'यदि प्रतीतिमें फेर पड़ा तो संसार खड़ा है।'

शुभराग है वह भी धर्म है और उससे भी धीरे-धीरे आगे बढ़ा जायगा—ऐसी प्रतीति यदि करेगा तो भटकता फिरेगा। भाई! तत्त्व तो ऐसा है! भाषा तो सादी है, लेकिन भाव तो जैसे हैं सो हैं।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—१३२

जैसे लैंडी पीपरकी घुटाई करनेसे चरपराहट प्रगट होती है, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावकी घुटाई करनेसे अनंतगुण प्रगट होते हैं।।१३२।।

लैंडी पीपर बाहरसे देखनेमें काली तथा अल्प चरपराहटवाली है, परन्तु भीतर हरी तथा चौंसठपुटी चरपराहट भरी है। लैंडी पीपरको घोंटनेसे भीतर शक्तिरूपसे जो चरपराहट है वह प्रगट होती है। भीतर शक्तिरूपसे चरपराहट है वह प्रगट होती है; वह कहीं घोंटनेसे या खरल और लोढीसे प्रगट नहीं होती। यदि घोंटनेसे प्रगट होती हो तो कोयला अथवा लकड़ीको घोंटनेसे भी चरपराहट प्रगट होना चाहिये; परन्तु उसमें चरपराहट नहीं है तो कहाँसे आयेगी? कदमें छोटी और रंगमें काली होने पर भी उसके स्वभावमें चौंसठपुटी चरपराहट भरी है। चरपराहटके लिये विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है; क्षेत्र छोटा, कद छोटा होने पर भी चौंसठपुटी चरपराहट प्रत्यक्ष दिखायी देती है, यह तो वैद्योंको भी खबर है।

—उसी प्रकार भगवान आत्मा—ज्ञायकस्वभाव—की ज्ञायकस्वरूपसे घुटाई करनेसे, ज्ञानस्वभावी प्रभुका ज्ञानस्वभावरूपसे मंथन–अंतर एकाग्रता–करनेसे, ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्माको दृष्टिमें लेकर उसका मंथन करनेसे, उसमें तल्लिनता करनेसे, ज्ञान, आनन्दादि अनन्त गुण पर्यायमें पूर्णरूपसे प्रगट होंगे।

भाषा सादी है। भाई! पुस्तक ठीक समय पर प्रगट हो गई। परिवर्तन किये हुए ४३ वर्ष हो गये! बात बाहर आये और लोग जरा पढ़ें तो सही! भाई! तुम्हारे हितके मार्गकी बात है। 'मार्ग तो यह है'–ऐसा स्वीकार तो कर। 'हाँ' कहनेसे 'हा' की लत पड़ने पर वैसी हालत—दशा—हो जायगी।

अनंत गुणोंका सागर ऐसा जो भगवान आत्मा उसे विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है, उसे स्वभावके सामर्थ्यकी आवश्यकता है। ज्ञानका माप है कि अनंत ज्ञेयोंको भी जाने। आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। उन ज्ञेयोंकी संख्या जो अनंत है उन्हें जाननेवाला वह ज्ञान है इस प्रकार ज्ञानका प्रमाण अनंत सिद्ध होता है।

अहा! भाई! तेरी महानताका पार नहीं है; और निस्संदेहसे यह बात बैठ जाय ऐसा तेरा स्वभाव है। क्या कहा! कि–यह ज्ञायक आत्मा अनंत गुण तथा अनंत शक्तिसे परिपूर्ण चमत्कारी रत्न है। उसे जैसा है वैसा स्वीकार न करके, वह तो राग युक्त तथा एक अंशवाला है ऐसी प्रतीति करना वह तो मिथ्या श्रद्धा है। वह कहीं स्वभावमें नहीं है, कृत्रिम उत्पन्न की हुई है, और सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र स्वभाव तो भीतर सामर्थ्यरूपसे भरा है अहा! वह पर्यायमें प्रगट होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान ज्ञायकस्वभाव शुभाशुभभावरूप कभी नहीं हुआ–ऐसा समयसारकी छठवीं गाथाकी टीकामें आया है। ज्ञायकस्वभाव तो ज्ञान, ज्ञान और ज्ञानके प्रकाशरूप है और शुभाशुभभाव तो अंधकार है, जड़ है, अचेतनहै। भले ही उनमें परमाणुकी भाँति स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं है, परन्तु उनमें ज्ञानके–प्रकाशके–अंशका अभाव है; इसलिये शुभभाव और अशुभभाव दोनों अचेतन तथा जड़ हैं। ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा उन जड़ शुभाशुभभावोंरूप हुआ ही नहीं है। ऐसे ज्ञायक स्वभावका मंथन––अंतरमें एकाग्रताका घोंटन––करनेसे पर्यायमें ज्ञान एवं अतीन्द्रिय शान्ति आदि अनंत गुण प्रगट होते हैं। अहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त गुणोंका एक अंश व्यक्त–प्रगट होता है और केवलज्ञानके समय अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्याय प्रगट होती है, वह जो पूर्ण पर्याय प्रगट होती है वह ज्ञायकस्वभावके मंथनसे होती है, अन्य किसी उपायसे नहीं।

ता. २१–११–६५

२८ वर्ष हो चुके हैं जातिस्मरण हुए; परन्तु बाहर आनेकी जरा भी जिनको (बहिनश्री चम्पाबेनको) वृत्ति नहीं उठती–प्रतिबिम्ब समान स्थिर हो गई हैं। जिन्हें स्वयंको सागरोपम वर्षोंका ज्ञान है तथापि गुप्त! मुझसे भी नहीं कहा। मेरी सब बात कह जाती हैं, लेकिन अपनी नहीं। उनका आत्मा कितना गम्भीर! अलौकिक! अचिन्त्य! अद्भुत!–शब्द कम पड़ते हैं। वे तो सागर समान गम्भीर हैं।

–पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–४६

ता. २७–७–७८

वचनामृत–१३३

ज्ञानी चैतन्यकी शोभा निहारनेके लिये कुतूहल बुद्धिवाले–आतुर होते हैं। अहो! उन परम पुरुषार्थी महाज्ञानियोंकी दशा कैसी होगी जो अन्दर जाने पर बाहर आते ही नहीं! धन्य वह दिवस जब बाहर आना ही न पड़े।।१३३।।

'ज्ञानी चैतन्यकी शोभा निहारनेके लिये कुतूहल बुद्धिवाले–आतुर होते हैं।'

धर्मी जीव सम्यक्त्वी होते हैं, उनकी दृष्टि ज्ञायक पर होती है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव जो अनंतानंत गुणरत्नोंसे भरपूर चैतन्यरत्नाकर है तथा अनंत अतीन्द्रिय आनन्दका सागर है, उस ज्ञायक प्रभुकी जिसे दृष्टि हुई है,पर्यायबुद्धि गई है, वर्तमान एक अंशकी रागबुद्धि दूर होकर अंतरदृष्टिमें जिसे त्रिकाल ज्ञायकस्वरूपकी निर्विकल्प स्वीकृति हुई है उसे भगवान सम्यग्दृष्टि अर्थात् धर्मकी प्राथमिक—प्रारम्भिक दशावाला कहते हैं। यहाँ तो, उससे आगेबढ़कर कहते हैं कि—ज्ञानी चैतन्यकी शोभा निहारनेको उत्सुक हैं। जिस प्रकार शरीर रत्नाभूषण पहिननेसे शोभायमान लगता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा सहज ज्ञान, सहज आनन्द एवं सहज वीर्यादि अनन्त गुणरत्नोंसे सुशोभित है। अनन्त गुणोके अलंकारोंसे जो शोभित है ऐसे निज ज्ञायककी दिव्य शोभा निहारनेके लिये ज्ञानी कुतूहल बुद्धिवाले होते हैं।

जैसे कोई नवीन वस्तु देखना हो तो कौतूहल होता है कि–अहा! यह कैसी है? इसमें क्या है? उसी प्रकार चैतन्य—भगवान आत्मा—ज्ञायक जिन्हें प्रथम दृष्टिमें आया है, ज्ञानमें ज्ञात हुआ है तथा अनुभवमें आया है ऐसे धर्मी जीव अंतर्चैतन्यकी पूर्णताको निहारनेकी—देखनेकी—कुतूहलबुद्धिवाले होते हैं। अहा! यह ज्ञायक वह क्या है—इस प्रकार उसके भीतरका गुणवैभव देखनेको आतुर होते हैं।

जिन्हें आत्मज्ञान हुआ है, आत्मज्ञानमें अनन्त आनन्दादि गुणरत्नोंसे भरपूर चैतन्यरत्नाकरका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्विकल्प अनुभव हुआ है ऐसे ज्ञानी धर्मात्मा, उसका विशेष अनुभव करनेके लिये, उसमें आगे बढ़नेके लिये कुतूहल बुद्धि करते हैं कि—अरे! यह क्या है कि जिसके गुणोंका कोई माप नहीं, एक एक गुणकी अमाप–अमाप अनन्त शक्ति! उसे देखनेको आतुर होते हैं। अंतरमेंसे बाहर निकलना, अरे! शुभमें आना भी संसार एवं बंधन है। चैतन्य स्वयंभू रत्नाकर ज्ञानादि गुणरत्नोंका आकर—समुद्र है, उसे स्वानुभव ज्ञान द्वारा अंतरमें देखनेको ज्ञानी आतुर हैं; उसमेंसे बाहर निकलना वह उन्हें अच्छा नहीं लगता।

'अहो! उन परमपुरुषार्थी महाज्ञानियोंकी दशा कैसी होगी जो अन्दर जाने पर बाहर आते ही नहीं!'

परम पुरुषार्थी महाज्ञानियोंको—जो राजकुमार हों, चक्रवर्तीके पुत्र हों, अरे! स्वयं चक्रवर्ती हों उन्हें—आत्मज्ञान तथा अनुभव तो होता है, परन्तु अंतरमें विशेष जानेके लिये, आत्माका अधिक अवलोकन करनेके लिये, गृहस्थाश्रमका त्याग करके वनमें अकेले चले जाते हैं। वनमें चारों ओर सिंह–बाघ चिंघाडते हों, घनघोर अंधेरा हो, वृक्षोंसे विषैले सर्प लिपटे हों, वहाँ जो निधि सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञानमें ज्ञात हुई, उसका विशेष अनुभव करनेके लिये भीतर आत्मामें उतर जाते हैं। अहो! उन महापुरुषार्थी महाज्ञानियोंकी दशा! जिनको बाहरका देखना छूट गया है, जो अंतर् अवलोकनके लिये आतुर हैं वे फिर बाहर आते ही नहीं। उन महाज्ञानियोंकी दशा कैसी होगी? अहा! भीतर आनन्दस्वरूपमें स्थिर हुए वे, फिर बाहर शुभ विकल्पमें भी नहीं आते। अशुभभावमें तो नहीं, किन्तु शुभभावमें भी नहीं आते।

जिनको आत्माके आनन्दका रस लगा है वे आनन्दरसके घूँट पीनेको अन्तरमें जाते हैं। कैसी है वह दशा? भीतर गये सो गये! चैतन्यमें—ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेयकी अभेद त्रिपुटीमें—गये सो गये। वे भीतर जानेके बाद फिर बाहर आते ही नहीं; बाहर आयें तो शुभ विकल्प उठता है। चाहे भगवानकी भक्तिका, व्रत–तपका अथवा दया आदिका विकल्प उठता है, परन्तु वह तो संसार है, वंधका तथा भवका कारण है, पापके परिणाम की तो क्या बात की जाये? वह तो संसारकी बडी बाँबी है उसमें बडे विषैले सर्प रहते हैं, वह तो मात्र विषका स्वाद है; यहाँ तो शुभभावमें आना उसे भी विषैला स्वाद कहते हैं।

चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्माको जिन्होंने अंतरके ज्ञानमें देखा, आनन्दका अनुभव किया, ऐसे जो महापुरुषार्थी महाज्ञानी वे अंतरमें गये सो गये! अहाहा! अंतरमें खो गये फिर बाहर निकले ही नहीं। जो अन्तरमें स्थिर हो गये हैं ऐसे सम्यग्दृष्टिको भी बाहरके विकल्पोंमें आना 'अच्छा नहीं लगता।' वे महामुनिराज तो निर्विकल्प परिणति द्वारा अंतरमें स्थिर हो गये हैं, उसमेंसे 'बाहर आते ही नहीं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'धन्य वह दिवस जब बाहर आना ही न पड़े।'

धन्य वह दिवस! और धन्य वह पल! कि जब बाहर आना ही न पड़े,—ऐसी ज्ञानी सम्यक्त्वीकी भावना होती है। जो बाह्य रुचिवान हैं, जिन्हें बाहरकी सेवा करना है, जिन्हें जगतका आनन्द लूटना है वे, 'जगतके लिये एकाध भव अधिक करना पडे तो कोई बात नहीं' एसा माननेवाले तो मूढ़ हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। दुनियामें गिनती हो, बड़प्पन मिले, महत्ता बढ़े, वे तो सब दुःखके रास्ते हैं। मोक्षमार्ग तो वीतराग भाव है। वीतरागभाव तो अंतरमें गुप्त हो जाने पर होता है। चतुर्थ गुणस्थानमें भी अंतरमें जितना एकाकार हुआ उतनी वीतराता आयी, उतना मोक्षमार्ग प्रारम्भ हुआ है। अंतरमें विशेष जाने पर तो ऐसा स्थिर हुआ कि बाहर आया ही नहीं और अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट हो गया! वह दशा कब प्राप्त होगी ऐसी सम्यग्दृष्टिको भावना होती हैं।

अज्ञानी मानता है कि दुनिया समझे तो मुझे लाभ हो। किसे लाभ हो? 'समाधिशतक'में पूज्यपाद आचार्य देव कहते हैं कि—'मैं किसीको समझाऊँ' और 'मैं परसे समझूँ' यह तो सब विकल्प है, उन्माद है, पागलपन है। समझनेवाला भगवान प्रभु स्वयं अंतरमें विराजमान है। वह स्वयं अपनेको समझाता है, इसलिये निश्चयसे स्वयं अपना गुरु है। स्वकी प्रतीतिपूर्वक स्वयं समझे तब गुरुको व्यवहारसे निमित्त कहा जाता है। व्यवहार तो आरोपित कथन है।

वीतरागके वचन वीतराता बतलाते हैं। वह वीतरागता स्व के आश्रयसे होती है। जिसे स्व के आश्रयसे सम्यग्दर्शन हुआ, वीतरागता हुई, वह पूर्ण वीतरागताके लिये अंतरमें भावना भाता है कि मैं पूर्ण वीतराग कब होऊँ! श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रममें भावना करते हैं:—

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमें,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसन ने मनमां नहिं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।—अपूर्व

शरीर तो स्थिर हो परन्तु मनमें भी किंचित् क्षोभ न हो, विकल्प न उठे, ऐसी दशा चाहिये है। शरीर मेरा नहीं है मुझे नहीं चाहिये, वो मुझसे नहीं रहा है। जिसे उसकी आवश्यकता हो वह ले जाये। मुझे नहीं चाहिये यह शरीर, बाघ–सिंहको चाहिये हो तो भले ले जायें; वे मेरे मित्र हैं। सम्यक्त्वी ऐसी वीतरागताकी भावना भाता है।

चक्रवर्तीके राजकुमार, मानों पुण्यकी आकृति—उनको अंतरमें प्रतीति वर्तती है कि हम इस बाह्य वैभवमें कहीं नहीं हैं। वे भान पूर्वक अंतरमें ही जाना चाहते हैं। जब

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई राजकुमार वनमें जाने लगता है तब अपनी माताके पास आज्ञा माँगता है—हे जननी! मुझे आज्ञा दो, मैं अपने आनन्दके नाथके निकट जाना चाहता हूँ। हे माता! अब मुझे बाहर एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता। इन रत्न-महेलोंमें तथा रानियोंमें कहीं मेरा आनन्द नहीं है। आत्मा आनन्दका नाथ है वह मैंने देख लिया है। माता! एकबार तुझे रोना हो तो रो ले, मैं शपथ लेता हूँ कि अब दूसरी माता नहीं करूँगा। मैं तो अंतरमें स्थिर होकर भवका अभाव करूँगा। मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द रसका रसिक हूँ। हे माता! मैं वह रस लेनेके लिये वनमें अकेला जा रहा हूँ। अहाहा! वह पुरुषार्थ कितना होगा? पंचमकालमें भी सम्यग्दृष्टिको तो ऐसी ही भावना होती है। भाई! मार्ग तो यह है!

अहा! कैसे शब्द हैं बेनके! 'धन्य वह दिवस कि जब बाहर आना ही न पडे।' वे महापुरुषार्थी महाज्ञानी आनन्दके अनुभवमें—एक वीतरागभावमें ही—निमग्न–तल्लीन हो गये हैं। वह दशा हमें हो। वह अवसर कब आयेगा ऐसी भावना धर्मीको होती है। धन्य वह दिवसकी जब बाहर आना ही न पड़े। अहाहा! आनन्दमें समाये सो समाये। 'श्रीमद् राजचन्द्र'में आता है कि–समझे वे समा गये, अंतरमें ही स्थिर हो गये।

*

वचनामृत–१३४

मुनिने सर्व विभावों पर विजय पाकर प्रव्रज्यारूप साम्राज्य प्राप्त किया है। विजय पताका फहरा रही है।।१३४।।

'मुनिने सर्व विभावों पर विजय पाकर प्रव्रज्यारूप साम्राज्य प्राप्त किया है।'

मुनि किसे कहते हैं? कि–जिसने सर्व विभावों पर–राग एवं व्रतादिके समस्त विकल्पों पर—विजय प्राप्त की है तथा स्वरूपरमणतारूप साम्राज्य प्राप्त किया है। मुनिराज कहते हैं कि–अब हमारी वीतराग दशास्वरूप विजयध्वजा फहरा रही है। अब रागकी विजय नहीं है। सर्व विभावोंके विकल्प, अरे! दया अथवा व्रत–तपादि शुभभावके जो असंख्य विकल्प उनसे भी पृथक् होकर, उन पर विजय प्राप्त करके मुनिने चारित्रस्वरूप साम्राज्यको अधिकारमें ले लिया है।

प्रव्रज्या अर्थात् चारित्ररूपी साम्राज्य। स्वरूप रमणतारूप चारित्र ही सच्चा साम्राज्य है। विजय प्राप्त करके राजा विभिन्न देशों पर अधिकार करते हैं, वह साम्राज्य नहीं है। भाई! अंतरमें जो अनन्त–अनन्त आनन्दका नाथ है उस पर अधिकार करना, ज्ञान एवं शान्ति आदि अनन्त गुणोंसे सुशोभित जो स्वरूप देश है उस पर अधिकार करके उसमें आनन्द पूर्वक निवास करना वह साम्राज्य है। अहाहा! वीतराग भाव पर जिन्होंने अधिकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किया है उसका स्वामित्व प्रगट किया है, अपने स्वरूप देशका अधिकार ग्रहण किया है वह सच्चा साम्राज्य है। बाहरी देशोंको जीतना वह सच्चा साम्राज्य है ही नहीं।

अहा! मुनि धर्मात्मा निरन्तर आनन्द झरते अपने प्रचुर स्वसंवेदनमेंसे–आनन्द स्वरूप निज आत्मामेंसे—बाहर आयें, व्रतका या धर्मोपदेशका विकल्प आये तो उन्हें ऐसा लगता है कि अरेरे! हम कहाँ इस परदेशमें आ गये? ज्ञानियोंकी परिणति, धर्मात्माकी दशा, विभावसे विमुख होकर स्वरूपोन्मुख हो रही है। ज्ञानी निज स्वरूपमें परिपूर्णतया स्थित होनेको तरसते हैं! यह शरीर तथा स्त्री–पुरुष–परिवार तो हमारे है ही नहीं, परन्तु यह विभावभाव भी हमारा देश नहीं है। हमारा देश तो अंतरमें विद्यमान चिदानन्द आत्मा है।

ऐसा है वीतरागमार्गका स्वरूप। महाव्रतादिका अथवा दूसरोंको समझानेका विकल्प उठे वह भी राग है; राग हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। अशक्तिके कारण भीतर स्वरूपमें स्थिर नहीं रह सके, पुरुषार्थ अल्प है, इसलिये यहाँ आ पड़े। यहां शुभभावमें हमारा कुछ नहीं है। जहाँ अनंत श्रद्धा, अनंत ज्ञान, अनंत चारित्र, अनंत आनन्द तथा अनंत वीर्यादि हमारा परिवार निवास करता है वह निज शुद्ध चैतन्यभूमि ही हमारा स्वदेश है। धर्मीको निरंतर ऐसी दृष्टि होती है। अब हम अपने उस स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं।

जिसने शुभभावको भी अपना माना है उसने अपने सहज ज्ञायकस्वभावका अनादर किया है, निजस्वरूपकी हिंसा की है। परजीवको तो कोई मार या बचा नहीं सकता; परन्तु 'परको मैंने मारा, मैंने बचाया' ऐसी जो तेरी मान्यता है वही तेरे अपने स्वरूपका घात है, भावमरण है। ज्ञाता तो प्रतिक्षण ज्ञाता ही है; उसका तूने अनादर किया वही अपने स्वरूपकी हिंसा और भावमरण है। परवस्तु मेरी है ऐसा मानकर चैतन्यका—ज्ञातापनेका—अनादर किया वही भावमरण है। श्रीमद् कहते हैं–'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो!' परकी दयाका भाव वह शुभराग है; वह स्वरूपकी हिंसा है। अहा! यह मार्ग कठिन है। जगतको सुननेको भी नहीं मिलता। उसका जीवन यों ही पशुकी भाँति बीत जाता है!

सम्यक्त्वी ज्ञानीको आत्माकी प्रतीति हुई है, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया है। वह कहता है—अब हम अपने स्वदेशमें जा रहे हैं। अनंत ज्ञान, आनन्द, शान्ति और प्रभुता आदि अनन्त शक्तियोंका संग्रह–स्वद्रव्य वह हमारा देश है, वह हमारा घर है। बाहर आना हमें नहीं रुचता। अब हमें शीघ्रतासे—जल्दीसे जल्दी अपने मूल वतनमें—स्वरूप—स्वदेशमें—निवास करना है। स्वरूप–स्वदेशमें जानेके लिये चतुर्थ या पंचमकाल–ऐसा कुछ नहीं है। काल कहाँ वस्तुको बाधक है? आत्मवस्तु तो जगमग ज्योति, नित्यानन्द,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहजानन्द प्रभु है, उसे कहीं पंचमकाल बाधा नहीं पहुँचाता। चैतन्यरत्नाकर प्रभु पंचमकालमें भी ज्यों का त्यों विद्यमान हैं। नरकके दुःख पर्यायमें सहने पर भी वस्तु—परमान्दका नाथ—तो स्वच्छ ज्यों का त्यों है; उसे कोई आंच या अवज्ञा लागू नहीं होती। उस परमानन्दस्वरूप चैतन्यकी मिठासके आगे जगतकी सब मिठास विषके समान है।

वस्तुदृष्टि हुई नहीं है, वस्तु कैसी है वह देखी–जानी नहीं है फिर स्थिरता कहाँ करेगा? वस्तुको देखा–जाना हो तो खबर पड़े के ठहरनेका स्थान तो यह है। ठहरना अर्थात् चारित्र। मुनिने समस्त विभावों पर विजय प्राप्त करके चारित्ररूपी साम्राज्य प्राप्त किया है।

'विजय पताका फहरा रही है।'

अहाहा! मुनिकी विजय पताका फहरा रही है, वीतराग भावकी विजय है; रागकी जय नहीं—पराजय हो गई है। एकबार अन्तरमें अमृतके सागरको देख, तो तुझे संतोष होगा।

चक्रवर्ती छह खण्ड साधकर–विजय प्राप्त करके वैताढ्य पर्वत पर अपने नामकी विजय प्रशस्ति लिखते हैं। वे सम्यग्दृष्टि हैं; उनके अंतरमें तो ऐसा वर्त रहा है कि–यह जो देश जीते हैं वह हमारा देश नहीं है; रागसे भिन्न जो निज भगवान आत्मा वही हमारा स्वदेश है; अनंत गुणोंकी जो बस्ती है उसका मैं राजा हूँ। सत्य तो ऐसा कठिन है। तत्त्वकी तो यही स्थिति है भाई! रागका विकल्प आये उसे मुनि जानते हैं, परन्तु उसके कर्त्ता–स्वामी नहीं होते। रागके उपर उन्होंने विजय प्राप्त की है। मुनिके वीतरागभावकी विजय और आस्रवकी पराजय है। वे तो निरंतर आनन्दमें—प्रचुर स्वसंवेदनामें—वर्त रहे हैं। उसका नाम मुनिपना है।

*

वचनामृत–१३५

एक–एक दोषको ढूँढ़–ढूँढ़कर टालना नहीं पड़ता। अंतरमें दृष्टि स्थिर करे तो गुणरत्नाकर प्रगट हो और सर्व दोषोंका चूरा हो जाय। आत्मा तो अनादि–अनंत गुणोंका पिण्ड है।।१३५।।

'एक–एक दोषको ढूँढ–ढूँढ़कर टालना नहीं पड़ता।'

यह राग है, यह द्वेष है, यह पुण्य है, यह पाप है,–इस प्रकार एक–एक दोषको खोज खोजकर नहीं हटाना पड़ता; क्योंकि दोष पर दृष्टि रहे कि 'मैं इसे दूर करूं'–यह दोष दूर करनेकी विधि नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अंतरमें दृष्टि स्थिर करे तो गुणरत्नाकर प्रगट हो और सर्व दोषोंका चूरा हो जाय।'

भीतर पूर्णानन्द स्वरूपमें—ज्ञायक आत्मामें—दृष्टि स्थिर करे तो गुणरत्नाकर प्रगट हो। अहा! उस गुणरत्नाकरकी क्या प्रशंसा की जाय? वह वचनमें आ सके ऐसी वस्तु नहीं है, मात्र अनुभवगम्य है। वह अरूपी चैतन्यरत्नाकर इन्द्रियग्राह्य नहीं है विकल्पग्राह्य नहीं है और पर्यायबुद्धिमें रहकर भी वह पकड़में नहीं आ सकता। अंतरमें दृष्टि लगानेसे ज्ञायक—गुणरत्नाकर—प्रगट हो वहाँ समस्त दोषोंका चूरा हो जाय, नाश हो जाय।

प्रायश्चित्तके समय 'इस विकल्पको ऐसे दूर करूँ' और 'इस विकल्पको ऐसे हटाऊँ' इस प्रकार विकल्पोंको गिन–गिनकर नष्ट नहीं करना पड़ता, परन्तु स्वयं भीतर आनन्दस्वरूपमें उग्ररूपसे प्रवेश करे, वहाँ दृष्टि लगाये तो चैतन्यरत्नाकर प्रगट हो, और उसके प्रगट होते ही सर्व दोषोंका क्षय हो जाता है। उसे प्रायश्चित कहते हैं। अहा! ऐसी बातें हैं। वीतरागका मार्ग तो यह है। यह बात तीर्थंकर भगवानकी दिव्यध्वनिमें आयी है। पामर प्राणियोंको यह नहीं बैठती—यह तो निश्चयकी, अगमनिगमकी बातें हैं। है तो ऐसा; क्योंकि वह ज्ञानसे गम्य है और विकल्पसे अगम्य है। दया, दान, व्रत, जप, तप, एवं यात्राके शुभभावोंसे प्राप्त हो ऐसी वह वस्तु नहीं है। पूजामें आता है ना, कि–'एकबार वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशु गति नहीं होई।' अरे, एकाध बार नरक या पशुगतिमें नहीं गया तो फिर जायगा; उसमें क्या पूरा पड़ा? वह कोई परमार्थ वस्तु नहीं है। उससे भवका अभाव कहाँ हुआ? भवका अभाव हो वह यथार्थ वस्तु है।

'आत्मा तो अनादि–अनन्त गुणोंका पिण्ड है।'

सत्, चिद्, एवं आनन्दादि अनादि–अनंत गुणरत्नोंका पिण्ड ऐसा भगवान आत्मा—जिसमें रागादिकी गन्ध नहीं है, दया,–दानादिके विकल्पका अवकाश नहीं है—जहाँ प्रगट हो वहाँ समस्त दोषोंका चूरा हो जाता है–नाश हो जाता है। 'चूरा हो जाता है' वह बेनकी सादी गुजराती—काठियावाड़ी—भाषा है।

उस शाश्वत ज्ञायक प्रभुमें राग तथा व्यवहारका अवकाश नहीं है, उसमें तो बस, एक गुणपिण्डका ही अवकाश है। चैतन्यप्रभुकी मीठास के आगे रागकी मिठास जिसे छूट गई है उसे आत्मा अनादि–अनंत नित्यस्थायी गुणोंके पिण्डरूपसे—शुद्ध ज्ञायक द्रव्यरूपसे—अनुभवमें आता है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–१३६

सम्यक्त्वसे पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है, 'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है। भले अभी अनुभूति नहीं हुई हो तथापि पहले विकल्प सहित निर्णय होता तो है।।१३६।।

'सम्यक्त्वसे पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है, 'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है।'

आत्मा आनन्दस्वरूप है, पूर्ण है और शुद्ध है—ऐसा दृष्टिमें आकर निर्विकल्प अनुभव हो, वेदन हो वह सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व प्रगट होनेसे पूर्व भी विचारधारामें विकल्प द्वारा आत्माका निर्णय हो सकता है।

वीतराग सर्वज्ञ भगवानने 'आत्मा' कहा और दूसरोंने भी 'आत्मा' कहा —उन दोनोंमें क्या अंतर है? दोनोंमें कौन सत्य है? वह जानने एवं निर्णय करनेके लिये विकल्प आते हैं। मैं परिपूर्ण अनंत आनन्दका सागर हूँ; मेरा–आत्माका–क्षेत्र शरीर प्रमाण है, सर्व व्यापक नहीं है;–उसका प्रमाण नय और निक्षेपसे पहले निर्णय करना चाहिये। समयसारकी १३वीं गाथाकी टीकामें आता है कि :—निश्चयसे वस्तु अभेद है और व्यवहारसे पर्यायमें रागादि तथा भेद हैं—इस प्रकार नय विभागसे प्रथम वस्तुस्वरूपका निर्णय करे; परंतु वह है विकल्प। अनुभव–सम्यग्दर्शन–होनेसे पूर्व विचार द्वारा वस्तुका ऐसा निर्णय आता है। विचार द्वारा निर्णय हो सकता है, 'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है।

'ज्ञातृत्व' जिसकी सत्ता है, जिसके अस्तित्वमें यह सब ज्ञात होता है, वह ज्ञाता स्वयं आत्मा है। उसमें जो अन्य वस्तुएँ भी ज्ञात होती हैं वह कहीं आत्मा नहीं है, यह शरीर है, यह स्त्री–पुरुष–परिवार आदि परपदार्थ हैं—वह सब जिसकी सत्तामें—अस्तित्वमें—ज्ञात होता है उस ज्ञानसत्ताका—भगवान ज्ञायक आत्माका–पक्का निर्णय प्रथम विकल्पवाली दशामें हो सकता है।

समयसारकी १४४वीं गाथाकी टीकामें आता है कि :—पहले आगमसे–श्रुतज्ञानसे–इस ज्ञानस्वरूप आत्माका निर्णय करता है, पश्चात् मति और श्रुतके विकल्प छोड़कर अनुभव करता है, वहाँ ७३वीं गाथाकी टीकामें कहा है : मेरा आत्मा एक, अखण्ड, शुद्ध एवं परिपूर्ण है। षट्कारकोंकी प्रक्रियासे पार उतरी अनुभूति स्वरूप होनेसे मैं शुद्ध हूँ। जिसमें किसी भी पर्यायका भेद नहीं है ऐसे त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक तत्त्वको 'अनुभूति' शब्दसे कहा है, यह 'अनुभूति' पर्यायकी बात नहीं है, कारकोंके भेद रहित त्रिकाल अनुभूतिस्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहज ज्ञायकपना वह मैं हूँ, ऐसा प्रथम विकल्पसे–मनके सम्बन्ध सहित रागमिश्रित विचारसे–निर्णय करता है, पक्का निर्णय करता है।

'भले अभी अनुभूति नहीं हुई हो तथापि पहले विकल्प सहित निर्णय होता तो है।'

अंतरमें आनन्दके स्वादकी अनुभूति तो सम्यक्त्व होनेपर होती है। अरे! यह तो अभी चौथे गुणस्थानकी सम्यक्त्व दशाकी, धर्मके प्रारंभकी बात है। अभी पांचवाँ और मुनिका छठवाँ–सातवाँ तो कहीं दूर रहा!

भले अभी अनुभूति न हुई हो तथापि प्रथम विकल्प सहितका पक्का निर्णय होता अवश्य है, ऐसा विकल्प आये बिना नहीं रहता, परंतु वह मूल्यवान नहीं है; विकल्प तोड़कर अंतरमें ज्ञायकस्वभावका अनुभव हो—सम्यग्दर्शन हो—तब सच्चेपनेका—सम्यक्पनेका—मूल्य समझमें आता है। आँगनमें आनेके लिये ऐसे विकल्प होते हैं, पश्चात् भीतर जानेके लिये उन विकल्पोंको तोड़ना पड़ता है। जौहरीकी दुकान पर खड़ा–खड़ा विकल्प करे कि—यह जवाहिरातकी दुकान है, यहाँ हीरे, माणिक और मोती मिलते हैं; उसी प्रकार यह आंगनमें खड़ा–खड़ा विकल्प करता है कि—चैतन्य प्रभु ऐसा है, शुद्ध अभेद ज्ञायक है। पश्चात् उन विकल्पोंको छोड़कर भीतर प्रवेश करता है।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्माने जो आत्मा कहा है और अज्ञानी आत्माका जो स्वरूप बतलाते हैं उनमें फेर है। अज्ञानी जो कहते है वह विपरीत स्वभाव है। इसलिये आत्माका सत्य स्वरूप निश्चित करनेके लिये प्रथम विकल्प सहितका पक्का निर्णय होता है। पश्चात् विकल्पको छोड़कर उस निर्णयको अभेद ज्ञायकतत्त्वके अनुभवयुक्त करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

*

बेनको जातिस्मरणमें आया है : भगवानके पास सुना है कि एक ऐसा सम्यक्त्व होता है कि जो क्षायिकको जोड़ता है,–ऐसा 'जोड़नी क्षायिक' होता है। उनको अच्छा नहीं लगता परन्तु अब उसे थोड़ा–थोड़ा करके प्रगट कर रहे हैं। बेनकी पुस्तक बड़ी अच्छी है, अकेला मक्खन है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'की अपेक्षा भी बढ़ जाय ऐसी है। सादी, सरल भाषामें ऊँचा तत्त्व परोसा है। —*पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–५०

ता. २८–७–७८

वचनामृत–१३७

चैतन्यपरिणति ही जीवन है। बाह्यमें तो सब अनंत बार मिला, वह अपूर्व नहीं है, परन्तु अंतरका पुरुषार्थ ही अपूर्व है। बाह्यमें जो सर्वस्व मान लिया है उसे पलटकर स्वमें सर्वस्व मानना है॥१३७॥

'चैतन्यपरिणति ही जीवन है।'

चिदानन्दघनस्वरूप निज भगवान आत्माकी निर्मल दृष्टि करके जो शुद्ध चैतन्यपरिणति हो वही जीवका सच्चा जीवन है। लोगोंको एकान्त लगता है, परन्तु क्या किया जाय भाई! बाहरके कोई अन्य साधन हों तो यह चैतन्यपरिणति हो–ऐसी यह वस्तु नहीं है। जो वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञात होता है उस त्रैकालिक ज्ञायक प्रभुकी अंतर्दृष्टि करके, जो निर्मल परिणमन हो वही जीवका सच्चा जीवन है।

समयसारके परिशिष्टमें ४७ शक्तियोंमें पहली जीवत्वशक्ति ली है : आत्मद्रव्यको कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राणको धारण करना जिसका स्वरूप है ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भावमें—आत्मामें—उछलती है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्यादि अनन्त गुणमय चैतन्य मात्र त्रैकालिक भावप्राणसे जीना वही जीवकी सच्ची जीवनशक्ति है। अंतरमें ध्रुव जो आनन्द एवं ज्ञायकभाव है उसका आलम्बन लेकर जो अतीन्द्रिय निराकुल सुखमय परिणति हो वही जीवका सच्चा जीवन है। बाकी सब थोथा है। आया कुछ समझमें?

प्रश्न :—वह दशा किस प्रकार प्रगट होती है?

उत्तर :—पहले सारी दुनियासे उदास होकर, विभावके निमित्तोंका लक्ष छोड़कर, राग, पर्याय तथा गुणभेदका लक्ष भी विकल्प है–उसे भी छोड़कर, त्रैकालिक ध्रुवभाव–ज्ञायकध्रुवधाम—जो अपना स्वदेश है उसमें निवास करना, और इस प्रकार जीवनमें आनन्दमय शुद्ध चैतन्यपरिणति होना, वही सच्ची जीवनदशा प्रगट होनेका उपाय है। अहाहा! जिसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फलमें पूर्ण अनन्त ज्ञान एवं पूर्ण अनन्त आनन्द प्रगट हो ऐसा है यह जीवन!

प्रश्न :—यह तो एकान्त लगता है, अन्य कोई साधन होना चाहिये ना?

उत्तर :—व्रत, तप और भक्ति आदि शुभभाव वह साधन नहीं है। भले ही तुझे एकान्त लगे, परन्तु यही सच्चा अनेकान्त है। जीव स्व-रूपसे है और पर-रूपसे नहीं है; शुद्ध चैतन्य परिणति ही जीवन है, दया—दानादिका शुभराग वह जीवन नहीं है; त्रैकालिक स्वरूपके—निश्चयके—आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है, शुभराग अथवा व्यवहारके आश्रयसे नहीं होता;—यह सच्चा अनेकान्त है। अहा! ऐसी बात है! नहीं पहुँचा जा सकता इसलिये विपरीत तो नहीं मानना चाहिये भाई! इस प्रकार तू नहीं पहुँच सकेगा। ज्ञान एवं आनन्दका कन्द ऐसे अपने भगवत्स्वरूपका—ध्रुवज्ञायकका—अंतरमें स्वीकार होने पर जो सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रकी जो दशा हुई वह जीवका सच्चा जीवन है भाई! राग और संयोगके आश्रयसे जीना वह तो जीवकी मृत्यु—भावमरण है। अहा! कठिन बात है भाई!

अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दादि अनंत गुणरत्नोंसे भरपूर जो निज चैतन्यभगवान उसके आश्रयसे जो निर्मल दशा हो—स्वभाव तो त्रिकाल स्थायी है, स्थायीको 'स्थायी' है ऐसा अनुभवना—वही जीवका जीवन है। सूक्ष्म बात है, प्रभु देहकी स्थिति पूर्ण होने पर तू कहाँ जायगा? आत्मा तो नित्य है वह कहाँ रहेगा? जिसने राग और पुण्यको अच्छा माना वह मृत्युके जीवनमें—जन्म—मरणमें—रहनेवाला है।

परमें आनन्द है—स्त्रीमें, पैसेमें, प्रतिष्ठामें, मकानमें, अरे! रागकी मन्दताके भावमें भी सुख है, इस प्रकार बाह्यमें कहीं सुख है—ऐसी जो मान्यता वह तो चैतन्यके प्राणका—जीवनका—घात है, हिंसा है। 'मैं केवल चैतन्य ही हूँ' ऐसी परिणति ही जीवका आनन्दस्वरूप जीवन है। चैतन्य परिणति रहित जीवन तो मृतक समान है। अष्टपाहुड़में—भावपाहुड़में—आता है : 'चल शब' जान दर्शनमुक्तको...सम्यग्दर्शन रहित प्राणी चलते हुए मुरदे हैं। प्रभु! तेरे स्वरूपमें अनाकुल आनन्द भरा है, तू तो आनन्दका पिण्ड है, वहाँ दृष्टि डालना है भाई! पामर वस्तुमें दृष्टि डालकर तू दुःखी हो रहा है, वहाँसे दृष्टि उठाकर अंतरमें आनन्दके पुंज—सहज ज्ञायक भाव-पर दृष्टि लगा, उसे प्रतीति एवं ज्ञानमें ले, तो तेरी परिणति आनन्द एवं शान्तिमय हो जायगी। वही जीवका सच्चा जीवन है भाई! कठिन लगे, महँगा लगे, परन्तु मार्ग तो यही है।

'बाह्यमें तो सब अनंतबार मिला, वह अपूर्व नहीं है, परन्तु अंतरका पुरुषार्थ ही अपूर्व है।'

करोड़ों तथा अरबोंकी सम्पत्ति, देवपद, बाह्य अनुकुल सामग्री, सुन्दर रूपवान शरीर, तीन पल्यकी आयुका—एक पल्यके असंख्यातवें भागमें असंख्य अरब वर्ष जाते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं–तथा तीन कोसकी ऊँचाईवाला जुगलियाका शरीर–वह सब अनंतबार प्राप्त हुआ है, वह कोई अपूर्व नहीं है।

प्रश्न :—बाह्य वस्तुएँ तो किसीको मिलती नहीं है ना?

उत्तर :—'मुझे मिली हुई है'–ऐसा अज्ञानी मानता है ना? पैसे मिले, मेरे लड़के बहुत होशियार हुए, यह मेरी पत्नी, यह मेरे मकान, पच्चीस–पचास हजारकी मेरी उधारी,–इसप्रकार अज्ञानी परको अपना मानता है ना? मानता है इसलिये वह उसका हो जाता है, परन्तु वह उसका भ्रम है। रागका एक कण भी जहाँ उसका नहीं है वहाँ शरीरादि बाह्य संयोग तो कैसे उसके होंगे? वे आत्माके स्वरूपमें नहीं है इसलिये तो संयोग कहलाते हैं। संयोगों पर अनादिकी दृष्टि है। शरीरका जीवन वह तेरा जीवन ही नहीं है, तेरा जीवन तो अंतरमें आत्म जीवन है।

प्रश्न :—कोई साधन तो होना चाहिये ना?

उत्तर :—प्रभु! रागसे भिन्न होना और ज्ञायकमें एकमेक हो जाना वह साधन नहीं है? ज्ञानको रागसे भिन्न करनेवाली प्रज्ञाछैनी ही एकमात्र साधन है। चैतन्य स्वभाव रागरहित एकाकी है उसका जिसने आश्रय लिया वह उसका सच्चा जीवन है। उसके सिवा बाहरी–राजपाट आदि–अनंतबार मिला है। अरे! ग्यारह अंग तथा नव पूर्वका ज्ञान भी अनंतबार प्राप्त हुआ। वह ज्ञान तो परलक्षी है, स्वलक्षी नहीं है। अहा! अंतरमें ज्ञान एवं आनन्दका सागर है उसके सन्मुख देखते ही जीवका अन्तर् परिणमन–जीवन–बदल जाता है; राग और निमित्तकी ओर देखनेसे उसका जीवन मृत्यु समान हो जाता है।

अनंत गुणोंका सागर भगवान आत्मा शरीर प्रमाण है। आकार शरीर प्रमाण होने पर भी उसका अंतरमें महात्म्य बड़ा है। पर्यायमें पुण्य–पापका मेल दिखायी देता है परन्तु वह उसकी मूल वस्तु नहीं है। अहा! उस अनंत गुणोंके धामका—अभेद ज्ञायक आत्माका—आश्रय लेनेसे जो निर्मल दशा प्रगट हो वही अपूर्व जीवन है। उसके सिवा अन्य बाहरी जीवन तो अनंतबार मिला है वह कोई अपूर्व नहीं है।

अरबों रूपये, सुन्दर स्वरूपवान स्त्री,–अरे वणिक पुत्र हो और उसे राजकन्या मिल जाती है–भाई! यह सब अनंतबार मिल चुका है; वे सब दुःखके निमित्त अपूर्व नहीं हैं; परन्तु अंतर पुरुषार्थ ही अपूर्व है। अहा! तेरी प्रभुता ज्ञायकमें है, राग एवं पुण्यमें तेरी प्रभुता नहीं है, तो फिर बाह्य निमित्तोंमें तेरी प्रभुता आयगी ही कहाँ से? पैसा, स्त्री–पुत्र–परिवार और अन्य बाह्य अनुकूल सामग्री—वह कोई अपूर्व नहीं है, परन्तु अंतरमें ज्ञायक स्वभावकी साधनाका पुरुषार्थ ही अपूर्व है। अंतरमें ज्ञान एवं आनन्दकी वज्रभींत पड़ी है उसके साथ पर्यायको जोड़ दे भाई! उसका स्वीकार करने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पर तेरी पर्याय निर्मल हो जायगी। वही अंतरका अपूर्व पुरुषार्थ है।

अंतरमें तेरे जीवनकी ज्योति–चैतन्यकी जगमग ज्योति–विराजती है प्रभु! उसके सन्मुख दृष्टि करनेसे जो जीवन मिले उसीको सच्चा जीवन कहा जाता है। बाकी तो सब व्यर्थ है–वह क्या कोई अपूर्व पुरुषार्थ है? स्वभावसागरके सन्मुख देखना वह अंतरका पुरुषार्थ अपूर्व है।

'बाह्यमें जो सर्वस्व मान लिया है उसे पलटकर स्वमें सर्वस्व मानना है।'

उद्योगपति हुआ लेकिन किसका 'पति'? व्यापार–धंधेका और रागका पुरुषार्थ किया इसलिये उसे उद्योगपति कहा जाय? भाई! वे जड़के रजकण पुद्गल हैं, वे आत्माके नहीं हैं, और आत्माके पास आते भी नहीं हैं। वे आये तब 'मुझे मिले' ऐसी ममता उसके पास आयी। अहा! वह ममता भी अपूर्व नहीं है, पूर्वकालमें अनंतबार की है।

दो–चार या दस–बीस लाख अथवा तो करोड़ रुपये धर्मके नाम पर खर्चता है, 'धामधूम धमाधम चली, ज्ञानमारग रह गया दूर रे!'–इस प्रकार धर्मके नाम पर हो हा होती है और पदवी मिलती है कि–'अरे! यह तो धर्मधुरंधर धर्मात्मा हैं।' परन्तु भाई! यह तो अनंत बार किया है, यह कोई नई बात नहीं है। बाह्यमें जो सर्वस्व मान बैठा है उसे पलटकर स्वभावमें सर्वस्व मानना है। अहा! मुश्किल काम है भाई! पूरा जीवन बदलना होगा। कल्याण करना हो तो यह बात है।

आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है। सर्वको जानना–देखना ही उसका त्रैकालिक स्वभाव है। उस त्रैकालिक स्वभावका जिसने स्वीकार किया वह मात्र जाननेवाला–ज्ञाता—ही रहता है, परका या विभावका कर्ता नहीं होता। अज्ञानी रागसे लेकर सारी दुनियामें सर्वस्व मान बैठा है, वहाँसे विमुख होकर अनंत गुणोंका स्वामी ज्ञायक आत्मा वह मेरा सर्वस्व है–ऐसा मानना है। भाषा तो सादी है भाई! परन्तु पुरुषार्थके बिना ज्ञायकतत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वह पुरुषार्थ भी अंतरोन्मुखताका होना चाहिये।

'सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम हेतु होय जो;'

सर्व भावसे उदासीन, मात्र एक देह रहे और वह भी संयमके हेतुसे; शरीर तो जब तक आयु शेष हो तब तक छोड़ा नहीं जा सकता।

अहाहा! इस देह-देवालयके भीतर पूर्णानन्दका नाथ, चैतन्यज्योतिसे जगमगाता हुआ भगवान आत्मा विराजमान है, जिसमें चैतन्य रत्नाकरके अनंत गुणरत्नोंकी चमक उठती है, झलक उठती है। उसे देखनेसे जो परिणमन होता है वह अपूर्व है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाह्यमें जो सर्वस्व मान लिया है उसे पलटकर स्वमें सर्वस्व मानना है। वहाँ 'पलटकर' वह पर्यायकी बात है। वस्तु तो वस्तु है, परन्तु परमें जो सर्वस्व माना है वह सर्वस्व अपनेमें 'मानना' वह पर्याय है। स्वमें सर्वस्व मानना है।

*

वचनामृत-१३८

रुचि रखना; रुचि ही काम करती है। पूज्य गुरुदेवने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकारसे समझाते हैं। पूज्य गुरुदेवके वचनामृतोंके विचारका प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते रहना। भेदज्ञान होनेमें तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। 'ज्ञायक', 'ज्ञायक' 'ज्ञायक'–उसकी रुचि हो तो पुरुषार्थका झुकाव हुए बिना न रहे ॥१३८॥

'रुचि रखना।'

अंतरमें आनन्दका नाथ भगवान ज्ञायक है, उसकी रुचि कर। प्रथम तो रुचिमें निर्णय होना चाहिये कि मुझे अपने आत्माकी ही आवश्यकता है उसके सिवा मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये। व्यापारी भी जहाँ रुचि हो वहाँ माल खरीदने जाता है ना? उसीप्रकार रुचिमें वस्तुका निर्णय होना चाहिये। रुचि रखना। जिस प्रकार व्यापारीको रुचे तो माल लेता है, उसी प्रकार जीवको आत्माकी रुचि हो तो उसकी दृष्टि करता है।

अहा! ऐसा मार्ग कहीं नहीं मिलेगा भाई! यह महँगा मनुष्य अवतार चला जायगा; आँखे मींचकर चला जायगा भाई! कहीं कोई रक्षक नहीं है। जिसकी शरण है वह तो यहाँ भीतर विद्यमान है। बाहरकी—अरिहंतकी सिद्धकी—शरण ढूँढ़ने जाना वह सब तो बाह्य व्यवहारकी बातें हैं। अंतरमें चैतन्यको जानकर, पहिचानकर उसकी शरण नहीं ली होगी तो मृत्यु–कालमें देहान्तके समय चारों ओरसे दबाव पड़ने पर, अचेत होकर यातनामें दब जायगा। जब तक घनकी मारका थोड़ा कष्ट हो तब तक सुध कहती है, परन्तु जब घनोंकी बहुत मार पड़े–कष्टकी पराकाष्ठा हो जाय—तब अचेत—बेसुध हो जाता है बेसुध हो जाने पर उसकी वेदना कम हो गई है—ऐसा नहीं है।

यह जीव रागको, पुण्यको तथा उसके फलको सर्वस्व मानता है वह तत्त्व दृष्टिसे बेसुध–अचेत हो गया है। भगवान पूर्णानन्दका नाथ जिसकी रुचिमें आया है, उसकी जिसे भावना है उसे जीवनमें चैतन्यकी ज्योति प्रगटेगी। वह रुचि अवश्य रखना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'रुचि ही काम करती है।'

यदि अंतरमें ज्ञायक स्वभावकी रुचि होगी तो वह रुचि साधनाका कार्य करेगी। यदि अंतरमें रागकी—शुभभावकी या व्यवहारधर्मकी—रुचि रही तो तू अंतरमें नहीं जा सकेगा प्रभु!

'पूज्य गुरुदेवने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकारसे समझाते हैं। पूज्य गुरुदेवके वचनामृतोंके विचारका प्रयोग करना।'

फिर तो बेनने यहाँका नाम दिया है (गुरुदेवका) ....बहुत दिया है...अनेक प्रकारसे समझाते हैं। बेन तो बहुमानसे कहती है ना? यहाँका बहुमान है ना? कहती हैं : अनेक प्रकारसे अनेक पक्षसे समझाते हैं। यहाँके (गुरुदेवके) वचनामृतोंके विचारका प्रयोग करना। यह तो भगवानकी वाणी है, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं वही यह वाणी है। उस वाणीके विचारका—वचनामृतोंके विचारका—प्रयोग करना।

'रुचि बढ़ाते रहना।'

आनन्दघन शुद्ध चैतन्यकी रुचि विशेष–विशेष गाढ़ करते जाना, दृढ़ करते जाना। यह उसका प्रथम कर्तव्य है, बाकी और सब तो धर्मके नाम पर बातें हैं।

'भेदज्ञान होनेमें तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है।'

रागसे पृथक् करनेमें स्वभावकी तीव्र रुचि ही काम करती है। स्वभावकी रुचि हो तभी विभावसे भिन्न होता है।

प्रश्न :—भेदज्ञानके प्रयत्नके समय 'यह राग सो मैं नहीं'—ऐसा विकल्प तो आता है ना?

उत्तर :—भेदज्ञानके लिये विकल्प उठता है वह राग–विकल्प आत्माका स्वभाव नहीं है। वह विकल्प पर्यायमें है, मूल वस्तुमें नहीं है। उससे भेदज्ञान करनेके लिये अंतरमें तीक्ष्ण रुचि ही कार्य करती है। तीक्ष्ण रुचि अर्थात् तीव्र रुचि अत्यन्त रुचि। अंतरमें आत्मस्वभावका जो अत्यन्त प्रेम और रुचि है, वह तीव्र रुचि ही भेदज्ञानकी दिशामें कार्य करती है।

'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक',—उसकी रुचि हो तो पुरुषार्थका झुकाव हुए बिना न रहे।

'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक'; राग तो नहीं, किन्तु अल्पज्ञता भी मैं नहीं हूँ। त्रिकाल एकरूप रहनेवाला 'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक'—उसकी अंतरमें लगन लगना चाहिये। उसीकी रुचि हो तो पुरुषार्थका झुकाव भीतरकी ओर हुए बिना न रहे। त्रिकाल ज्ञायककी

६

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि और लगन हो तो उस ओर पुरुषार्थ हुए बिना न रहे।

सौ टंच सोनेकी भाँति यह ज्ञायक भगवान निर्मल–शुद्ध है; जहाँ उसे दृष्टिमें लिया और उस धनवानका अंतरमें स्वीकार किया वहाँ पर्यायमें जो शान्ति और आनन्दका जीवन आता है उसका नाम जीवका जीवन है।

जिसे त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूप रुचता हो उसका पुरुषार्थ अंतरोन्मुख हुए बिना नहीं रहता। राग और पुण्य–पापके भावकी रुचि है तो वहाँ पुरुषार्थ रुचिपूर्वक कार्य करता ही है ना? उसीप्रकार ज्ञायकस्वभावकी रुचि और लगन हो तो पुरुषार्थका झुकाव उस ओर हुए बिना रहता ही नहीं।

*

वचनामृत–१३६

गहराईसे लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। अनादिकालसे लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो॥१३६॥

'गहराईसे लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे।'

भाषा तो गुजराती, सादी और बड़ी मीठी है!

ध्रुव ज्ञायक सत्त्व जिसका तल है ऐसे प्रभु भगवान आत्मामें वर्तमान पर्यायको गहराईमें ले जाकर त्रैकालिक ध्रुवस्वरूपकी गहराईसे लगन लगाये, उस ओरका पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे।

कुएँमें पाताल फूटकर जो पानीका प्रवाह आता है वह कभी कम नहीं होता; उसी प्रकार जो सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानादि गुणोंकी निर्मल धारा आती है वह गहराईमेंसे—ध्रुवस्वभावके आश्रयसे—प्रगट होती है। गहराईमें जाना अर्थात् वर्तमान पर्यायसे भीतर ध्रुवस्वभावनें जाना। पर्याय वर्तमान है वह तो बाहर है। अनंत अनंत अमाप गुणरत्नाकर छलाछल भरा है; वहाँ दृष्टि डालना। भाषा सादी है परन्तु भाव तो देखो!

अहा! गहराईसे लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु–पूर्ण ज्ञान एवं आनन्दका धाम–प्राप्त हुए बिना न रहे। बोटाद शहरके पास जनडा ग्राममें पाताल कुआँ है। एक साथ अठारह रहँट चलाकर पानी निकाले तथापि कम नहीं होता। उसीप्रकार यह भगवान आत्मा आनन्दका गहरा कुआँ है; उसकी लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो आत्मवस्तु प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुए बिना न रहे। परकी ओरका पुरुषार्थ करे तो राग और पुण्य–पाप होते हैं ना? उसीप्रकार इस ओरका पुरुषार्थ करे तो पवित्रता भरी वस्तु–सहज ज्ञायक वस्तु–प्राप्त हुए बिना रहेगी ही नहीं।

वस्तु अर्थात् अनंत गुणोंका धाम—चैतन्य आत्मा; उस ओर रुचि करके पुरुषार्थ करे तो उसकी प्राप्ति हुए बिना नहीं रहेगी। जितनी पुरुषार्थकी कचास है उतना कारण नहीं दिया, इसलिये कार्य नहीं आता। अल्प पुरुषार्थ करके उससे वस्तु प्राप्त करना चाहे तो उसने कारणकी पूर्णता नहीं दी; तो फिर उसे कार्य कहाँसे आये?

'अनादिकालसे लगन लगी ही नहीं है।'

अनंतबार दिगम्बर जैन साधु हुआ, किन्तु अंतरकी सच्ची लगन नहीं लगी; बस, बाह्य क्रियाकाण्डमें लगा रहा! व्रत पाले और अभिग्रह लिये; कठिन नियम धारण किये। भिक्षाके लिये जाऊँ और अमुक विधि होगी तभी आहार ग्रहण करूँगा। जैसे :—मोती नामकी स्त्री हो, मोतीचूरके लड्डू बनाये हों, मोतीकी डिजाइनवाली साड़ी पहिनी हो, साड़ीके पालवमें मोती बाँधे हो तभी आहार लूँगा, नहीं तो नहीं।–ऐसे कठोर नियम भी अनंतबार लिये, परन्तु वे तो सब विकल्प हैं भाई!

'लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो।'

अनादिकालसे आत्माकी लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो; अंतरके ध्रुव पातालमेंसे ज्ञान और आनन्द अवश्य फूटें–अवश्य झरें। शास्त्रकी पढ़ाई वह कोई ज्ञान नहीं है। भीतर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञानस्वरूपमें एकाग्र होने पर जो निर्मलज्ञानधारा आये—उसके साथ अतीन्द्रिय ज्ञान भी आये—उसे ज्ञान कहा जाता है। अंतरसे लगन लगे तो वह निर्मल ज्ञान तथा अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुए बिना रहेगा ही नहीं।

*

ता. १७–६–८०

यह तो बेनकी भाषा बिलकुल सादी तथा अंतरसे बोली हुई है। थोड़ासा बोलीं और लिखा गया। नहीं तो प्रगट होती ही कैसे? अकेले रत्न भरे हैं! अन्यमतीको भी ऐसा लगेगा कि ऐसा कहीं नहीं है! हीरोंका भण्डार है!

—पूज्य गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५१

ता. २६–७–७८

वचनामृत–१४०

'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्यालमें आती है न? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है न? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत' नहीं है। वह तत्त्व अपनेको त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमानमें है वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करनेसे आगे बढ़ा जाता है। अनंत कालमें सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत्‌की श्रद्धा नहीं की।।१४०।।

''है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्यालमें आती है न? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है न? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत' नहीं है।'

अब आत्मा जो नित्य है उसे सरल भाषामें कहते हैं। 'है', 'है', 'है'—भूतकालमें था, वर्तमानकालमें है और भविष्यकालमें होगा—इस प्रकार वस्तुका त्रैकालिक अस्तित्व, उपस्थिति जीवन ख्यालमें आता है ना? वह क्या है? ऐसे तो परमाणु आदि पर द्रव्य भी हैं, परन्तु 'यह है' ऐसा जिसके ख्यालमें आता है वह कौन वस्तु है? तो कहते हैं: 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना? वह मात्र वर्तमान पर्यन्त 'सत्' नहीं है। अहा! भाषा तो बहुत सादी है।

'ज्ञाता' तत्त्व 'है', नहीं है ऐसा नहीं। वह 'है' तो कैसा है? वह ज्ञाता रूपसे था, वर्तमान है और भविष्यमें होगा; वह 'ज्ञाता' तत्त्व मात्र वर्तमान पर्यंत अस्तित्ववाला नहीं है। वस्तु 'है' ऐसा जिसकी वर्तमान पर्यायमें ख्याल आता है वह ज्ञाता तत्त्व—ख्यालमें लेनेवाला तत्त्व—मात्र वर्तमान पर्यन्त अस्तित्ववाला नहीं है, वह त्रैकालिक अस्तित्व रखनेवाला 'सत्' है।

अभी कुछ देर पहले एक भाईने इस अर्थका गीत गाया था ना? कि—'बेनने

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो कमाल कर दिया है, ऐसा कहाँसे लायीं बहिन?'—बहुत सुन्दर गीत था, अच्छा गीत बनाया है।

यहाँ जो 'वस्तु' है वह आत्मा है। वह 'है', 'है', 'है', ऐसा ख्यालमें आता है ना? वह क्या है—तो कहते हैं कि—'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', तत्त्व है। इसप्रकार 'है' के ख्याल में 'ज्ञाता है' ऐसा जो आता है वह मात्र वर्तमान जितना ही नहीं है।

'वह तत्त्व अपनेको त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ती मानता है'

वर्तमानमें जो 'जानना' है, जो स्थिति है वह त्रैकालिक तत्त्वको सिद्ध करती है। जो जानता है वह ज्ञाता है, उसका अस्तित्व वर्तमानमें ज्ञात होता है ना? तो जो वर्तमानमें ज्ञात हो वह त्रैकालिक होता ही है। अहा! भाषा तो सादी और मीठी है।

भगवान आत्मा त्रैकालिक 'ज्ञाता' ही है, उसकी श्रद्धा तूने कभी नहीं की। 'ज्ञाता' तत्त्वको वर्तमान पर्यंत मानकर वहाँ संतुष्ट हो गया, परन्तु वह मात्र वर्तमान पर्यंत 'सत्' नहीं है; वह त्रिकालरूप 'सत्' है। 'ज्ञाता' ज्ञायक वस्तु त्रिकाल सत् है, उस पर दृष्टि करना चाहिये। अहा! ऐसा मार्ग है।

आनन्दकन्द चैतन्य मूर्ति भीतर 'है', 'है', 'है'; जो 'है' वह 'ज्ञाता' है, वह ज्ञाता वर्तमान जितना है—ऐसा नहीं; वह तत्त्व अपनेको त्रिकाल सत् बतला रहा है अहा! 'ज्ञायक' वह वर्तमान जितना ही ज्ञायक–सत् नहीं है। वर्तमान वह त्रैकालिक 'सत्' को बतलाता है कि यह ज्ञायक वस्तु त्रिकाल है।

किसीको ऐसा लगेगा कि यह कैसा उपदेश?! दया, दान और व्रत पालनेकी बात तो समझमें आये ऐसी सीधी–सरल है, इसमें बड़ा सिर दर्द होता है!

परन्तु भाई! दया किसे कहा जाय? तू जितना—त्रैकालिक ज्ञायक सत्—है उसे उतना माननेका नाम ही स्वकी दया है। त्रैकालिक 'ज्ञाता' सत्को ज्ञानमें लेना, श्रद्धामें लेना और अनुभवमें लेना उसका नाम जो 'पूर्णसत्' है उसकी दयाका पालन किया कहा जाता है। उसका जीवत्व जितना है उतना न मानकर वर्तमान पर्याय जितना मानना वह तो जीवकी हिंसा है, क्योंकि त्रैकालिक 'सत्' जैसा है वैसा उसने नहीं माना। आया कुछ समझमें? यह तो चौथी पुस्तक पढ़नेवाले बच्चेको भी समझमें आ जाय ऐसा है।

इन शरीर, वाणी और मन आदिको तो एक ओर रख दो, परन्तु अंतरमें जो 'ज्ञाता' है उसका अस्तित्व समझमें आता है या नहीं? जिसकी 'अस्ति' ख्यालमें आती है वह था, है और होगा—इस प्रकार ज्ञायकरूपसे अपना त्रैकालिक अस्तित्व बतलाता है। 'ज्ञायक' कहो या 'ज्ञाता' कहो और 'है' कहो या 'सत्' कहो। वह जो 'सत्'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है वह वर्तमान पर्यंत 'ज्ञाता' नहीं है, त्रिकाल है। वह तत्त्व अपनेको नित्य सत् बतला रहा है। वह ज्ञायक भाव—'है' ऐसा सत्‌भाव—स्वयं नित्य है ऐसा आबाल वृद्ध सबको बतला रहा है।

वर्तमान जाननेकी–ज्ञाता पर्यायमें पूर्ण सत् नहीं आ जाता; वह ज्ञाता पर्याय त्रैकालिक ध्रुव सत्‌को बतलाती है। अहा! ऐसा मार्ग है! लोग उसे समझनेका प्रयत्न नहीं करते, परन्तु स्वयं जो मान रखा हो उसे हाँकते रहते हैं। भाई! इसप्रकार कहीं सच्चा मार्ग हाथ नहीं आयगा।

अंतरमें महान प्रभु विराजमान है। वर्तमानमें उसकी 'ज्ञातृत्व' दशाका जो अस्तित्व है, उतना ही वह नहीं है, वह तो उसका वर्तमानरूप है; वह वर्तमानरूप त्रिकाल सत्‌को बतलाता है। आया कुछ समझमें? यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी रीति है, बाकी सब थोथा–व्यर्थ है।

भगवान आत्मा 'ज्ञाता' रूपसे वर्तमानमें प्रसिद्ध है या नहीं? किसी भी वस्तुको जाननेके प्रसंगमें 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' ज्ञाता, ऊर्ध्व—मुख्य—रहता है। यदि 'ज्ञाता' मुख्य न हो तो 'यह ज्ञात होता है' वह काहे में? 'ज्ञाता'की ऊर्ध्वता न हो तो 'इसको जानता है' ऐसा कहाँसे आया? प्रत्येक प्रसंगमें 'ज्ञाता'की मुख्यता न हो तो वहाँ 'यह प्रसंग है' ऐसा जाना किसने? जिसे 'जानना' ही मुख्य है उसे, परको जानते हुए भी, अपनी सत्ताकी –अस्तित्वकी–प्रसिद्धि है उस 'ज्ञाता'की प्रसिद्धि वर्तमान पर्याय जितनी नहीं है। अहाहा! इससे सरल और किस रीतिसे कहा जा सकता है? अरे! दुनिया बेचारी क्रियाकाण्डकी कुटाईमें मर गई, परन्तु वस्तु स्थिति क्या है?–उसका माहात्म्य नहीं आया!

'जानना' जिसका वर्तमान पर्यायपना है वह, कोई 'ज्ञाता' त्रैकालिक वस्तु है। उस वस्तुकी वर्तमान पर्याय उसके त्रिकालिकपनेको प्रगट करती है, बतलाती है। अहाहा! 'ज्ञाता' तत्त्वकी जो वर्तमान अस्ति है उसके जितना ही कहीं सत् नहीं है। 'ज्ञाता'की पर्याय किसके आधारसे हुई? किसके अवलम्बनसे हुई? किसके आश्रयसे हुई? 'जानने' रूप वर्तमान पर्याय ज्ञायकको बतलाती है कि 'यह त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व है'। प्रभु! अपने वर्तमान ज्ञानका अस्तित्व तुझे ज्ञात होता है या नहीं? किसी भी प्रसंगमें 'ज्ञाता' स्वयं न हो तो जानेगा कौन? 'ज्ञाता'का अस्तित्व तो तुझे वर्तमानमें ज्ञात होता है, परन्तु वर्तमान जितना ही पूर्ण तत्त्व नहीं है। वह पर्याय ध्रुवतत्त्वको बतलातीहै, वर्तमान है वह नित्यको बतलाता है अनित्य है वह नित्यको प्रसिद्ध करता है। आया कुछ समझमें? भाई! यह तो मात्र ज्ञानका मार्ग है; कोई क्रिया—यह करो और वह करो—वह तो वस्तुके स्वरूपमें है ही नहीं। उसके त्रैकालिक स्वरूपमें तो है ही नहीं, किन्तु उसके वर्तमान स्वरूपमें भी नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानका वर्तमान जितना अस्तित्व जाननेमें आता है वह पर्यायका अस्तित्व तो है। वह अंश कहीं अद्धरसे नहीं हुआ है; वह अंतरमें किसी त्रैकालिक वस्तुको बतलाता है। जिसका वह अंश है उस त्रैकालिक तत्त्वको बतलाता है। वह तत्त्व अपनेको—स्वयंको—त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है।

बात यह है—'यह शरीर है', 'यह राग है', इस प्रकार यह वर्तमान जानता है ना! शरीर और राग कुछ जानते हैं? वे कुछ नहीं जानते, ज्ञान जानता है। जाननेमें आते रागादि आत्माके रागादिपनेको नहीं किन्तु ज्ञानमयपनेको बतलाते हैं, वर्तमान ज्ञानकी पर्यायकी प्रसिद्धि करते हैं। शरीरादि परको जानते हुए, परके साथ तन्मयताकी नहीं, किन्तु परको 'जानने' रूप पर्याय की प्रसिद्ध है है वह पर्याय 'जाननेरूपसे' अस्ति है; पररूपसे अस्ती है ऐसा नहीं। वहाँ परका जो 'जानना' हुआ वह 'जानना' ज्ञानका अस्तित्व है। वह 'जानने'रूप अस्तित्व नित्य वस्तुको बतलाता है। वर्तमान पलटती ज्ञान पर्याय नित्य ध्रुव ज्ञानस्वभावको बतलाती है। ऐसी वस्तु है। बात बड़ी गंभीर है। बहुत सादी भाषामें, साधारण लोग भी समझ सकें ऐसी शैलीमें बेनने कही है।

ख्यालमें आता है ना, कि 'यह जानता है'? वहाँ, जो जानता है वह 'ज्ञाता'है या नहीं? 'जानना' वह ज्ञातातत्त्वकी वर्तमान पर्याय है। वह परको जानती है, परन्तु यहाँ परका अस्तित्व सिद्ध नहीं करना है। परको जाननेके कालमें 'जानने रूप पर्यायका अस्तित्व है ना? परके अस्तित्वका यहाँ प्रयोजन नहीं है, परन्तु परको जाननेरूप जो वर्तमान ज्ञानअंश है वह जिसका है उसे बतलाता है कि–यह ज्ञान त्रिकाल ध्रुव है। ऐसा होने पर भी तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति ही मानता है। त्यागी हुआ, दिगम्बर साधु हुआ, तथापि उसका झुकाव वर्तमान पर्याय जितना ही रहा, त्रैकालिक ध्रुव तत्त्व पर दृष्टि नहीं की।

अहाहा! ऐसी बातें हैं भगवन् तेरी प्रभुताकी! पर्यायकी पामरताको पकड़ा, परन्तु अपनी प्रभुताको कभी नहीं पकड़ा प्रभु! साधु हुआ तब भी यह 'छोड़ूँ और वह छोड़ूँ,' 'यह चलेगा और वह नहीं चलेगा' इस प्रकार बाह्य उधेड़बुन करता रहा, परन्तु अंतरमें संपूर्ण आत्मा नहीं चलता उसकी खबर नहीं पड़ी। ऐसी बातें हैं भगवन्! प्रभु! तू भगवान है, तेरी प्रभुताका पार नहीं है भाई!

तेरी पर्यायमें इतनी प्रभुता है कि 'जानने'के लिये परके आलम्बनकी, अरे! इन्द्रिय तथा मनके आलम्बन की भी, आवश्कता नहीं है; इन्द्रियाँ और मन हैं इसलिये ज्ञानकी वर्तमान पर्याय जानती है–ऐसा नहीं है। शास्त्रसे जाना कि मन और इन्द्रियाँ हैं। वे 'हैं' ऐसा ज्ञानमें ज्ञात होता है परन्तु ज्ञानको उनके आलम्बन और अपेक्षाकी आवश्यकता नहीं है। वह निरालम्बी ज्ञान जिसका अंश है उस त्रैकालिक ज्ञायक वस्तुको किसीकी अपेक्षा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ही नहीं। उस त्रैकालिक जीवके अस्तित्व पर जीवने कभी दृष्टि नहीं डाली और मात्र उसकी वर्तमान अस्ति मानता है।

'जो तत्त्व वर्तमानमें है वह त्रैकालिक होता ही है।'

'अवस्था' है ना? देखो, पुद्गल परमाणुओंकी यह स्कंध अवस्था है ना? जिसकी अवस्था है वह त्रैकालिक होगा ही। वर्तमानमें जो यह सफेदी दिखती है वह तो वर्तमान अवस्था है। जिसकी यह अवस्था है वह कोई नित्यस्थायी तत्त्व है या नहीं? उसका स्थायी तत्त्व ध्रुव परमाणु है। इसप्रकार जिसकी जाननेरूप ज्ञानकी पर्याय है उसकी ध्रुवता, ज्ञायकता त्रिकाल है; क्योंकि जो तत्त्व वर्तमानमें है वह त्रैकालिक होता ही है।

'विचार करनेसे आगे बढ़ा जाता है।'

ज्ञानकी यह वर्तमान पर्याय है तो अंतरमें ज्ञायक नित्य वस्तु भी है—ऐसा विचार करने पर अंतरमें आगे बढ़ा जाता है! अहाहा! शब्द बहुत थोड़े हैं परन्तु भाव तो सर्वज्ञ परमात्माने कहे हैं वे हैं।

भाई! अपने वर्तमान अंशको तू मानता है, परन्तु वह अंश किसके आधारसे होता है? वह किसका अंश है? क्या वह 'जानने'रूप अंश किसी परमाणु या रागका है? अंतरमें त्रिकाल ज्ञायक तत्त्व है उसका वह अंश है। वह अंश त्रैकालिक ज्ञायक–अंशीको बतलाता है। पर्याय तो पलटती होनेसे अनित्य ही है ना? सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र—मोक्षमार्ग—भी पर्याय होनेसे अनित्य है। अरे! केवलज्ञानकी पर्याय भी प्रतिसमय बदलती होनेसे नाशवान है, क्योंकि पर्यायकी अवधि ही एक समयकी है, और वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव है।

जीवमें यह मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानका अंश है वह, पर्यायकी स्थिति एकसमयकी होनेसे, अनित्य है–नाशवान है। वह अनित्य ज्ञान पर्याय नित्य ध्रुव ज्ञायकस्वभावको बतलाती है। यह अनित्यपना किसका? नित्यस्वभाववान ज्ञायक पदार्थका।

अहाहा! ऐसी है वीतराग परमात्माकी बात! बिलकुल सादी भाषामें! त्रिलोकनाथकी वाणीमें–दिव्यध्वनिमें–ऐसा स्वरूप आया है। गणधर, इन्द्र, राजा तथा बालक यह बात सुनते हैं, अरे! सिंह और बाघके बच्चे भी समझ जायें ऐसी यह बात है। पशु भी भगवानकी वाणी सुनते हैं और अपनी भाषामें अपनी योग्यतानुसार समझ जाते हैं।

प्रभु! तू है ना? वर्तमान है ना? जिसका यह वर्तमान है वह त्रिकाल भी है। जो तत्त्व वर्तमान हो वह त्रिकाल होता ही है। ऐसा विचार करके आगे बढ़ा जाता है।

'अनंतकालमें सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत्‌की श्रद्धा नहीं की'।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दया, दान, व्रत, तपादि शुभभाव अनंतबार किये, परन्तु वह कोई नवीन वस्तु नहीं है। ऐसा तो अभव्य जीव भी अनंत बार करता है।

प्रश्न :—सब कुछ किया, इसका क्या अर्थ ?

उत्तर :—सब कुछ अर्थात् परका किया—शरीरकी क्रिया आदि किये—ऐसा नहीं। परका तो जीव कर ही कहाँ सकता है ? परन्तु असंख्य प्रकारके शुभभाव तथा असंख्य प्रकारके अशुभभाव–वह सब अनंतबार किया।

व्यापार-धंधा किया, शादी की, पुत्र-पुत्रियोंके विवाह किये—वह क्रिया कहाँ आत्माकी है ? आया कुछ समझमें ? भीतर जिसकी तरंगे उठती हैं उसका कोई भण्डार तो होगा ना ? उस ध्रुव भण्डारके बिना तरंग कहाँसे उठेगी ? जिसकी पर्यायरूपी तरंगे दिखायी देती हैं उसका भण्डार पूर्ण ध्रुव है; उसके बिना पर्याय तरंग उठेगी कहाँसे ? भाई ! तेरी दृष्टि वहाँ नहीं गई है; वर्तमान पर्यंत ज्ञानमें तेरी दृष्टि रुक गई है। बाहरका सब किया—त्याग किया, वैराग्य किया–परन्तु एक त्रैकालिक सत्की श्रद्धा नहीं की। शुभ और अशुभ भाव अनंतबार किये, परन्तु जिसका वह विभाव अंश है ऐसे उस ध्रुव ज्ञायक भावमें दृष्टि नहीं डाली।

व्यापार-धंधेके भाव हों, परन्तु वे बाहरी व्यापार-धंधे अपने करनेसे हो ही नहीं सकते। पर्यायका व्यापार-शुभाशुभ रागका व्यापार किया, परन्तु भीतर जो त्रैकालिक ज्ञायक भाव है उस पर तूने दृष्टि नहीं डाली। जिसका यह अंश है वह अंशी भीतर ही है; उस पर तेरा ध्यान नहीं गया। भाई ! जो करना था वह नहीं किया—एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की।

*

वचनामृत—१४१

अज्ञानी जीवको अनादिकालसे विभावका अभ्यास है; मुनिको स्वभावका अभ्यास वर्तता है। स्वयंने अपनी सहज दशा प्राप्त की है। उपयोग जरा भी बाहर जाय कि तुरन्त सहजरूपसे अपनी ओर ढल जाता है। बाहर आना पड़े वह बोझ–उपाधि लगती है। मुनियोंको अंतरमें सहज दशा–समाधि है ॥१४१॥

'अज्ञानी जीवको अनादिकालसे विभावका अभ्यास है; मुनिको स्वभावका अभ्यास वर्तता है।'

७

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानी जीवको अनादिसे शुभ–अशुभभावका अभ्यास है, परका नहीं; क्योंकि परकी—शरीरकी अथवा मकान आदि बनवानेकी—क्रिया आत्माकी नहीं है; वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आत्माके स्वभावसे जो विरुद्ध हैं ऐसे पुण्य–पापके भावोंका–विकारी भावोंका–उसे अनादिकालसे अध्यास–अभ्यास है। मुनिको स्वभावका अभ्यास वर्तता है और अज्ञानीको विभावका।

मुनिको स्वभावका अभ्यास वर्तता है। जो अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ है शुद्ध चैतन्यघन प्रभु है, चैतन्यस्वरूप धारण कर रखनेसे नित्य चैतन्य धातु है–ऐसे निज सहज ज्ञायक चैतन्यस्वभावका मुनिको–साधक संतोंको अभ्यास है। अज्ञानीको शुभाशुभ विभावका अभ्यास है, संतोंको स्वभावका अभ्यास है। अभ्यास तो दोनोंको है; परन्तु एकको विभावका, और दूसरेको स्वभावका। आया कुछ समझमें? लेकिन ऐसा सुना ही कब होगा? ऐसा सुनना महँगा पड़ता है। आज कल सब बातोंमें फेरफार हो गया है। अरेरे! जिससे हित हो, संसारसे छुटकारा हो वह बात नहीं मिलती! यह बात समझमें न आये तब तक क्या किया भाई! अरे! विभावका प्रेम वह तो मिथ्यात्व है, पर्यायबुद्धि है और नरक-निगोदके भवोंमें भटकनेका भाव है।

प्रश्न :—यहाँ स्वभावके अभ्यासमें मुनिको क्यों लिया? सम्यक्त्वीको क्यों नहीं?

उत्तर :—सम्यग्दृष्टिको स्वभावका अभ्यास तो है, परन्तु जघन्य है; मुनिको स्वभावका अभ्यास अति विशेष है। आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शांत, शांत, शांत अकषाय स्वभाव स्वरूप जो त्रिकाल ज्ञायक आत्मा, उसका मुनिको प्रचुर स्वसंवेदनपूर्वक अति अभ्यास वर्तता है। स्वभावका अभ्यास तो दोनोंको वर्तता है, परन्तु सम्यग्दृष्टिको जघन्य रूपसे और मुनिको अति विशेष रूपसे। सम्यक्त्वीको स्वभावका अभ्यास वर्तता है किन्तु अल्प वर्तता है, और मुनिको तो मानों अंतरसे आनन्दका सागर उमड़ रहा हो ऐसा स्वरूप रमणताका तीव्र अभ्यास वर्तता है। अहाहा! प्रभु! तेरे संसारसे उद्धारके मार्गकी यह बात है! यह किसी व्यक्तिकी बात नहीं है वस्तु स्थिति ही ऐसी है।

मुनिको पंचमहाव्रत या अट्ठाईस मूलगुणके विकल्पका अभ्यास वर्तता है–ऐसा नहीं है, वह तो राग है, मुनिपना है ही नहीं। मुनिको तो रागसे पृथक् हुए ज्ञान और आनन्दमय स्वभावका अभ्यास वर्तता है।

'स्वयंने अपनी सहज दशा प्राप्त की है।'

संतोंने स्वयं अपनी सहज दशा प्रगट की है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति एवं वीतरागता अंतरमें शक्ति और स्वभावरूप तो थे ही परन्तु पर्यायमें सहज ज्ञायकके अभ्यास द्वारा मुनिराजने वीतरागता और आनन्दादिकी सहज निर्मलदशा प्राप्त की है। वह दशा स्वभावके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आश्रयसे प्रगटी होनेसे सहज है, वहाँ हठ नहीं है। पूर्णानन्दका नाथ ऐसे भगवान आत्माके अवलम्बनसे जो मोक्षमार्गकी वीतराग शांत निर्मल दशा प्राप्त हुई है वह सहज दशा है।

'उपयोग जरा भी बाहर जाय कि तुरन्त सहज रूपसे अपनी ओर ढल जाता है।'

मुनिको सातवें गुणस्थानमें—अप्रमत्त दशामें बुद्धिपूर्वक विकल्प नहीं होनेसे निर्विकल्प उपयोग होता है। उसमेंसे बाहर आयें—छठवें प्रमत्त दशामें आयें—तब महाव्रतादिके विकल्प उठते हैं। मुनिका उपयोग किंचित् भी बाहर अट्ठाईस मूलगुण आदिमें जाय कि तुरन्त सहजरूपसे स्वरूपोन्मुख हो जाते हैं, भीतर आनन्दमें तुरन्त ढल जाते हैं, लीन हो जाते हैं।

मुनिको वह विकल्प दुःखदायक लगता है। बाहर आना उन्हें अच्छा नहीं लगता। पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण विकल्पके भाव आयें—उपयोग ज्यों ही बाहर जाय—कि तुरन्त सहजरूपसे स्वभावकी ओर ढल जाते हैं। तुरन्त ही! इस शुभको छोड़ूं और अंतरमें स्थिर होऊँ—ऐसे विकल्पसे नहीं, किन्तु सहज स्वभावसे स्वोन्मुख हो जाते हैं। अहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दामृतका सागर जहाँ दृष्टिमें तथा अनुभवमें आया, वहाँ उसके निर्विकल्प स्वादकी दशामेंसे उपयोग बाहर आने पर विकल्प आया कि तुरन्त ही भीतर स्वरूपानन्दमें ढल जाते हैं। अहा! ऐसी है छठवें—सातवें झूलते हूए मुनिराजकी दशा!

'बाहर आना पड़े वह बोझ—उपाधि लगती है।'

अरे! उपदेश देनेका विकल्प आये, आहार लेनेका विकल्प आये —वह सब बोझ—उपाधि लगती है। रागके भारसे रहित ऐसी ज्ञायक वस्तुमें विकल्प वह बोझ लगता है। अनाकुल आनन्दके रसिक ऐसे भगवान आत्माको राग तो आकुलता—दुःख एवं भाररूप लगता है। मुनि आनन्दमें स्थित हैं उन्हें बाहर आना नहीं रूचता। अहाहा! मुनिपना वह तो परमेश्वरपद है। मुनि पंचपरमेष्ठिमें आ जाते हैं ना?

दो छोटे पाण्डव भ्राताओंको विकल्प आया कि तीनों ज्येष्ठ. भ्राता उपसर्गमें कैसे होंगे? इतने मात्रसे बंध हो गया और दो भव बढ़ गये। बाहर आना पडे—विकल्प उठे वह मुनिको बोझरूप लगता है। भाई! मुनिदशा तो कोई अलौकिक है।

राजकुमार—चक्रवर्तीके पुत्र—पूर्ण सुख-सुविधाओंमें पले हों वे भी, जब सम्यग्दर्शन सहित आत्माका विशेष अनुभव करनेके लिए वनमें जानेको तत्पर होते हैं तब कहते हैं:—'हे माता! मुझे कहीं भी अच्छा नहीं लगता, मुझे जहाँ रुचता है वहाँ—अपने स्वरूपमें—जाना चाहता हूँ। मेरा नाथ—भगवान आत्मा—अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर है, उसमें आवरण, अशुद्धि अथवा अपूर्णता नहीं है। मेरा ज्ञायक प्रभु पूर्णानन्दका नाथ है, वह आनन्द लूटनेके लिये—अनुभवनेके लिये मैं जा रहा हूँ।' अहाहा! मुनिपना तो ऐसा है भाई! मुनिको स्वरूपसे बाहर आना पड़े वह बोझ-उपाधि लगती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुनियोंको अंतरमें सहज दशा—समाधि है।'

मुनिराजको अंतरमें शांति शांति शांति अकषाय भाव—मोक्षका मार्ग प्रगट हुआ है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह अकषायी भाव है, वीतराग भाव है, वह वीतराग भाव भले है पर्याय—अनित्य, परन्तु वह है समाधिभाव।

समाधि अर्थात् रागरूप विषमतासे छूटकर मुनियोग्य वीतरागतारूप समताभावसे परिणमन। बाबा लोग जो हठयोग करते हैं वह समाधि नहीं है। रागरहित शांति, अतीन्द्रिय आनन्दकी धाराको यहाँ समाधि कहते हैं। अहाहा! उन मुनियोंको अन्तरमें सहज दशा—समाधि वर्तती है!

*

सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुतशैलीसे, चारों तरफ़से दिव्य अमृत-धोध बरसानेवाले अद्भूत गुरुदेवके चरणकमलमें नमस्कार हो।

पूज्य गुरुदेवने समयसार अद्भूत और अपूर्व रीतिसे समझाया है। ऐसा लगता है कि—वाह! गुरुदेव वाह! मन-वचन-काया आपकी चरणसेवामें अर्पण करें तो भी कम है ऐसी आज भावना हो जाती थी। अहा! समयसारमें कोई अद्भूत रहस्य भरा है! परन्तु ज्ञान क्रमपूर्वक और अधूरा होनेसे एक साथ पूरे और प्रगट उपयोगात्मकरूपसे सब रहस्य नहीं जाननेमें आ सकते। इसलिये ऐसी भावना हो जाती है कि हे प्रभु! कोई ऐसी शक्ति या परिणमन प्रगट हो कि जिससे सर्वांशमें ज्ञानस्वरूप स्वयं ही, सहज ज्ञानरूपमें, प्रगट उपयोगात्मकरूपसे, पूर्णांशसे परिणम जाये।

द्रव्यदृष्टिसे द्रव्य परिपूर्ण है; पर्यायमें अधूरापन है।

पुरुषार्थ द्वारा—चैतन्यका जो वीर्य गुण है उसके द्वारा—साधकपनेकी श्रेणी बढ़ती है और साध्य पूरा हो जाता है। पर्यायकी पूर्ण निर्मलता होती है—यह भेद-अपेक्षासे बात है। अभेददृष्टिसे अखण्ड गुणका पिण्डस्वरूप स्वयं ही परिणमनकर पूर्ण होता है। भेद-अभेद वस्तुस्वभाव अद्भूत है!

पूर्ण सहज स्थिति ही चाहिये है। —*पू. बहिनश्री चंपाबेन*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–५२

ता. ३०–७-७८

वचनामृत–१४२

हमेशा आत्माको ऊर्ध्व रखना चाहिये। सच्ची जिज्ञासा हो उसके प्रयास हुए बिना नहीं रहता॥१४२॥

'हंमेशा आत्माको ऊर्ध्व रखना चाहिए'।

क्या कहते हैं? कि आत्मा जो निश्चयनयके विषय स्वरूप ध्रुव शुद्ध ज्ञायक एक भाव है, उसकी मुख्यता कभी छोड़ना नहीं। चाहे तो किसी भी प्रकारकी भूमिकाके उचित शुभाशुभ परिणाम हों, उस पर्यायके ऊपर लक्ष जाय, परन्तु ध्येय तो है मात्र एक त्रैकालिक शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव। समयसारकी ३१वीं गाथामें कहा है :—'णाणसहावाधियं मुणदि आदं...' अर्थात् जो इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानस्वभाव द्वारा अन्य द्रव्यसे अधिक आत्माको जानता है उसे जो निश्चयनयमें स्थित साधु हैं वे, वास्तवमें जितेन्द्रिय कहतें हैं। ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा अन्य सर्व द्रव्योंसे अधिक, भिन्न ही है।

प्रश्न :—वह ज्ञानस्वभाव कैसा है?

उत्तर :—जो समस्त पदार्थोंके उपर तैरता, ऊर्ध्वका ऊर्ध्व रहता, उन्हें जानते हुए भी उनरूप नहीं होता, प्रत्यक्ष उद्योतपनेसे सदैव अंतरंगमें प्रकाशमान अविनश्वर स्वतःसिद्ध एवं परमार्थसत् है वह भगवान ज्ञानस्वभाव है। उस ज्ञानस्वभाव द्वारा लक्षित भगवान आत्माको अन्य द्रव्यसे अधिक, सबसे भिन्न, मुख्य रखना, ऊर्ध्व रखना। ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य, उंचा अधिक, पृथक्, तैरता। उच्च पदार्थरूपसे आत्माको लक्षमें रखना। आत्म वस्तु ही जगतमें उच्च ऊर्ध्व एवं मूल्यवान है। उसके सिवा अन्य कोई वस्तु उच्च नहीं है। अहा! ऐसी बातें हैं, सादी भाषामें!

हमेशा अर्थात् सदा। आत्माको दृष्टिमें नित्य मुख्य रखना। अंतरमें द्रव्यके ऊपरका लक्ष कभी हटना नहीं चाहिये। जिसे कल्याण अर्थात् आत्महित करना हो उसकी यह बात है। भगवानकी भक्ति एवं व्रतके विकल्प आयें, परन्तु भीतर द्रव्यस्वभावकी जो मुख्यता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह कभी नहीं जाती! जिसकी प्रभुतामें प्रभुत्व आदि अनंत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं ऐसा जो यह चैतन्य प्रभु, उसे लक्षमें सदा ऊर्ध्व रखना चाहिये। ऐसा यहाँ बेन कहती हैं।

प्रश्न :—उसका कोई साधन?

उत्तर :—उसका साधन राग या व्यवहार दूसरा कुछ नहीं है। राग और व्यवहारके शुभभावोंसे भिन्न होनेवाली जो निर्मल पर्याय है वह साधन है। भीतर पूर्णानन्द प्रभुको दृष्टिमें मुख्य रखनेसे जो निर्मल दशा हो उसे साधन कहा जाता है। पूर्ण केवलज्ञान–पूर्ण पद प्राप्त करना वह साध्यदशा है। साधन, साध्य और ध्येय–तीनों रागसे भिन्न भीतर आत्मामें हैं। अहा! मार्ग बड़ा कठिन है!

'सच्ची जिज्ञासा हो उसके प्रयास हुए बिना नहीं रहता।'

आत्माकी जिसे सच्ची जिज्ञासा हो वह अंतरमें यथार्थ प्रयत्न किये बिना नहीं रहता। कल्पनासे या दुनियाको दिखलानेके लिये—जानकारी कर लूँ तो विद्वान कहलाऊँगा ऐसे भावसे—जिज्ञासा करे उसकी दृष्टि परके ऊपर है इसलिये उसकी जिज्ञासा सच्ची नहीं है। यथार्थ जिज्ञासुको अंतरमें ऊर्ध्व ऐसे आत्मस्वभावकी सन्मुखताका प्रयास हुए बिना नहीं रहता।

बडी सूक्ष्म बात! भाषा संक्षिप्त परन्तु भाव तो....! वचनामृत पुस्तकें बहुत छप गई हैं; करीब ३६ हजार छप चुकी हैं। उनके सिवा ताड़पत्र, खुले पृष्ठ तथा 'अध्यात्म पियूष' आदि छोटी पुस्तिकाएँ–ऐसा तो बहुत छप चुका है। यह तो वस्तु तो कुदरती ऐसी आ गई है कि लोग मध्यस्थ होकर पढ़ेंगे तो उन्हें भी लगेगा कि 'मार्ग तो यह है'। यह पुस्तक कन्नड तथा मराठी भाषामें भी तैयार हो रही है।

प्रभु! ज्ञान एवं आनंदादि अनंत शक्तियोंका संग्रहालय ऐसे निज द्रव्यस्वभावकी मुख्यता कभी जाना नहीं चाहिये। उसे पर्यायमें मंदतारूप शुभभाव होते अवश्य हैं, परन्तु उनकी मुख्यता कदापि नहीं आना चाहिये; क्योंकि वह तो बंधका कारण है। स्वभावको मुख्य–ऊर्ध्व रखनेसे अबंध परिणाम होते हैं और रागादिको मुख्य रखें तो बंध परिणाम होते हैं। देव-शास्त्र-गुरु आदि परकी ओर लक्षसे भी बंधके परिणाम होते हैं। अंतरमें ऊर्ध्व ऐसे ज्ञायक स्वभावका लक्ष हो, उसकी मुख्यता हो, तो पर और रागके मार्ग पर नहीं जाता। अहा! ऐसी बात है!

सच्ची जिज्ञासा हो उसे प्रयास हुए बिना नहीं रहता। जिसकी आवश्यकता लगे उस ओर पुरुषार्थ गये बिना नहीं रहता। 'रुचि अनुयायी वीर्य' जिसे ऊर्ध्व तैरते हुए ऐसे ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी रुचि हो उसका वीर्य स्वभावोन्मुख होता ही रहता है। यहाँ तो कहते हैं—आत्माको सदा ऊर्ध्व रखना, उसका लक्ष एक क्षण भी उसे चूकना नहीं चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव होनेके बादकी यह बात है। जहाँ वस्तु ही दृष्टिमें न आयी हो वहाँ, उसे ऊर्ध्व ऐसे रखेगा? प्रथम तो उसे अव्यक्त 'ऊर्ध्वरूपसे रखना चाहिये। वह प्रगट ध्यानमें न आया हो तथापि उन रागादिसे भिन्न उर्ध्व मूल्यवान वस्तु है, इस प्रकार उस पर वीर्यका भार जायगा, ऐसा अव्यक्तरूपसे होता है।

प्रश्न :—उसका व्यक्तपना कब होता है?

उत्तर :—जब ज्ञान स्वभाव द्वारा अधिक—ऊर्ध्व ऐसे निज ध्रुव ध्येयको अंतरके पुरुषार्थसे पकड़े तब यथार्थ व्यक्तपना होता है। अहा! ऐसी बात है।

*

वचनामृत—१४३

स्वरूपकी शोधमें तन्मय होने पर, जो अनेक प्रकारके विकल्प जालमें फिरता था वह आत्माके सन्मुख होता है। आत्मस्वरूपका अभ्यास करनेसे गुणोंका विकास होता है॥१४३॥

'स्वरूपकी शोधमें तन्मय होने पर, जो अनेक प्रकारके विकल्प जालमें फिरता था वह आत्माके सन्मुख होता है।'

स्वरूप अर्थात् ज्ञान एवं आनन्दमय ध्रुव प्रभु ज्ञायक आत्मा उस ज्ञायकस्वरूपकी खोजमें भीतर जाने पर तन्मय होने पर, परिणति जो अनेक प्रकारके विकल्पोंमें भटकती थी वह वहाँसे हटकर अंतर्मुख होनेसे, द्रव्यस्वभावकी दृष्टि प्रगट होती है, वह अंतरकी दृष्टि प्रगट होने पर जो निर्विकल्पता हो वह उसकी तन्मयता है। प्रथम यह करना है; इसके बिना और सब व्यर्थ है। अहा! सूक्ष्म बात है। शब्द थोड़े हैं परन्तु भाव....! संक्षिप्त भाषामें यह भाव है।

अनेक प्रकारके विकल्पजालमें उलझ रहा था, वह विकल्प छोड़कर आत्मसन्मुख होता है। बहुत ही कठिन! है तो उसके घरकी वस्तु, परन्तु अभ्यास नहीं है ना। बाहर तो दिनभर पापका अभ्यास! कमाना, खाना—पीना, स्त्री—बच्चोंके पीछे दिनभर पाप, पाप और पाप। कौन खाता है और कौन कमाता है? आहारके जो रजकण आना होते हैं वे आयेंगे ही, जाना होंगे वे जायेंगे ही। कहावत है ना! कि—'दाने—दाने पर लिखा है खानेवालेका नाम।' दानों पर कहीं नाम नहीं लिखा होता, किन्तु उसका अर्थ यह है कि—जो रजकण आहारमें आना हैं वे आयेंगे ही। जीवकी इच्छासे आयँगे ऐसा नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। जो नहीं आना हैं वे नहीं आयेंगे; क्योंकि उनके परिणमनमें आनेकी योग्यता ही नहीं है। लड्डूका कौर तेरे प्रयत्नसे मुँहमें जाता है वह बात बराबर नहीं है।

परकी बात तो दूर रही, किन्तु उसके लक्षमें राग और पर्याय रहे ऐसा भी नहीं है। उसके ध्येयमें–खोजमें पूर्णानन्द स्वरूप भगवान आत्माकी मुख्यता–ऊर्ध्वता होने पर वहाँ वह तन्मय हो जाता है और उससे जो अनेक प्रकारके विकल्प पहले होते थे वे सब रुक जाते हैं।

यह सब शरीर, लक्ष्मी आदि धूलके–मिट्टीके रजकण कैसे आये? कैसे रहे? कितने काल तक बने रहेंगे? और कब जायेंगे?–वह उनकी अपनी स्थितिके आधीन है। मैंने व्यापारमें ध्यान रखा इसलिए कमाई हुई और रुपये आये–यह बिलकुल झूठी बात है।

लक्ष रखे परका और ढूँढना चाहे अन्तरमें जल्दी आत्माको—ऐसा नहीं होता। यह आत्मा ज्ञायक है, शुद्ध है ऐसा अन्तर्मुख लक्ष करे, स्वरूपकी खोजमें तन्मय हो तो स्वोन्मुखता होती है।

प्रश्न :—खोज तो पर्याय है, उसमें तन्मय होता है?

उत्तर :—तन्मय होनेका अर्थ है स्वरूपकी खोजरूप परिणमना। जो स्वरूपकी खोजमें है वह तो पर्याय है, परन्तु वह खोजनेरूप पर्याय किसे खोजती है? द्रव्यको—निज ज्ञायक–स्वरूपको।

अहा! यह तो सारी दुनियाँसे अलग बात है! आजकल तो धर्मके नाम पर भी व्रत करो, तप करो, उससे धर्म होता है—ऐसा चलता है, परन्तु वह तो मिथ्यात्वका सेवन है। जिस श्रद्धा-ज्ञानमें भगवान ज्ञायककी मुख्यता न रहे वह बिलकुल संसार ही है। सोगानीने 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में नहीं लिखा है? कि–चक्रवर्ती छह खण्डको नहीं साध रहे थे, परन्तु अंतरमें अखण्डकी साधना करते थे। जब वे स्वरूपसे बाहर जाते थे, तब भी उनको ध्येयकी ही ऊर्ध्वता रहती थी, ध्येयसे च्युत नहीं होते थे।

यह तो एकदम कुलाँट लगानेकी बात है। अनादिसे जो पर्याय बुद्धिमें है उसे द्रव्यबुद्धिमें लाना है वह कोई साधारण बात है? जगतको बाह्य जानकारी होती है, समझानेकी शक्ति भी होती है, लेकिन वह कोई बड़ी बात नहीं है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

शुद्ध आत्माको ध्येयरूप बनाना कहो या उसे पर्यायमें मुख्य रखना कहो–वह सब एक ही बात है; पर्यायमें त्रैकालिकको लक्षमें लेना है, क्योंकि मुख्य वस्तु तो वह है। उस मुख्य वस्तुको लक्षमें लेनेसे तो धर्मका प्रारम्भ होता है; उसके बिना सब थोथा व्यर्थ है। छहढालामें कहा है कि :—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दंद–फंद निज आतम ध्याओ॥

लाख बातकी नहीं किन्तु अनन्त बातोंकी बात यह है कि–जगतके द्वन्दको–द्विधाको छोड़कर निज आत्माको ध्याओ। छहढालामें तो गागरमें सागर भरा है। वहाँ ऐसा नहीं कहा कि—पहले व्यवहार करो, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। लाख बातकी बात यह है कि—व्यवहारसे होता ही नहीं। उससे हो यह बात ही कहाँ है? निश्चयके लक्षसे अन्तर्दृष्टि हुई तब उसे साधन कहा जाता है। व्यवहार तो सच्चा साधन है ही नहीं। द्रव्यके लक्षसे अंतरमें जाने पर और रागसे भिन्न होने पर जो पर्याय हुई वह निर्मल पर्याय ही साधन है। अहा! ऐसी बात है भाई!

वीतराग सर्वज्ञ देवका मार्ग तो आजकल सम्प्रदायमें छिन्नभिन्न हो गया है। बाहरी हो-हामें धर्म मानने लगे हैं, 'धामधूमे धमाधम चली, ज्ञानमारग रह गया दूर रे'; व्रत किये, उपवास किये सामायिक–प्रोषध किये, प्रतिक्रमण किया, आजीवन ब्रह्मचर्य ले लिया आदि बाह्य क्रियाओंमें धर्म मान बैठे हैं। भाई! वह तो सब राग है। ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा, उसमें चर्य अर्थात् चरना, रमण करना, उसमें तन्मय हो जाना, वह सच्चा ब्रह्मचर्य है।

व्यवहार—रागादि—की दशा और उसकी दिशा परकी ओर है, तथा निर्मल वीतराग परिणतिकी दशा और उसकी दिशा स्वकी ओर है।

'आत्मस्वरूपका अभ्यास करनेसे गुणोंका विकास होता है।'

यहाँ ऐसा कहते हैं कि : स्वरूपकी खोजमें तन्मय होने पर जीव निजात्माकी ओर उन्मुख होता है; पूर्णानन्द आदि अनन्त गुणकी राशि—ढेर ऐसे चैतन्य स्वरूपका अभ्यास करनेसे उसके गुणोंका विकास होता है अर्थात् पर्यायमें निर्मलरूपसे परिणमते हैं। इसमें दो बातें हुई : (१) आत्मा वह द्रव्य हुआ, और (२) सन्मुख होता है वह पर्याय हुई। पर्याय द्रव्यसन्मुख होती है तब वे गुणपर्यायमें विकसित होते हैं। आत्मस्वरूपका अभ्यास करनेसे गुणोंका विकास होता है अर्थात् शुद्ध परिणति प्रगट होती है। शास्त्रका अभ्यास करनेसे गुणोंका विकास होता है—ऐसा यहाँ नहीं आया।

शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें अंतर्मुख होनेका अभ्यास करनेसे गुण जो कि शक्तिरूपसे हैं वे पर्यायरूपसे चकचकित प्रगट प्रकाशमान होते हैं। ज्ञानानन्दमय जो चैतन्य ज्ञायक आत्मा उसके स्वरूपका अंतर अभ्यास करनेसे, उस ओर ढलनेसे, गुण जो शक्तिरूपसे हैं वे पर्यायमें विकसित होते हैं, निर्मल पर्यायरूप परिणमते हैं; उसका नाम धर्म है।

गुणोंका विकास हुआ उसका यह अर्थ नहीं है कि पहले गुणोंकी कमी हो गई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

थी। स्वस्वरूपके अभ्याससे शक्तिरूप स्वभावकी व्यक्तरूप निर्मल दशा हुई, अरे! केवलज्ञान हुआ, उसे गुणका विकास कहते हैं। उससे कहीं ज्ञानगुणमें जरा भी कमी आ गई है—ऐसा नहीं है। वह गुण तो परिपूर्ण ही है।

अहाहा! यह क्या गम्भीर बात है! इस आकाशके क्षेत्रका कहीं अंत है भाई! असंख्य योजनमें यह जगत है; फिर खाली भागमें मात्र आकाश है। उस आकाशका सिरा कहाँ आया? यह कैसी बात है? साधारण तर्कमें न आये ऐसा क्षेत्र स्वभाव है। अनंत अनंत योजनके पश्चात् अरे! अनंतका अनंतसे गुणा करके जो अनंतानंत योजन हों उतने योजनके बाद भी उसका दसों दिशाओमें कहीं अंत नहीं है। अहा! क्या है यह क्षेत्र स्वभावकी गम्भीरता? कालका आदि नहीं है कि इस द्रव्यकी पहली पर्याय कौन? इसी प्रकार गुणोंके सम्बन्धमें भी अनंतता है। आत्मद्रव्यके अनंत-अनंत गुणोमें पहला बड़ा गुण कौनसा और दूसरे छोटे गुण कौनसे? तथा गुणकी पर्याय प्रगट हुई तब क्या गुणमें न्यूनता आई? भाई! उस गुणकी गम्भीरता अनंत-अनंत है! जिस प्रकार क्षेत्रकी गम्भीरता अपार है, कालकी गम्भीरता अपार है, उसी प्रकार गुणकी गम्भीरताका भी पार नहीं है। एकबार नास्तिक भी विचार करे तो उसे प्रत्यक्ष लगे कि अहा! कितनी गंभीरता है। इस अनंत अनंत क्षेत्रस्वभाव की! दूसरी सब बात एक ओर रखो, पहले विचार करो कि—जगतका क्षेत्र तो असंख्य योजन है; उसके बाद क्या! उसके बाद? उसके बाद? और उसके बाद? फिर क्षेत्र होगा या नहीं? तो यह क्षेत्र कहाँ तक है? दशों दिशाओंमें यह क्षेत्र अनंत अनंत है, उसमें यह ब्रह्माण्ड तो राईके दाने जितना है। अहाहा! यह कैसी वस्तु है? द्रव्यका–वस्तुका कैसा गंभीर स्वभाव? क्षेत्रका कैसा स्वभाव? काल का कैसा स्वभाव, भावका कैसा स्वभाव और पर्यायका कैसा स्वभाव?—इस प्रकार स्वभावका—आत्मस्वरूपका अभ्यास करनेसे गुणोंका—गुणोंकी पर्यायमें निर्मलताका विकास होता है।

*

वचनामृत–१४४

सत्य समझनेमें देर भले ही लगे परन्तु फल आनन्द और मुक्ति है। आत्मामें एकाग्र हो वहाँ आनन्द झरता है।।१४४।।

'सत्य समझनेमें देर भले ही लगे परन्तु फल आनन्द और मुक्ति है।'

अपूर्व बात है! पूर्व अनंतकालमें नहीं समझा, इसलिये सत्य समझनेमें भले ही थोड़ा समय लगे परन्तु उस सच्ची समझका फल अतीन्द्रिय आनन्द और मुक्ति है। अरे! पूर्वकालमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनंतबार दिगम्बर मुनि हुआ, ग्यारह अंगका ज्ञान किया, परन्तु जिसे जानना चाहिये उस निज ज्ञायक तत्त्वको नहीं जाना। अनंत-अनंत गुणोका सागर ऐसा जो यह ज्ञानान्दमूर्ति भगवान आत्मा, उसे समझनेमें—सम्यक्त्व होनेमें—देर भले लगे परन्तु समझनेका फल अनंत ज्ञान और अनंत आनन्द है।

लोग कहते हैं ना, कि–पढ़ाईका परिणाम क्या आया?—उसी प्रकार भले ही समय लगे, परन्तु उस समझका परिणाम क्या? स्वरूपको समझनेमें भले थोड़ी देर लगे, परन्तु उसका फल है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत आनन्द तथा अनन्त शान्ति। अनंत-अनंत गुणोंका विकास–शांति आदि वह तो अंश है—पर्याय है; परन्तु वह जो अंश—निर्मल पर्याय—पूर्व अनंतकालमें प्रगट नहीं हुआ था वह, स्वरूप समझनेसे तथा उसमें स्थिरता होनेसे प्रगट हुआ।

यहाँ अंतरमें समझनेका प्रयत्न करना कहा है। व्रत, तप, और भक्ति आदि बाह्य अभ्यास करनेको नहीं कहा। वह तो रागकी क्रिया है, संसार है, वह कोई आत्माकी वस्तु नहीं है। भीतर शुद्धात्मतत्त्वको समझनेमें, उसका अभ्यास करनेमें, अंतरमें पुरुषार्थकी उग्रता होनेमें भले थोड़ा समय लगे, परन्तु उसके फल पर्यायमें अहाहा! अनंत ज्ञान, अनंत आनन्द, अनंत चारित्र, अनंत शान्ति, अनंत सुख, अनंत प्रभुता तथा अनंत ईश्वरता हैं। इसलिये करना तो वह है, बाकी सब थोथे हैं—व्यर्थ हैं, संसार परिभ्रमणके कारण हैं।

'आत्मामें एकाग्र हो वहाँ आनन्द झरता है।'

आत्माकी प्रतीति होने पर उसमें स्थिरता होकर जो एकाग्रता हो वहाँ भीतर अतीन्द्रिय आनन्दरूपी अमृत झरता है। पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्द झरता है। जिस प्रकार पर्वतसे पानीका झरना झरता है–बहता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दका पर्वत है, त्रैकालिक ध्रुवज्ञायक आनन्दका पर्वत है, उसके अंतर्मुख अभ्यास द्वारा उसमें एकाग्रता करनेसे पर्यायमें अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द झरता है–बहता है। आत्मामें एकाग्रता होने पर प्रगट हुई निर्मल पर्यायमें अतीन्द्रिय निर्विकल्प आनन्दका अनुभव आता है। अहा! ऐसी बातें हैं! भाषा संक्षिप्त है किन्तु भाव बहुत ऊंचे हैं।

*

वचनामृत–१४५

रागका जीवन हो उसको आत्मामें जाना नहीं बनता; रागको मार दे तो अंतरमें जा सके॥१४५॥

'रागका जीवन हो उसको आत्मामें जाना नहीं बनता।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्या कहते हैं? कि–जिसे रागका प्रेम है, रागके प्रेममें जिसे जीना है, जिसके जीवनमें रागका प्रेम है,'रागमय जीवन ही जीवन है, भले शुभराग हो अथवा अशुभराग हो परन्तु रागमय जीवन ही मेरी वस्तु है'—इसप्रकार जिसका जीवन रागके प्रेममय है, उसका आत्मामें प्रवेश नहीं हो पाता। जिसका जीवन शुभाशुभ रागका है उसके अरागस्वभावकी मृत्यु है; जिसने रागको मारा है, अरागस्वभावका जीवन उसके हाथ आया है। क्या कहते हैं? कि—शुभ और अशुभ भावके—रागके असंख्य प्रकार हैं। उस रागके रंगमें रंगा हुआ जिसका जीवन है वह किसी भी प्रकार अंतरमें प्रविष्ट नहीं हो सकेगा।

भगवान आत्मा अंतरमें वीतराग एवं जिनस्वरूप है। कहा है ना, कि—

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत–मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न।

अपने अभिप्रायके मदमें उन्मत्त–पागल हुए रागके रसिक—जिनका जीवन रागमें रंग गया है वे–भीतर आत्मामें नहीं पहुँच सकेंगे; क्योंकि अंतरमें जो वस्तु है वह तो वीतराग एवं जिनस्वरूप है। 'घट घट अंतर जिन बसै—भगवान आत्माको जिनस्वरूप कहा है ना। जिनको शुभाशुभ रागका रंग–जीवन है उनको अरागस्वरूप ऐसा जिनस्वरूप निज भगवान आत्मा हाथ नहीं आयगा। भले व्रत, तप, दया, दानादिका राग हो, उस रागरूप जीवन जिन्हें जीना है, वे अंतरके रागरहित जीवनमें नहीं पहुँच सकेंगे।

अहाहा! यह वचनामृत पुस्तक! पढ़ी है ना? कितनी बार? एक बार? दो बार? भेंटमें मिली होगी? ठीक। दस हजार नई हिन्दी छपकर आयी हैं। अहाहा! बात तो सच्ची है भाई! ऐसी वस्तु है! भाषा तो है बिलकुल सादी, लेकिन भाव बहुत गहरे हैं। अंतरमें वस्तुस्थिति ही ऐसी है। अहाहा! बेन तो....! उनके अनुभवमेंसे आयी हुई बात है। यह कोई घोख रखी हो—धारण कर रखी हो और उसमेंसे आयी हो—ऐसा नहीं है। अहा! भाषा तो देखो! रागका जिनको जीवन है, रागके कण पर भी जिनका जीवन अटक रहा हो वे वीतराग स्वरूप निज भगवान आत्मामें प्रवेश नहीं पा सकेंगे।–उनका वीतराग जीवन नहीं हो सकेगा। आता है कुछ समझमें?

जिनको रागका रस है, रागका प्रेम है, रागमय जीवन है जो रागमय जीवन जीनेवाले हैं, वे भीतर अरागमूर्ति प्रभुमें—निज भगवान आत्मामें नहीं जा सकेंगे। अन्य प्रकारसे कहा जाय तो, जिनको व्यवहार रत्नत्रयका भी राग है—भले अंतरमें निश्चय नहीं है तथापि उसे व्यवहार कहा जाता है ना? वास्तवमें तो वह व्यवहाराभास है—वे अंतरके वीतराग स्वरूपमें नहीं जा सकेंगे। अहा! रागके परदेमें विद्यमान भगवान आत्मा हाथ नहीं आयगा। अहाहा! भाषा तो बड़ी संक्षिप्त है परन्तु भाव बहुत गम्भीर हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागका जीवन ही यह है कि–बस, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो इत्यादि। ऐसे रागके जीवनमें जीते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं। एकबार रागको विषरूप जानेगें तब अमृतस्वरूप भगवान आत्मामें जा सकेंगे।

शरीर, वाणी और मन तो कहीं बाहर रह गये, किन्तु अंतरमें जो देव-शास्त्र-गुरु अथवा तत्त्वार्थकी श्रद्धाका राग आये, वह राग जिनका जीवन है, कर्तव्य है,—जिनका जीवन उस रागके जीवनमें एकाकार हो गया है—ऐसे जीव वीतराग मूर्ति भगवान आत्मामें प्रवेश नहीं कर सकेंगे।

'रागको मार दे तो अंतरमें जा सके।'

रागको मार देगा वही जीव जीवंत रह सकेगा; अन्य किसी प्रकार अंतरमें प्रवेश नहीं हो सकेगा; रागको मार दे तभी अंतरस्वरूपमें पहुँचा जा सकता है। मेरी वस्तुमें रागादि कोई वस्तु है ही नहीं। रागको तथा उदयभावको मार दे; अरे! देव-शास्त्र-गुरुके प्रति अथवा व्रतादिका जो शुभराग है उसे भी मार दे, और जो शुद्ध चैतन्यका जीवन जीना है उसमें चला जा! रागको मारकर ही चैतन्यके जीवनमें प्रवेश कर सकेगा। अहा! ऐसी बातें हैं! अरे! त्रिलोकनाथने जो कहा है वही भाव बतलानेवाली यह सब भाषा है। आया कुछ समझमें?

प्रश्न :—रागको मार दे अर्थात् क्या?

उत्तर :—रागकी तुच्छता मानकर उसका लक्ष छोड़ दे। हमने ऐसा किया और ऐसा करते हैं—ऐसा दया-दानादिका कर्तृत्व छोड़ दे। ऐसे रागको भी तुच्छ मानकर अंतरमें भगवान महाप्रभु विराजमान है वहाँ जा! वहाँ तुझे आनन्द आयगा। रागमें स्थित है वह आकुलता है प्रभु! यहाँ तो कहते हैं कि–दया, दान, व्रतादिकी आकुलतासे रंगे हुए चित्तको अनाकुल ऐसा निज भगवान आत्मा हाथ नहीं आयगा। अहाहा! एक बार रागको मार दे।

*

(बेनकी) यह वाणी तो आत्माकेअनुभवमें—आनंदमें रटते-रटते आ गई है। हम पूर्वकालमें भगवानके पास थे। बहुत उच्च बात है! वर्तमानमें यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। बेन (चंपाबेन) तो संसारसे मानो मर गई हैं। अपूर्व बात है भाई!

—*पू. गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५३

ता. ३१–७–७८

वचनामृत–१४६

कोई द्रव्य अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते। आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है, उसमें क्षायोपशमिकादि भाव नहीं हैं। तू अपने स्वभावको पहिचान। अनंत गुणरत्नों की माला अंतरमें पड़ी है उसे पहिचान। आत्माका लक्षण—त्रैकालिक स्वरूप पहिचानकर प्रतीति कर।।१४६।।

'कोई द्रव्य अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते।'

क्या कहते हैं? कि—अपना जो नित्य स्वरूप है उसे कोई द्रव्य कभी छोड़ता नहीं है। चाहे आत्मा हो या परमाणु हो–कोई अपने त्रैकालिक स्वभावको कभी भी छोडते नहीं हैं।

आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है, उसमें क्षायोपशमिकादि भाव नहीं हैं।

भगवान आत्मा तो त्रैकालिक परम शुद्ध पदार्थ है। अनंत आनन्दका धाम ऐसा वह आत्मा अपने नित्यस्वरूपको कभी नहीं छोड़ता। अनादिसे आज तक जितने सिद्ध भगवान हुए उनकी अपेक्षा जो अनंत गुने त्रैकालिक गुण प्रत्येक आत्मामें हैं वह उनका स्वरूप है। समयसारकी पहली गाथाकी टीकामें अनंत सिद्धोंको अपने आत्मामें स्थापित करके वंदन किया है। अहाहा! उन सिद्ध भगवन्तोंकी संख्या कितनी? भूतकालके जितने समय हैं उनकी अपेक्षा असंख्यवें भाग सिद्ध हैं। अथवा, सिद्धोंकी जो अनंत संख्या है उसकी अपेक्षा अनादिसे वर्तमान तकके समय असंख्यात गुने हैं। उन अनंत सिद्धोंको अपनी पर्यायमें स्थापित करके–वंदन करके फिर 'समयसार' प्रारम्भ किया है। अहाहा! प्रभुने तो स्थापना की, परन्तु तू अपने अंतरमें थाप तब प्रभुने स्थापना की—ऐसा कहा जाता है। ऐसे अनंत सिद्धोंकी संख्याकी अपेक्षा भी एक द्रव्यका स्वरूप अनंतगुने गुणमय है। यहाँ कहते हैं कि ऐसे ज्ञानादि अनंत गुणस्वरूप द्रव्य अपने त्रैकालिक–स्थायी स्वरूपको कभी छोड़ता नहीं है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा तो त्रैकालिक परम शुद्ध तत्त्व है; उसमें क्षायोपशमिक आदि भाव नहीं हैं। यह तो आत्म-वस्तुकी बात है। परम तत्त्व, शुद्ध वस्तु, परमपारिणामिक स्वभाव, ज्ञायकभाव, निजपरमात्मद्रव्य—ऐसी जो त्रिकाल एकरूप शुद्ध ध्रुव स्ववस्तुमें औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिक यह चारों भाव नहीं हैं; क्योंकि वे चार भाव पर्याय–अपेक्षासे हैं। इन चार भावोंसे रहित ऐसा जो त्रिकालिक ध्रुव परम शुद्धतत्त्व—निज सहज शुद्ध अखण्ड एक ज्ञायकभाव—वही सम्यग्दर्शनका विषय एवं ध्येय है।

(समयसार) ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यकृत टीकामें आया है ना, कि–ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि 'जो सकल निरावरण-अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्ध-पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'खण्डज्ञानरूप मै हूँ'। क्या कहा? जिसमें 'पलटना' नहीं है, जो अखण्ड शुद्ध एक ज्ञायक परमभाव है, अविनश्वर-शाश्वत है, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है ऐसा जो निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ, परन्तु क्षायोपशमिक आदि चार भाव वह 'मैं' नहीं हूँ। मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय–चार ज्ञान पर्यायमें प्रगट हुए हो परन्तु वे कहीं ध्रुववस्तुमें नहीं हैं। पर्यायमें केवलज्ञान प्रगट हुआ हो, अनंत आनन्द प्रगट हुआ हो, क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट हुआ हो, परन्तु वह सब पर्यायमें है, द्रव्य स्वभावमें—ध्रुव ज्ञायक द्रव्यमें—नहीं है। वास्तवमें तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक ही वस्तु है और वही सम्यग्दर्शनका विषय है।

क्षायोपशमिकादि चार भाव जीवके द्रव्य स्वभावमें नहीं हैं। मिथ्यात्व एवं रागादि जो विभावभाव वे तो स्वरूपमें हैं ही नहीं। जीव अज्ञानसे भले माने कि 'मैं रागी हूँ', 'मैं अल्पज्ञ हूँ', परन्तु वह मान्यता—औदयिक भाव—कहीं वस्तु स्वरूपमें नहीं है। औपशमिक, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक सम्यक्त्व तथा चारित्र हो—वे सर्व भाव कहीं द्रव्य स्वरूपमें नहीं हैं, वह तो पर्याय है। जिसके आश्रयसे औपशमिकादि सम्यक्त्व हो वह ध्रुव ज्ञायक वस्तु निर्मल पर्यायमें नहीं है; क्योंकि सम्यक्त्व एवं चारित्र आदि तो नवीन प्रगट होने वाली पर्याय हैं और ज्ञायक वस्तु तो त्रैकालिक ध्रुव है, ज्योंकी त्यों रहती है, कभी पलटती नहीं है, सदा एकरूप रहती है। ज्ञायक द्रव्य अपने मूल स्वरूपको कभी नहीं छोड़ता।

जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हो वह राग भी औदयिक भाव है, वह कहीं स्वरूपमें नहीं है। औदयिक आदि चारों भाव कर्म सापेक्ष हैं। विकारी हो या निर्विकारी हो, क्षायोपशमिक हो या क्षायिक हो उस पर्यायरूप वस्तु नहीं हो जाती। मूल वस्तुस्वरूपमें अपूर्णता, अधिकता या विपरीतता नहीं आती। आत्मवस्तुका मूल स्वभाव तो त्रिकाल अखण्ड एक ज्ञायकस्वरूप आनन्दका पिण्ड है। शरीर, वाणी तथा कर्म आदि पर वस्तु तो जीवकी पर्यायमें भी नहीं हैं, परन्तु उसकी पर्यायमें जो विकृत एवं अविकृत, अपूर्ण एवं पूर्ण पर्यायें हैं वे भी त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध ज्ञायकवस्तुमें नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'तू अपने स्वभावको पहिचान।'

उस त्रैकालिक निज स्वरूपको तू पहिचान। 'पहिचानना' स्वयं पर्याय है, परन्तु वह पहिचानती है त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको। तू अपने त्रैकालिक स्वभावको पहिचान। यह त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभावको पहिचाननेकी बात है। भाई! क्योंकि पर्याय भाव तो भीतर त्रैकालिकमें है ही नहीं।

अनंत गुण रत्नोंकी माला अंतरमें पड़ी है उसे पहिचान।'

सच्चिदानन्द स्वरूप निज ध्रुव परमात्म द्रव्य स्वभावमें क्षायोपशमिक आदि पर्यायें नहीं हैं, परंतु सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि अनन्त गुणरत्नोंकी माला जो अंतरमें विद्यमान है उसकी पहिचान कर। जिसकी संख्याका कोई पार नहीं है ऐसे अनन्त गुणोंका हार अंतरमें सदा उपस्थित है। अंतरमें क्षायोपशमिक आदि पर्यायें नहीं हैं—ऐसा कहा, तो फिर अंतरमें है क्या? अंतरमें अनंत ध्रुव चैतन्य गुणरत्नोंकी माला विद्यमान है—ज्ञान, दर्शन, सुखादि अनंतानन्त गुणरत्नोंकी राशि भरी है—उसे पहिचान। संयोग, निमित्त या रागको पहिचान—ऐसा नहीं कहा, परन्तु अंतरमें जो है उसे—अनन्तगुणरत्नोंकी मालाको, ध्रुव ज्ञायक तत्त्वको—पहिचान।

अहाहा! वह तो अद्‌भुत वस्तु है! प्रत्येक आत्मा अनंतानंत गुणोंका भण्डार प्रभु है, उसे किसी क्षेत्रकी या बड़प्पनकी आवश्यकता नहीं है, उसका बड़प्पन तो उसके स्वभावकी शक्तिके अमापपनेमें है। अमाप ज्ञान, अमाप सुख, अमाप शान्ति आदि अनंत अमाप गुणरत्नोंकी माला अंतरमें पड़ी है 'उसे' पहिचान। उसे अर्थात् अनंत गुणोंको पहिचान ऐसा नहीं, परन्तु अनंत गुण रत्नोंकी मालाको अर्थात् अभेद ध्रुव द्रव्यस्वभावको। यहाँ नित्य ध्रुव स्वरूपकी बात है। उसे पहिचान।

'आत्माका लक्षण—त्रैकालिक स्वरूप पहिचानकर प्रतीति कर।'

क्या कहा? कि–आत्माका लक्षण त्रैकालिक ध्रुवरूप रहना है। अहाहा! त्रैकालिक ज्ञायक ध्रुव ध्रुव ध्रुव एकरूप स्वरूपको पहिचानना, प्रतीतिमें लेना। जो उसका त्रैकालिक चैतन्य शुद्ध स्वरूप है वही उसका लक्षण है–ऐसा ज्ञान करके प्रतीति कर। 'पहिचानना' वह ज्ञानकी पर्याय है। जाने बिना प्रतीति किसकी? अहा! थोड़े शब्दोंमें बहुत आ गया है!

ज्ञायकपना, परमपारिणाममिक स्वभावपना, त्रिकाली सहज स्वभावपना, परम-स्वभावपना—ऐसा आत्मद्रव्यका जो सहज लक्षण उसे जानकर, त्रैकालिकका ज्ञान करके—ज्ञानकी जानपनेरूप पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुवस्वरूप नहीं आया है, परन्तु वह ध्रुव स्वरूप जितना है उतना तत्सम्बन्धी ज्ञान आया है–उसकी प्रतीति कर, श्रद्धा कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु एकबार तू सुन! अनंत सिद्ध हैं। सिद्धपना वह पर्याय है, त्रैकालिक द्रव्यस्वभावमें वह पर्याय नहीं है। वस्तु तो नित्य एकरूप रहनेवाली है, वह तो पर्याय रहित तथा अनंत गुणरूपी आभरणोंसे भरपूर विशाल पिटारा है। उस आश्चर्यकारी महान वस्तुको पहिचानकर उसकी प्रतीति कर तब तेरा कल्याण होगा, तुझे धर्म होगा; उसके बिना धर्म नहीं है।

मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कहा है : किसीके वचनसे माना होगा वह दूसरेके वचनसे बदल जायगा; क्योंकि वास्तविक स्वरूपको पहिचानकर–जानकर नहीं माना है, इसलिये वह मान्यता सच्ची नहीं है। भगवानने कहा इसलिये सच्चा; परन्तु भगवानने क्या कहा है उसकी खबर नहीं है तो सच्ची प्रतीति कहाँसे होगी? 'भगवानने ऐसा कहा है'–वह भी परलक्षी ज्ञान है।परलक्षी ज्ञानसे भी निज ज्ञायक आत्मा ज्ञात हो ऐसा नहीं है, त्रैकालिक आनन्दकन्द चैतन्य प्रभुकी जातिकी जो निर्मल पर्याय उससे जाननेमें तथा प्रतीतिमें आये ऐसा है। अहा! त्रैकालिक ज्ञायक स्वभावकी पहिचान करनेवाली उस ज्ञान पर्यायकी महानता कितनी? उस ध्रुवतत्त्वको प्रतीतिमें लेनेवाली श्रद्धापर्यायकी महानता कितनी? त्रैकालिक वस्तु ऐसी है, उसने अपना स्वरूप कभी छोड़ा नहीं है, अर्थात् वह त्रैकालिक ध्रुव स्वरूप पर्यायमें भी नहीं आया है—ऐसी नित्य ध्रुव वस्तुको ज्ञानमें ले उस ज्ञानपर्यायकी शक्ति कितनी? इतने महान तत्त्वको–जिसका स्वरूप कभी छूटा नहीं है ऐसे पूर्णानन्दके नाथ सम्पूर्ण आत्माको–पहिचानकर प्रतीति हुई उस प्रतीति में–श्रद्धामें शक्ति कितनी? तथापि उस ज्ञान और प्रतीतिकी पर्याय त्रैकालिक ध्रुवस्वरूपमें नहीं है, और उस पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुवस्वरूप नहीं आया है। पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव स्वरूपका ज्ञान और श्रद्धा आयी है।

अहा! ऐसा मार्ग वीतरागके सिवा अन्यत्र कहीं है नहीं; वह भी दिगम्बर सन्तों द्वारा कहा गया। अहा! दिगम्बर सन्तोंने अद्‌भुत कार्य किया है। जिनके एक-एक शब्दमें, एक-एक श्लोकमें गम्भीरता गम्भीरता गम्भीरता। भाई! गहनता इतनी है कि वह ऊपरी दृष्टिसे दिखनेवाली वस्तु नहीं है।

यह जो 'पहिचान' है वह धारणाकी पर्याय नहीं है। आत्मा ऐसा है, उसमें इतने गुण हैं आदि धारणामें आते हैं, परन्तु वह 'पहिचान'की पर्याय नहीं है। धारणा कोई वस्तु नहीं है। धारणाज्ञानके विकल्पसे छूटकर जब तक अंतरोन्मुख नहीं हुआ तब तक उसका ज्ञान सम्यक् नहीं है।

प्रश्न :—परोक्षज्ञान प्रमाण नहीं है?

उत्तर :—पूर्ण ज्ञायक तत्त्वको जानकर जो ज्ञान हुआ वह–भले परोक्ष हो—प्रमाण है; अनुमान ज्ञान भी प्रमाण है। वह ज्ञान सत्य है इसलिये प्रमाण है। परलक्षी धारणा ज्ञान वह वास्तविक प्रमाण ही नहीं है। ऐसा ग्यारह अंगका ज्ञान तो अनंतबार किया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु साथमें परलक्षी ज्ञातृत्वका–जानपनेका–अभिमान होनेसे वह मिथ्यात्व था।

जो त्रिकाल एकरूप है ऐसे निज ज्ञायक स्वरूपको जान। जाननेवाली पर्यायने, ध्रुवस्वभावके सन्मुख होकर उसका आश्रय लिया। आश्रयका अर्थ ऐसा नहीं है कि आश्रय करनेवाली पर्याय द्रव्यमें–ध्रुवतत्त्वमें एकमेक हो गई। आश्रयका अर्थ ऐसा है कि पर्याय जो बाह्योन्मुखथी वह अंतरमें ध्रुव स्वभावोन्मुख हो गई। बस, उसने द्रव्यका–ध्रुव तत्त्वका आश्रय लिया ऐसा कहा जाता है; तथापि पर्याय द्रव्यमें एकमेक नहीं हुई है और द्रव्य पर्यायमें नहीं आ गया है। अहा! प्रभु! तू कौन है? कैसा है? तेरी शक्ति कितनी है? भाई! तेरी महानताकी तुझे खबर नहीं है। तेरी ध्रुव महानता क्षणिक पर्यायमें नहीं आती, पर्याय ध्रुव महानताको जानती है। दो अंश है ना? एक पलटता अंश और दूसरा त्रिकाल ध्रुव अंश। उस त्रैकालिक ध्रुवस्वरूपको पहिचानकर उसकी प्रतीति कर, तो तुझे अंतरसे स्थायी शान्ति प्रगट होगी और जन्म-मरणके दुःखका नाश हो जायगा।

*

वचनामृत–१४७

आत्माके ज्ञानमें सब ज्ञान समा जाता है। एकको जाननेसे सब ज्ञात होता है। मूलको जाने बिना सब निष्फल है॥१४७॥

‘आत्माके ज्ञानमें सब ज्ञान समा जाता है।’

जिसने आनन्द सागर ऐसे अपने त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वरूपको–अपने भगवान ज्ञानस्वभावको–कभी छोड़ा नहीं है ऐसे चैतन्यमूर्ति निज शुद्ध आत्माके ज्ञानमें—उसके श्रद्धान-ज्ञान-अनुभवनमें—सब ज्ञान आ जाता है।

‘एकको जाननेसे सब ज्ञात होता है।’

एकको—आत्माको—जिसने बराबर जाना, उसने सब जान लिया। एकको जाने बिना अनेकको जाने, ग्यारह अंगके ज्ञानके ढेर कर ले, परन्तु बाह्य जानपनेमें जो चतुर हो वह वास्तवमें ज्ञान ही नहीं है। निज आत्माके—त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभावके—ज्ञानमें सब ज्ञान समा जाता है। वहाँ, आत्मा तो त्रैकालिक वस्तु है, उसका ‘ज्ञान’–वह पर्याय है। उस पर्यायने त्रैकालिक ज्ञायक आत्माका ज्ञान किया। अहाहा! मार्ग बड़ा अलौकिक है भाई! जन्म–मरणसे छूटनेकी रीति कोई भिन्न प्रकारकी है। भवभ्रमणसे छुटकारेकी प्रतीति और उसका सम्यग्ज्ञान कोई अलौकिक बात है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक निज आत्माका जो ज्ञान हुआ उसमें सब आ गया। छह द्रव्यका, परका जो ज्ञान उसे यहाँ नहीं लिया है।

प्रश्न :—अरिहंतको जाने उसे आत्माका ज्ञान होता है—ऐसा आता है ना?

उत्तर :—अरिहंत आदि भगवान पंचपरमेष्ठिको जाना वह बात यहाँ नहीं लेना है, क्योंकि वह तो परवस्तु है। प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामें आता है:—

द्रव्य गुण पर्ययसे जो जानते अरहंतको।
वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो॥

परन्तु वह कथन तो निमित्तसे है। अरिहंतका द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे तथा पर्यायरूपसे ज्ञान होने पर जब जीव भीतर स्वद्रव्योन्मुख होता है, निज ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावका आश्रय करता है तब उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है और उसके मिथ्यात्व मोहका नाश होता है। अरिहंतके द्रव्य गुण पर्यायको जान लिया इसलिये उसे सम्यग्ज्ञान हुआ है—ऐसा नहीं है। अरिहंतके स्वरूपको द्रव्यरूपसे गुणरूपसे तथा पर्यायरूपसे जानकर जिसने स्वोन्मुख दृष्टि करके—अपनी पर्यायोंको गुणमें संक्षेपकर, तिरोभूत करके, और गुणोंको द्रव्यमें अंतर्गभित करके, एकाकार करके—अपनी त्रैकालिक अभेद वस्तुकी जब प्रतीति हुई तब उसे सम्यग्ज्ञानी हुआ कहा जाता है। आत्माके उस सम्यग्ज्ञानमें सब ज्ञान समा जाता है, उसमें आ जाता है। एक आत्माको जाननेसे सब ज्ञात होता है।

'मूलको जाने बिना सब निष्फल है।'

त्रैकालिक ज्ञायक स्वभावी निज आत्मा है वह मूल वस्तु है। उसे जाने बिना दूसरी सब जानकारी निष्फल है। त्रिलोकका नाथ ऐसा जो ज्ञायक निज ध्रुव आत्मा जिसमें पर्यायका अभाव एवं ज्ञानादि गुणोंका सद्भाव है, उसे आश्रयरूप अधिक जाने बिना सब ज्ञातृत्व–जानपना निष्फल है। शास्त्रका ज्ञान, छह द्रव्यका ज्ञान,पर्यायका ज्ञान–सब जानपना आत्मज्ञानके बिना निष्फल है; यदि सफल है तो परिभ्रमणके लिये, मोक्षके लिये निष्फल है।

अहाहा! वर्तमानमें इस पुस्तककी आवश्यकता थी। कुदरतीरूपसे वह अवसर बराबर आ गया है।

*

वचनामृत—१४८

चैतन्यलोकमें अन्दर जा। अलौकिक शोभासे भरपूर अनंत गुण चैतन्यलोकमें हैं, उसमें निर्विकल्प होकर जा, उसकी शोभा निहार॥१४८॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'चैतन्यलोकमें अन्दर जा।'

कर्मकी १४८ प्रकृतियां हैं वे जड़ हैं; अचेतन हैं उन्हें छोड़कर प्रभु! भीतर चैतन्यलोकमें जा। तू बाह्यलक्षमें भटक रहा है भाई! जहाँ तू नहीं है वहाँ भटक रहा है, वह भटकना छोड़ दे भाई! जहाँ तू है वहाँ—अंतरमें—जा। जहाँ तू नहीं है वहाँ—उसके लक्षमें—तू जा रहा है; प्रभु! वह तो संसार है, परिभ्रमण है, दुःख है।

ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यादि अनंतगुणके थोकरूप जो चैतन्य-आत्मा ज्ञात होता है वह लोक है। वह चैतन्यलोक ज्ञात होता है पर्यायमें। उस चैतन्यलोकमें जा, अर्थात् उसके सन्मुख हो। जिसमें केवलज्ञानादि क्षायिक पर्यायोंका भी अभाव है ऐसा पूर्णानन्दका नाथ भगवान आत्मा—चैतन्य लोक—अंतरमें विराजता है, वहाँ जा।

'अलौकिक शोभासे भरपूर अनंतगुण चैतन्यलोकमें हैं।'

अहाहा! भीतर चैतन्यलोकमें जा।

प्रश्न :—कैसा है वह चैतन्यलोक?

उत्तर :—सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज आनन्द आदि त्रैकालिक अनंत गुणरत्न जिसकी—जगतसे निराली—शोभा है वह, शरीरादि परवस्तुओंसे भिन्न तथा रागादि विभावोंसे रहित ऐसी त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु चैतन्यलोक है। अहाहा! क्या शोभा है उसकी! वह शोभा निहारनेके लिये अंतर्दृष्टि कर, अर्थात् पूर्णानन्द प्रभुका अंतरमें ज्ञान कर। यह सर्व प्रथम कर्तव्य है। यह चैतन्यलोक अनंत गुणरत्नोंकी अलौकिक शोभासे भरपूर है। असंख्य प्रदेशी चैतन्यलोकमें, भले क्षेत्र प्रदेशोंका अंत आ गया हो परन्तु, उसके भावका—गुणरत्नोंका—संख्यासे अंत नहीं है। चैतन्यलोककी गहराईमें—तलमें, ध्रुवस्वरूपमें—अनंत गुण हैं। जिनमें 'अन्तिम' ऐसा है ही नहीं ऐसे अनंत अनंत अनंत गुणरत्न अलौकिक शोभासे भरपूर, चैतन्यलोकमें हैं।

अहाहा! यह कैसी वस्तु है?! अहा! यह अलौकिक वस्तु सर्वज्ञ भगवानने प्रत्यक्ष देखकर कही है। जिसके मतमें सर्वज्ञ नहीं उसके मतमें एक भी बात सच्ची होती ही नहीं।

ज्ञायकभाव कहो या सर्वज्ञत्व स्वभाव कहो, वह आत्माका नित्य स्वभाव है। उसमें अल्पज्ञताका अभाव है। चैतन्यलोकमें सर्वज्ञता आदि अनंत गुण भरे हैं। अलौकिक शोभासे भरपूर ऐसे अनंत गुणस्वरूप चैतन्यलोकमें भीतर प्रवेशकर, उसमें दृष्टि लगाकर एकाग्र हो अहाहा! भाषा तो बड़ी संक्षिप्त, परन्तु भाव तो बहुत गहरे हैं!

'उसमें निर्विकल्प होकर जा, उसकी शोभा निहार।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनंतानंत गुणोंकी शोभासे भरपूर इस भगवान आत्मामें रागका या शास्त्रसंबंधी ज्ञानका विकल्प लेकर भीतर नहीं पहुँच सकेगा। विकल्पोंसे तूं भीतर ज्ञायकस्वरूपमें नहीं जा सकेगा। अनंत अलौकिक शोभासे भरपूर अनंतगुण चैतन्यलोकमें हैं; उसमें निर्विकल्प होकर प्रवेश कर। विकल्पका अंश भी लक्षमें होगा तब तक भीतर नहीं पहुँच पायेगा। पर्यायभेदका लक्ष होगा तब तक भी भीतर नहीं जा सकेगा। अलौकिक शोभासे भरपूर ऐसे अनंत गुणस्वरूप चैतन्यलोकमें निर्विकल्प होकर प्रवेश कर, उसकी शोभा निहार तो अंतरमें अतीन्द्रिय शान्ति एवं आनन्दका अनुभव होगा।

*

हजारों उपाधिके बीच भी पुरुषार्थ करके तिर जायें ऐसे आत्मा हैं। तो हमारा तो निरुपाधिमय जीवन है। क्या इस जीवने कभी पुरुषार्थ करनेका ठाना है? अभी भी उसे परिभ्रमण प्रिय लगता होगा? सचमुच, ऐसा न हो तो पुरुषार्थ किये बिना उसे चैन न पड़े। उसे अपने स्वरूप पर श्रद्धा नहीं है, उस पर प्रेम नहीं है, पर वस्तु पर प्रेम है, परिभ्रमणकी थकान नहीं है, 'मैं बन्धा हुआ हूँ. मेरा स्वरूप भिन्न है' इसका भान नहीं है। बन्धनकी मूर्ख भी इच्छा नहीं करता, तब यह जीव बन्धनकी इच्छा करता है सो एक आश्चर्य है ।

सारा संसार सुखकी इच्छा करता है। सुखी सुखकी इच्छा नहीं करता, दुःखी सुखकी इच्छा करता है। सुखीको तो ऐसा होता है कि 'हम अब सुखी हो गये, अब हमे कुछ इच्छा नहीं है'।

*

अनन्तकालसे अनेक सद्गुरु मिले और बहुत कहा, परन्तु जीव कहाँ मानता है? श्रद्धा कहाँ लाता है? जीव–कर्मका संयोग अनादि है। उसमें आगे–पीछे कुछ नहीं है। वह पहले बन्धा हुआ नहीं था और बादमें बन्धा–ऐसा नहीं है। परन्तु उनका सम्बन्ध अनादि है।

—पू. बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५४

ता. १–८–७८

वचनामृत–१४६

रागी हूँ या नहीं–उन सब विकल्पोंके उस पार मैं शुद्ध तत्त्व हूँ। नयोंसे अतिक्रान्त चैतन्य विराजमान है। द्रव्यका अवलम्बन कर तो चैतन्य प्रगट होगा ।।१४६।।

'रागी हूँ या नहीं–उन सब विकल्पोंसे उस पार मैं शुद्ध तत्त्व हूँ।'

अहाहा! बिलकुल तत्त्वकी बात है। शरीर, वाणी, मन या अन्य जड़ और चेतन पर वस्तु वह तो आत्माकी पर्यायमें भी नहीं है। आत्माकी पर्यायमें रागादि विभाव हैं। रागी हूँ या नहीं हूँ—यह भी एक विकल्प है। 'रागी हूँ'—यह पर्यायके लक्षका विकल्प है और 'रागी नहीं हूँ'—यह द्रव्यके लक्षका विकल्प है। उन दोनों प्रकारके विकल्पों तक आया, लेकिन उससे क्या? मार्ग तो विकल्प रहित होनेका है। निज अभेद शुद्ध ज्ञायकद्रव्य स्वभावकी सन्मुखताकी जो सहज दशा वही जन्म-मरण रहित होनेका उपाय है।

पर्यायमें राग है, वह व्यवहारनयका विषय है, और वस्तुस्वभावमें राग नहीं है वह निश्चयनयका विषय है। परन्तु उन दोनों प्रकारके विकल्पोंकी वृत्तिमें रुकना उसमें स्वरूपकी प्राप्ति नहीं है। चैतन्यकी पर्यायमें उस विकल्पकी वृत्तिका जो उत्थान होता है उससे उसपार मैं शुद्ध तत्त्व हूँ। 'मैं शुद्ध तत्त्व हूँ' ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं है। ज्ञानकी वर्तमान दशा भीतर ज्ञानस्वभावकी गहनतामें जाये—अपरिमित आनन्दादि अनंत गुणोंकी वर्तमान पर्याय, अंतर्मुख होने पर हो—वहाँ उसे विकल्प नहीं रहता। अहा! वस्तु अलौकिक है।

वर्तमान पर्याय जो पर तथा रागकी ओर है उसे अंतर स्वभावोन्मुख करना वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी पहली कला एवं रीति है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि–रागी हूँ या रागी नहीं हूँ–उन सब नयके विकल्पोंसे उस पार अंतरमें मैं शुद्धतत्त्व हूँ।

'नयोंसे अतिक्रान्त चैतन्य विराजमान है।'

निश्चय और व्यवहार–इन दोनों नयोंके विकल्पोंसे अतिक्रान्त चैतन्यदेव अंतरमें

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विराजमान है। यहाँ इस समय निश्चय नयको भी विकल्पमें लिया है। चैतन्यतत्त्व निश्चयके विकल्पसे भी उस पार है। समयसारमें–

....'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाणकी।'

—कहा है, वहाँ विकल्पकी बात नहीं है। वहाँ तो त्रैकालिक द्रव्य स्वभावका आश्रय लेनेको निश्चय कहा है। और यहाँ दोनों नयोंको विकल्प सहित कहकर उनसे पार अंतरमें शुद्ध चैतन्यतत्त्वमें जानेको कहा है।

अंतरमें विकल्पसे उस पार ऐसे शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी दृष्टि बिना तू लाख व्रत, तप, भक्ति और पूजा कर, अरे! करोड़ों तथा अनंत कर—वह तो सब स्थूल राग है ही, परन्तु 'वस्तु रागयुक्त नहीं है'—ऐसा विकल्प भी सूक्ष्म राग है; उससे भी अंतरमें नहीं पहुँचा जाता; क्योंकि अंतरंग प्रकारकी दशाके बिना अंतरमें प्रवेश नहीं हो सकता। शुद्ध चैतन्यतत्त्वमें उसकी शुद्ध निर्मल पर्यायसे पहुँचा जा सकता है, उसे पकड़ा जा सकता है; बाकी विकल्पसे पकड़में आये ऐसी वह वस्तु नहीं है। अहाहा! प्रथम श्रद्धामें पक्का निर्णय तो करे कि–आत्मामें जानेके लिये कोई विकल्प काम नहीं करता। अहाहा! ऐसा मार्ग है! ऐसे तो ज्ञायक–आत्माकी प्रतीति बिना, अनादिकालसे चौरासीके अवतारमें भटककर मरता रहता है; कोई शरणभूत नहीं है। जिस प्रकार मकड़ी तार निकालकर उसमें फँस जाती है, उसी प्रकार यह जीव स्त्री, पुत्र एवं परिवारमें तथा व्यापार–धन्धेमें फँस गया है। अरेरे! उससे छूटनेका मार्ग कहाँ है प्रभु! यहाँ तो यहाँ तक कहते हैं कि 'बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ' ऐसी वृत्तिसे भी ज्ञायक आत्मा प्राप्त नहीं हो सकता। यह बात असह्य लगे, किन्तु क्या हो सकता है भाई!

जहाँ आत्माको विकल्प एवं रागके साथ सम्बन्ध नहीं है, वहाँ शरीर, स्त्री–पुत्र या व्यापार–धन्धेसे कैसे सम्बन्ध हो गया? वह पापका विकल्प तो कहीं रह गया परन्तु दया, दान, व्रत, तप एवं भक्तिका विकल्प भी बंधनका कारण तथा दुःखमय है। अरे, वह शुभ विकल्प भी कहीं रह गया; यहाँ तो ज्ञायक वस्तु के सन्मुख होनेमें 'वह ऐसी है' वस्तुके आँगनमें खड़े रहकर 'यह वस्तु रागरहित वीतरागस्वरूप है;, ऐसा जो सूक्ष्म विकल्प उठता है, उससे निज ज्ञायक वस्तु उस पार है। अहा! वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना न आये तो अंतरमें प्रवेश कैसे होगा?

नयोंसे अतिक्रान्त चैतन्य अंतरमें विराजमान है। 'मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, एक हूँ, पूर्ण हूँ तथा पवित्र हूँ' ऐसी जो निश्चयनयकी वृत्ति—विकल्प उठे उससे वस्तु उस पार है। रागके विकल्पसे उस पार ऐसी वस्तुका अनुभव करे तो सम्यक्त्व हो;–ऐसी श्रद्धा प्रथम करना चाहिये। विकल्प द्वारा उसका निर्णय करते हुए ध्यानमें ऐसा रहना चाहिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कि यह निर्णय तो अभी विकल्पसे हुआ है। जब तक निर्विकल्प दृष्टिसे निर्णय न हो तब तक सच्चा तत्त्व हाथ नहीं आता। अहा! ऐसा मार्ग है।

भाई! क्या किया जाय? लोग बाहरी रुचिमें–व्यापार धन्धा तथा स्त्री–पुत्र–परिवारके पालन–पोषणकी रुचिमें–समय बिताते हैं, परन्तु उनके साथ तेरा क्या सम्बन्ध है? वे सब तो पापके तथा अधर्मके पोटले हैं। उनके परिणाममें तो दुर्गति, होनेवाली है। मोक्ष पाहुडकी १६वीं गाथामें कहा है :—'परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सुग्गई होई।'

परद्रव्यथी दुर्गति, खरे सुगति स्वद्रव्यथी थाय छे;
—ए जाणी, निज द्रव्ये रमो, परद्रव्यथी विरमो तमे।।१६।।

परमात्मा ऐसा कहतें हैं कि—हम भी तुझसे भिन्न परद्रव्य हैं; हमें भी यदि तू याद करेगा तो तुझे विकल्प तथा दुर्गति होगी।–चैतन्यकी गति–शुद्ध परिणति–न होना वही दुर्गति है। चार गतियाँ, फिर भले ही स्वर्गकी गति मिले, यह दुर्गति है। पूर्णानन्द स्वरूप ज्ञायक–स्वद्रव्यका आश्रय लेकर जो पर्याय हो वह चैतन्यकी सुगति है। स्वद्रव्यसे च्युत होकर धर्मके नामसे पंचपरमेष्ठिका स्मरण करने पर जो विकल्प उठे वह चैतन्यकी सुगति नहीं है! अरे! भाई! सम्यग्दर्शन कोई ऐसी वस्तु है कि उसे तो लाखों–करोड़ोंमें विरले ही प्राप्त कर सकते है।

यहाँ तो ऐसा कहा है कि–ज्ञायक तत्त्व बद्ध–अबद्ध आदि नयोंके विकल्पोंसे उस पार बिराजता है।

'द्रव्यका अवलम्बन कर तो चैतन्य प्रगट होगा।'

वस्तु पूर्ण स्वरूप है, उसका अवलम्बन कर; विकल्पका नहीं। भाई! बात तो सादी भाषामें है, लेकिन भाव तो जो हैं सो हैं। सर्व प्रथम करना हो तो वह है : स्वद्रव्यका अवलम्बन, उसमें अनंत अनंत पुरुषार्थ है। उसके बिना और सब—व्रत–तप आदिकी बातें बाहर की हैं; उन्हें धर्म मानना वह मिथ्यात्वका पोषण है। प्रभु! तू अपनी वस्तुका अवलम्बन ले ना, देव–गुरुका अवलम्बन लेनेसे तुझे पर्यायमें राग होगा, तेरी प्रभुतामे खोट आयेगी।

प्रभु! निर्मल पर्याय तेरी वस्तुमेंसे आयी है। अंतरके प्रभुत्वस्वभावमेंसे प्रभुताकी निर्मल पर्याय आयी है। केवलज्ञानकी पूर्ण पर्याय भी रागसे या किसी पूर्व पर्यायसे नहीं आयी। भीतर द्रव्य स्वभावका अवलम्बन करनेसे चैतन्यकी निर्मल पर्याय प्रगट होती है। अहाहा! सूक्ष्म बात है! यहाँ तो कहते हैं कि–शुद्ध चैतन्यकी ओरके जो विकल्प होते हैं उनसे भी त्रैकालिक ज्ञायक प्रभु हाथ नहीं आयगा, सम्यक्त्व नहीं होगा। तू तीनलोकका नाथ चैतन्य भगवान है, उसका अवलम्बन अंतरमें ले तो तुझे धर्मका प्रारम्भ–सम्यक्त्व–होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाकी तो सब बातें हैं। उपवास किये, व्रत पाले, और भक्ति की–वे सब रागकी तथा बंधकी क्रियाएँ हैं।

अहाहा! कठिन काम है भाई! अरे, रागादिके अवलम्बनसे विमुख होनेमें अनंत पुरुषार्थ है। अंतरमें चैतन्य द्रव्य–आत्मपदार्थ–विराजता है उसका अवलम्बन ले। पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकका अवलम्बन ले। भगवान और भगवानकी मूर्तिका अवलम्बन लेने जायगा तो वहाँ राग होगा। राग आये परन्तु वह अवलम्बन लेने योग्य नहीं है।

प्रभु! तेरी महानता इतनी है कि जहाँ 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसी वृत्ति उठे वह भी विकल्प है, कलंक है बन्ध परिणाम है। सम्यक्त्व अर्थात् अबंध–परिणाम प्रगट करना हो तो विकल्पसे उस पार जो वस्तु—ध्रुव ज्ञायक एक भाव—पड़ी है उसका अवलम्बन ले। उससे तुझे चैतन्यकी प्रतीति होगी कि—अहाहा! यह तो महान भगवान है। यहाँ अन्तरोन्मुख हो यही स्वद्रव्यका अवलम्बन लेना ही–एक उपाय है। इसके सिवा अन्य कोई उपाय क्या? भगवान! मार्ग तो ऐसा है।

भाई! दुनियामें जीवोंका मरण देखतें है ना! बेचारे छोटीसी आयुमें मरकर कहीं चले जाते हैं। धर्म किया न हो, अरे! पुण्यका ठिकाना न हो, ऐसे अनेक जीव मरकर तो पशु योनिमें जन्म लेते हैं।—ऐसा वीतरागके मार्गमें कहा है। प्रभु! भवका डर होना चाहिये। श्री योगीन्दुदेवने योगसारमें कहा है : 'भवभयसे डर चित्त', नरकमें दुःख है और स्वर्गमें सुख है—ऐसा नहीं, परन्तु भव मात्र स्वयं दुःखरूप है। 'मरने पर कैसा भव होगा? कहाँ जायेंगे?' ऐसा जिसे भवका भय डर लगा हो वह भीतर आत्मामें जाना चाहता है जिसकी रुचि बाह्यमें होगी वह अंतरमें ज्ञायकस्वभावमें कैसे जा सकेगा?

अहा! यह तो अभी प्रथम सम्यग्दृष्टि होनेकी रीति है। चारित्र तो अभी बहुत दूर है। चारित्र किसे कहतें हैं भाई! त्रैकालिक आनन्दकंद ज्ञायक प्रभुमें—निराकुल स्वभावके सागरमें—दृष्टि करके पश्चात अंतरमें विशेष रमणता, स्थिरता, आनन्दकी विशेष दशा प्रगट करना उसका नाम चारित्र है। व्रत पालना अथवा नग्नता वह कोई चारित्र नहीं है। अंतरमें द्रव्यका विशेष अवलम्बन करे तो चारित्र प्रगट हो।

*

वचनामृत—१५०

शुद्ध तत्त्वदृष्टि प्रगट करके उस नौकामें बैठ गया वह तर गया।।१५०।।

जिसने अंतर्मुख होकर पूर्ण शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभावरूप ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि प्रगट की, वह सम्यग्दर्शन रूपी–साधक दशारूपी–नौकामें बैठ गया, वह भव सागर तर गया।

१०

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! भवके अभावकी ओर उसका प्रयाण हो गया। ऐसी सूक्ष्म बात है भाई!

प्रश्न :—व्यवहारसे पार हो जाते हैं यह तो आप बात ही नहीं करते?

उत्तर :—अरे! व्यवहार तो राग है, विकल्प है; उससे तीनकालमें आत्मा प्राप्त नहीं होता, सम्यक्त्व नहीं होता। भले ही व्यवहारके लाख विकल्प करे, लेकिन उससे क्या होता है? छहढालामें कहा है :—

लाख बातकी बात यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द–फन्द निज आतम ध्याओ॥

अरे! उसका अर्थ कहाँ समझना है कभी! यों ही अपनी मानी हुई बातको चलाना है। हो चुका!–घन्टे–दो घन्टे व्यवहारकी बातें सुनकर फिर अपने पापके धन्धेमें लग जाता है! व्यवहारके विकल्पोंसे पार ऐसे पूर्णानन्द स्वरूप भगवान निज ज्ञायक आत्माकी रुचि करनेका—अंतरसे समझनेका—अवकाश ही कहाँ है?

जिसने निजपरमानन्द स्वरूप भगवान आत्माकी दृष्टि की वह साधनारूपी नौकामें बैठ गया। अहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया वह साधना रूपी नौकामें चढ़कर संसार सागरको पार कर लेता है। भले ही वह अभी गृहस्थाश्रममें हो, परन्तु पूर्व अनंत कालमें नहीं हुआ ऐसा सम्यग्दर्शन जिसने प्रगट किया वह भवसागरसे पार हो गया। भवकी परम्पराको छेदनेवाले सम्यग्दर्शनके बिना तो—

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

इस जीवने मुनिपना धारण किया हजारों रानियाँ छोड़ी, शरीर पर वस्त्रका एक टुकड़ा भी न हो ऐसी नग्न दशा ग्रहण की, परन्तु अंतरमें महाव्रतके शुभ परिणाम मेरे हैं, वे मुझे लाभदायी होंगे, ऐसी मिथ्यात्वमय दृष्टि नहीं छोड़ी। अहा! उसे रागसे भिन्न आत्माका स्वाद नहीं आया, उसमें सुख नहीं लगा। भाई! पंचमहाव्रतके परिणाम तो आस्रव हैं और आस्रव दुःखरूप हैं। जो दुःखरूप हो उसे कोई साधन माने तो उसका क्या किया जाय? प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? उन व्रतादिके रागरूप साधनसे तो बंध होता है और बंधसे तो संसार है।

अहा! जिसने द्रव्यस्वभावका अवलम्बन लेकर अंतरमें सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया उसे देहान्तरके समय कौन शरणभूत होगा? अरे, शरीरकी नस-नस खिंचेगी, वेदना होगी, प्रत्येक रजकण बदल जायगा, उस समय ज्ञायक भगवान आत्मा जो कि सच्चा शरणभूत है उसकी दृष्टि नहीं होगी तो क्या करेगा? कहाँ जायगा? दुःखमें दब जायगा भाई! वहाँ अपने आत्माके सिवा कोई शरण नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहाहा! जिसने शुद्ध तत्त्वकी दृष्टि प्रगट कर ली वह नौकामें बैठ गया। बस, अब वह संसारसे पार हो जायगा। रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है कि :—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

जिसने अन्तरमें आत्माका सम्यग्दर्शन प्रगट किया है वह, भले गृहस्थाश्रममें हो तथापि मोक्षमार्गमें है; और जो अनगार—मुनि हुआ है, परन्तु शुभरागकी क्रियासे मुझे लाभ होगा, यह पंचमहाव्रत पालता हूँ उससे मुझे धर्म होगा,—ऐसा मानता है उस जीवकी दृष्टि मिथ्या होनेसे वह संसारमार्गमें है। निर्मोही सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मोही–मिथ्यादृष्टि–साधुकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, उत्तम है। अहाहा! ऐसी बातें हैं।

*

वचनामृत–१५१

एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभावकी गहराईमें उतर जा। कहीं रुकना मत। अंतरसे खटका न जाय तब तक वीतराग दशा प्रगट नहीं होती। बाहुबलि जैसोंको भी एक विकल्पमें रुके रहनेसे वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई! आँखमें किरकिरी नहीं समाती, वैसे ही आत्मस्वभावमें एक अणुमात्र भी विभाव नहीं पुसाता। जब तक संज्वलन–कषायका अबुद्धिपूर्वकका अति सूक्ष्म अंश भी विद्यमान हो तब तक पूर्ण ज्ञान–केवलज्ञान प्रगट नहीं होता॥१५१॥

'एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभावकी गहराईमें उतर जा।'

क्या कहना चाहते हैं? पहले ऐसा करना और फिर ऐसा करना, पहले रागकी मन्दता करूँ, विकल्पसे निर्णय करूँ और फिर चैतन्यस्वभावमें जाऊँ–यह सब छोड़ दे, सब रहने दे।

'जैनमित्र'में वचनामृत पुस्तककी प्रशंसा आयी है। मध्यस्थ रूपसे लिखा है कि बहिनके वचनामृत पठन करने योग्य हैं। अध्यात्ममें रुचि हो ऐसे हैं। बहुत अच्छा लिखा है। सादी गुजराती भाषा। उसका हिन्दी अनुवाद भी हो गया है। दस हजार प्रतियाँ तो अभी छपी हैं। उनमेंसे पोने सात हजार हिन्दी 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको भेट दी गई हैं। जिनके पास 'आत्मधर्म' जाता है उन सबके पास वचनामृत पुस्तक पहुँच गई है। अहाहा! पढ़ें तो ध्यानमें आये ना, कि अहो! कैसी वस्तु है। वेदान्ती पढ़े तो वह भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खुश खुश होगा! एकबार तो उसे ऐसा लगेगा कि बात तो ठीक ऐसी ही है। भाई! यह तो परम सत्य बेनकी सादी भाषामें—गुजराती बोलचालकी भाषामें–आ गया है।

यहाँ कहते हैं–एकदम पुरुषार्थ कर। पहले अशुभ टालूँ और कुछ शुभ करूँ, फिर कुछ शुद्ध चैतन्यके विकल्प करूँ और पश्चात् चैतन्यस्वभावमें जाऊँगा—यह सब वादे करनेकी बातें छोड़ दे। एकदम अर्थात् तुरन्त ही अंतरका पुरुषार्थ कर और झटसे अपने रागरहित ऐसे ज्ञायक स्वभावकी गहराईमें उतर जा। पहले विकल्पसे ऐसा निर्णय करूँ, और फिर वैसा करूँ—ऐसे वादे मत कर; वादे–बहाने नहीं चलेंगे।

अरे! बाहरके—व्यवहारके—आचरणवाले मिलें तो उसमें जीवको रुचि हो जाती है कि–यह नग्न हैं, साधु हैं, बाह्य त्यागी हैं, पंच महाव्रत पालते हैं। जगतको बाहरी प्रेम—मिथ्यात्वकी रुचि—छूटना बहुत कठिन है!

भाई! एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभावकी गहराईमें उतर जा।

प्रश्न :—गहराईमें उतर जानेका क्या मतलब?

उत्तर :—जिस प्रकार 'डाई' लगाकर कुएँके तलमें जाकर थाह लेते हैं, उसी प्रकार आत्माके ध्रुवतलमें जाकर–वर्तमान पर्याय तो उथली–उथली है, और ज्ञायकका तल गहरा–गहरा ध्रुव है—वहाँ निवास कर। अंतरका पुरुषार्थ करके जो त्रिकाल ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, शांतभाव है वहाँ गहरे उतर जा। पर्याय तो ऊपर–ऊपर तैरती है, द्रव्यमें—ध्रुव सामान्य तत्त्वोमें—प्रविष्ट नहीं हुई है। पर्याय ध्रुव तत्त्वमें प्रविष्ट नहीं होती, परन्तु उसकी ओर उन्मुख होती है; पर्यायका लक्ष पर्याय पर था, उससे विमुख होकर ध्रुवकी ओर लक्ष किया इसलिये पर्याय गहरे तलमें गई ऐसा कहा जाता है।

अहाहा! बात बडी सूक्ष्म है! सत्य श्रवण भी भाग्यके बिना नहीं मिलता भाई!

त्रिलोकनाथ जिनेश्वर देव पूर्ण परमात्मा सीमंधर प्रभु महाविदेहमें विराजमान हैं। वहाँसे आयी हुई यह वाणी है।

बेन वहाँसे आयी हैं उनकी यह वाणी है। अहा! आया कुछ समझमें?

'कहीं रुकना मत।'

इतना ज्ञान प्राप्त कर लूँ, इतने शास्त्र पढ लूँ,–इस प्रकार कहीं बाह्यमें मत रुकना। पढ़नेसे पार नहीं आयगा भाई!

'अंतरसे खटका न जाय तबतक वीतराग दशा प्रगट नहीं होती।'

पहले यह करूँ और फिर वह करूँगा—इसप्रकार जब तक भीतर विकल्पका खटका रहेगा तब तक अंतरमें प्रवेश नहीं कर सकेगा। आजीविकाके साधन कुछ ठीकठाक हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जायँ, लड़के कमाने लगे तब निवृत्ति लूँगा। इस विचारमें नहीं रुकना भाई! ऐसी मान्यता में तो नहीं किन्तु शास्त्र-अभ्यास आदि विकल्पोंमें भी मत रुकना। तुझे अंतरमें ध्यानमें आ जाना चाहिये कि आनन्दघन ज्ञायक ध्रुव आत्मा वह कोई और ही वस्तु है! तो अब पुरुषार्थ करके वहाँ अंतरमें प्रवेश कर, बीचमें अन्यत्र कहीं रुकना नहीं।

दुनियाको कुछ उपदेश देकर फिर अंतरमें स्थिरता करेंगे। लोग धर्मोपदेश सुनें–समझें इतने दिन तो अभी बाहर रहना ही है फिर अंतरमें स्थिरताका प्रयास करेंगे। भाई! इस प्रकार यदि कुछ समय रुक गया तो फिर अंतरूतत्त्व हाथ नहीं आयगा। प्रभु! सिर पर मौत मँडरा रही है, कब यह शरीर छूट जायगा उसकी खबर नहीं है, दूसरे भवमें जानेसे पूर्व आत्माका हित कर ले।

बड़ी धामधूमसे विशाल रथयात्रा निकले, वीतराग जैनधर्मका जयजयकार हो,–उसमें कहीं आत्मा नहीं है; वह तो शुभरागका विकल्प हो और बाह्यमें क्रिया होना हो तो होता है; उसके साथ आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। उससे आत्माको किंचित् लाभ होगा–ऐसा मानकर बाह्यमें मत रुकना। अंतरसे खटका न जाय और विकल्प आते रहें कि यह करूँ, वह करूँ, इतना करनेके बाद अंतर स्थिरता करूँगा—इस प्रकर यदि वादे–बहाने करता रहेगा तो अंतरमें नहीं जा सकेगा; ज्ञायकका तल तुझे हाथ नहीं आयगा। अंतरका खटका जब तक न जाय तब तक वीतराग दशा प्रगट नहीं होती।

'बाहुबलिजी जैसोंको भी एक विकल्पमें रुके रहनेसे वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई।'

बाहुबलि मुनि थे। तीन कषायका अभाव था, एक संज्वलन कषाय शेष था। यह धरती भरतकी है—ऐसे एक विकल्पका किंचित् खटका होनेसे केवलज्ञान नहीं हुआ। अहाहा! जिसने हजारों रानियाँ छोड़ीं, राज्य छोड़ा, तीन कषायका अभाव करके निरन्तर आनन्द झरते प्रचुर स्वसंवेदनकी मुहर छापवाला-भावलिंग प्रगट किया, उनको भी—बारह महिने तक खड़े खड़े तपस्या की, शरीर पर बेलें लिपट गईं, भयंकर विषैले सर्प लिपट गये,—विकल्पके एक जरा से खटकेमें रुके रहनेसे वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई। सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है और सम्यक्चारित्र भी है। चारित्र है किन्तु अपूर्ण है, पूर्ण वीतराग चारित्र नहीं है। अहाहा! उनको भी एक खटकेमें रुक जानेसे सम्पूर्ण वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई।

'आँखमें किरकिरी नहीं समाती वैसे ही आत्मस्वभावमें एक अणुमात्र भी विभाव नहीं पुसाता।'

जिस प्रकार आँखमें एक रजकण जानेसे वहाँ बेचैनी बनी रहती है, आँसू बहते हैं, खटक–पीड़ा होती रहती है, उसी प्रकार जीवको ज्ञान एवं आनन्दमें सूक्ष्म भी रागका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंश रहे तब तक वीतरागता नहीं होती, केवलज्ञान नहीं होता। प्रवचनसारमें कहा है :—

देहादिमें अणुमात्र भी मूर्च्छाका हो सद्‌भाव जो।
तो सर्व आगमधर भले पाता नहीं सिद्धान्त को॥

यदि रागके साथ एकताके विकल्पमें रुक गया तो सम्यक्त्व नहीं होगा। यहाँ कहते हैं कि :—अस्थिरताके रागमें रुक गया तो वीतरागता नहीं होगी। अहाहा! आँखमें एक रजकण नहीं समाता, उसी प्रकार आत्मस्वभावमें अणुमात्र भी विभाव नहीं पुसाता, क्योंकि ज्ञायक प्रभु तो वीतराग स्वरूप है ना!

जब तक संज्वलन कषायका अबुद्धिपूर्वकका अति सूक्ष्म अंश भी विद्यमान हो तब तक पूर्ण ज्ञान—केवलज्ञान प्रगट नहीं होता।'

संज्वलन कषायका अबुद्धिपूर्वकका अंश भी जब तक है तबतक वीतरागता नहीं होगी। छठवें गुणस्थानमें तो अभी बुद्धिपूर्वक राग है; यहाँ तो अबुद्धिपूर्वकके कषायकी बात है। बाहुबलि मुनिराजको रागका किंचित् खटका था, वह निकल गया और उतर गये अंतरमें। एक क्षणमें निज चैतन्य भगवानकी केवलज्ञानस्वरूप झिलमिलाती ज्योति—अरिहंत पद—प्राप्त की।

अहाहा! अबुद्धिपूर्वक—ख्यालमें न आये इतना सूक्ष्म—रागका एक भी अंश अव्यक्तरूपसे रहा हो तब भी वीतरागता तथा केवलज्ञान नहीं होता; तो अरे! भीतर रागके कणका प्रेम और उसकी रुचिमें पड़ा हो उसे सम्यग्दर्शन हो—यह तीन कालमें नहीं हो सकता।

करुणासागर गुरुदेव करुणासे कहते थे : भाई! करना तो तुझे ही है न? तेरे उपादानको तैयार करके, गुणोंका भण्डार जो ज्ञायकदेव उसकी शरणमें जा। उसकी शरणमें जाते ही तेरे अनादिकालके मिथ्यात्व आदि दोष सहज ही टल जायेंगे। दोष टलनेका यही एक उपाय है। एक ज्ञायकभावका आश्रय लेते सभी दोषोंका एक साथ यथासंभव आंशिक नाश होता है इसलिये तू किसी भी प्रकार ज्ञायकका आश्रय ले।

—पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५५

ता. २–८–७८

वचनामृत–१५२

आत्माको पहिचानकर स्वरूपरमणताकी प्राप्ति करना ही प्रायश्चित्त है।

शुद्ध एवं पूर्णस्वरूप ज्ञायक आत्माका ज्ञान करना, सच्ची पहिचान करके उसमें रमणता करना उसे प्रतिक्रमण कहो, आलोचना कहो, प्रत्याख्यान कहो अथवा प्रायश्चित्त कहो, वह सब एक है—आत्माका शुद्ध भाव है। बाह्यमें कोई किसी पापका प्रायश्चित्त ले वह तो शुभ भाव है, राग है। रागरहित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माको जाने बिना रमणता काहेमें? और स्वरूपरमणता बिना चारित्र–प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण तथा प्रायश्चित्त–कहाँ से आये? इसलिये प्रथम वीतराग स्वरूप निज आत्माकी पहिचान कर। सर्व प्रथम यह करना है। वैसे, प्रथम नव तत्त्वोंका विकल्पोंसे विचार करना ऐसा आता है, परन्तु वह मूल वस्तु नहीं है।

ज्ञान, आनन्द, प्रभुता, स्वच्छता आदि अनन्तानन्त गुणरत्नोंके भण्डार—गुणरत्नाकर—ऐसे निज ज्ञायकप्रभुको ज्ञानकी वर्तमान दशामें मुख्य ज्ञेय बनाकर उसकी पहिचान कर; पश्चात् अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति ऐसे निज भगवान आत्मामें जो विशेष लीनता—रमणता करना उसे प्रायश्चित्त, धर्म, संयम और चारित्रादि कहा जाता है।

प्रश्न :—बाह्य शुद्धि बिना अंतरमें कैसे प्रवेश करें?

उत्तर :—शुद्धि बाह्यमें है ही नहीं, अंतरंग शुद्धि ही सच्ची शुद्धि है। रागकी मन्दता, शुभराग–बाह्य शुद्धि लाख–करोड़ करे, अरे! 'मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो'–ऐसा अनंतबार किया, परन्तु वह सच्ची शुद्धि नहीं है, अशुद्धि है; क्योंकि रागकी मन्दता करने पर भी 'निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो'। बाह्य मंद कषायके ऊपरसे दृष्टि उठाकर एकदम पुरुषार्थ करके अंतरमें अकषाय शान्त ज्ञायक स्वभावकी गहराईमें उतर जा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा। अहा! यह तो तात्त्विक सम्पत्तिकी बात है!

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नियमसारके प्रायश्चित अधिकारमें आया है न!–धर्मी जीवको प्रायः चित्त अर्थात् प्रकृष्टरूपसे चित्त (-ज्ञान) है। बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं। उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म वह वास्तवमें परम बोध है। ऐसे बोधको—चित्तको—ज्ञानको जो नित्य धारण करते हैं उन ज्ञानीको वास्तवमें सच्चा प्रयाचित्त है।

जीव धर्मी है और ज्ञानादिक उसके धर्म हैं। परम चित्त अथवा परम ज्ञानस्वभाव जीवका उत्कृष्ट विशेष धर्म है। इसलिये स्वभाव–अपेक्षासे जीवद्रव्यको प्रायः चित्त है अर्थात् प्रकृष्टरूपसे ज्ञान है। जो ज्ञानी ऐसे चित्तको (–परम ज्ञानस्वभावको) श्रद्धते हैं और उसमें लीन रहते हैं उनको निश्चय–प्रायश्चित्त है।

अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका पिण्ड ऐसा जो अंतरमें अपना परमात्मस्वरूप है उसका प्रकृष्ट रूपसे–विशेष रूपसे बोध करना, उसकी पहिचान करके स्वरूपमें लीनता प्राप्त करना ही प्रायश्चित्त है। अहा! यह कोई साधारण बात नहीं है। अनादि भव प्रवाहमें अनंतबार पंचमहाव्रत धारण किये, क्रियाकाण्ड किये, भक्ति की, करोड़ों और अरबोंके खर्च से मन्दिर बनवाये, लेकिन उससे क्या? वे भाव तो शुभ हैं; उनसे पुन्य होता है, धर्म नहीं होता। आत्माका स्वभाव जो ज्ञान–बोध–चित्त, आनन्द, शान्ति एवं वीतरागता आदि हैं उनकी, 'आत्मा धर्मी और ज्ञानादि उसके धर्म; ऐसा भेद किये बिना, ज्ञानकी वर्तमान पर्यायमें पहिचान करके, स्वरूपरमणता करना ही सच्चा प्रायश्चित्त एवं धर्म है। अहा! शब्द तो सरल हैं किन्तु भाव बड़े गहरे हैं।

प्रश्न :—पहले दान, शील, तप आदि कुछ करें तो फिर धर्म होगा ना?

उत्तर :—भाई! ऐसा है ही नहीं। पहले मन्द कषाय करें, भक्ति, पूजा, व्रत या तप करें तो फिर धर्म होगा–ऐसी बात नहीं है। अपने त्रैकालिक आनन्दस्वरूपके आश्रयसे निर्मल आनन्द पर्याय रूपसे स्वयं परिणमित होकर उसे अपनेमें रखा वही सच्चा दान अर्थात् सम्प्रदान है। बाह्यमें दो–चार करोड़ रुपये खर्च कर दिये उससे दान और धर्म हो गया–ऐसा बिलकुल नहीं है।

पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दादि अनंतानंत अपार शक्तियोंका महागम्भीर सागर, सहज सुख–शान्ति आदि अनंत गुणरत्नोंका भण्डार,–ऐसा जो यह ज्ञायक भगवान आत्मा उसे पहिचानकर अंतरस्वरूपमें रमणता प्राप्त करना वह चारित्र है। चारित्र अर्थात् प्रचुर स्वसंवेदन सहित निज स्वरूपमें चरना, रमना, स्थिर हो जाना, भीतर अतीन्द्रिय आनन्दका आहार करना। अहा! ऐसी बात है भाई! यह बात जगतसे बिलकुल भिन्न है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—१५३

राजाके दरबारमें जाना हो तो आसपास घूमता रहता है और फिर एकबार अन्दर घुस जाता है; उसी प्रकार स्वरूपके लिये देव-शास्त्र-गुरुकी समीपता रखकर अन्दर जाना सीखे तो एकबार निज घर देख ले॥१५३॥

'राजाके दरबारमें जाना हो तो आसपास घूमता रहता है और फिर एकबार अन्दर घुस जाता है।'

कोई बड़ा राजा हो और उससे मिलने जाना हो तो पहले महलके—राजदरबारके—पास आना, अन्दर जानेके लिये वहाँ आसपास घूमना और मौका पाकर एकबार भीतर चले जाना, तब राजा देखनेको मिलेगा।

'उसी प्रकार स्वरूपके लिये देव-शास्त्र-गुरुकी समीपता रखकर अन्दर जाना सीखे तो एकबार निज घर देख ले।'

सहज ज्ञान, सहज आनन्द एवं सहज वीतरागताका—शान्तिका पिण्ड ऐसे त्रैकालिक ज्ञायक भगवान आत्माका स्वरूप समझने—प्राप्त करनेके लिये प्रथम सच्चे देव-शास्त्र-गुरुकी समीपता रखकर—उसके द्वारा उपदिशत मूल प्रयोजनभूत निज ज्ञायक तत्त्वकी महत्ता हृदयमें रखकर—भीतर जाना सीखे तो एक बार निज घर देख ले—त्रैकालिक निज वीतराग स्वरूप प्राप्त कर ले। सर्व जिनवचनका तात्पर्य भी यही है कि वीतरागता प्रगट कर।

श्रीमद्के भक्त भी ऐसा कहते हैं कि :—'गुरुकी आज्ञा...' परन्तु गुरुकी आज्ञा क्या? भीतर आत्मामें जाना, वीतरागता प्रगट करना—वही भगवानकी, शास्त्रकी—दिव्य ध्वनिकी तथा गुरुकी आज्ञा है। अंतरमें भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका पाताल कुआँ है। उसके स्वरूपकी प्राप्तिके लिये देव-शास्त्र-गुरुकी समीपता होती है, परन्तु वे निमित्त ऐसा कहते हैं कि—तू भीतर जा, अंतरमें अपने स्वरूपकी समीपता कर। आनन्दघनजी कहतें हैं :—

'वीरपणुं ते आतम ठाणे जाण्युं तुमची वाणे रे;
ध्यान विन्नाणे शक्ति प्रमाणे, निज ध्रुव पद पहिचाणे रे।'

हे वीर प्रभु! वीर्यका पिण्ड और आनन्दका कन्द वह सब भगवान आत्माके स्थानमें है ऐसा आपकी आज्ञासे, आपकी दिव्यध्वनिसे मैंने जाना; परन्तु अंतरमें स्वरूपके समीप आकर जानना, उसका अतीन्द्रिय अनुभव करना वह मेरा कर्त्तव्य है। ज्ञान अंतरका, ध्यान अंतरका, पूर्ण होनेका उत्साह—वीर्य भी अंतरका? अपने वर्तमान पुरुषार्थमें अंतर्मुख स्फुरण होना, प्रेरणा करना वह वीर्य। अहा! कठिन लगेगा लोगोंको।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :— यह तो आप निश्चयकी बातें करते हैं!

उत्तर :— निश्चय अर्थात् यथार्थ। परम सत्य यही है भाई! प्रौढ़ विवेकवान निश्चयके जो अजान हैं वे परमार्थ सत्य ऐसे निज भगवान समयसारको प्राप्त नहीं होते–अनुभवते नहीं हैं।

अनुभव होनेके पश्चात् स्वरूपमें पूर्ण स्थिरता होती है। पूर्णता न हो तब तक बीचमें व्यवहार–पूजा–भक्ति तथा व्रत–तपादिके भाव–आता है परन्तु वे भाव बंधका कारण हैं; अपने ध्रुव ज्ञायक स्वभावका जितना अवलम्बन लेकर अंतर स्थिरता करे उतना मोक्षका मार्ग तथा अबंध परिणाम है। अपने स्वभावका अवलम्बन छोड़कर जितना परद्रव्यका चाहे समवसरणमें विराजमान तीर्थंकर भगवान हों, उनके प्रति भी–विकल्प है वह सब राग है; वह शुभ भाव धर्म नहीं है। अपने त्रैकालिक स्वद्रव्यके सिवा दूसरेका अवलम्बन लेने जायगा तो राग ही होगा। अहा! बड़ी सूक्ष्म बात है!

वीतराग निज स्वरूपकी प्राप्तिके लिये वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी समीपता रखकर भीतर प्रवेश कर लेना। अंतरमें जाना सीखे, पूर्णानन्द स्वरूपमें प्रवेश करना आजाय अर्थात् स्वरूपको जाननेका प्रयत्न कर ले, तो एकबार निज घरमें प्रवेश हो जाय। पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि :—

हम तो कबहुं न निज घर आये....(२)
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये।...हम तो०

पर पद निजपद मान मगन ह्वै, पर परनति लपटाये;
शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये।...हम तो०

मैं सेठ हूं, रंक हूँ; मैं पण्डित हूँ, मूर्ख हूँ, मैं देव हूँ, मनुष्य हूँ, पशु हूँ, मैने पुण्य किया, मैने पाप किया—ऐसा मानता आया है; शास्त्र पढ़कर पण्डित भी अनेक बार हुआ है; परन्तु अन्तरमें–निज घरमें क्या है वह नहीं देखा, वहाँ प्रवेश नहीं किया। अतीन्द्रिय वीतराग आनन्द मूर्ति जो निज ज्ञायक प्रभु, उसके सन्मुख एकबार भी जाय, उसका आश्रय एक समय भी ले, तो अंतरमें निज घरको देख ले।

अंतरमें जाना सीख ले तो वहाँ कौनसी वस्तु है उसका ज्ञान हो। देव-शास्त्र-गुरुकी समीपता रखकर अंतरमें जानेको कहा, परन्तु वास्तवमें तो अपना देव और गुरु तू स्वयं ही है। समझने योग देव भी तू है और समझानेवाला गुरु भी तू है। हम तुझे क्या समझायें? तू स्वयं अपने आत्माको समझा कि–अरे, आत्मा! तू अंतरमें आनन्द स्वरूप है, वहाँ जा! अहा! ऐसी बातें है! बाहरकी 'हो–हा'में जीवन चला जा रहा है भाई! स्वरूपमें जाना सीखकर एक बार निज घर देख ले, तो तुझे अपूर्व आनन्द एवं शान्ति प्राप्त होगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—१५४

जिसे जिसकी रुचि हो उसे वही सुहाता है, दूसरा बाधारूप लगता है। जिसे यह समझनेकी रुचि हो उसे दूसरा नहीं सुहाता। 'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे वादे नहीं होते। अंतरमें प्रयास बना ही रहता है और ऐसा लगता है कि मुझे अब ही करना है॥१५४॥

'जिसे जिसकी रुचि हो उसे वही सुहाता है, दूसरा बाधारूप लगता है।'

जिसे जिसकी आवश्यकता हो उसे वही रुचता है, जिसे भगवान आत्माकी रुचि हो उसे वही अच्छा लगता है, सुखरूप दिखाई देता है, ओर सब बाधारूप लगता है। बीचमें देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आदिका शुभ विकल्प आये, परन्तु वह दुःखरूप लगता है। अंतरमें आनंद स्वरूपकी रुचिमें भगवान आत्मा सुखरूप लगता है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! लोगोंने धर्मके मार्गको छिन्न–भिन्न कर दिया है; किसीने किसीमें और किसीने किसीमें धर्ममाना है ले लो आजीवन ब्रह्मचर्य; कपड़े उतारो और हो जाओ नग्न; परन्तु भाई! उसमें धूल भी धर्म नहीं है। ऐसा बाह्य नग्नपना तो अनन्तबार धारण किया है। आत्मा कि जिसमें रागकी वृत्तिके कपड़े भी नहीं हैं, ऐसी त्रैकालिक ज्ञायक वस्तुको प्रथम जानकर–उसका अनुभव करके जिसे निज घरमें जाना है उसे दूसरा सब दुःखरूप लगता है।

धर्मी जीवको अपना आत्मा ही रुचता है, रागादि आयें वे अच्छे नहीं लगते, दुःखरूप लगते हैं, बोझरूप लगतें हैं।

प्रश्न :—क्या यह निश्चयाभास नहीं है?

उत्तर :—नहीं; यह सच्चा निश्चय है। व्यवहार हो परन्तु उससे निश्चय हो वह बात बराबर नहीं है। निमित्त हो परन्तु उससे उपादानमें कोई कार्य हो—ऐसा भी नहीं है। देव-गुरुके कारण अपनेको धर्म हो जाय—ऐसा भी नहीं है।

प्रश्न :—देव–गुरुकी समीपतामें होता है या नहीं?

उत्तर :—समीपताका अर्थ क्या? समीपता कब कही जाती है? वही यहाँ कहते हैं : स्वयं अंतरमें समझे, आत्माकी समीपता—मुख्यता—अग्रता रखकर अंतरमें जाना सीखे तो धर्म और शान्ति हो।

प्रश्न :—निमित्तसे कुछ नहीं होता, तो मुमुक्षुजन किसलिये सोनगढ़ आते हैं?

उत्तर :—'निमित्तसे कुछ नहीं होता' इस बातको स्वयं अपने द्वारा अंतरसे दृढ करता है, वहां बाह्यमें ऐसे सत्समागमका योग होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—सत्समागमरूप निमित्तसे दृढता तो होती है ना?

उत्तर :—दृढ़ता स्वयं अपनेसे करता है, निमित्तसे नहीं। मार्ग तो ऐसा है भाई! तथा गुरु–आज्ञाके बिना धर्म हो—ऐसा भी नहीं है; परन्तु उसका अर्थ क्या? गुरु आज्ञामें क्या कहते हैं कि—हमारा आश्रय छोड़ और अपने द्रव्यस्वभावका आश्रय कर। —ऐसा गुरु कहते हैं।

आज कल तो उपदेशमें बड़ी विपरीतता चल रही है। उपदेशक कहते हैं की—व्रत करो, तप करो, त्याग करो, परन्तु यह तो उल्टा उपदेश है, आत्माकी प्रतीति बिना सच्चे व्रत, तप कैसे? दुनिया बावली–पागल है; पागल जिसे पसन्द करे उससे आत्माको क्या? दुनिया प्रमाणपत्र दे इसलिये धर्मी? जिसे अपने स्वरूपकी प्रतीति नहीं है उसके प्रमाण-पत्रका मूल्य क्या? 'मिली भव्यता बहु सन्मान'....भगवान कहें कि यह जीव भव्य, योग्य तथा आत्मार्थी है, तो फिर तुझे किसका सन्मान चाहिये? देव-गुरुका उपदेश वीतरागताका है। तुम हमारी ओरका राग करो और उसके क्रमानुसार धर्म एवं कल्याण होगा; पहले अशुभ टालकर शुभ करो, पश्चात् शुभ दूर होकर धीरे-धीरे शुद्ध होगा—ऐसा उपदेश वीतराग भगवानका नहीं है।

जिसे शुद्ध चिदानन्द प्रभु भगवान आत्मा रुचता है, अच्छा लगता है उसे दूसरा सब अड़चनरूप लगता है। सम्यग्ज्ञानीको व्यवहारके भाव आते हैं, परन्तु वे अंतरकी साधनामें बाधारूप, दुःखरूप लगतें हैं। अहा! ऐसी बात है।

'जिसे यह समझनेकी रुचि हो उसे दूसरा नहीं सुहाता।'

जिसे चिदानन्दस्वरूप आत्मा समझनेकी रुचि है उसे दूसरी कोई वस्तु नहीं रुचती—अच्छी नहीं लगती। मात्र एक आत्मा, आत्मा और आत्मा; प्रभु! वह तू ही है। अपने शुद्ध स्वभावकी 'अस्ति'में दूसरी सब वस्तुओंकी 'नास्ति' है। जिसने स्वद्रव्यको दृष्टिमें लिया उसे अन्य सब देव-गुरु तक—अपना द्रव्य नहीं हैं इस अपेक्षासे अद्रव्य दिखायी देते हैं। बाह्य वस्तु यह द्रव्य नहीं है इसलिये अद्रव्य–परद्रव्य है।

अध्यात्मकी सूक्ष्म दृष्टिसे स्वद्रव्य-परद्रव्य की व्याख्या इस प्रकार है–'स्वद्रव्य' अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु; 'परद्रव्य' अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना। 'स्वक्षेत्र' अर्थात् आधार मात्र प्रदेश; 'परक्षेत्र' अर्थात् वस्तुका जो आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप कहा, वही प्रदेश सविकल्प भेदकल्पनासे परप्रदेश बुद्धिगोचररूपसे कहा जाता है। 'स्वकाल' अर्थात् वस्तु मात्रकी मूल अवस्था; 'परकाल' अर्थात् द्रव्यकी जो मूल निर्विकल्प अवस्था वही अवस्थान्तर—भेदरूप कल्पनासे 'परकाल' कही जाती है। 'स्वभाव' वस्तुकी मूल सहज शान्ति; 'परभाव' अर्थात् द्रव्यकी सहज शक्तिके पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेद–कल्पना। यह बात समयसार-कलश-टीकामें २५२वें श्लोकके भावार्थमें आयी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जहाँ अपनी एक समयकी विशेष पर्यायको–केवलज्ञानकी एक समयकी क्षायिक पर्यायको भी, अपने द्रव्यकी मूल अवस्थारूप 'स्वकाल'की अपेक्षासे अवस्थान्तर—भेदरूप कल्पनासे 'परकाल' कहा, वहाँ देव-शास्त्र-गुरुकी तो बात ही कहाँ रही? वह तो स्पष्ट परद्रव्य है, इस निज आत्माकी अपेक्षासे 'अद्रव्य' है। अहाहा! जिसे अपने द्रव्यका—ज्ञायक स्वभावका—निज वैभव समझनेकी रुची है उसे दूसरा कुछ नहीं रुचता।

'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे वादे नहीं होते।'

आजकल व्यापार अच्छा चल रहा है; कुछ दिन तक वह कर लूँ फिर आत्माका करूँगा–ऐसे वादे और बहाने नहीं चलते। अपनी निज वस्तुका निर्णय फिर करूँगा, कल करूँगा—ऐसे वादे करनेवालेका 'कल' कभी आयगा ही नहीं और अपना हित कभी करेगा ही नहीं। आया कुछ समझमें?

प्रवचनसारमें कहा है : स्याद्वाद विद्याके बलसे विशुद्ध भेदज्ञानकी कला द्वारा निज सहज ज्ञायक तत्त्वको प्राप्त करके आज परमानन्द परिणामरूप परिणमो—उस ज्ञानानन्द स्वरूप निज आत्माको ही आत्मा आज अनुभवो—कारण कि इस लोकमें अन्य कुछ उत्तम नहीं है, निज चैतन्य ही एक उत्तम तत्त्व है।

अपने स्वरूपकी प्रतीति आज अभी इसी समय कर ले, 'कल करूँगा'के वादे मत कर। समयसारमें आचार्यदेव कहते हैं कि—यह जो **एकत्व विभक्त आत्मा** तुझे दर्शाता हूँ, उसे तू स्वयं ही अपने अनुभव प्रत्यक्षसे परीक्षा करके **प्रमाण करना**। यह ठीक है, अच्छी बात है—ऐसे विकल्पसे नहीं, परंतु अंतरसे उसका स्वीकार करना।

प्रश्न :—इस पंचमकालमें आत्माकी प्रतीति जल्दी हो सकती है?

उत्तर :—एक क्षणमें हो सकती है। पंचमकाल क्या करेगा? आत्मामें काल कहां है? यह भगवान आत्मातो कालके पार विराजता है। कालकी तो आत्मामें नास्ति है। भाई! यह तो महान पुरुषार्थका कार्य है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने कहा कि–अनुभव करके प्रमाण करना; यह पंचमकालके प्राणीसे कहा है। भाई! यह तो वीरका मार्ग है, इसमें कायरका काम नहीं।

'वीरका मारग है शूरोंका, कायरका नहीं काम;
सर्व प्रथम मस्तक रखकर, फिर लेना प्रभुका नाम।'

आत्माकी प्राप्ति अभी नहीं हो सकती–ऐसा कहकर वादे–बहाने करनेवाले कायरको तो अभी नहीं ही हो सकती। 'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे बहानेमें वह रह ही जायगा। एक वणिकके यहाँ भोज था। बोर्ड पर लिखा था कि 'आज वणिक जीमेंगे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और कल ब्राह्मण।' दूसरे दिन ब्राह्मण जीमने आये, लेकिन वणिकने कहा : बोर्ड पर क्या लिखा है वह पढ़ लो; 'कल ब्राह्मण जीमेंगे।' वणिक की कल कभी आये नहीं और ब्राह्मण कभी जीमेंगे नहीं। उसी प्रकार 'अभी नहीं, अभी नहीं' इस प्रकार वादे—बहाने करता रहता है उसका 'कल' कभी आयेगा नहीं और आत्माकी पहिचान कभी होगी नहीं।

श्रीमद् कहते हैं ना!–

वचनामृत वीतरागके, परम शांतिरस मूल;
औषधि जो भवरोगके, कायरको प्रतिकूल।
—रे गुणवंता ज्ञानी! अमृत बरसा पंचमकालमें

परमानन्दका नाथ प्रभु अंतरमें विराजता है, उसके सन्मुख देखे उसे 'काल' कहाँ बाधक है? एक समयमें आत्मा कुलाँट खाकर अंतर्मुख हो जाता है! मेरी वस्तु मेरे पास ही है, शुद्ध आनन्दघन प्रभु मैं ही हूँ, दया अथवा भक्ति आदिका शुभराग भी मेरा नहीं है। शरीरको न देख, रागको न देख, एक समयकी पर्यायको या गुण भेदको भी न देख; अंतरमें पूर्णानन्द आदि अनंत गुणोंका अभेद पिण्ड ऐसे निज ज्ञायक द्रव्य पर दृष्टि दे। अहाहा! दिगम्बर संतोकी यह वाणी! अंतरसे प्रस्फुटित होती! सत्‌की भनक पैदा करती! ऐसी वाणी अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

'अंतरमें प्रयास बना ही रहता है और ऐसा लगता है कि मुझे अब ही करना है।'

पूर्णानन्दका पिण्ड भगवान आत्मा जो भीतर विराजता हैं वह तुझसे दूर रहेगा? वर्तमान वर्तती एक समयकी पर्यायके निकट ही ध्रुव तत्त्व विद्यमान है। उसकी ओर दृष्टि करके एक बार हाँ तो कह! उसका अंतरसे स्वीकार तो कर! हाँ कहनेसे हालत (अवस्था) हो जायगी; उसका अंतरसे स्वीकार करते करते अतीन्द्रिय आनन्दकी अवस्था हो जायगी। 'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे वादे मत कर। आत्मार्थीके अंतरमें आत्मप्राप्तिका प्रयास सतत चलता ही रहता है, उसकी लगन लग जाती है अंतरमें ज्ञायक ज्ञायक ज्ञायक—भगवान पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभुका ऐसा रटन चलता है—ऐसा पुरुषार्थ बना ही रहता है, उसे ऐसा लगता है कि मुझे अपना काम—भगवान आत्माकी प्राप्ति अभी हाल करना है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—१५५

जिसने भेदज्ञानकी विशेषता की है उसे चाहे जैसे परिषहमें आत्मा ही विशेष लगता है॥१५५॥

क्या कहते हैं? जिसने रागसे विरक्ति तथा स्वरूपमें एकता की है उसे सदा सर्व प्रसंगोमें, चाहे जैसे परिषहमें भी, एकत्व–विभक्त निज ज्ञायक प्रभु ही विशेष लगता है।

रागसे भिन्न स्व द्रव्यमें जिसकी दृष्टि लगी है वह अभिप्रायमें रागसे पृथक् हो ही गया है, उसे सदा आत्मा ही विशेष रहता है। आगे बढ़कर जिसने भेदज्ञानकी विशेषता की है, (निर्मलतामें अतिशयता आयी है) उसे चाहे जैसे परिषह आयें, चाहे जितनी प्रतिकूलता हो, शरीरको जलाकर राख कर दे, पच्चीस हाथ लम्बे सँकरे नलमें खड़ा डाल दे जहाँ हाथ-पैर हील न सकें, वायुका जिसमें प्रवेश न हो—ऐसे किन्ही भी प्रतिकूल संयोगोंमें ऐसा लगता है कि—अहा! यह तो मेरी स्वरूप स्थिरताकी कसोटीका प्रसंग है। वहाँ उन्हें (स्थिरताकी अपेक्षासे भी) अंतरात्माकी ही विशेषता लगती है। अहा! यह भेदज्ञान क्या वस्तु है! यहाँकी प्रतिकूलताकी तो साधारण बात कही है; परन्तु सम्यग्दृष्टि सातवें नरकमें होता है वहाँ भी भेदज्ञान होता है। वहाँकी प्रतिकूलताकी क्या बात कही जाय! जहाँ जन्मसे ही सोलह असाध्य रोग होते हैं; तथापि अपने ध्येयसे रंचमात्र च्युत नहीं होते। उन्हें निज ज्ञायक आत्मा ही विशेष लगता है।

ज्ञानीको चाहे जैसे भीषण परिषहमें भी आनन्द निधान निज आत्मा ही विशेष लगता है; जगतकी कोई अन्य वस्तु विशेष नहीं लगती।

*

बेनसे बोला गया अंतरमेंसे। वहाँसे (विदेह क्षेत्रसे) आयी हुई बात है। बेन वहांसे आयी हैं।....बेन (लड़कियोंके सामने)बोलीं और लिखी गयी, नहीं तो बाहर आती ही कहाँसे? (यह सब) पत्थरोमें उत्कीर्ण होना है (संगमरमरके पटियोंमें)

—पू. गुरुदेव.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५६

ता. ३–८–७८

वचनामृत–१५६

करना तो एक ही है–परसे एकत्व तोड़ना। परके साथ तन्मयता तोड़ना ही कार्य है। अनादि अभ्यास होनेसे जीव परके साथ एकाकार हो जाता है। पूज्य गुरुदेव मार्ग तो बिलकुल स्पष्ट बतला रहे हैं। अब जीवको स्वयं पुरुषार्थ करके, परसे भिन्न आत्मा अनंतगुणोंसे परिपूर्ण है उसमेंसे गुण प्रगट करना है॥१५६॥

'करना तो एक ही है–परसे एकत्व तोड़ना।'

जिसे धर्म करना है उसे प्रथम यह एक ही कार्य करना है कि देहादि परपदार्थोंके साथ एकत्वकी मान्यता तोड़ना। 'एकत्वनिश्चयगत' और 'एकत्वविभक्त' आत्माकी बात, आचार्य कहते हैं, मैं कहूँगा। क्या कहूँगा? ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभाववाले इस भगवान आत्माको अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सदा एकत्व है और पुण्य–पापके विभाव तथा परपदार्थसे सदा भिन्नत्त्व है।

नव तत्त्व हैं ना? उनमें शरीर, वाणी और मन वह तो अजीव–पुद्गलद्रव्य हैं; हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, व्यापार–धन्धा आदिके भाव पापतत्त्व हैं; और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और तीर्थयात्रा आदिके भाव वे शुभ–पुण्य तत्त्व हैं। यहाँ तो कहते हैं कि–आत्माका हित करना हो, कल्याण करना हो, तो परसे तथा विभावसे आत्माका एकत्व तोड़ना वही एक करना है।

अंतरमें ज्ञायक तत्त्व क्या वस्तु है उसकी तुझे अनादिकालसे खबर नहीं है। शरीर, वाणी और मन तो मिट्टी–धूल है। उसकी जो अवस्था होती है वह तो उनके कारण होती है, आत्माके कारण नहीं। भगवती चैतन्यज्योति शरीरादि पुद्गलसे तो भिन्न है ही, परन्तु अंतरमें पुण्य–पापके विभावसे भी बिलकुल भिन्न है। जिसे आत्मकल्याण करना हो, चोरासी लाख योनिमें जन्म-मरणके फेरे टालना हो, उसे अतीन्द्रियज्ञान एवं

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द जिसका सहज स्वरूप है ऐसे आत्मतत्त्वके साथ एकत्व और पुण्य–पापके विभावसे पृथक्त्व—यह एक ही करना है, परके तथा विभावके साथ एकत्व तोड़ना है।

अरेरे! नरक तथा पशुमें–कीड़ा, कौआ और कुत्ता आदि योनियोंमें जन्म–मरण करके तेरा दम निकल गया, भाई! अहा! नरकके दुःखकी क्या बात कहें! भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ कहते हैं कि–करोडों भवमें करोड़ों जीभसे न कहे जा सकें ऐसे दुःख वहां हैं। भाई! वे दुख तूने अनंत बार सहे हैं। प्रभु! तू नरक और निगोदमें—लहसुन, प्याज, सेवार (काई) आदिमें अनंतकाल तक रहा है। भाई! तूझे खबर नहीं है की तू कौन है, कहाँ था और कैसे भटकता फिरा। यहाँ यही कहते हैं भाई! तू एकबार सुन तो सही! अंतरमें सच्चिदानन्द भगवान राग एवं विभावसे भिन्न विराजता है। यदि जन्म–मरणका अन्त करना हो तो एक ही करना है कि–परसे एकत्व तोड़ना। बाकी तो सब बातें हैं।

अहा! 'परसे एकत्व तोड़ना है'–यह महा सिद्धांत है। डॉक्टरी इन्जेक्शनोंकी अपेक्षा इस सिद्धांतके इन्जेक्शन भिन्न प्रकारके हैं। अंतरमें शीतल-शीतल शान्त स्वभाव चैतन्यचन्द्र ज्ञायक आत्मा वीतराग अकषाय स्वरूपसे विराजमान है। अब, यदि तुझे धर्म करना हो, अतीन्द्रिय शान्ति प्राप्त करना हो तो उसे पुण्य–पापके विभावसे पृथक् कर दे। रागका लक्ष छोड़कर अंतरमें जहां भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूपसे विराजमान है, वहाँ जा।

'परके साथ तन्मयता तोड़ना ही कार्य है।'

पाप-पुण्यके विकल्पकी वृत्तिमें जो तन्मयपना मान रखा है उसे तोड़ना पड़ेगा भाई! जीवने अज्ञानभावसे दया, दान, व्रत, भक्ति, तथा व्यापारादिके शुभाशुभ परिणामोंके साथ तन्मयपना मान रखा है, परन्तु वास्तवमें आत्माको उनके साथ तन्मयता नहीं है। अहा! बड़ी सूक्ष्म बातें हैं! लोगोंने कहीं न कहीं धर्मकी कल्पना कर रखी है! बाह्यमें दयाका पालन करना, व्रत–उपवासादि करना, उसमें कहीं–किंचित् भी धर्म नहीं है। वह कर–करके मर जाय तब भी उनसे जरा भी आत्मशांति या धर्म नहीं है। वह तो रागरूपी क्लेश है; क्लेशभावसे कहीं धर्म या आत्मशान्ति होती है? भाई! तुझे खबर ही नहीं है कि धर्म क्या वस्तु है। यहां तो कहते हैं कि–धर्म करना हो अंतरमें अतीन्द्रिय आत्मशान्ति प्राप्त करना हो, तो परके तथा विभावके साथ जो मान्यता में तन्मयता कर रखी है उसे तोड़ना होगा। जीवको सर्व प्रथम वही करना है।

'अनादि अभ्यास होनेसे जीव परके साथ एकाकार हो जाता है।'

यह आत्मा अनादिका है वह खबर है? है, है और है परन्तु अनादि कालसे उसे पर तथा रागके साथ एकाकारपनेका अध्यास हो गया है, पर पदार्थ शरीरादिकी जो क्रिया होती है वह तो स्वतंत्र जड़के कारण है; उसमें आत्माका कोई अधिकार नहीं है;

१२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु पुण्य–पापके विभाव उत्पन्न होते हैं वे भी तेरे मूल स्वभावमें तन्मय नहीं हैं; उनमें तू नहीं है और वे तुझमें नहीं है। तथापि अनादि अभ्यासके कारण पर तथा विभावके साथ एकाकारपना मान बैठा है, वह विपरीत मान्यता तोड़ना है।

तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ भगवानका यह आदेश है कि–प्रभु! तुझे अपना उद्धार करना हो, चौरासी लाखके अवतारों से—जन्म-मरणके दुःखोंसे—बचना हो, तो राग एवं पुण्यके साथ जो एकाकारपना हो गया है उसे तोड़कर, अंतरमें त्रैकालिक सहज ज्ञायक प्रभुके साथ एकाकार हो, वर्तमान पर्यायको परसे तथा विभावसे विमुख करके अपने ध्रुव चैतन्यतत्त्वके साथ तन्मय कर। अरे, एकबार वह कर तो देख; ऐसा करनेसे तुझे अपूर्व अतीन्द्रिय आत्मशांति एवं आनन्द प्राप्त होगा। परन्तु अरेरे! सांसारिक पापोंमें पड़े हुए जीवको यह समझनेका समय ही कहाँ है? कदाचित् एकाध घंटा सुननेका समय मिले तो वहाँ 'व्रत और तप करो' ऐसा कहकर कुगुरु उसका समय लूट लेते हैं। बड़ी कठिन बात है भाई!

'पूज्य गुरुदेव मार्ग तो बिलकुल स्पष्ट बतला रहे हैं।'

यहां तो साफ बात है। शरीरकी या परकी क्रिया आत्मा तीन कालमें नहीं कर सकता। तुझमें जो पुण्य पापके भाव होते हैं वे राग एवं दुःखरूप हैं। उनसे भिन्नता करने पर उनके साथ एकत्व तोड़नेसे तुझे अतीन्द्रिय सुख होगा।इसके सिवा सुखका कोई उपाय नहीं है। दूसरा कुछ करने जायगा तो भटक जायगा, मर जायगा। अहा! आया कुछ समझमें?

प्रश्न :—यह करोड़पति और अरबपति तो सुखी हैं ना?

उत्तर :—वह धूलका सुख है? उन्होंने तो 'सम्पत्तिमें सुख है' ऐसा मानकर दुःखका पहाड़ सिर पर पटक रखा है। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा भीतर विराजमान है उसे उन्होंने देखा नहीं है, माना नहीं है और बाह्यमें यह सब 'मेरा मेरा' करके मर रहे हैं। इसलिये यहाँ कहते हैं कि :—

'अब जीवको स्वयं पुरुषार्थ करके, परसे भिन्न आत्मा अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण है उसमेंसे गुण प्रगट करना है।'

आत्माकी जो वर्तमान वर्तती दशा, वर्तमान पलटती पर्याय है उसके समीप ही अंतरमें पूर्ण ध्रुव ज्ञायक तत्त्व विद्यमान है; उसे पुरुषार्थ करके परसे तथा शुभाशुभ विकारसे पृथक् कर।

अन्य अनंत आत्माओंसे भिन्न, अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंसे पृथक्, अपने सहज ज्ञान, सहज आनन्दादि अनंत गुणोंसे भरपूर यह अपना भगवान आत्मा नित्य अस्तित्त्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रखनेवाला कोई पदार्थ है ना? अहा! यह कैसे बैठे? उसके अनंत गुणोंके रहनेके लिये अनंत क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है। अपने असंख्य प्रदेशोंमें वह अनंत गुणोंसे भरा है। वह अनंत शान्तिका सागर है परन्तु अंतरमें जहाँ निधान भरे हैं वहाँ कभी दृष्टि नहीं डाली है; रागसे दूर अंतरमें चैतन्यकी ऋद्धि एवं समृद्धि भरी है वहाँ 'यह क्या है!' इस प्रकार अंतरमें कुतूहल लाकर कभी स्वरूपोन्मुख नहीं हुआ। बाह्य समृद्धिकी रुचि वह तो परिभ्रमणका मार्ग है। वहाँसे रुचि हटाकर अंतरमें गुण-गुणोंकी निर्मल पर्याय प्रगट करना है।

स्फटिकमणिकी भाँति भगवान आत्माका स्वरूप तो निर्मल एवं शुद्ध है। उसकी पर्यायमें पर तथा रागके साथ तन्मयताकी मान्यता कर रखी होनेसे अनादिकालसे चार गतियोंमें अनंत भव किये, और अब भी यदि रागके तन्मयता नहीं तोड़ी तो वह मनुष्य एवं तिर्यंच आदि चार गतियोंमें परिभ्रमणके पथ पर है। मनुष्यका शरीर खड़ा है और पशुका आड़ा है; वह क्या सूचित करता है? गोम्मटसारमें कहा है कि—पूर्वकालमें रागद्वेष तथा छल-प्रपंच और मायाकी आड़ाई बहुत की थी जिससे उस आड़ाईके फलरूप आड़े शरीर मिले। अंतरमें तो आड़ाई की, परन्तु शरीर भी आड़ा मिला। अरेरे! जीवने ऐसे अवतार अनन्तबार किये हैं।

सूक्ष्म बात है भाई! विस्तारसे कथन किया जाय तो समय लगेगा; परन्तु युक्तिसे सब बात बराबर सिद्ध हो सकती है। सर्वज्ञ भगवानने सब बात न्यायसे कही है।

यहाँ कहते हैं कि राग तो विकल्प है, उससे भिन्न भगवान आत्मा अंतरमें अपने अनंत गुणोंसे भरपूर विराजमान है। अहा! इतनी दूर जाना? अभी तो आत्माको शरीरसे भिन्न मानना भी कठिन लगता है। भाई! शरीर तो रजकणोंका पिण्ड है। माता-पिताके योगसे रजकण शरीररूप बँध गये हैं। माताके गर्भमें सवानौ महिने रहकर आया है। अरेरे! अपने भगवान आत्माको भूलकर ऐसे अवतार तो अनंतबार किये हैं। अब उस भूलसे हटकर, अंतरमें पुरषार्थ करके जीवको सहज ज्ञान एवं आनन्दादि अनंत गुणोंसे परिपूर्ण अपने भगवान ज्ञायक आत्माको जानना है, और उसमेंसे गुण—गुणोंकी आनन्दादि निर्मल पर्याय प्रगट करना है।

*

वचनामृत—१५७

महान पुरुषकी आज्ञा मानना, उनसे डरना, यह तो तुझे अपने अवगुणसे डरनेके समान है; उसमें तेरा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि अवगुण दबते हैं। सिर पर महान पुरुषके बिना तेरा कषायके रागमें—उसके वेगमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बह जाना संभव है और इसलिये तू अपने अवगुण स्वयं नहीं जान सकेगा। महान पुरुषकी शरण लेने से तेरे दोषोंका स्पष्टीकरण होगा तथा गुण प्रगट होंगे, गुरुकी शरण लेनेसे गुणनिधि चैतन्यदेवकी पहिचान होगी।।१५७।।

'महापुरुषकी आज्ञा मानना, उनसे डरना, यह तो तुझे अपने अवगुणसे डरनेके समान है।'

सर्वज्ञ परमेश्वर और गुरु संत आदि महापुरुषोंकी आज्ञा मानना चाहिये। उनकी आज्ञा क्या है?–कि वीतरागता प्रगट कर। रागसे भिन्न अंतर ज्ञायक तत्त्व है उसे देख; जो देखनेवाला है उसे देख; देखने वाला ऐसा देखता है कि–यह, यह, यह,–उस ज्ञाता पर्यायका जो ज्ञाता है उसे देख कि–'यह मैं हूँ।' सर्वज्ञ परमेश्वर तथा साधक संतोंका जो यह आदेश है उसे बराबर मानना।

संत गुरु तथा सर्वज्ञसे डरना। ऐसी उद्धताई नहीं करना कि मेरा कुछ भी हो मैं डरता नहीं हूँ। महापुरुषसे डरना वह तुझे अपने अवगुणसे डरनेके समान है। संत आत्माको रागसे भिन्न करनेका आदेश देते हैं। उनसे तुझे एक न्यायसे डरना कि—आज्ञासे विरुद्ध करूँगा तो मुझे हानि होगी। इसप्रकार डरना स्वच्छन्द पूर्वक नहीं वर्तना।

प्रभु! तू कहाँ जायगा? यह शरीर छूटनेके बाद कहाँ विश्राम लेगा? शरीरका नाश होगा परन्तु तू तो रहेगा या नहीं? क्या तेरा नाश होना है? मृत्यु होने पर 'जीव गया' ऐसा कहा जाता है, परन्तु 'जीव मर गया' ऐसा कहा जाता है क्या? जीव तो त्रैकालिक शाश्वत सत् वस्तु है; वह कहाँ नाशको प्राप्त होता है? एक भवसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें–इस प्रकार भवान्तरमें भ्रमण करता रहता है, उसका सर्वथा नाश नहीं होता।

यहाँ कहते हैं कि गुरुने—सन्तोंने जो आज्ञा की है उसे तू जान–मान, यदि उस आज्ञाकी अवज्ञा करेगा कि 'वे तो कहते ही रहते हैं उन्हें दूसरा काम ही कहाँ है?'—तो तू मर जायगा। गुरुकी आज्ञा मानना, उनसे डरना, वह तो तुझे अपने दोषोंसे डरने समान है।

'उसमें तेरे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि अवगुण दबते हैं।'

संतोंकी आज्ञामें रहनेसे क्रोध, मानादि तेरे दोष दबेंगे। आज्ञाका विरोध नहीं करना, उससे डरना; क्योंकि ऐसा करनेसे अंतरमें रहे हुए अभिमान, क्रोध, लोभ, माया, और राग-द्वेषादि अवगुण दबेंगे।

'सिर पर महान पुरुषके बिना तेरा कषायके रागमें—उसके वेगमें बह जाना संभव है और इसलिये तू अपने अवगुण स्वयं नहीं जान सकेगा।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिये—.......

'महान पुरुषकी शरण लेनेसे तेरे दोषोंका स्पष्टीकरण होगा तथा गुण प्रगट होंगे। गुरुकी शरण लेनेसे गुणनिधि चैतन्यदेवकी पहिचान होगी।'

यहाँ ऐसा कहते हैं कि—गुरु आदि महापुरुषोंकी शरण लेनेसे, उनकी आज्ञा माननेसे, अंतरमें जो अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दकी खान ऐसा गुणनिधि भगवान आत्मा, चैतन्यरत्न विराजता है वह तुझे प्रगट होगा, उसकी तुझे प्रतीति होगी। आज्ञा मानकर काम लेगा तो अंतरमें ज्ञायक प्रभुका साक्षात्कार होगा। आया कुछ समझमें ?

*

वचनामृत—१५८

हे जीव! सुख अंतरमें है, बाहर कहाँ व्याकुल होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है ? जिस प्रकार मरीचिकामें से कभी किसीको जल नहीं मिला है उसी प्रकार बाहर सुख है ही नहीं।।१५८।।

हे जीव! सुख अंतरमें है, बाहर कहाँ व्याकुल होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है ?'

श्रीमद् कहते हैं:—'सुख अंतरमें है, वह बाहर खोजनेसे नहीं मिलेगा। अंतरका सुख अंतरकी समस्थितिमें है, स्थिति होनेके लिए बाह्य पदार्थों सम्बन्धी आश्चर्यको भूल।' हे जीव आनन्द तुझमें है, बाह्य विषयमें नहीं। पुण्य-पापके भाव तो विकृत दशा है, दुःख है। अंतरमें स्वरूप है वह त्रैकालिक अतीन्द्रिय आनन्दमय है। कस्तूरी अपनी नाभिमें होनेपर भी हिरन उसे बाहर खोजनेको उछल-कूद करता है; उसी प्रकार सुख है स्वभावमें, परन्तु उसकी प्रतीति न होनेसे सुखको—आनन्दको बाह्य विषयोंमें खोजनेका मिथ्या प्रयत्न करता है। आनन्द मूर्ति भगवान आत्मामें नहीं जाता और आकुल-व्याकुल होकर बाहर उछल-कूद करता है भाई!

स्त्री, पुत्र, पैसा, प्रशंसा आदि बाह्य सुखके लिये व्याकुल हो कर उछल-कूद करता है वह तो दुःख है।सुख तो यहाँ अन्तरमें निराकुल सच्चिदानंदमय प्रभुमें हैं, उसकी तुझे खबर नहीं है। आत्मा अंतरमें आनन्दकी खान है लेकिन यह बात कैसे बैठे ? उसे तो बाह्यमें—पैसेमें प्रतिष्ठा दिखायी देती है कि—लाखोंका बंगला हो, कीमती फर्नीचर हो, मखमलके गलीचें पड़े हों! लेकिन उनमें कहाँ सुख है भाई ? सुख तो यहाँ अंतरमें भगवान ज्ञायक आत्मामें है, तू आकुलित होकर बाहर विषयोंमें उछल—कूद करता है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द आत्मामें भरा है, परन्तु भ्रान्तिवश बाहर ढूंढता है। पैसे कमानेके लिये देश, कुटुंब, स्नेही-स्वजनोंको छोड़कर परदेशमें अकेला रहता है। पहले पैसा कमा लें, फिर आरामसे आत्माका कार्य करेंगे—इसप्रकार वादोंमें ही जीवन बीत जाता है। भाई! सुख तेरे अंतरमें है वहाँ देखना! व्याकुल होकर बाहर कहाँ भटकता है?

'जिस प्रकार मरीचिकामेंसे कभी किसीको जल नहीं मिला है उसी प्रकार बाहर सुख है ही नहीं।'

क्षारयुक्त धरतीमें सूर्यकी किरणोंके परावर्तनसे पानीका आभास होता है। वह मरीचिका जल देखकर उसे पीने जाय तो पानी नहीं मिलेगा; उसीप्रकार जगतके प्राणी शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, लक्ष्मी आदिके द्वारा सुख प्राप्त करना चाहते हैं और आकुल—व्याकुल होकर उछल-कूद करते हैं, परन्तु उनमें सुख है ही नहीं तो मिलेगा कहांसे? अंतरमें आनंदमूर्ति भगवान आत्मा सुखसे भरपूर विराजमान है, वहाँ दृष्टि नहीं करता और बाहर भटकता है।

मरीचिकामें कभी किसीको जल मिला ही नहीं, उसी प्रकार बाह्य विषयोंकी लोलुपतामें कभी किसीको सुख नहीं मिला; क्योंकि वह तो विकारी भाव है, दुःख है। अरे! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजाके भाव भी राग हैं, क्लेश हैं, वृत्तिका उत्थान है उनमें आत्माका आनंद नहीं है। वहाँ खोजने जायगा तब भी आनन्द—सुख प्राप्त नहीं होगा। शरीर, स्त्री, मकान आदि पर पदार्थोंका उपभोग आत्मा कर ही नहीं सकता; वे तो जड़—मिट्टी हैं, भगवान आत्मा अरूपी है; वह उनका स्पर्श भी नहीं करता, मात्र उस ओरका लक्ष करता है कि—'यह मुझे अनुकूल है।' 'अनुकूल है' ऐसे रागकी वृत्तिको भोगता है, शरीरको नहीं। मैं क्या भोगता हूँ और क्या नहीं भोगता—इसकी भी उसे खबर नहीं है; वह मात्र रागके दुखको भोगता है।

यही यहाँ कहते हैं कि—बाहर सुख है ही नहीं। सुन्दर शरीर, स्त्री, लक्ष्मी आदिमें तो है ही नहीं, वे तो कहीं दूर रह गये, परन्तु अंतरमें जो पुण्य—पापके भाव होते हैं उनमें भी सुख नहीं है। शुद्ध बुद्ध सुखकन्द प्रभु तो अंतरमें भिन्न विराजमान है। वह बाह्य विषयोंका ज्ञाता अंतरमें भिन्न है और ज्ञात होती है वह वस्तु भिन्न है। भिन्नका सुख भिन्न वस्तुमें कहाँसे होगा? ऐसी बात है भाई! यह मार्ग कोई अलग ही है। अनंतकालमें यह दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त हुआ, इसमें यदि आत्महित नहीं किया, तो कब करेगा? ऐसी मनुष्य पर्याय पुनः पुनः नहीं मिलेगी; यह अवसर चूक गया तो फिर न जाने कहाँ खो जायगा। प्रभु! सुख अंतरमें है; बाह्यमें है ही नहीं।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–१५६

गुरु तेरे गुणोंके विकासकी कला बतलायँगे। गुरु-आज्ञामें रहना वह तो परम सुख है। कर्मजनित विभावमें जीव दब रहा है। उसकी आज्ञामें वर्तनेसे कर्म सहज ही दब जाते हैं और गुण प्रगट होते हैं।।१५६।।

'गुरु तेरे गुणोंके विकासकी कला बतलायँगे।'

क्या कहते हैं? गुरु कहेंगे कि अपने गुणों पर दृष्टि डाल। कमलमें खीलनेकी शक्ति है; वह खिलता है अपने कारण, उसमें सूर्य तो निमित्त मात्र है; वह सूर्यसे नहीं खिलता; सूर्यसे खिलता हो तो लकड़ीका कमल भी खीलना चाहिये। गुरु तुझे अपने गुणोंके विकासकी कला बतलायगे। अंतरमें तू ज्ञानानन्द प्रभु है; वहाँ दृष्टि कर तो तेरे गुणोंकी दशा खिल जायगी। उसमें गुरुका बतलाना निमित्तमात्र है। गुणोंके विकासकी कला प्रगट करना वह अपने हाथकी बात है, वह कला गुरु प्रगट नहीं कर देते। गुरु तो मार्ग बतलाते हैं, परन्तु मार्ग पर चलेगा कौन? चलना तो अपना काम है। स्वयं अंतरमें गहरे उतरकर अपने गुणोंमें से निर्मल पर्याय विकसित करनेकी कला सीखे तो कार्य हो।

त्रैकालिक आनन्दका नाथ प्रभु अंतरमें विराजमान है, उसमें दृष्टि लगा और रागसे पृथक् हो जा, तो तेरे गुणोंकी निर्मल दशा प्रगट होगी और जन्म–मरणका अन्त आयगा।

हमें तो बचपनसे ही धर्मका प्रेम था। पालेजमें अपनी दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ता था। चार सज्झायमाला (स्वाध्यायमाला) दुकान पर पढ़ी थी। उसमें आता है कि–'होंशीला! होंश मत कीजे....' अर्थात् अरे जीव! बाहरकी बातोंमें—बाहरी बड़प्पनमें सांसारिक सुविधाओंमें—हर्ष कैसा? वह तो सब पुद्गलकी रचना है। उसमें आत्माकी शान्ति—सुख बिलकुल नहीं है। बाहरकी रुचि हटकर अंतरमें आनन्दमूर्ति आत्माकी रुचि कर, उसमें दृष्टि करके स्थिर हो तो तुझे अंतरसे सच्ची शांति एवं अतीन्द्रिय सुख प्रगट होगा, तेरे गुण विकसित हो जायँगे।

सत्रह वर्षकी उम्रमें एक बार पालेजमें 'रामलीला' देखने गये थे। देखकर अंतरसे एकदम वैराग्यकी धुन उठी; उसीमें बारह कड़ियोंके एक गीतकी रचना हो गई। अब तो उसकी मात्र एक पहली पंक्ति याद है : 'शिवरमणी रमनार तुं, तुंही देवनो देव....' अरे प्रभु! तू कौन है? हाड़, मांस और त्वचाकी स्त्रीका उपभोग करने वाला तू नहीं; तू तो मोक्ष रमणी—अतीन्द्रिय पूर्णानन्द दशामें रमण करनेवाला है। और तू स्वयं ही देवका देव—चिदानन्दमूर्ति देवाधिदेव—है। अहा! छोटीसी उम्रमें कौन जाने अंतरसे वैराग्यकी भनक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आयी थी! गीतोंकी पुस्तक, दीक्षा लेनेके बाद, दुकानमें वर्षाका पानी भर जानेसे भीग गई थी। आज वे गीत होते तो पता चलता कि उनमें क्या भाव थे।

यहाँ कहते हैं कि—गुरु तेरे गुणोंके विकासकी कला बतलायेंगे।

'गुरु-आज्ञामें रहना वह तो परम सुख है।'

गुरुकी आज्ञा क्या है?–कि रागसे भिन्न होकर आत्मामें रहना। श्रीमद्ने भी कहा है कि–ज्ञानीकी आज्ञानुसार वर्तना। अनेक शास्त्रों तथा वाक्योंका अभ्यास करनेकी अपेक्षा भी यदि जीव ज्ञानी पुरुषकी एक-एक आज्ञा उपासे तो अनेक शास्त्रोंसे मिलनेवाला फल सहज ही प्राप्त हो जाय। ज्ञानीकी प्रत्येक आज्ञा कल्याणकारी है—ऐसा लोग बोलते हैं, परन्तु आज्ञा क्या है वह नहीं जानते। ज्ञानीकी आज्ञा यह है कि—रागसे भिन्न होकर आत्मामें जा; रागसे हट और स्वरूपमें बस! अहा! गुरु आज्ञामें रहना वह परम सुख है।

कर्मजनित विभावमें जीव दब रहा है।'

देवपूजा, गुरु उपासना, व्रत, तप, भक्ति, स्वाध्याय, तत्त्वविचार आदि शुभ भाव और पैसा कमाना, स्त्री-पुत्र-परिवारको संतुष्ट रखना आदि अशुभ भाव—वे सब कर्मोदयके निमित्तसे हुए विभाव भाव हैं, आत्माका स्वभाव भाव नहीं है। अंतरमें निजानन्द नाथ चैतन्य प्रभु ज्ञायक आत्मा शक्तिरूपसे विराजमान है परन्तु कर्मजनित विभावकी ओटमें–एक समयकी पर्यायमें उत्पन्न होते शुभाशुभ विकारके पीछे—दब गया है, दृष्टिगोचर नहीं होता। अंतरमें सदा विराजमान, विभावसे भिन्न चिदानन्द प्रभुकी निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान एवं अनुभवके बिना बाह्यमें—दुनियाकी धूलमें—कहीं भी किंचित् सुख या शान्ति नहीं है। इसलिये यहां कहते हैं कि–गुरु-आज्ञामें अर्थात् गुरुके दर्शाये हुए निज चैतन्य प्रभुकी अनुभूतिमें रहना ही परम सुख है।

'गुरुकी आज्ञामें वर्तनेसे कर्म सहज ही दब जाते हैं और गुण प्रगट होते हैं।'

गुरुकी आज्ञा तो यह है कि वीतरागता प्रगट करना; क्योंकि समस्त जैन शासनका—वीतराग सर्वज्ञ परमात्माके कहे हुए चारों अनुयोगका, समस्त दिगम्बर जैन शास्त्रोंका—सार वीतरागता है।

प्रश्न:—वीतरागता किस प्रकार प्रगट होती है?

उत्तर:—भीतर भगवान आत्मा स्वयं वीतराग स्वरूप है। उसे बराबर जानकर, उसकी महिमा लाकर श्रद्धा-ज्ञानमें उसका आश्रय ले तो पर्यायमें वीतरागता हो, कर्म सहज ही दब जायँ—कर्मजनित विभाव छूट जायँ और निर्मल ज्ञान एवं आनन्दादि गुण—गुणोंकी अराग निर्मल दशा—प्रगट हो। यह करनेसे तेरे जन्म-मरण मिटेंगे, नहीं तो जन्म-मरणकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्वाला जलती ही रहेगी। श्रीमद् कहते हैं : मैं कौन हूँ? कहाँसे हुआ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है? आदिका विवेकपूर्वक शांत भावसे विचार करे तो आत्मप्राप्तिके सिद्धांत बराबर अनुभवमें आयें और आत्मशान्ति प्राप्त हो।

*

ता. २६-११-६५

वि. सं. १९९३, वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन बेनको (बहिनश्री चम्पाबेनको) आत्माके शुद्धोपयोगरूप निर्विकल्प अनुभवके साथ उपयोगमें निर्मलता होनेसे जातिस्मरण हुआ। सम्यग्दर्शन १९८९में हुआ था। ध्यान करते-करते इतनी एकाग्र हो जाती हैं कि स्वयं भरतमें हैं या विदेहमें यह भी भूल जाती हैं।....हम साथ ही मोक्ष जाने वाले हैं यह बात प्रत्यक्ष हो चुकी है। बेनका (बहिनश्रीका) ज्ञान तो अगाध एवं गंभीर है।

—पूज्य गुरुदेव

*

अनादिकालसे अज्ञानी जीव संसारमें भटकते–भटकते, सुखकी लालसामें विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखोंको सहता रहा है। कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवालेकी उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करनेसे वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़ेसे पुरुषार्थके लिये वहाँसे अटका और गिरा।—इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करनेमें अनन्त बार अटका। पुण्योदयसे यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुषका योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भवमें करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।

—पू. बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५७

ता. ४-८-७८

वचनामृत–१६०

जिस प्रकार कमल कीचड़ और पानीसे पृथक् ही रहता है उसीप्रकार तेरा द्रव्य कर्मके बीच रहते हुए भी कर्मसे भिन्न ही है; वह अतीतकालमें एकमेक नहीं था, वर्तमानमें नहीं है और भविष्यमें नहीं होगा। तेरे द्रव्यका एक भी गुण परमें मिल नहीं जाता। ऐसा तेरा द्रव्य अत्यन्त शुद्ध है उसे तू पहिचान। अपना अस्तित्व पहिचाननेसे परसे पृथक्त्व ज्ञात होता ही है॥१६०॥

'जिस प्रकार कमल कीचड़ और पानीसे पृथक् रहता है उसी प्रकार तेरा द्रव्य कर्मके बीच रहते हुए भी कर्मसे भिन्न ही है;'

कमल कीचड़ और जलके बीच रहते हुए भी उससे भिन्न ही है; उसी प्रकार यह पूर्णानन्दघन चैतन्य प्रभु आत्मा जड़कर्म तथा कर्मके निमित्तसे होते शुभाशुभ चिद्विकार–उन दोनोंसे भिन्न ही है।

'वह अतीतकालमें एकमेक नहीं था, वर्तमानमें नहीं है और भविष्यमें नहीं होगा।'

भूतकालका आदि नहीं है; जो ज्ञानरस, आनन्दरस आदि अनन्त अतीन्द्रिय स्वरस स्वरूप निज आत्मद्रव्य है वह अनादि भूतकालमें–विगतकालमें कभी कर्मके साथ एकमेक हुआ ही नहीं था, वर्तमान वर्तते समयमें भी एकमेक हुआ नहीं है और भविष्यमें—अनन्तानन्त आगामीकालमें भी एकमेक होगा नहीं। जीवने अज्ञानसे माना भले हो कि 'रागमें मैं दब गया हूँ और राग मेरा स्वरूप है', परन्तु वास्तवमें वस्तु स्वरूप ऐसा है ही नहीं।

प्रश्न :—आत्मा रागसे भिन्न? कब? इस समय?

उत्तर :—कर्म अर्थात् अजीव–पुद्गल और राग अर्थात् जीवके शुभाशुभ परिणाम—उनसे त्रैकालिक ध्रुवज्ञायक आत्मा सदा भिन्न ही विद्यमान है। वह भूतकालमें कर्म और रागके साथ एकमेक नहीं था, वर्तमानमें भी नहीं है और भविष्यमें भी कभी नहीं होगा।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आज-कल लोग तो क्या, किन्तु उपदेशक भी पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि कर्मके कारण ऐसा होता है और वैसा होता है—विभाव मात्र कर्मके कारण ही होता है। भाई! कर्म तो अचेतन-जड़ है, उसके कारण तुझमें विभाव नहीं होता। कर्मोदय होने पर तू स्वयं ही उस निमित्तके आधीन होकर स्वतंत्र रूपसे शुभाशुभ विकाररूप परिणमित होता है। तेरे अपने अपराधसे तेरी पर्यायमें विकार होता है तथापि तेरा ध्रुव द्रव्यस्वभाव तो बिलकुल भिन्न ही है; स्वभाव कभी कर्म या विकार रूप होता ही नहीं।

अज्ञानीका आत्मद्रव्य भी, राग और कर्मके बीच स्थित होने पर भी, उनके साथ कभी एकमेक नहीं होता; एकमेक हो गया है ऐसा अज्ञानी माने भले, परन्तु उस समय भी है तो बिलकुल भिन्न ही। दया, दान, व्रत, भक्तिके परिणाम शुभराग—विभाव हैं, ज्ञायक प्रभु अंतरमें उनसे भिन्न ही है। शुभ भावसे धर्म होगा—ऐसा माननेवाले ने तो विभाव और स्वभावको एकमेक माना है। वह मान्यता मिथ्यात्व है। विभाव और स्वभाव तो सदा बिलकुल भिन्न ही हैं। अहाहा! बात थोड़ी है, छोटी है, परन्तु उसका रहस्य बड़ा है।

भगवान आत्माको रागसे भिन्न करना, क्योंकि उसका स्वरूप रागसे भिन्न है। अंतरमें पर लक्षसे जो वृत्ति उठती है उसमें चैतन्यका स्वलक्ष नहीं है, वह वृत्ति तो राग है।

प्रश्न :—बात सच है, परन्तु राग क्या और चैतन्य क्या?

उत्तर :—ज्ञाता-दृष्टा एवं आनन्द स्वरूप ऐसा जो त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्य वह चैतन्यतत्त्व है, और उसकी पलटती वर्तमान पर्यायमें परका आश्रय करनेसे जो विभाव होता है वह राग है, अपने वीतराग स्वरूपकी ओर उसका परिणमन नहीं ढला है, निमित्तकी ओर ढला है वह राग है। ऐसा बराबर लक्षमें आना चाहिये। अरेरे! मुख्य जो करना है वह यही ही है। सूक्ष्म बात है भाई!

राग और ज्ञान दोनों एक हैं ही नहीं, एक मानना वह भूल है, अज्ञान है। ज्ञान अंतरस्वरूपके लक्षसे–आश्रयसे होता है और राग बहिर्लक्षसे होता है। बहिर्लक्षी राग कहो या परलक्षी भाव कहो–दोनों एक ही हैं। राग कहना किसे?—तो कहते हैं कि—अंतरमें जितना परलक्षसे दया, दान, भक्तिका भाव तथा शरीर-स्त्री-पुत्र-परिवारकी ओरका ममत्व भाव वह सब राग है। आत्म परिणतिका परकी ओर जाना ही राग है, क्योंकि स्वरूप तो वीतराग है; कर्म और रागसे तो भिन्न है। त्रैकालिक ज्ञायक तत्त्व तो वर्तमान भी वीतराग स्वरूप है।

जैनधर्म किसे कहना वह लोगोंको तो क्या, किन्तु सम्प्रदायमें जन्मे हुए जैनोंको भी खबर नहीं है। 'घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।' अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मद्रव्य स्वयं जिनस्वरूप है और उस द्रव्य स्वभावकी आराधना—उपासना—आत्मद्रव्य सन्मुख हुए निर्मल परिणाम वह जैन धर्म है। भगवान जब विराजते थे तब यह धर्म श्रवण करनेके लिये स्वर्गसे इन्द्र तथा देव-देवियाँ आते थे। मनुष्योंमें तो बहुत प्रचार था। आज तो 'मै भगवान आत्मा जिन स्वरूप हूँ'–ऐसा विश्वास भी जीवको नहीं आता, इसलिये राग और पुण्यकी क्रियासे हमें धर्म होगा—ऐसा मानता है। अहाहा! अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ वीतराग स्वरूप भगवान आत्मा विराजता है—उसे उसने जाना नहीं।' ज्ञानमें उसकी उसे खबर नहीं है।

अनंत तीर्थंकर तथा अनंत केवलज्ञानियोंकी यह घोषणा है कि–शरीर, वाणी, मन और कर्म वह तो पर वस्तु है, जगतके स्वतंत्र तत्त्व हैं। ज्ञानघन आत्मा उनकी पर्यायमें भी प्रविष्ट नहीं हुआ है तो उनके द्रव्यमें कैसे प्रविष्ट होगा? कर्मादि तो मात्र निमित्त हैं; उनकी ओर जीवकी दृष्टि अनादिसे है और इसलिये अपनी पर्यायमें अपनेसे विकार भाव उत्पन्न होता है; ऐसा होने पर भी वस्तु तो उस विकार भावसे भी निराली–भिन्न है। अनादि मिथ्यात्व एवं अज्ञानके कारण 'राग वह मैं, दया दानादिके विकल्प उठें वे मानों मैं हूँ, वह मेरा कर्तव्य है'—ऐसा अध्यास हो गया है। उसका अभ्यस्थ हो गया है। परन्तु अंतर जो चिदानन्दघन तत्त्व है, द्रव्य है, वस्तु है, ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव...अस्तित्ववान ध्रुव वस्तु है वह स्वयं जिन स्वरूप है।

अज्ञानी ऐसा मानता है कि—मैं कर्ममें घिर गया हूँ, कर्मने मुझे दबा रखा है, कर्म मुझे भ्रमाता है। तथा, कर्मके निमित्तसे होने वाले शुभाशुभ राग भाव हैं वे, कर्म संबन्धी विभाव भाव हैं—ऐसा न मानकर, मेरा कार्य है, मेरा स्वभाव है, मेरा धर्म है, मुझसे होता है, वह मुझे सुखकर है, ऐसा वह मानता है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि–कर्म और रागादिके साथ यह भगवान आत्मा भूतकालमें भी कभी एकमेक हुआ नहीं है, वर्तमानमें है नहीं और भविष्यमें होगा नहीं। अज्ञानी जो चाहे मानें, अपनी मान्यतामें वह स्वतंत्र है; ऐसी मान्यता करनेसे वे आत्माके साथ एकमेक हो नहीं जाते। नरियलमें जो सफेद टोपरा है वह जटा, कठोर नरेली तथा नरेलीके भीतरकी लालीसे भिन्न ही है, उसके साथ एकमेक हुआ ही नहीं है; उसी प्रकार यह भगवान आत्मा छालरूप शरीर, कठोर नरेलीरूप कर्म और कर्मके ओरकी लालीरूप रागादि विभावसे पृथक् ही है, उनके साथ कभी एकमेक हुआ ही नहीं है।

अहाहा! भगवान जिनेश्वर देवका जो आदेश है वही इन बेनके वचनोंमें है। प्रभु! तू तो अंतरमें राग और कर्मसे भिन्न विद्यमान है ना! यदि भिन्न न हो तो (पर्यायमें) भिन्न होगा कैसे?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :— इसका दूसरा कोई साधन ?

उत्तर :— भाई ! साधन यह एक ही है; राग और परसे आत्माको भिन्न अनुभवना। गुरुकी आज्ञामें रहना—ऐसा पहले कह चुके हैं। समयसारकी चौथी गाथाकी टीकामें भी कहा है कि—स्वयं आत्माको जानता नहीं है और दूसरे जो आत्माको जानते हैं उनकी संगती–सेवाकी नहीं है। परन्तु गुरुकी आज्ञा और गुरुकी सेवा यानी क्या ? कि—उन्होंने जो कहा है कि—प्रभु ! तू परसे और विभावसे भिन्न है, हमारी और देखनेसे तेरी वस्तु तुझे प्राप्त नहीं होगी, अंतरमें जहाँ तेरी वस्तु है वहाँ उसके सन्मुख देखनेसे तुझे अपने भगवानके दर्शन होंगे। तदनुसार अंतरसे स्वीकार करना ही गुरुकी आज्ञा मानी कही आती है–गुरुकी उपासना की कहलाती है।

बाह्य पदार्थकी रुचिमें स्वयंका घात होता है उसकी जीवको खबर नहीं है। प्रभु ! तुझे अपनी रुचि नहीं हुई कि–मैं अंतरमें एक आनन्द सागर प्रभु हूँ। वीतराग जिनस्वरूप भगवान आत्मा हूँ भगवान आत्मा स्वभावसे जिनस्वरूप न हो तो पर्यायमें जिनपना आयगा कहाँसे ? पर्यायमें जो सर्वज्ञ वीतराग अरहंतपना होता है वह आया कहाँसे ? कहीं बाहरसे आता है ? अहाहा ! प्रभु ! तू स्वभावसे वीतराग, सर्वज्ञ और परमानन्द स्वरूप है; इधर आ, इधर आ, तेरा स्वरूप यह है, यह है; राग तेरा स्वरूप नहीं है, नहीं है।

जगतको यह बात कठिन लगती है; लेकिन क्या हो ? अनादिसे भटक रहा है। रागका कण जो शुभ भाव, उससे तेरा जीव तत्त्व भिन्न है प्रभु ! क्योंकि शुभ रागका कण पुण्य तत्त्व है और भगवान आत्मा तो अराग ज्ञायकतत्व है। पुण्य और ज्ञायक—दोनों तत्त्व भिन्न हैं प्रभु ! काम कठिन है भाई ! परन्तु उसका फल वीतराग परमात्म दशा है। आया कुछ समझमें ?

'तेरे द्रव्यका एक भी गुण परमें मिल नहीं जाता।'

प्रभु ! तू श्रद्धागुण, ज्ञानगुण, चारित्रगुण, शान्तिगुण, वीतरागगुण, पुरुषार्थगुण, आनन्दगुण, जीवत्त्वगुण आदि अनंत स्वाभाविक गुणोंसे भरपूर भगवान है, तेरा एक भी गुण परमें नहीं चला जाता। मिल नहीं जाता। स्वतः सिद्ध वस्तुके स्वभावभूत गुण परमें कैसे मिलेंगे ? चेतनागुण चेतनको छोड़कर जड़में मिल जायगा ? वर्ण पुद्गलको छोड़कर जीवमें मिल जायगा ? जिनस्वरूप भगवान आत्मा अपना जिनपना छोड़ देगा ? वीतराग गुण अपना स्वभाव छोड़ेगा ? यहाँ तो कहते हैं कि–भगवान ज्ञायक पदार्थ रागरूप भी नहीं होता, तब कर्मरूप अथवा पररूप तो कहाँसे होगा ? क्योंकि उसका कोई भी गुण परमें एकमेक नहीं होता।

वस्तु तो यह है; बाकी तो सब दुःखी होकर भटक मरनेके धन्धे हैं। भले ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चेहरे लाल दिखाई दें—पैसेवाले, बँगले वाले, प्रतिष्ठा वाले, रोबदाब वाले, दिखायी दें। अहा! कितने 'वाले'? शरीरमें एक 'वाला' (बालतोड़ रोग) निकले तो हाय-हाय! करता है, और यहाँ तो पत्नीवाला, पुत्रवाला, परिवारवाला, पैसेवाला आदि 'वालों'की लाईन लगी है। परन्तु वह तो अब ठगोंकी टोली है, भाई! देहान्त होने पर एक क्षणमें उन सबका संबन्ध छूट जायगा। जहाँ रागका कण भी तेरा नहीं है वहाँ किसकी पत्नि और किसका पुत्र! तू तो उनसे बिलकुल भिन्न शुद्ध आनन्दघन ज्ञायक द्रव्य है।

'ऐसा तेरा द्रव्य अत्यंन्त शुद्ध है उसे तू पहिचान।'

पवित्रताका पिण्ड प्रभु आत्मा, मात्र शुद्ध नहीं किन्तु अत्यन्त शुद्ध है। बेनका हीरोंसे सन्मान करनेवाले हैं ना? हीरा तो पुद्गल पर्याय है, उसकी चमक तो जड़ है। अंतरमें आत्म प्रभु तो, जिसके चैतन्य चमत्कारके निकट सूर्य–चन्द्रका प्रकाश भी निस्तेज लगे ऐसा, अत्यन्त शुद्ध है, उसे तू पहिचान। जिसके समक्ष मति–श्रुतादि चार ज्ञान भी फीके लगें ऐसे केवलज्ञानके पुंजरूप चैतन्यशक्तिसे परिपूर्ण तू भगवान है। तुझे उसका विश्वास और दृष्टि करना पड़ेगी। बाह्यमें जो लक्ष है उसे छोड़ दे और दृष्टिको अंतर स्वरूपोन्मुख कर उसके बिना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी। जिसे सम्यक्त्व नहीं है वह भले ही लाख क्रियाकाण्ड करे, रागकी मन्दता हो, तथापि धरम–बरम अंशतः भी नहीं होगा। इसलिये यहाँ कहते हैं कि—बाहरसे लक्ष हटाकर अपने आत्मद्रव्यको—जोकि अत्यन्त शुद्ध है उसे—अंतरसे महिमा लाकर पहिचान।

अंतरमें आनन्दका नाथ भगवान ज्ञायक आत्मा विराजता है, परन्तु गहरे उतरकर उसे पहिचाननेका अवकाश कहाँ है? कोई बड़ा आदमी मिलने आया हो और यह स्वयं छोटे बच्चेके साथ खेलनेमें लगा रहे तो, 'मेरे सामने यह देखता भी नहीं है'—ऐसा सोचकर वह नाराज होकर चला जायगा; उसी प्रकार अंतरमें पूर्ण ज्ञानानन्दका नाथ भगवान आत्मा विराजता है, उसके बडप्पनको जीव नहीं देखता और रागकी पामरताके खेलमें लगा हुआ है। अहा! बात तो सूक्ष्म है प्रभु! मार्ग सूक्ष्म है, किन्तु उसका फल बड़ा ऊँचा है; विपरीत मार्गका फल हलका—नरक-निगोद है।

प्रश्न:—परन्तु वर्तमानमें तो–मनुष्यपना और समृद्धि–यह सब है ना?

उत्तर:—अरे भाई! यह मनुष्यपना तो मिट्टीमें मिल जायेगा—धूल हो जायगा। राख है तो राख ही होगा ना? अंतरमें चैतन्यरत्न पड़ा है वह क्या कभी राख होगा? वह तो रागमें भी नहीं आता। वह अपना सत्व छोड़कर जाये कहाँ? उसे तू पहिचान। पहिचाननेसे अवश्य प्राप्त होगा ही। वह रागसे कदापि नहीं जाना जायगा।

प्रभु! तू तो स्वभावसे वीतराग स्वरूप है ना! अंतर स्वभावको पहिचानकर पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागता प्रगट करना! वही जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ धर्म है। धर्म कोई अपूर्व वस्तु है भाई! पूर्वकालमें कभी नहीं किया इसलिये महँगा लगता है। श्रीमद् कहते हैं कि–'सत् सत् ही है, सरल है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति होती है, परन्तु उसे बतलानेवाला सत् चाहिये।' स्वयं पूर्णानन्द ज्ञायक-स्वरूपमें अंतर्दृष्टि की तब बतलानेवाले गुरु निमित्त मिले ऐसा कहा जाता है। देशनालब्धि होती है, परन्तु देशनासे आत्मा प्राप्त नहीं होता। देशना तो निमित्त है; उससे तो नहीं, किन्तु उसके निमित्तसे जो ज्ञान हुआ—देशनालब्धि हुई—उस विकल्पयुक्त ज्ञानसे भी आत्मा प्राप्त नहीं होता; वह तो त्रैकालिक वीतराग स्वभावी ज्ञायक प्रभुके अवलम्बनसे उत्पन्न होनेवाली वीतराग निर्विकल्प अनुभूतिरूप निर्मल पर्यायसे ही प्राप्त होता है। अहा! वीतराग जिनेश्वरदेवका कहा हुआ वस्तु स्वरूप ऐसा है।

'अपना अस्तित्व पहिचाननेसे परसे पृथक्त्व ज्ञात होता ही है।

क्या कहा? आत्माका अस्तित्व राग और कर्मसे पृथक् ही है ऐसा जब स्वयं अपने ज्ञानकी वीतराग दशा द्वारा देखा—जाना तब परसे तथा विभावसे भिन्न हो गया। अंतर स्वभावमें जो भिन्न था वह पर्यायमें भिन्न दिखायी दिया। आत्मा परसे एवं विभावसे भिन्न ही है उसके अस्तित्वके लिये परकी कोई अपेक्षा नहीं है। जिससे वह पृथक् है उसके द्वारा जाना जाय—उसकी अपेक्षा रखे—ऐसी वह वस्तु ही नहीं है। अहा! वस्तुस्वरूप ऐसा है।

अहा! वस्तुस्वरूप क्या है वह न्यायसे–लॉजिकसे–तर्कसे पहले बराबर समझना चाहिये ना! न्याय शब्द 'नी' धातुसे बना है, 'नी नयति' ले जाना, मार्ग बतलाना—ऐसा उसका अर्थ होता है। वस्तुका जो स्वरूप है उसकी ओर ले जाने वाले, मार्ग बतलाने वाले श्रुतज्ञानको–तर्कज्ञानको न्याय कहते हैं। लोकके तथा सरकारके न्याय अलग हैं; यह तो तीन लोकके नाथने केवलज्ञान द्वारा जानकर घोषित किये हुए न्यायकी बात है। बाकी सब वस्तुस्वरूपको विपरीत कहनेवाले–अन्याय हैं। अहा! न्याय एवं लॉजिकसे यह बात बैठे तो अपना सहज शुद्ध अस्तित्व समझमें आये और परसे अपना पृथक्त्व ज्ञात हो।

*

वचनामृत–१६१

संसारसे भयभीत जीवोंको किसी भी प्रकार आत्मार्थका पोषण हो ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। गुरुका आशय समझनेके लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरुकी किसी भी बातमें उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं! वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य ही है, मैं नहीं समझ सकता वह मेरी समझका दोष है॥१६१॥

'संसारसे भयभीत जीवोंको किसी भी प्रकार आत्मार्थका पोषण हो ऐसा उपदेश गुरु देते हैं।'

क्या कहा? अनादिकालमें जीवने अनंतानंत भव-भ्रमण किये हैं। उस भयंकर भवभ्रमणका जिसे अंतरसे भय लगा है और अब आत्महित करना है ऐसे जीवोंको गुरु जिस प्रकार आत्मार्थका पोषण हो वैसा उपदेश देते हैं। श्री योगीन्दुदेव कहते हैं :—

इच्छे छे निज मुक्तता, भवभयसे डरी चित्त;
ते भवी जीव संबोधवा, दोहा रच्या एक चित्त।

अरेरे! यह जीव मरकर कहाँ जायगा? कहाँ भटकेगा? अरे! परिभ्रमणका कहीं अंत है? ऐसा जिसे अंतरसे भय लगा है, जो त्रस्त है, वह भवसे—संसारसे भयभीत है। मात्र बाहरके या नरक—पशुके दुःखोंसे नहीं, किन्तु चारों गतिरूप समस्त संसारके दुःखोंसे—स्वर्गमें भी रागके कारण दुःख है, इसलिये देवके भवसे भी—भयभीत है।

अहा! इस शरीरकी अवधि अनेक लोगोंको तो अब दस-वीस वर्षकी है और आत्मा तो अनादि—अनंत नित्य वस्तु है। यह स्त्री-पुत्र-लक्ष्मी आदि बाह्य संयोग स्वप्न समान मिथ्या हैं। इसलिये जिसमें भव और भवका भाव नहीं है ऐसी त्रैकालिक आत्म वस्तुका पोषण मिले ऐसा उपदेश श्रीगुरु संसारसे भयभीत जीवोंको देते हैं।

किसी भी प्रकार जीवके आत्मार्थका पोषण हो ऐसा गुरुका उपदेश होता है, परन्तु ऐसा उपदेश नहीं होता कि—पुण्य करो और वह करते-करते धीरे-धीरे कल्याण-धर्म हो जायगा। वीतराग सर्वज्ञ श्री तीर्थंकर देव, उनकी दिव्यध्वनि अथवा चार अनुयोगमय जिनवाणी और वीतराग निर्ग्रन्थ तथा आत्मज्ञानी गुरुका उपदेश ऐसा होता है कि जिससे किसी भी प्रकार आत्मार्थ—वीतरागताकी पुष्टि होती है; क्योंकि सर्व उपदेशका तात्पर्य वीतरागता है।

अरेरे! आजकल तो उपदेश भी बदल गया है—व्रत करो, तप करो, दान करो, दया पालो, मुनियोंको आहारदान दो, वे सब धर्मके साधन हैं और उनसे धीरे-धीरे तुम्हारा कल्याण-मोक्ष हो जायगा।—ऐसा शुभ राग करनेका तथा उसे धर्म या धर्मका साधन माननेका उपदेश गुरुका नहीं है, मिथ्यादृष्टिका है। गुरु तो ऐसा हितकारी उपदेश देते हैं जिससे आत्मार्थीकी पुष्टी हो। वे कहते हैं कि—आत्मा स्वभावसे त्रैकालिक ज्ञानानन्द एवं वीतराग स्वरूप हैं, उसके आश्रयसे वीतरागता प्रगट होती है।

'गुरुका आशय समझनेके लिये शिष्य प्रयत्न करता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरु क्या कहते हैं वह समझनेका शिष्य प्रयत्न करता है।

गुरु कहते हैं—यह आत्मा स्वयं स्वभावसे जिन स्वरूप, वीतरागस्वरूप है, उसके सन्मुख जा, उसकी अंतर्दृष्टि कर, उसका आश्रय ले, तो तुझे निर्विकल्प सम्यग्दर्शनकी वीतरागी पर्याय प्रगट होगी। तत्पश्चात् भी स्वका विशेष-विशेष आश्रय कर तो स्थिरतामें—चारित्रमें वीतरागताकी वृद्धि होगी। त्रैकालिक ज्ञायक भगवानका आश्रय लेनेसे अंतरमें सर्व प्रकार शुद्धिकी वृद्धि होगी। गुरुका उपदेश ऐसा, वस्तुकी स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता बतलानेवाला होता है; उसका फल वीतरागता है। गुरुका यह उपदेश समझनेका शिष्य उद्यमी है।

'गुरुकी किसी भी बातमें उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कह रहे हैं।'

गुरुकी किसी भी बातमें उसे संका नहीं होती, परन्तु गुरु क्या कहते हैं उसे यदि बराबर न समझ सके तो समझनेके लिये आशंका होती है। जो पूर्ण समझ गया हो उसे आशंका नहीं होती अथवा जो कुछ भी नहीं समझा हो उसे भी आशंका नहीं होती।

'वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य ही है, मैं नहीं समझ सकता वह मेरी समझका दोष है।'

जिज्ञासु शिष्यको भलिभाँति समझमें न आये तो वहाँ वह ऐसा विचार करता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य ही है परन्तु मैं उनका आशय नहीं पकड़ सकता; उनका आशय तो सत्य ही है। गुरुका उपदेश वस्तुस्वरूपकी स्वतंत्रता बतलाता है और वीतरागताका पोषण करता है। उसके श्रवण—मननसे—सत्समागमसे अंतरंग पुरुषार्थ द्वारा तत्त्वको बराबर समझा जा सकता है।

प्रश्न :—सत्समागम किसे कहा जाय?

उत्तर :—जिनके उपदेशमें तत्त्वका सच्चा निरूपण हो और वीतरागभावका पोषण हो; राग करो, रागसे लाभ होगा यह बात जो न कहता हो, ऐसे आत्मज्ञानी स्वानुभवी सत्पुरुषका परिचय वह सत्समागम है। बाह्य त्याग किया, साधु बन गया, परन्तु अंतरमें दृष्टि मिथ्या है कि—क्रिया करूँ, शुभ भाव करूँ और उससे अंतरमें धर्म हो जायगा तो ऐस। संग वह सत्समागम नहीं है।

शिष्य विचारता है कि—गुरु कहते वह सत्य ही है। कौन कहे वह? सच्चे गुरु कहें वह। अहाहा! जो अंतरमें स्वयं अपना गुरु हुआ है, स्वयं ही अपनेको समझकर अंतरमें चैतन्यकी प्रतीति हुई है वह निश्चयसे स्वयं ही अपना गुरु है। दूसरे ऐसे जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं वे बाह्यमें गुरु हैं, उनकी आज्ञा वीतरागताका पोषण करती है। गुरु ऐसा कहते हैं कि—देख भाई! वस्तु स्वभावकी प्रतीति हुई है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरमें आत्माका अनुभव भी है, तथापि अभी जब तक अस्थिरता है—वीतराग नहीं हुआ है तब तक बीचमें व्रतादिके विकल्प आते, परन्तु हैं वे बन्धके कारण, दुःखके कारण। वीतराग दृष्टिवंतको, स्वाश्रय दृष्टिवंतको भी जब तक पूर्ण वीतराग न हो तब तक व्यवहार आता है—व्रतादि शुभराग आता है—परन्तु वह राग बन्धका कारण है; इस प्रकार उसे हेय रूप जानना।

आजकल तो उस शुभ रागको संयम एवं चारित्र जानकर उसे उपादेय माना जाता है! अरे भाई! उस मिथ्यात्वका फल आयगा तब...! दुनिया भले उसे स्वीकार करती हो—दुनिया तो पागल है—कि ओहो! इन्होंने कैसा त्याग किया है! अरेरे! तत्त्वकी विराधना और रागकी आराधना....अहा! तत्त्वकी विराधनाका फल! कदाचित् एकाध भव बीचमें स्वर्गादिकका मिल जाय, परन्तु अंतमें तो निगोद ही है। अरेरे! किसी भी आत्माकी ऐसी दशा हो वह धर्मीको कैसे रुचे? नहीं रूचेगी। श्रीमद् कहते हैं ना! कि—'करुणा उपजे जोई।' धर्मीको करुणा आती है; तिरस्कार नहीं होता।

जो मिथ्यात्व है, जो स्वरूप सन्मुख दृष्टिसे विपरीत दृष्टि है उसे प्रथम छोड़नेकी बात है; परन्तु वह कब छूटेगी? कि स्वका आश्रय लेकर अंतरमें दृष्टि दे तथा परसे तथा रागादि विभावसे भिन्न निज शुद्ध त्रैकालिक ज्ञायक आत्माको अनुभव सहित जाने।

यहाँ यह बात चलती है कि—'मैं समझ नहीं सकता वह मेरी समझका दोष है'—ऐसा शिष्य मानता है। समझनेकी जिज्ञासावाला, भले न समझ सके परन्तु समझनेका प्रत्यन करता है।

कोई कहे कि—एकदम इतना कठिन? भाई! कठिन कहो या न कहो, वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। वीतराग पर्यायसे वीतरागी आत्मा ज्ञात होता है, रागसे कदापि ज्ञात नहीं होता। भाई! यह धीरे-धीरे समझनेकी बात है।

*

इस कालका योग अनुकूल है; बेन जैसोंका इस काल अवतार है। अरे! धर्मात्मा गृहस्थकी भेंट होना भी अनंतकालमें दुर्लभ है। भाईयोंको इस काल धर्मात्मा पुरुष मिल जाते हैं, परन्तु बहिनोंका भी इस काल सद्भाग्य है। —*पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५८

ता. ६-८-७८

वचनामृत–१६२

द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। जिस प्रकार स्फटिकमें प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीवमें विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है–निर्लेप है। ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्यायमें निर्लेपता होती है। 'ये सब जो कषाय विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने–परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है॥१६२॥

'द्रव्य सदा निर्लेप है।'

क्या कहते हैं? कि–द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक चैतन्य भाव, वस्तु वह तो अंतरमें निर्लेप है। राग और कर्मका सम्बन्ध भी जिसे नहीं है; किसे? ज्ञायकको। जो ज्ञायकको जाननेकी दृष्टि करे उसको निर्लेप है; परन्तु निर्लेप पर दृष्टि करे तब ना! अहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! जिसे जन्म-मरणके दुःखोंसे मुक्त होना हो उसे सर्व प्रथम यह निर्णय करना चाहिये कि–आँखकी पलक भी आत्मा नहीं हिला सकता। पर द्रव्य भी 'है'। वह द्रव्य पर्याय रहित नहीं हो सकता। उसकी पर्यायको जीव करे वह तो कभी संभव नहीं है। अब रहे अंतरमें पुण्य और पाप, उन्हें जीव मात्र अज्ञान भावसे करता है; क्योंकि अनंतगुणोंके पहलुओंसे सुशोभित ज्ञायक हीरा–अंतरमें ज्ञायक स्वरूप शुद्ध चैतन्य वस्तु–तो त्रिकाल निर्लेप ही है। संयोगोंके ऊपरसे लक्ष हटाकर, एक समयकी पर्यायका—जिसका अस्तित्व अपनेमें है उसका—भी लक्ष छोड़कर भगवान आत्मा अंतरमें निर्लेप द्रव्य है ऐसी जिसकी दृष्टि हो उसे सम्यग्दर्शन होता है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई!

भगवान द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण शुद्धतासे भरपूर है। वह द्रव्यस्वभाव सम्यग्दर्शनका–श्रद्धापर्यायका विषय है। ज्ञानकी पर्यायमें भी वह निर्लेप द्रव्य स्वभाव ज्ञेय होता है, वह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञात होता है, तथापि वह ज्ञानकी पर्यायमें समा नहीं आता। अहा! बात बड़ी सूक्ष्म है भाई!

अरे! अभी तो लोग विवाद उठाते हैं कि–व्रतमें भी धर्मका मिश्रितपना है। भाई! व्रत तो शुभ राग–आस्रव है। जिसने निर्लेप द्रव्यस्वभावका—महाप्रभुका आश्रय किया है उसे पर्यायमें जो निर्मलता हुई और जो विकल्प शेष रहा वे दोनों मिश्र हैं, परन्तु उस मिश्रणमें जो व्रतादिका शुभ विकल्प है वह तो आस्रव है, धर्म नहीं है। पूर्ण निर्लेप स्वभावका जघन्य आश्रय तो सम्यक्त्व होते ही लिया है; स्थिरतारूप विशेष आश्रय लेनेसे स्वरूप रमणतारूप चारित्र प्रगट हुआ; पूर्ण आश्रय लिया तो केवलज्ञान प्रगट हुआ।

'स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है।'

यह क्या कहा? कि–'द्रव्य तो सदा निर्लेप है' उसमें कोई दूसरा द्रव्य न समझ ले इसलिये, प्रथम 'द्रव्य' ऐसी साधारण बात करके, अब उस 'द्रव्य'का 'ज्ञाता, ज्ञायक' रूपसे वर्णन करते हैं।

जानना और देखना जिसका त्रैकालिक सहज स्वभाव है ऐसा आत्मा स्वयं ज्ञाता, ज्ञायक...ज्ञायक....ज्ञायक, तैरता भिन्न पदार्थ है। समयसारकी ३१वीं गाथाकी टीकामें ध्रुव आत्मा राग और पर्यायसे भिन्न, अधिक, पृथक् तैरता हुआ कहा है। उसका रागके साथ कहीं मेल नहीं है। वह तो शुभ रागके दाग रहित, अनंत गुणोंके पहलुओंसे युक्त चैतन्य हीरा है। अहा! यह तो जिसे कल्याणकी भावना हो उसकी बात है! भाई! जीव यों ही चौरासी लाख योनिके अवतारोंमें भ्रमण करता है। करोड़पति मानते हैं कि हम सुखी हैं; वास्तवमें वे सुखी नहीं किन्तु आत्माकी प्रतीतिके बिना महादुःखी हैं। वे व्यापार–धंधेकी ममताके अशुभ परिणामोंसे मरकर नरकमें या पशुओंमें उत्पन्न होनेवाले हैं। क्योंकि शुभ या अशुभभावका फल चार गतियां हैं शुद्ध भावका फल मोक्ष है। शुभाशुभ रागसे भिन्न तैरता हुआ, अंतरमें ज्ञाता ज्ञायक भाव है, उसका उपयोग करना वह शुद्धोपयोग है।

प्रश्न :—कोई तो ऐसा कहते हैं कि इस काल शुद्ध उपयोग होता ही नहीं है?

उत्तर :—अरे प्रभु! तू यह क्या कहता है? यदि शुद्धोपयोग नहीं है तो इसकाल वर्तमानमें द्रव्यकी दृष्टि तथा द्रव्यका ज्ञान ही नहीं है–ऐसा सिद्ध होगा। स्वयं अर्थात् आप ज्ञाता, शुद्धभावरूप भिन्न–तैरता हुआ पदार्थ है; उसमें श्रद्धा-ज्ञान पूर्वक उपयोग लगना वह शुद्धोपयोग है।

'जिस प्रकार स्फटिकमें प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीवमें विभाव ज्ञात होने पर ही जीव निर्मल है–निर्लेप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्फटिक एक प्रकार रत्न होता है। जामनगरमें समयसारकी १००वीं गाथा पर व्याख्यान चलता था तब (वि. सं. १६६१में) एक स्फटिक देखा था। स्फटिकमणिमें प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हों उस समय भी स्फटिक तो स्वच्छ निर्मलताका पुंज है। लाल पुष्पके संयोगसे वह लाल रूप हुआ ही नहीं है। पर्यायमें हुआ है तब भी उसका द्रव्य तो स्वभावसे निर्मल है, लाल रूप नहीं हुआ है। प्रतिबिम्ब अर्थात् सामने जो वस्तु हो वैसा ही यहाँ स्फटिकमें आकार दिखायी देता है। प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक तो स्वभावसे उस समय भी निर्मल ही है। उसी प्रकार जीवकी दशामें विभाव ज्ञात होने पर भी, रागादि दिखने पर भी, वह तो स्वभावसे ज्ञायकपिण्ड प्रभु है, रागसे बिलकुल भिन्न है। वस्तु तो बिलकुल निर्मल तथा निर्लेप है। अहाहा! 'अस्ति'रूप जो नित्य ध्रुवस्वभाव, भगवान वस्तु स्वभाव उसकी पर्यायमें विभाव दिखने पर भी, वह तो निर्लेप ही है। यहाँ ध्रुव स्वभाव ज्ञायकभावरूपसे लेना है, क्योंकि ध्रुवस्वभाव तो परमाणु आदिमें भी है। ज्ञायक भावको वर्तमान पर्यायमें शुभाशुभ भाव होने पर भी वस्तु तो निर्मल तथा निर्लेप ही है।

'ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्यायमें निर्लेपता होती है।'

क्या कहा? कि–ज्ञायक भाव है वह त्रिकाल शुद्ध, शाश्वत, ध्रुव द्रव्य–वस्तु है। उसमें विभाव दिखने पर भी वस्तु तो स्वभावसे निर्लेप है–वह एक बात; दूसरी बात यह है कि–'आत्मा शुद्ध ज्ञायक भाव है' ऐसा जब श्रद्धा-ज्ञानमें आया–आया अर्थात् स्वयं उसे श्रद्धा-ज्ञानमें लिया–तब उस ज्ञायक भावका परिणमन भी ज्ञायकरूप होता है। अहा! बड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! इस समय इस वचनामृतमें बारह अंगका सार आ गया है; अकेला मक्खन है!

आत्मा ज्ञायक है, उसके साथ यह जो शरीर है वह तो पृथक् ही पड़ा है। आत्माके साथ उसका क्या सम्बन्ध? वह तो मिट्टी है। भगवान आत्मा तो चैतन्यरत्न अंतरमें भिन्न है। अरे! शरीर तो क्या, किन्तु पुण्य–पापके भावरूप भी वह नहीं हुआ है। अहा हा! आत्मा ज्ञायक स्वरूप है भाई! करना तो यह है। दुनिया चाहे जो माने, चाहे जो कहे, किन्तु सुखी होनेका तो यही मार्ग है।

अशुभ भाव तो संसार हैं ही, परन्तु मुनिको पंच महाव्रतादिके शुभ परिणाम आये वे भी संसार ही हैं। वह परिणमन उनका नहीं; त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी दृष्टिके कारण वर्तती ज्ञायकपनेकी सहज अतीन्द्रिय निर्मल तथा निर्लेप दशा ही वास्तवमें उनका परिणमन है। अहा! जगतको यह बात कठिन लगे, लेकिन क्या हो? बाह्य तड़कभड़कने जगतको मार डाला है! करोड़ोंके मकान हों, लाखोंकी आमदनी हों, लेकिन उससे क्या? वह तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धूलके ढेर हैं। प्रभु! तू अंतरमें अनंत गुणसमृद्धिका ढेर है। यही यथार्थ वस्तु है।

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ भगवानने दिव्यध्वनिमें ऐसा आदेश दिया है कि–प्रभु! तू तो सदा निर्लेप और भगवान है। समयसारकी ७२वीं गाथाकी टीकामें आचार्यदेवने आत्माको तीनबार 'भगवान आत्मा' कहा है। अनंत सहज ज्ञान, अनंत सहज दर्शन और अनंत सहज आनंदादि अनंत 'भग' अर्थात् लक्ष्मी और 'वान' अर्थात् सहित जिनका त्रैकालिक स्वरूप है वह निज 'भगवान आत्मा' है। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञायकभावरूप निज द्रव्य स्वभावकी दृष्टि और ज्ञान किया उसका परिणमन भी–ज्ञायककी भाँति निर्लेप है तथा उसकी पर्याय भी निर्लेप है।

अहा! भाषा सादी परन्तु बड़ी महँगी है भाई! अरे, मैं कौन हूँ, कैसा हूँ–उसका कभी अभ्यास ही नहीं किया। रागकी क्रियायें करता है और दया, व्रतका पालन करे....परन्तु वह तो संसार है। भाई! तू तो निर्लेप द्रव्य स्वभाव है। अहा! वर्तमान पर्याय अंतरमें निर्लेप शुद्ध ज्ञायककी खोजमें जायगी तो ज्ञायक आत्मा हाथ आयगा; और वह परिणति—जैसा उसका त्रैकालिक स्वरूप है वैसी ही उसकी दशा—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र स्वरूप प्रगट होगी।

वणिकको व्यापारका पार नहीं। अहा! उसके हाथ यह जैन धर्म आया; परन्तु उसे समझनेका कहाँ अवकाश है? एक इतिहासके विद्वानने खोज करके प्रश्नार्थमें लिखा है–'क्या जापानमें जैनधर्म?' उस लेखमें उसीने लिखा है कि–आत्माकी अनुभूति करना वह जैन धर्म है। अहा! परदेशका इतिहासकार भी खोज करते-करते लिखता है कि—जैनधर्म वह क्या वस्तु है? आत्मा जैसा है वैसा उसका अनुभव करना वह जैनधर्म है। यहाँ तो व्रत, तप, भक्ति और पूजाके शुभभावको लोग जैनधर्म मान बैठे हैं। भाई! अपने ज्ञानमें अभी निर्धार तो कर कि वस्तु है वह सदा निर्लेप है, ज्ञायक है; और उसका आश्रय करके जो दर्शन, ज्ञान एवं रमणता हो वह भी निर्लेप तथा निर्मल ही होती है; उसे मोक्षमार्ग तथा जैनपना प्रगट हुआ–ऐसा कहा जाता है। जिनपना वह तो वस्तुका स्वरूप है। प्रभु! तू जिनस्वरूप है–यह तुझे खबर नहीं है। श्री समयसारनाटकमें कहा है कि–'घट घट अंतर जिन वसे घट घट अंतर जैन।' अरे! नग्न दिगंबर साधु हो, परंतु अभिप्राय व्रत, तपादिके शुभभावसे धर्म होता है ऐसा मानता है। रागसे धर्म माने वह अभिप्राय ही भूल युक्त है। धर्म तो वीतराग भाव है। रागसे वीतराग हुआ जा सकता है? अहा! इस देह देवालयमें प्रत्येक आत्मा स्वयं जिनस्वरूपसे विराजमान है। यदि अंतरमें शक्तिरूपसे स्वयं जिनस्वरूप–वीतरागस्वरूप न हो तो पर्यायमें व्यक्तिरूपसे वह जिनदशा कहाँसे आयगी? क्या वह दशा कहीं बाहरसे आती है? अहा! भारी कठिन कार्य! जिनस्वरूप कहो, निर्लेप स्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो–सब एक ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैनधर्म कोई पक्ष नहीं है, वह तो वस्तुका स्वरूप है। ज्ञायकरूप परिणमनेसे पर्यायमें निर्लेपता होती है।

'ये सब जो कषाय–विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने–परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।'

क्या कहते हैं? कि–ज्ञायक प्रभु स्वयं ज्ञाता स्वभावसे भरपूर है। उसे पर्यायमें जो रागादि होते हैं वे तो ज्ञायक जीवके परज्ञेय हैं, स्वज्ञेय तो ज्ञायक है। भाई! वस्तु तो ऐसी है। क्या कहें? अरे! भगवानका विरह पड़ा और यह बात रह गई।

अरेरे! अनेकान्त किसे कहते हैं—वह भी लोगोंको खबर नहीं है। सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है। ज्ञायक प्रभुका आश्रय करके निर्मल परिणति प्रगट करना वह तो अनेकान्तगर्भित सम्यक् एकान्त ही है। निश्चय ज्ञायक स्वभावके आश्रयरूप सम्यक् एकान्त हुआ वहाँ, साथ ही भूमिकाके योग्य रागादिका ज्ञाता हुआ वह अनेकान्त है।

द्रव्य पर दृष्टि पड़नेसे ज्ञायक द्रव्यका जो द्रवना हो, परिणमन हो–पर्यायमें परिणमन हो–वह भी निर्लेप, निर्दोष तथा निर्मल ही होता है। आया कुछ समझमें? भाषा तो सादी है। प्रभु! तेरी प्रभुताका पार नहीं है।

नाथ! क्या कहें? 'अनुभव प्रकाश'में कहा है : प्रभु! तेरी शुद्धताकी तो क्या बात? तेरी शुद्धता तो बड़ी, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी! केवलीके समीप जाकर भी तूने अपनी विपरीतता नहीं छोड़ी! तीनलोकके नाथ तीर्थंकर प्रभुके समीप गया, समवसरणमें भगवानकी वाणी अनंतबार सुनी; जहाँ कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता ऐसे महा विदेह क्षेत्रमें अनंत बार तेरा जन्म हुआ, समवसरणमें भगवानकी मणिरत्नोंके दीपकसे आरती उतारी; हीरोंके थालमें कल्पवृक्षके फलोंसे पूजा की, परन्तु प्रभु! वह तो शुभ राग है, संसार है, वह ज्ञायक भाव नहीं है। अहा! कठिन काम है भाई! आजकल तो उपदेशकोंने लोगोंको क्रियाकाण्डमें लगा दिया है। वणिकोंको तत्त्व समझने या विचारनेका अवकाश नहीं मिलता और दूसरे कोई व्रत धारण करें, ब्रह्मचर्य पालें तथा परिषह सहन करें वहाँ बाह्य क्रिया देखकर प्रसन्न होते हैं कि–हम नहीं कर सकते ऐसा वे करते हैं, इसलिये हमसे तो वे बड़े हैं। अरे, प्रभु! यह तू क्या कहता है? परिषह जय आदि किसे कहा जाता है? जहाँ देहादि तथा रागादिसे भिन्न निज ज्ञायक भगवानकी सच्ची प्रतीति–सम्यग्दर्शन हुआ हो, परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्दकी अनुभव धारा प्रगटी हो, वहाँ जो परिषह–बाह्य प्रतिकूलता आये उसका सहजरूपसे ज्ञाता रहे उसका नाम परिषयजय–परिषहको सहन करना–कहा जाता है। यह सम्यग्दर्शन रहित क्रियाएँ कोई परिषयजय नहीं हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! 'यह सब जो कषाय–विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो शुद्ध ज्ञायक हूँ' इस प्रकार निज द्रव्यस्वभावकी पहिचान करे–तद्रूप परिणमन करे तो पर्यायमें प्रगट निर्लेपता, शुद्धता होती है। समयसारकी १२वीं गाथामें कहा है कि–त्रैकालिक शुद्ध परम भावको जो देखता है उसका जिसने आश्रय लिया है उसे शुद्ध नय जानना। उस सम्यग्दृष्टि जीवको पर्यायमें कुछ अशुद्धता या अपूर्णता है या नहीं? है, तो उसे क्या कहना? साधक जीवको परम भावके आश्रयरूप निश्चयके साथ साथ जितनी शुद्धि बढ़ती जाती है, अशुद्धि घटती जाती है और जितनी कचास रह गई है वह सब व्यवहारनयका विषय है और उस उस भूमिकामें वह-वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहारनयके विषयोंका भी ज्ञान तो ग्रहण करने योग्य है ऐसी विवक्षासे नहीं। अहाहा! अद्भुत है दिगम्बर जैन संतोंकी बातें! अमृतका सागर उछला है! ऐसी बात अन्य किसी संप्रदायमें है ही नहीं। अहा! क्या कहें? किससे कहें?

अहा! अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप ज्ञायककी जहां प्रतीति हुई, वहाँ जो कषाय भाव आता है वह परज्ञेयरूपसे आता है, स्वज्ञेयरूपसे तो ज्ञायक भाव आता है; क्योंकि ज्ञानकी पर्यायका स्वभाव स्व-परप्रकाशक होनेसे वह स्वको भी जानती है और परको तथा पर्यायमें रागादि अशुद्धता आये उसे भी जानती है। ज्ञातास्वभाव है वह ज्ञानके सिवा और क्या करेगा? वस्तु है वह ज्ञायकभावरूपसे विद्यमान वस्तु है, निर्लेप है। उसका जिसे ज्ञान हुआ उसे भी अभी पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है इसलिये, व्रतादि रागका विकल्प आता है, उसे वह जानता है, परन्तु उससे लाभ होगा ऐसा नहीं मानता। कषाय आये उसे जानना वह तेरी प्रभुता है, कषायको करना और 'कषाय मेरे हैं' ऐसा मानना–वह तेरी प्रभुता नहीं है, पामरता है। अरेरे! जीवने अपने आत्महितकी इच्छा नहीं की, परके जंजालमें उलझकर मर गया। कषाय तो विभावरूप परज्ञेय हैं, स्वभावरूप स्वज्ञेयरूप तो ज्ञायक भाव है।

अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे विभाव पर्याय आत्माकी है। प्रवचनसारमें कहा है शुद्ध द्रव्यके निरूपण स्वरूप निश्चय नयसे पुण्य-पापके भाव आत्माके हैं। परन्तु वह तो ज्ञेयकी–पर्यायकी सिद्धि सिद्ध की है। परन्तु जब त्रैकालिक ज्ञायक पर दृष्टि पड़ती है, तब तो वह राग, पुण्य-पापके तथा दया-दानादिके भाव परज्ञेयरूपसे ज्ञानमें ज्ञात होते हैं। ऐसा ही ज्ञानका सहज स्वभाव है। स्वका ज्ञान हुआ, वहाँ उस ज्ञानकी पर्यायमें स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य होनेसे स्वको जानते हुए राग बीचमें आया उसे परज्ञेय जानता है। ज्ञाता प्रभु और क्या करेगा? वह तो उदयको तथा बंधको एवं निर्जराको तथा मोक्षको जानता है–उसका ज्ञाता रहता है। यह बात समयसारकी ३२०वीं गाथामें कही है।

स्त्री, पुत्र, परिवारादि तो कहीं दूर रह गये, परन्तु रागके परिणाम आयें उन्हें भी परज्ञेयरूपसे जानता है। परको जानता है वह भी एक अपेक्षासे है बाकी तो जाननेकी पर्याय स्वयं ऐसी ही प्रगट होती है कि जिस प्रकारका राग है उसे जाननेवाला ज्ञान अपनेसे प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो। ज्ञायकभाव है उसमेंसे ज्ञानकी पर्याय आती है, और वह पर्याय स्वको तथा परको जाननेके स्वभाववाली प्रगट होती है। अहा! प्रभुका अर्थात् आत्माका मार्ग अलौकिक है!

भाई! बाह्यमें धर्म मानकर जो जीवन गँवाते हैं वे सब भविष्यमें नरक तथा निगोदके भवोंमें जायँगे। तू ऐसा न मान कि दुनिया तुझे बहुत मानती है इसलिये हो गया धर्मी! क्या तुझे दुनियासे धर्मीपनेका प्रमाण-पत्र लेना है? दुनियामें तो भले करोड़पति सेठ हों, परन्तु वे मोहकी उन्मत्ततासे पागल हैं, और पागलोंके प्रमाण-पत्रका क्या मूल्य है? अज्ञानीको यह बात नहीं जमती। 'मति-मदिराके पानसौं मतवाला समुझै न।' जिनस्वभाव अंतरमें है, उसका आश्रय लेनेसे निर्मल पर्याय प्रगट होती हैं। वही करना है, परन्तु उसमें अज्ञानीको सूझ नहीं पड़ती। नहीं करने योग्य ऐसे इस क्रियाकाण्डमें उसे सूझ पड़ती है। परमार्थ वचनिकामें कहा है—आगमका व्यवहार सरल है, इसलिये लोग उसमें लगे हुए हैं; परन्तु अध्यात्मका व्यवहार क्या है उसे वे नहीं जानते। त्रैकालिक ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे हुई निर्मल निर्विकल्प वीतराग दशा वह अध्यात्मका व्यवहार है, बाकी यह जो महाव्रतादि रागकी क्रिया वह सब मनुष्य व्यवहार है, आत्मव्यवहार नहीं है। प्रवचनसारकी ९४वीं गाथाकी टीकामें यह बात कही है।

अहा! दिगम्बर सन्तोंने अद्भुत कार्य किया है, परन्तु लोगोंको उसे जाननेका भी अवकाश नहीं है। हम दिगम्बर हैं इसलिये नग्न दिगम्बर मुनि तथा नग्न जिनप्रतिमाको मानना चाहिये इतना समझते हैं; परन्तु उससे क्या होगा? अंतरमें आत्मा विकल्पके आवरण रहित नग्न है, उसे माने तब तू दिगम्बर कहा जायगा।

दया, दान, व्रत, तप, भक्ति आदि संयोगी भाव हैं, स्वभाव भाव नहीं हैं। अभी तो स्वभावको समझनेका भी ठिकाना नहीं है उसे धर्म कहाँ है? आत्मा—वस्तु तो स्वभावसे निर्लेप है उसका ज्ञान करे, उसे देखने और जाननेका कार्य करे तो पर्यायमें प्रगट निर्लेपता हो। वह निर्लेपता कोई शुभरागरूप व्यवहार करते-करते हो—ऐसा नहीं है। भगवान ज्ञायक आत्माका आश्रय लेनेसे जो वीतराग परिणति हुई वह निर्लेपतारूप निश्चय मोक्षमार्ग है; वह निर्लेप शुद्धपरिणति निर्लेप द्रव्य स्वभावके अवलम्बनसे होती है, शुभ व्यवहारके अवलम्बनसे नहीं। अहाहा! ऐसी बात है। क्या कहें? भगवानका विरह पड़ा, भरत क्षेत्रमें वर्तमानमें भगवानका जन्म नहीं होता, केवली भी नहीं हैं। अहाहा! यह तो यहाँ भगवानका कथन है बेनने तो बात करते-करते किसीसे कहा होगा, वहाँ यह लिखा गया!

यहाँ कहते हैं कि—पर्यायमें यह जो शुभाशुभ विभाव ज्ञात होते हैं' वे ज्ञेय हैं, द्रव्यस्वभाव तो मात्र ज्ञायक है—ऐसी सच्ची पहिचान करे—परिणमन करे तो पर्यायमें प्रगट निर्लेपता, शुद्धता एवं वीतरागता होती है।

*

१५.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–५६

ता. ६-८-७८

वचनामृत–१६३

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप, अनंत अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है। ज्ञायक के साथ ज्ञान ही नहीं, दूसरे अनंत आश्चर्यकारी गुण हैं जिनकी किसी अन्य पदार्थके साथ तुलना नहीं हो सकती। निर्मल पर्यायरूप परिणमित होने पर, जिस प्रकार कमल सर्व पंखुरियोंसे खिल उठता है उसी प्रकार आत्मा गुणरूपी अनंत पंखुरियोंसे खिल उठता है।।१६३।।

'आत्मा तो चैतन्य स्वरूप, अनंत अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है।'

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप भगवान है। ज्ञायक अर्थात् जानना–देखना; वह उसका नित्य स्वरूप है। शरीर, वाणी और मन तो नहीं, किन्तु महाव्रतादिके परिणाम भी उसका स्वरूप नहीं है। अरे! यह स्वरूप कैसे बैठे? स्वयं तो कर नहीं सकता और जिसने व्रतादिके शुभभाव किये हों, स्त्री–पुत्रादि छोड़े हों, उसे 'धन्य है' ऐसा मानता है; परन्तु भाई! बाह्य प्रतिज्ञा तो ली, परन्तु अंतरमें 'त्रिकाल परिपूर्ण ज्ञायक भाव हूँ' उसकी प्रतिज्ञा ली? अंतरमें ज्ञायक भावके आश्रय बिना बाह्यमें शुभरागकी सर्व क्रिया संसार परिभ्रमणका हेतु है। सारी दुनिया अज्ञान एवं दुःखके कोल्हूमें पिल रही है। भाई! उसे खबर नहीं है कि कोल्हूमें तिल पिलते हैं तदनुसार अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ यह ज्ञायक भगवान राग एवं द्वेषके कोल्हूमें पिल रहा है। लोग भले माने कि हम धनवान हैं, सुखी हैं : वे मोह-राग-द्वेषके सन्निपातके कारण पागल हैं। सन्निपातका रोगी खूब हँसता है परन्तु उसका हँसना रोगके कारण है सुखका हास्य नहीं है। उसी प्रकार सुखस्वभावी आत्म स्वरूपकी प्रतीतिके बिना अज्ञानी जीव रुपये–पैसे आदि बाह्य सामग्रीमें सुख मानता है वह मिथ्यात्व, अज्ञान एवं अव्रतका सन्निपात है। रोगीको वात-पित्त-कफका त्रिदोष है, अज्ञानीको मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्या चारित्रका त्रिदोष है।

लोगोंको लगता हैं कि–'कुछ व्यवहार करो, उससे लाभ होगा'–ऐसी बात तो करते

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हैं। भाई! व्यवहार आये वह तो शुभ राग है, कषाय है, उससे लाभ होगा? कषाय तो आकुलता एवं बंधका कारण है, उससे शुद्धताका लाभ कदापि नहीं हो सकता। लोग कहते हैं कि–सम्यग्दर्शन दिखाई नहीं देता, चारित्र तो बाहर दिखता है। भाई! बाह्यमें चारित्र था ही कब? चारित्र तो अंतरमें आनन्दके नाथ ऐसे भगवान आत्माके स्वरूपमें चरना, रमना, जम जाना, जमना–अतीन्द्रिय आनन्दका भोजन करना वह है। भाई! चारित्रकी व्याख्या ही कोई और है।

अहा! दुनियाकी रीति हमने देखी है, जानी है। यहां तो शरीरको ८६ वर्ष हो गये। दुकान पर भी शास्त्रका अध्ययन करते थे। पालेजमें पाँच वर्ष व्यापार किया था। दुकानमें भी बहुत कुछ देखा था, बहुत पढ़ा था। संवत् १९७८में जब यह समयसार शास्त्र हाथमें आया तब लगा कि–अहाहा! यह तो मोक्षका मार्ग! यह तो अशरीरी होनेका—शरीर रहित सिद्धपद प्राप्त करनेका—शास्त्र है। इसे ५६ वर्ष हो गये हैं।

यहाँ कहते हैं कि–भगवान आत्मा अनंत और अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है। स्वयं अनंत उपमा रहित गुणोंसे दीप्तिमान हीरा है। अरेरे! अंतरमें निज द्रव्यकी तो खबर नहीं है और परद्रव्यकी पंचायतमें पड़ा है; किन्तु प्रभु! तू कौन है–उसकी तो खबर कर। निज चैतन्यस्वरूपमें अनंत एवं अनुपम गुण भरे पड़े हैं। अहा! अनंत गुणसे सुशोभित भगवान ज्ञायक आत्मा चमत्कारीक पदार्थ है। दुनियाके चमत्कार वे वास्तवमें कोई चमत्कार नहीं है।

यहाँ इस चन्दनकी लकड़ीमें चमत्कार है, उससे पैसे वाले हो जाते हैं—ऐसा कितने ही लोग कहते हैं। यह बात बिलकुल असत्य है। इस पट्टीमें धूल भी चमत्कार नहीं है। हाथमें पसीना आता है और पसीनेवाला हाथ शास्त्रमें नहीं लगना चाहिये इसलिये शास्त्र पढ़ते समय हाथमें यह पट्टी रखते हैं। पट्टीमें चमत्कार नहीं है, परन्तु लोगोंने ऐसी बात उड़ाई है। अमरेलीमें एक न्यायाधीशने एक वकीलसे पूछा कि–किन महाराजका व्याख्यान सुनने जाते हो? जिनके हाथमें लकड़ीकी पट्टी फिरे और पैसे हों उन महाराजका? पैसे हों ऐसा कोई चमत्कार धूल भी नहीं है। यहाँ तो चैतन्य-चमत्कारकी बातें हैं। ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा कोई अद्‌भुत चमत्कारिक पदार्थ है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका जो आश्रय है वह, चैतन्यस्वरूप अनंत अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है। उसकी सम्यक् श्रद्धा तथा अनुभवके बिना सब थोथा–सार हीन है, चारगतिमें भटकनेका कारण है।

'ज्ञायकके साथ ज्ञान ही नहीं, दूसरे अनंत आश्चर्यकारी गुण हैं जिनकी किसी अन्य पदार्थके साथ तुलना नहीं हो सकती।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान ज्ञायक आत्मामें उसका त्रैकालिक असाधारण स्वरूप ज्ञान तो है ही; विशेषमें ज्ञानके साथ शांति, आनन्द, स्वच्छता, वीतरागता, प्रभुता, चिति, दृशि, सुख, वीर्य ऐसे अनंत-अनंत आश्चर्यकारी गुण हैं। चैतन्य परमात्म दरबारमें असंख्य प्रदेश वह उनका देश है, अनंत गुण वह उनका चमत्कारी वैभव है, एक-एक गुणकी अनंत पर्यायें हैं, एक-एक गुणके अनंत स्वरूप हैं;—ऐसी आश्चर्यकारी अनंत-अनंत समृद्धिसे भरपूर निज परमात्माका दरबार है, जिसकी किसी अन्य पदार्थके साथ तुलना नहीं हो सकती। अहाहा! ऐसी अद्‌भुत तेरी निधि है। उस चमत्कारी निधिके नाथको अज्ञानी जीवने कभी देखा नहीं है, सुना भी नही है। अनादिकालसे परिभ्रमणके साधन कर-करके मर गया है। बाह्यमें व्यापार-धन्धेके पापमें उलझ गया है। धर्मके नामसे भी पूजा-भक्ति तथा व्रतादिके शुभरागमें अटक गया है। जिसमें अनन्तानन्त आश्चर्यकारी शक्तियां हैं ऐसे निज ज्ञायकतत्त्वको लक्षमें नहीं लिया, उसका आश्रय या अवलम्बन नहीं लिया, परका और विभावका अवलम्बन नहीं छोड़ा।

अंतरमें जिसे चैतन्य ज्ञायकदेवका अभिप्रायमें आश्रय हुआ है ऐसे ज्ञानीको अथवा जिसे स्वभावका आश्रय प्राप्त करना है ऐसे सच्चे आत्मार्थीको स्वभाव समझनेमें निमित्त ऐसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी महिमाका शुभराग आता है। पूजा-भक्ति तथा व्रतादि व्यवहारनयका विषय है तो अवश्य, नहीं है ऐसा नहीं, परन्तु वह भाव राग है, संसार है, उसका आश्रय करने योग्य नहीं है; वह उपादेय नहीं है, हितकर नहीं है, हेय है। अरेरे! कब यह तत्त्व सुननेको मिलेगा? मनुष्य भव तो चला जा रहा है, कब आयु पूर्ण हो जायगी उसकी किसे खबर है?

सर्वज्ञदेवने तेरा परमेश्वर स्वरूप बतलाया है। तेरे स्वरूपमें ज्ञान, आनन्दादि जो अनंत गुण हैं वे आश्चर्यकारी हैं। तू दूसरोंको आश्चर्य, विस्मय एवं कुतूहलसे देखता है, परन्तु अंतरमें परमात्मा विराजता है उसके जो आश्चर्यकारी अनंत गुण, एक-एक गुणकी अनंत पर्यायें, एक-एक पर्यायकी अनंत शक्ति आदि विस्मयकारी निज वैभवको कुतूहलसे नहीं देखता। अरे, भाई! तू प्रभु है; तेरी शक्तियाँ तो निज प्रभुतासे भरपूर हैं, उनकी तुझे खबर नहीं है। अनन्तानन्त शक्तिसे भरपूर ऐसे अपने अभेद द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि कर; बाकी सब थोथा है। कितनी डिग्रीयाँ प्राप्त कीं? कितने रुपये इकठ्ठे किये? वह कोई विशेषता नहीं है। जो वस्तु तुझमें नहीं है उसका तुझे विश्वास है; तुझे रागका, शरीरका, औषधिका विश्वास है; परन्तु तुझे अपना विश्वास नहीं है।

अनंत गुणका सागर ऐसा वह सहज ज्ञायक भाव तेरी दृष्टिमें आ जाय तो उसमेंसे तेरी पर्यायमें अनंत गुणोंकी निर्मल धारा प्रगट होगी, तुझे सम्यग्दर्शनमे अनंत गुणोंकी आनन्दधाराका वेदन होगा। निर्मल पर्यायरूप परिणमनेसे अपने अनंत चमत्कारी, विस्मयकारी तथा आश्चर्यकारी गुण तुझे ज्ञात होंगे। आत्मामें अनंत गुण हैं, उनमें 'परका करना' ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई गुण नहीं है। यह करना, ऐसा करना, वह तो रागकी क्रिया है। प्रभु! तूने अपनी प्रभुताको कभी जाना–पहिचाना नहीं है। पामरताको प्रभुता मानकर तूने उसका आदर किया है। अंतरमें आनन्दके नाथको भूलकर तुझे बाह्य पदार्थोंमें–पुण्यके फलमें–आश्चर्य लगता है। पुण्यके फलमें आश्चर्यमग्न जीव भी दुःखी हैं। प्रभु! तेरे अनुपम गुणोंके आश्चर्यकी क्या बात कहें? तेरे सर्व गुण विस्मयकारी हैं। तूने अपने गुण निधानको कभी खोला नहीं है। रागकी एकताके ताले लगाकर तूने अनुपम निधानको बन्द कर दिया है। रागके रसमें प्रभु! तू भीतर नहीं जा सकता। तुझे अपने गुण तथा पर्यायोंकी विस्मयताका पता नहीं है।

'निर्मल पर्यायरूप परिणमित होने पर, जिस प्रकार कमल सर्व पंखुरियोंसे खिल उठता है उसी प्रकार आत्मा गुणरूपी अनंत पंखुरीयोंसे खिल उठता है।'

आनन्दसागर भगवान आत्माको देखनेसे, उसे आदरनेसे, उसकी सन्मुखतासे जो पर्याय हो वह निर्मल है; अर्थात् व्यवहार करते-करते पर्याय निर्मल नहीं होती। व्यवहार हो भले; क्या व्यवहारनयका विषय नहीं है? उसका विषय है अवश्य, परन्तु वह आश्चर्यकारी या आदरणीय नहीं है। व्यवहारका विषय ही न हो तो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि जीव ही सिद्ध नहीं हो सकेंगे। परमार्थ जीव तो ज्ञान स्वरूप है, उसे पर्यायमें राग-द्वेष-मोहादि व्यवहारभाव ही न हों तो उसे संसार ही सिद्ध न हो। उसे संसार तो दिखाई देता है; इसलिये व्यवहारनयका विषय है, परन्तु वह आदरणीय नहीं है। आदरणीय तो अंतरमें ज्ञानादि गुण स्वरूप अभेद आत्मा है।

जीवोंको तत्त्वकी बात सूक्ष्म लगती है, क्योंकि उसका अनादिसे अनभ्यास है। प्रभु! तेरे गुण निर्मल पर्यायरूप परिणमनेसे निर्मलानन्द प्रभुके सन्मुख देखनेसे, उसका आश्रय लेनेसे, अंतरमें जो निर्मलता भरी है वह पर्यायमें प्रगट परिणमती है। जिस प्रकार सरोवरमें कमल सर्व पंखुरियोंसे विकसित हो उठता है उसी प्रकार आत्माके गुण अनंत पंखुरियोंसे खिल उठते हैं। वह विकास व्यवहारसे या रागसे नहीं होता, उसके कारण तो विकास रुक जाता है। अंतरमें अनंत गुण सागर भगवान आत्माकी सन्मुखतासे, तद्रूप परिणमनेसे अनंत गुण खिल उठते हैं।

वीतरागका मार्ग अति सूक्ष्म है। भगवान आत्माका चैतन्यनिधान पवित्र निर्मल गुणरत्नोंसे परिपूर्ण है; उसके सन्मुख देखने, उसका आश्रय लेनेसे अनंत गुण पर्यायमें खिल उठते हैं। यह करने योग्य क्रिया है। लोग कहते हैं कि–व्यवहारको उड़ाते हैं। भाई! व्यवहार नहीं है ऐसा कौन कहता है? व्यवहाररूपसे वह है, भूमिकानुसार आता है, परन्तु वस्तुके स्वरूपमें वह नहीं है; वह आदर या आश्रय करने योग्य नहीं है। ऐसा है वस्तुस्वरूप। समयसारकी ८वीं गाथाकी टीकामें आता है–गुरुने शिष्यसे 'आत्मा' शब्द कहा। शिष्य कुछ भी न समझकर गुरुके सामने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

टुकुर-टुकुर देखता रहता है। तब गुरु उसे गुणभेद करके समझाते हैं कि 'जो श्रद्धाको, ज्ञानको, चारित्रको प्राप्त हो वह आत्मा' उतना व्यवहार कहा।' अभेद परमार्थको समझानेके लिये व्यवहार कथन करने योग्य है, परन्तु वह अनुसरण करने योग्य नहीं है। जहाँ गुणभेदरूप सद्भूत व्यवहार भी अनुसरण करने योग्य नहीं है, तो फिर व्रत-तपादिके शुभरागरूप असद्भूत व्यवहारकी तो बात ही क्या करना? ऐसी बातें हैं। लोगोंको इसका अभ्यास नहीं है।

प्रभु! जो भाव तेरे स्वरूपमें नहीं हैं उन्हें तू अपना बनानेकी अभिलाषा करता है, तो तुझे ऐसी अभिलाषा करके कहाँ जाना है? उसका फल क्या होगा उसकी तुझे खबर है? शरीर तो छूटेगा ही, आत्माका नाश कभी होता नहीं है, तो यह शरीर छोड़कर कहाँ जायगा? जिसने राग एवं पुण्यकी क्रियाका सेवन किया है, उससे लाभ माननेरूप मिथ्यात्वका सेवन किया है, वह भविष्यमें भी मिथ्यात्वमें रहेगा। मिथ्यात्वके गर्भमें नरकके तथा निगोदके अनंत भव करनेकी शक्ति है। वहीं अनंतकाल रहेगा। भिन्न आत्माका सम्यग्दर्शन होनेसे अनादि भवसंततिका छेद हो जाता है, क्योंकि अनंत ज्ञान एवं अनंत आनन्द जिसके फलमें प्रगट होता है ऐसा कारण उसने प्राप्त किया है। अंतरमें अभेद ज्ञायक आत्माका पूर्ण आश्रय करनेसे आत्मा गुणरूप अनंत पंखुरियोंसे खिल उठता है।

*

वचनामृत—१६४

चैतन्य द्रव्य पूर्ण निरोग है। पर्यायमें रोग है। शुद्ध चैतन्यकी भावना ऐसी उत्तम औषधि है जिससे पर्यायरोग मिट जाये। शुद्ध चैतन्य भावना वह शुद्ध परिणमन है, शुभाशुभ परिणमन नहीं है। उससे अवश्य संसार-रोग मिटता है। वीतराग देव तथा गुरुके वचनामृतोंका हार्द समझकर शुद्ध चैतन्य भावनारूप उपादान-औषधिका सेवन किया जाय तो भवरोग मिटता है; इसलिये वीतरागके वचनामृतोंको भवरोगके निमित्त-औषधि कहे गयें हैं॥१६४॥

'चैतन्य द्रव्य पूर्ण निरोग है। पर्यायमें रोग है।'

वस्तु जो त्रैकालिक ज्ञायकस्वभाव चैतन्यरसकन्द प्रभु वह तो पवित्र है, पूर्ण निरोगतासे भरपूर है। उसकी एक समयवर्ती पर्यायमें दया, दान, व्रत, तप एवं भक्ति आदि भाव मेरे हैं; ऐसा जो विपरीत अभिप्राय है वह मिथ्यात्वका रोग है। वह रोग वस्तु स्वभावमें नहीं है किन्तु उसकी क्षणवर्ती पर्यायमें है; 'रोग है और नहीं है' वह स्याद्वाद तथा अनेकान्तका स्वरूप है। पुण्य-पापके भाव क्षणिक आते हैं वह निरोगी आत्मद्रव्यमें रोगकी पर्याय है। 'वे भाव मेरे हैं'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा क्षय रोग उसकी पर्यायमें लग गया है। वह आत्माके गुणोंकी शुद्धिका—शान्तिका क्षय करते हैं। जड़कर्म आत्माकी शान्तिको नष्ट नहीं करते, वे तो पर द्रव्य हैं।

मैं मनुष्य हूँ, रागवाला हूँ, पुण्य-पापवाला हूँ, यह मान्यता पर्यायमें मिथ्यात्वका रोग है, सन्निपात है। जिस प्रकार सन्निपातका रोगी हँसता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीवको मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूपी त्रिदोषका रोग लग गया है। आत्मतत्त्व सम्पूर्णतया रागादिरूप हो गया है; वह मान्यता मिथ्यात्व है। पर्यायमें विभावका रोग है; यदि रोग न हो तो उसे पर्यायमें पूर्ण आनन्दका अनुभव होना चाहिये। यह बात दुनियासे अलग लगती है, परन्तु सत्य तो यही है। वर्तमानमें दूसरोंसे मिलान होना कठिन है।

'शुद्ध चैतन्यकी भावना ऐसी उत्तम औषधि है जिससे पर्याय रोग मिट जाये।'

वस्तु है वह अपूर्ण, अशुद्ध तथा दुःखरूप हो ही नहीं सकती; पर्यायमें रोग है। शुद्ध चैतन्यकी भावना कर, उसमें एकाग्र हो तो पर्याय रोग मिट जायगा। रागमें जो एकाग्रता है, वह एकाग्रता शुद्ध चैतन्यमें कर तो रोग नहीं रहेगा। शुद्ध चैतन्य स्वरूप त्रैकालिक वस्तुकी जो भावना वह वर्तमान पर्याय है। उस एकाग्रतारूप भावनासे मिथ्यात्वका रोग—पर्यायका रोग मिटता है। शुद्ध चैतन्यकी भावना मिथ्यात्व रोग मिटानेकी औषधि है।

जिस प्रकार जिसे साँपने काटा हो उसे कड़वा नीम भी मीठा लगता है, उसी प्रकार जिसे मिथ्यात्वका जहर चढ़ा हो उसे शरीरकी सुन्दरता, बाह्य वैभव एवं बडप्पन आदि अच्छे लगते हैं। जिसकी तुष्टि बाह्यमें है वह मिथ्यात्वका जहर पीता है। अंतरमें भगवान आत्मा आकर्षणयुक्त—चुम्बकीय तत्त्व है, उसकी ओर परिणति जाने पर आनन्दका नाथ आत्मा जागृत होकर उसकी प्राप्ति होती है। शुद्ध आत्माका सम्यग्दर्शन होनेसे धर्मका प्रारम्भ होता है। सर्वज्ञ परमेश्वरने वस्तु कही है उसमें दृष्टि देनेसे अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है। अंतरमें भगवान आत्मा पूर्ण निरोग स्वरूप है उसकी भावना कर। बाह्य अनुकूलता देखकर तूझे हर्ष होता है। अरे प्रभु! यह क्या है? तू कहाँ आकर्षित हो गया? उसमें तुझे संतोष होता है!

'आतमा भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रें! जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति और गुणकी सेवा वह आत्मभावना नहीं है। आत्मा ज्ञान एवं आनन्दादि अनंत गुणका सागर है, उसकी भावना चैतन्यके ओरकी एकाग्रता हो वह आत्मभावना है और वही पर्यायमें रोग दूर करनेका उपाय है। शुद्ध चैतन्यकी भावना ही ऐसी उत्तम औषधि है कि जिससे पर्यायका रोग मिट जाये। अरेरे! शुद्ध चैतन्यकी ऐसी बातें ही कहाँ हैं? भाई! अंतरमें तेरा नाथ निरोग, आनन्दका सागर है, वह विकल्पसे प्राप्त हो ऐसी वस्तु नहीं है। अहा! ऐसा तत्त्व है। यह बात कानोंमे पड़ना कठिन हो गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्मामें एक अकार्यकारणत्व नामकी शक्ति है। उस शक्तिके कारण आत्मद्रव्य सर्वांग किसीका कार्य या कारण नहीं है; इसलिए राग हो तो ज्ञानकी पर्याय प्रगट हो अथवा ज्ञानपर्याय रागको उत्पन्न करे—ऐसा नहीं है। व्यवहार रत्नत्रय कारण हो और अंतरमें शुद्ध चैतन्यकी भावना—निश्चय रत्नत्रय प्रगट हो ऐसा वस्तुका स्वभाव नहीं है। आत्मामें अकार्यकारणत्व शक्ति होनेसे उसकी पर्यायमें शुद्धताका परिणमन, व्यवहार एवं रागकी अपेक्षा बिना ही अपने कारण प्रगट होते हैं—रागके कारण प्रगट हों ऐसा वस्तुका स्वभाव नहीं है।

जगतके बाह्य पदार्थोंका आश्चर्य, अतिशयता एवं विस्मयता तुझे छोड़ना होगी, प्रभु! क्योंकि तेरा आत्मा ही अंतरमें आश्चर्यकारी तथा विस्मयकारी अद्‌भुत पदार्थ। इसीलिए यह उपदेश है कि शुद्ध आत्माकी भावना पर्याय रोग मिट जाय ऐसी अनुपम उत्तम औषधि है।

'शुद्ध चैतन्यभावना वह शुद्ध परिणमन है। शुभाशुभ परिणमन नहीं है। उससे अवश्य संसार रोग मिटता है।'

भगवान आत्मा पवित्रताका पिण्ड है। अपवित्रता—रागादि अशुद्धता—पर्यायमें है, वस्तुमें नहीं है। 'मैं शुद्ध चैतन्य हूँ' ऐसी भावना, एकाग्रता—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा स्वरूप रमणतारूप एकाग्रता—वही शुद्ध परिणमन है, उससे अवश्य भवभ्रमणका रोग मिट जाता है। अहा! यह तो अपूर्व बात है। पहले कभी सुनी नहीं है।

'श्रुत परिचित अनुभूत सर्वने कामभोगबंधननी कथा;
परथी जुदा एकत्वनी उपलब्धि केवल सुलभ ना।'

रागकी बात तूने सुनी है, उसका परिचय तथा अनुभव किया है, किन्तु रागसे भिन्न एकत्वस्वरूप निज ज्ञायक भगवान है उसकी बात तूने कभी नहीं सुनी, उसका परिचय नहीं किया तथा उसका अनुभव नहीं किया। रागसे भिन्न शुद्ध चैतन्यकी भावना, उसकी एकाग्रता वह शुद्ध परिणमन है, पवित्र परिणमन है, अनाकुल आनन्दादि स्वरूप परिणमन है; उसमें शुभाशुभ भाव नहीं है। अरेरे! तूने अपनी ज्ञायक वस्तुका अनादर किया है। जिसमें तू नहीं है उसमें विस्मयता करके तू रुक गया है। शुभाशुभ भाव वह रोग है, परिभ्रमणका मार्ग है। शुभभाव वह व्यवहार है परन्तु वह भी संसार रोग है। शुद्ध ज्ञायककी भावना वह निर्मल परिणमन है, उससे अवश्य संसार रोग नष्ट होता है।

'वीतराग देव तथा गुरुके वचनामृतोंका हार्द समझकर शुद्ध चैतन्यभावनारूप उपादान-औषधिका सेवन किया जाय तो भवरोग मिटता है; इसलिये वीतरागके वचनामृतोंको भवरोगके निमित्त-औषधि कहे गयें हैं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तू वीतरागदेव और गुरुके वचनामृतका हार्द समझकर वीतरागता प्रगट कर। वीतरागदेवकी आज्ञा यह है कि तू अपने त्रैकालिक वीतराग स्वरूपका आश्रयकर और पर्यायमें वीतरागता प्रगट कर। श्री पंचास्तिकाय संग्रहकी १७२वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि–चारों अनुयोगका तात्पर्य वीतरागता है।

प्रश्न :— वीतरागता कैसे होती है?

उत्तर :— त्रैकालिक निज ज्ञायक द्रव्यके आश्रयसे होती है। चारों अनुयोगमें एक स्वद्रव्यका आश्रय लेनेकी बात कही है। वीतरागदेव तथा गुरुके वचनामृतोंमें वीतरागता प्रगट करना ही कहा है। अहा! गुरुकी भी वही आज्ञा है। ऐसा है वीतरागताका मार्ग।

जगतमें प्रतिक्षण अनंत जीव निगोदमें जन्म-मरण करते हैं। निगोदसे निकली हुई यह हरियाली आदि प्रत्येक जीवराशि है वह तो मात्र निगोदके एक शरीरमें स्थित अनंत जीवोंका अनंतवाँ भाग ही है। अद्‌भुत बातें हैं! असंख्य योजनमें जंगलके जंगल हरियालीसे भरे हुए हैं; उनमें जो साधारण वनस्पति है वह सब निगोदके जीव हैं। उनमें भी सर्व आत्मा शक्तिरूपसे भगवान हैं।

आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका सागर है उसका आश्रय लेनेसे, अनुभव करनेसे पर्यायमें आनन्दादि अनन्त गुणोंके अंकुर फूट निकलते हैं, उनके असंख्य प्रदेश निर्मलतासे खिल उठते हैं।

अरेरे! जीव अनन्तानंत कालसे भटक रहा है। आयु पूर्ण होने पर जीव तो यह शरीर छोड़कर चला जाता है। कहाँ गया उसकी किसे खबर है? अनजान द्रव्यमें, अनजान क्षेत्रमें, अनजान कालमें, और अनजान भावमें तुझे जाना है उसकी तुझे खबर नहीं है भाई! मिथ्यात्वका भाव है तब तक एकके बाद एक स्थान पर जन्म धारण करना है। अरबपति मरकर बकरीके गर्भमें जाता है, शूकर होता है। दुनियाको कहाँ उसकी खबर पड़ती है भाई! अपनी वस्तुको पहिचानकर यदि उसका परिणमन नहीं किया तो संसारका रोग दूर नहीं होगा।

वीतरागकी तथा गुरुकी आज्ञा यह है कि वीतरागता प्रगट कर। उस आज्ञाके हार्दको समझकर अंतर्मुख परिणमन कर। अनंत तीर्थंकरों तथा अनंत ज्ञानियोंकी एक ही आज्ञा है कि जिसमें पूर्ण वीतरागता भरी है ऐसे निज शुद्धात्म द्रव्यका तू आश्रय ले। निज शुद्ध चैतन्यकी भावना वह उपादान-औषधि है। उसका सेवन किया जाय तो वीतरागता प्रगट होती है।

जीव अनादिसे जन्म-मरण करता है। एक पर्दा गिरता है और दूसरे पर्देमें कहीं जन्म हो जाता है। शुद्ध चैतन्यकी भावनारूप औषधिका सेवन किया जाय, अंतरसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागता प्रगट की जाय, तो भवरोग मिटता है। इसलिये वीतरागके वचनामृतोंमें वीतरागताका ही उपदेश है—

वचनामृत वीतरागके परम शान्त रस मूल;
औषधि जो भवरोगके, कायरको प्रतिकूल। (–श्रीमद्)

परम शान्त अकषाय भाव वह वीतरागके वचनामृतोंका सार है। कायर प्राणी उससे दूर भागता है। वीतरागके वचनामृत भवरोगको हटानेकी निमित्त-औषधि कहे गये हैं। उनमें ऐसा कहा है कि वीतरागताके सिवा महाव्रतादि अन्य जो व्यवहार-उपाय हैं उनके आश्रयका फल संसार है। पंचाचारके शुभराग आदि सब होते हैं, उन्हें निमित्तरूप बतलाया है; परन्तु वे तो बंधके कारण हैं। वीतरागके वचनामृतका फल यह है कि ज्ञानानन्द स्वरूप भगवान आत्माका आश्रय लेकर वीतरागता प्रगट करना। उन वीतरागी वचनामृतोंको भवरोगके निमित्तरूप औषधि कहा गया है। वचनोंको निमित्तरूप कहा है; उनमें कही गई जो शुद्ध चैतन्यकी भावना वह परम औषधि है।

सम्यग्दर्शनकी पर्याय वीतराग स्वरूप त्रैकालिक भगवान ज्ञायक आत्माके आश्रयसे होनेके कारण वह वीतराग है। 'सराग सम्यक्त्व' कहीं रागवाला नहीं होता। सम्यक्त्व दो प्रकारके नहीं हैं। व्यवहार तो राग है, उसके आश्रयसे वीतरागी पर्याय प्रगट नहीं होती। त्रैकालिक स्वरूपके आश्रयसे होनेके कारण सम्यक्त्व वह निर्मल शुद्ध वीतरागी पर्याय है। अहाहा! ऐसी बात है। शुद्ध चैतन्यकी भावना एवं एकाग्रता वह भवरोगकी उत्तम औषधि है।

*

वचनामृत–१६५

जिसे चैतन्यदेवकी महिमा नहीं है उसे अंतरमें निवास करना दुर्लभ है ॥१६५॥

जिसे भीतर पर्यायमें ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुणोंके नाथ ऐसे निज त्रैकालिक ज्ञायक भगवानकी महिमा नहीं है वह अंतर स्वरूपमें नहीं जा सकेगा। रागकी–दया, दान, व्रत, तप, भक्ति इत्यादिकी—जिसे महिमा है वह अंतरमें निवास नहीं कर सकेगा, वहाँ रह नहीं सकेगा। रागके रसिक, व्यवहारके प्रेमी तो भीतर वीतराग स्वभावमें नहीं जा सकेंगे, वहाँ रह नहीं सकेंगे; उनके लिये स्वरूपमें निवास करना दुर्लभ है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६०

ता. १०-८-७८

वचनामृत–१६६

हे शुद्धात्मा! तू मुक्त स्वरूप है। तुझे पहिचाननेसे पाँच प्रकारके परावर्तनोंसे छुटकारा होता है इसलिये तू सम्पूर्ण मुक्तिका दाता है। तुझ पर निरंतर दृष्टि रखनेसे, तेरी शरणमें आनेसे, जन्म-मरण मिटते हैं।।१६६।।

'हे शुद्धात्मा! तू मुक्त स्वरूप है।'

यह भगवान आत्मा ज्ञानादि अनंत गुणोंका पिण्ड पवित्र परमात्म स्वरूप ही है। उसे एक समयकी पर्यायमें मिथ्यात्व एवं शुभाशुभ भाव भले हो, परन्तु उसके त्रैकालिक ध्रुव स्वरूपमें वे भाव प्रविष्ट नहीं हुए हैं। अहा! यह बात कैसे बैठे! अनन्तानन्त गुणरत्नोंकी खान ऐसा हे शुद्धात्मा! तू मुक्त स्वरूप है। अरे! यह बात बैठना...! यदि तुझे आत्मकल्याण करना हो, चौरासीके अवतारमें यह जो परिभ्रमण कर रहा है उससे बचना हो तो मुक्त स्वरूप अपने आत्माको पहिचान। अनादिसे संसारके परिणाम सारा दिन व्यापार–धन्धेके परिणाम तो कर ही रहा है; परन्तु वे अधर्मके परिणाम पर्यायमें हैं—एकसमयकी अवस्थामें हैं! वे दुःखके परिणाम हैं। वे परिणाम भगवान आत्माके शुद्ध स्वरूपमें नहीं हैं। पापके परिणाम तो नहीं किन्तु दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति आदि पुण्यके भाव भी आत्माके स्वरूपमें नहीं हैं। वे शुभभाव भी दुःखरूप हैं, बंधका कारण हैं।

प्रश्न :—तो वे शुभाशुभ किसकी पर्याय हैं?

उत्तर :—वह पर्याय है पर्यायीकी, आत्मद्रव्यकी; परन्तु वह विभावभाव द्रव्यके मूल स्वभावमें नहीं है। विभाव पर्यायमें हैं, द्रव्यस्वभावमें नहीं। बड़ी सूक्ष्म बात है भाई!

भगवान आत्माकी अनुभूति वह जैन शासन है, उसका नाम जैनधर्म है। अरे! जैनके संप्रदायमें जन्म लेकर 'अनुभूति' शब्द भी नहीं सुना होगा! प्रतिदिन सामायिक—प्रतिक्रमण करनेवाले एक आदमीसे पूछा कि–भाई! अनुभवका क्या अर्थ है? उसने कहा कि–"अनुभव–बनुभव हमने नहीं सुना। अनुभव क्या है'—वह हमारे गुरुने कभी नहीं बतलाया।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपने जैन मतमें अनुभवकी बात नहीं आती।'' एक साधुसे पूछा कि–विभाव क्या है? वह बोला–विभाव-बिभाव अपनेमें–जैनमें नहीं है। अरेरे! तत्त्वकी कोई खबर नहीं है। बाह्य साधुपनेका पालन करता है किन्तु वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं पड़ती! कल्याण कहाँसे होगा?

वस्तुस्वरूपको समझे बिना चौरासीके अवतारमें भटक-भटककर मूढ़ जीव दुःखी हो रहा है। दुःखी हो रहा है किन्तु पर्यायमें! स्वभावसे तो प्रभु! तू मुक्तस्वरूप है, निर्वाण स्वरूप है। मोक्षस्वरूप है। श्री अमृतचंद्राचार्यदेवने आत्मख्याति टीकामें (१९८वें कलशमें) कहा है: 'शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव'—शुद्ध स्वभावमें निश्चल ऐसा वह वास्तवमें मुक्त ही है। अरे प्रभु! मार्ग अलग है, भाई! जन्म-मरणको मिटानेका मार्ग अलौकिक है। अरेरे! करोड़पति और अरबपति—सब रंक और भिखारी और वराक हैं। उन्हें बेचारोंको यह बात भी सुननेको नहीं मिलती। सारी जिन्दगी स्त्री और पैसेमें बिता दी। संत उन्हें विषयोंका भिखारी—'वराक' बेचारे कहते हैं। अहा! मुनियोंको कहाँ पड़ी है कि जगतको यह बात अच्छी लगेगी या नहीं? दुनिया रही उसके घर! उन्हें तो सत्यकी पड़ी है।

आत्मा अंतरमें अपनी अनंत गुणरूप लक्ष्मी सहित मुक्तस्वरूप है। भाई! तुझे तेरे घरकी खबर नहीं है; बाहरकी—यह मेरी स्त्री, यह बच्चे, यह मकान, यह पैसा—सब लगा रखी है, जिनके साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अपनेसे पर आत्मा, उसका शरीरादि वह तो सब जगतकी वस्तु है, परद्रव्य है; तेरा और उसका क्या सम्बन्ध है? अंतरमें जो तेरे अपने हैं उनकी तो तुझे खबर नहीं और बाहरके जो तेरे नहीं हैं उन्हें 'अपने, मानकर अरेरे मूढ़ जीव अनादिसे भटक रहा है।

यहाँ कहते हैं कि—हे शुद्धात्मा तेरा भगवत्स्वरूप अंतरमें मुक्त है; अबद्धस्वरूप कहो या मुक्तस्वरूप कहो। समयसारकी १४वीं तथा १५वीं गाथामें 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं' कहा है। अबद्ध कहो अथवा मुक्त कहो। 'अबद्ध' वह नास्तिसे है और 'मुक्त' वह अस्तिसे है। अस्ति और नास्ति किसके घर है? सम्प्रदायमें तो 'दया करो और व्रत करो, नियम लो और उपवास करो'–इस प्रकार 'करने'की माथाकूट कर–करके मर गया। तू कौन है, उसकी खबर बिना वे सब क्रियाकाण्ड संसारमें भटकनेके रास्ते हैं। घरमें क्या वस्तु है उसकी तो खबर नहीं है और बाहर बाँट रहा है, मानों बड़ा चतुर दानवीरका बेटा! लोकमें कहावत है ना कि–'घरके पूत कुँआरे डोलें, पड़ोसियोंके फेरे पाड़े' अंतरमें निर्वाण स्वरूप भगवान आत्मा क्या वस्तु है, उसकी तो खबर नहीं है और बाहरकी पंचायत करता है! देखो उसका पागलपन!

आत्मा अबद्धस्वरूप है अर्थात् रागके सम्बन्ध रहित वस्तु है—मुक्तस्वरूप है। उसे जो जानता और मानता है उसने जैनशासन देखा है। दया, दानादिके जो विकल्प हैं वे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी राग और बंधन हैं। प्रभु आत्मा उनसे भिन्न है, मुक्तस्वरूप है। जैनपना क्या है? शुद्धात्मा की अनुभूति वह जैनपना है। ऐसी बात कहीं सुननेको नहीं मिलती।

हे शुद्धात्मा! तू मुक्तस्वरूप है, किन्तु पर्यायमें अल्पता है। हिंसाका त्याग, आदि शुभ भाव और काम-क्रोधादि अशुभभाव—वे सब तेरे स्वरूपमें नहीं हैं; यदि वे तेरे स्वरूपमें हो तो कभी भिन्न नहीं हो सकेगें। बड़ा मुश्किल काम है! वर्तमानमें तो धर्मके नाम पर धतींग ही चल रहे हैं: 'सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो और प्रौषध करो।' किन्तु भाई! वस्तुकी खबर बिना किसकी सामायिक? यहाँ कहते हैं कि–प्रभु! तू मुक्त स्वरूप है वह एकबार सुन तो सही!

अहाहा! देखो, यह बेनके वचन हैं वे अनंत ज्ञानियोंके वचन हैं। जो शुद्ध स्वरूप प्रभु आत्मा है वह तो पवित्रताका पिण्ड तथा भगवत्स्वरूप है, जिसमें शरीर, वाणी, मन, एवं कर्म नहीं है, जिसमें पुण्य-पापके भाव नहीं हैं और जिसमें एक समयकी पर्यायकी भी नास्ति है। ऐसा जो अस्तित्व, सत्तास्वरूप, अस्तित्वरूपसे विद्यमान तत्त्व है वह शुद्ध एवं मुक्त स्वरूप है। उसे तू पहिचान। परकी पंचायतमें पड़ा है, उसे छोड़कर अपनेको जान।

वणिक तो मानों बड़े सयाने, चक्रवृद्धि व्याज गिननेमें होशियार, परन्तु सिर पर कर्ज कितना चढ़ गया है उसकी तुम्हें खबर है? 'मैं रागवाला, पुण्यवाला, अल्पज्ञ'—ऐसा जो माना है वह बड़ा कर्ज चढ़ गया है भाई! आता है कुछ समझमें? वीतरागताका मार्ग कोई भिन्न प्रकारका है। अरेरे! दुनिया कहाँ खड़ी है और कहाँ रह गया भगवानका मार्ग!

हे शुद्धात्म प्रभु! तू मुक्तस्वरूप है; उसे तू पहिचान।

प्रश्न :—उसे पहिचाने किस प्रकार?

उत्तर :—जो वर्तमान पर्याय है वह परलक्षवाली है; उस पर्यायको अंतर्मुख ले जा, और वहाँ मुक्तस्वरूप द्रव्यस्वभावको पहिचान। नवीन पर्याय जब द्रव्य सन्मुख होगी तब तू मुक्त स्वरूप भगवान आत्माको पहिचान सकेगा।

चक्रवर्तीके दरबारमें जाना हो तो कितनी नम्रता और सभ्यता चाहिये। यह तो तीन लोकका नाथ परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है, उसके समीप जाना हो तो सब परकी ओरके—पराश्रयके—विकल्प तथा देव, गुरु एवं धर्मकी श्रद्धाका भाव भी छोड़ दे; क्योंकि वह राग है। तेरा देव और तेरा गुरु तो अंतरमें मुक्त स्वरूप है। तू स्वयं ही देव, स्वयं ही गुरु और तू स्वयं ही धर्म स्वरूप है, उसे तू पहिचान।

'तुझे पहिचाननेसे पाँच प्रकारके परावर्तनोंसे छुटकारा होता है इसलिये तू सम्पूर्ण मुक्तिका दाता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धात्मा मुक्त स्वरूप है, उसे पहिचाननेसे,—द्रव्यपरावर्तन कि जिसमें अनंत पुद्‌गलद्रव्योंका क्रमशः संयोग होता है उससे छूटेगा; लोकके प्रत्येक प्रदेशमें परिभ्रमणरूप क्षेत्रपरावर्तनसे छूटेगा; उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके प्रत्येक समयमें क्रमशः उत्पत्तिस्वरूप कालपरावर्तनसे छूटेगा, चौरासी लाख योनियोंमें क्रमशः उत्पन्न होने रूप भवपरावर्तनसे छूटेगा और पुण्य-पापके विकाररूप भावपरावर्तनसे छूटेगा। अहा! तत्त्वकी ऐसी बातकी खबर नहीं है इसलिये अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि—सोनगढ अर्थात् निश्चयकी बातें। प्रभु! चाहे जो कहो।

जामें जितनी बुद्धि है, उतनी देय बताय;
वाको बुरो न मानिये, और कहाँसे लाय।

यह भगवान आत्मा एक समयमें मुक्त स्वरूप अर्थात् पूर्ण शुद्ध निर्वाण स्वरूप है। अंतरमें स्वभावसे निर्वाण स्वरूप है तो पर्यायमें निर्वाण होता है। मोक्षका दूसरा नाम निर्वाण है। उस परिभाषाकी भले खबर न हो, परन्तु पूर्ण शान्ति, शान्ति, शान्ति और आनन्द, आनन्द, आनन्द प्रगट हो उसका नाम मुक्ति। मुक्ति कहो या सिद्ध कहो—वह पर्याय है, अवस्था है, द्रव्य नहीं। आत्मवस्तुकी 'णमो सिद्धाणं' ऐसी जो केवलज्ञानादि स्वरूप अशरीरी पर्याय वह सिद्धपद एवं मुक्ति पर्याय है।

प्रश्न :—वह आयी कहाँसे ?

उत्तर :—अंतरमें जो त्रैकालिक मुक्त स्वरूप उसका वह प्रवाह है।

प्रश्न :—उसे प्रवाह क्यों कहा ?

उत्तर :—मुक्तस्वरूप जो वस्तु है वह 'द्रवति इति द्रव्यम्' प्रति समय पूर्ण शुद्धता स्वरूपसे द्रवती है, प्रवाहित होती है—ऐसा कहना है। पानीमेंसे जिस प्रकार तरंग उठती है उसी प्रकार मुक्त स्वरूप भगवान आत्माकी अंतर दृष्टि एवं पूर्ण आश्रय करनेसे मुक्तिकी पर्याय प्रवाहित होती है, बहती है, द्रवती है। अहा! ऐसा यह उपदेश है!

यहाँ तो भगवान कहते हैं: सुन भाई! तू अपनेको पहिचान; कि जिसे पहिचाननेसे, वस्तु स्वभावका माहात्म्य आनेसे, पूर्ण पवित्र स्वरूपकी विस्मयता अंतरमें लगनेसे तुझे उसका अनुभव होगा, उसका ज्ञान होगा, उसमें तुझे विश्वास आयगा; जिससे तू पाँच प्रकारके परावर्तनसे छूट जायगा।

परावर्तन अर्थात् परिभ्रमण। यह शरीरादिके परमाणु अनंतबार जीवके सम्पर्कमें आये हैं, यह शरीर कोई पहलीबार नहीं आया है। यह शरीरादिके जो परमाणु हैं वे बिच्छूके डंकरूप थे और वे बिच्छूके डंकरूप परमाणु वर्तमानमें इस शरीररूप हुए हैं। अहा! ऐसे संयोगों और संयोगी ऐसे पुण्य-पापके भावसे जीवको पांच प्रकारके परावर्तन होते हैं जो परिभ्रमणके कारण हैं। अहा! भगवान आत्मा अंतरमें अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एवं अतीन्द्रिय प्रभुता स्वरूपसे—पूर्ण परमात्मस्वरूपसे—विराजमान है; उसे तू माहात्म्य लाकर अंतरमें पहिचान। उस बड़ेकी शरणमें जा, तो पाँच प्रकारके परावर्तनोंसे छूट जायगा।

ऐसी बात सुननेको नहीं मिलती इसलिये लोगोंको यह नया धर्म लगता है। भाई! यह नया धर्म नहीं है, यह तो सनातन सत्‌मार्ग है। त्रिलोकीनाथ जिनेश्वर परमात्मा इन्द्रों तथा गणधरोंके समक्ष वर्तमानमें महाविदेहक्षेत्रमें जो कह रहे हैं वही यह वाणी है।

हे शुद्धात्म प्रभु! तुझे पहिचाननेसे पाँच प्रकारके परिभ्रमणसे छूटकारा होता है; इसलिये तू सम्पूर्ण मुक्तिका दाता है। क्या कहते हैं? अंतरमें ज्ञायक प्रभु मुक्त स्वरूप है ऐसा उसे ज्ञान एवं प्रतीति हो तो पाँच प्रकारके परावर्तनसे छूटे; इसलिये वह स्वयं उस मुक्तिदशाको देनेवाला है। पर्यायमें संसारका व्यय और परमानन्दस्वरूप मोक्षका जो उत्पाद होता है उसे देनेवाला त्रैकालिक मुक्त स्वरूप ध्रौव्य तू स्वयं ही है। कर्म हटे तब हो यह बात है ही नहीं, किन्तु स्वयं अपने मुक्त स्वरूपका अवलम्बन ले तो पर्यायमें पूर्ण मुक्तदशा प्रगट हो। अहा! ऐसा मार्ग है।

प्रश्न :—ऐसा जैनधर्म कहाँसे निकाला?

उत्तर :—आत्मामेंसे। भाई! अंतरका मार्ग कोई अलौकिक है। तुझे अंतरसे पहिचान एवं प्रतीति हुई कि—'मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, शरीरादि परसे एवं रागादि विभावसे अत्यन्त भिन्न हूँ' तो तेरे पंच परावर्तन छूट जायेंगे, संसार पर्यायका व्यय एवं मुक्तदशाका उत्पाद होगा। इसलिये सिद्धपदकी पर्यायको देनेवाला शुद्धात्म प्रभु! तू ही है। अहाहा! ऐसी बात है। समझमें आये उतना समझो भाई!

तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरकी यह वाणी है। बेन वहाँसे—महाविदेहसे—आयी हैं। बेन अपने अनुभवसे यह बात कहती हैं। वस्तुका स्वभाव ऐसा ही है–ऐसी भगवानकी वाणी सुनकर, बेन यहाँ आयी हैं।

देव-शास्त्र-गुरुकी कृपासे या किसीके आशीर्वादसे मुक्ति मिल जाय ऐसा नहीं है।

प्रश्न :—अपने आशीर्वादसे तो मिलती है ना?

उत्तर :—अपना आशीर्वाद यानी क्या? मैं स्वभावसे मुक्त स्वरूप ही हूँ, पर्यायमें सम्पूर्ण मुक्तदशा मुझमें मुझसे प्रगट होगी, ऐसा लॉजिकसे—न्यायसे उसे जानना पड़ेगा ना? सम्पूर्ण मुक्ति यानी क्या? सम्पूर्ण मुक्ति अर्थात् सिद्धपद। त्रैकालिक मुक्तस्वरूप शुद्धात्म प्रभुकी श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र हो वह—मोक्षका मार्ग हो वह—अपूर्ण मुक्ति है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने प्रवचनसारमें अन्तमें रत्न समान पाँच गाथाएँ कही हैं। उनमेंसे एक गाथामें तो ऐसा कह दिया है कि—जो जीव इस त्रिकाल मुक्त स्वरूप पूर्णानन्द भगवान आत्माके श्रद्धान, ज्ञान एवं चारित्रमें रमता है वह जीव साधक दशामें होने पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी 'मोक्षतत्त्व है' अर्थात् मोक्षका मार्ग है वह मोक्षतत्त्व है। यहाँ ऐसा चलता है कि पूर्ण मोक्ष अर्थात् पूर्ण पर्याय; उसे देनेवाला नाथ! तू ही है; क्योंकि अंतरमें पूर्ण भरा हो उसमेंसे पूर्णता आती है। आया कुछ समझमें?

अरेरे! यह बातें कहाँ सुननेको मिलती हैं? देश छोड़कर परदेश कमाने जाता है; यहाँ तो परदेश छोड़कर स्वदेशमें आनेको कहते हैं, यह सुननेको कहते हैं तो कहता है—हमारी समझमें यह कुछ नहीं आता! राग द्वेषादि भाव तो परदेश हैं–यह बात बेनके ४०१वें बोलमें आयेगी। यह विभाव भाव हमारा देश नहीं है। दया, दान, भक्ति, पूजादि परिणामोंमें आना अरे! वह तो हम मानों परदेशमें आ पहुँचे हैं, यह हमारा देश हमारा मार्ग नहीं है। व्यापार–धन्धा तथा भोगके भाव तो अकेला पाप है, अपने आत्माका घात करनेवाली वधशाला है; देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति आदि शुभभाव आयें वह भी हमारा स्वभावदेश नहीं है। हमें यहाँ विभाव देशमें अच्छा नहीं लगता। हमारा यहाँ कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, वीर्य आदि हमारा परिवार निवास करता है वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूप-स्वदेशकी ओर जा रहे हैं। अहाहा! हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे रहना है, जहाँ सब हमारे हैं। अंतरमें ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता–वे सब हमारे हैं वहाँ हमें जाना हैं।

प्रश्न :—गुरुके बिना यह कैसे ज्ञात हो?

उत्तर :—आत्मा स्वयं अपना गुरु हो तब ज्ञात होता है, और तब दूसरे समझानेवालेको व्यवहारसे गुरु कहा जाता है।

प्रश्न :—लेकिन गुरुकी आज्ञा?

उत्तर :—गुरुकी आज्ञा तो वीतरागता प्रगट करनेकी है। तीर्थंकरोंकी, गुरुकी और चार अनुयोग स्वरूप शास्त्रोंकी एक ही आज्ञा है कि–तू वीतरागता प्रगट कर।

प्रश्न :—वह वीतरागता कैसे प्रगट हो?

उत्तर :—निज ज्ञायक आत्मा स्वभावसे वीतराग स्वरूप भगवान है, उसके आश्रयसे वीतरागता प्रगट होती है। परके आश्रयसे, तीनलोकके नाथ वीतराग भगवान हों उनके आश्रयसे भी शुभराग होगा। अहा! पचाना कठिन है! भाई! तेरे स्वदेशमें तो अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। अतीन्द्रिय ज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय प्रभुता, अनंत अतीन्द्रिय स्वच्छता आदिका प्रत्यक्ष वेदन हो ऐसा आश्चर्यकारी अनंतपना अंतरमें विद्यमान है। तू वहाँ अंतरमें जा। अहाहा! तू ही अपनेको सम्पूर्ण मुक्तिका दाता है।

'तुझ पर निरंतर दृष्टि रखनेसे, तेरी शरणमें आनेसे जन्म-मरण मिटते हैं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिस प्रकार ध्रुव तारेकी दृष्टिसे समुद्रमें जहाज चलते हैं, उसी प्रकार निज भगवान आत्मा नित्य ध्रुव प्रभु है, उस पर सदा दृष्टि रखनेसे उसकी शरणमें जानेसे, जन्म–मरणका अन्त आता है। बेनकी भाषा तो सादी है, परन्तु भाई! उसे समझनेके लिये समय तो निकालना पडेगा ना? वकालत या डॉक्टरी पढ़नेमें ५-१० वर्ष लगा देता है, तो फिर आत्माको समझनेके लिये थोड़ा समय तो लगाना ही पडेगा भाई!

दृष्टिका ध्येय, श्रद्धाका विषय, रुचिका आलम्बन और प्रतीतिका आश्रय तो एक मात्र ध्रुव ज्ञायक ही है। भले ज्ञानका उपयोग किंचित् बाह्य विषयोंमें जाये, परन्तु उस समय भी, ज्ञानीकी दृष्टि तो ध्रुव ज्ञायक पर ही है। धर्मीकी दृष्टि वहाँसे जरा भी नहीं हटती। इसलिये यहाँ बेनने कहा है कि–हे शुद्धात्मा! तू सम्पूर्ण मुक्तिका देनेवाला है। तुझ पर निरंतर दृष्टि रखनेसे, तेरी शरणमें आनेसे जन्म-मरण मिट जाते हैं।

*

वचनामृत–१६७

वाणी और विभावोंसे भिन्न तथापि कथंचित् गुरु-वचनोंसे ज्ञात हो सके ऐसा जो चैतन्यतत्त्व उसकी अगाधता, अपूर्वता, अचिंत्यता गुरु बतलाते हैं। शुभाशुभ भावोंसे दूर चैतन्यतत्त्व अपनेमें निवास करता है ऐसा भेदज्ञान गुरु वचनों द्वारा करके जो शुद्ध दृष्टिवान हो उसे यथार्थ दृष्टि होती है, लीनताके अंश बढ़ते हैं, मुनिदशामें अधिक लीनता होती है और केवलज्ञान प्रगट होकर परिपूर्ण मुक्ति पर्याय प्राप्त होती है।।१६७।।

'वाणी और विभावोंसे भिन्न तथापि कथंचित् गुरुवचनोंसे ज्ञात हो सके ऐसा जो चैतन्यतत्त्व उसकी अगाधता, अपूर्वता, अचिंत्यता गुरु बतलाते हैं।'

भगवान आत्मा अंतरमें वाणी एवं दया, दानादिके शुभ रागसे तथा विषय-कषायके अशुभ रागसे—पुण्य-पापके भावसे—भिन्न कोई और ही वस्तु है। वह महिमावन्त तत्त्व किसी अपेक्षा गुरुकी वाणी द्वारा समझा जा सकता है। गुरुकी आत्मतत्त्व स्पर्शी वाणी सुनकर जीव स्वोन्मुख लक्ष करे तो तत्त्व समझनेमें गुरुकी वाणी निमित्त कही जाती है।

गुरुवाणी जिसके धरातलमें अनंत आनन्द, अनंत ज्ञान, अनंत शान्ति आदि अनंतानंत गुणरत्न भरे हैं ऐसे निज चैतन्य तत्त्वकी–ज्ञायक प्रभुकी–अगाधता, अपूर्वता एवं अचिन्त्यता बतलाती है, अंतरमें जिसकी अद्भुत महिमा प्रगट होनेसे जिस पर दृष्टि स्थिर करनेसे मिथ्यात्व एवं रागादि विभावोंका नाश होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! चैतन्यप्रभुकी अगाधता! जिसकी कोई थाह नहीं ऐसी अमाप गहराई!

प्रश्न :—थाह नहीं?

उत्तर :—कैसी थाह? चैतन्य प्रभुमें अनंत-अनंत गुण हैं जिनकी कोई थाह नहीं पा सकता। यों ही ऊपर-ऊपरसे मानता है, परन्तु लक्षमें लेकर जरा विचार करे तो अगाधताकी खबर पड़े और उसकी अनंतताका ख्याल आये। समझमें आया कुछ? आत्मामें जो अनादि-अनंत ध्रुव गुण हैं उनकी संख्याका कोई पार नहीं है; अनंत....अनंत..; अनंत; अनंतको अनंत द्वारा अनंतबार गुणा कर दो उससे भी अनन्तानन्तगुनी, जिसका कोई पार न आये ऐसी, आत्मामें अनंतानंत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। अज्ञानीको तो दो-चार करोड़ या अरब रुपये–धूल इकट्ठी हो जाय वहाँ उसे 'अहाहा' हो जाता है; परन्तु उसके आत्मामें ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनंत-अनंतकी संख्यामें गुणरत्न हैं उनकी उसे खबर नहीं है। खबर हो कहांसे? यह बात कभी सुनी ही नहीं है। वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए अनंत महिमावंत तत्त्वको प्रभु! तूने कभी सुना ही नहीं। भगवानका कहा हुआ वह चैतन्यतत्त्व अगाध, अपूर्व एवं अचिन्त्य है।

मनके द्वारा जिसका चिंतवन न हो सके ऐसी वह वस्तु अंतरमें अचिंत्य और अद्भुत है। ऐसी महिमावंत वस्तुको गुरु बतलाते हैं। गुरु उपदेशमें वीतरागता पर जोर देते हैं। वीतरागता द्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती है; इसलिये गुरु वीतरागताके कारणभूत ऐसे अगाध, अपूर्व एवं अचिन्त्य चैतन्यद्रव्यको समझाते हैं, जिसे समझनेसे जीवकी दृष्टि सम्यक् होती है।

'शुभाशुभभावोंसे दूर चैतन्य तत्त्व अपनेमें निवास करता है ऐसा भेदज्ञान गुरुवचनों द्वारा करके जो शुद्ध दृष्टिवान हो उसे यथार्थ दृष्टि होती है, लीनताके अंश बढ़ते हैं, मुनिदशामें अधिक लीनता होती है और केवलज्ञान प्रगट होकर परिपूर्ण मुक्ति पर्याय प्राप्त होती है।'

पुण्य-पापके भावोंसे दूर अपना शुद्ध चैतन्य तत्त्व अंतरमें निवास करता है–ऐसा भेदज्ञान गुरुके उपदेश द्वारा करके जिज्ञासु जीव शुद्ध दृष्टिवान होता है। गुरुवाणीके योगमें उसे यथार्थ दृष्टि अपनेसे होती है। यथार्थदृष्टि होनेके पश्चात् स्थिरताके निर्मल अंश बढ़ते हैं, मुनिदशामें तो निर्मलताकी अत्यन्त वृद्धि होती है। अहा! मुनिपना तो कोई अलौकिक दशा है भाई! वर्तमानमें तो भारतमें ऐसा अंतरंग सच्चा मुनिपना कहीं दिखाई नहीं देता। भावलिंगी मुनि जब स्वरूपरमणतामें पूर्णतया लीन होते हैं तब उनको केवलज्ञान दशा प्रगट होती है और मोक्ष दशा प्राप्त होती है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६१

ता. ११-८-७८

वचनामृत–१६८

सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहलका स्वामी बन गया। तीव्र पुरुषार्थीको महलका अस्थिरतारूप कचरा निकालनेमें कम समय लगता है; मंद पुरुषार्थीको अधिक समय लगता है; परन्तु दोनों अल्प-अधिक समयमें सब कचरा निकालकर केवलज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही।।१६८।।

'सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहलका स्वामी बन गया।'

क्या कहते हैं? चैतन्यस्वरूप जो निज परमानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि—निमित्तके आश्रयसे तथा पुण्य-पापके विकल्पसे छूटकर होने पर—आनन्दस्वरूप त्रैकालिक ज्ञायक भगवानका अनुभव होने पर—जो भी अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आये, उसके साथ अतीन्द्रिय आत्मस्वरूपकी जो प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है! यह तो अभी धर्मकी पहली सीढ़ी है। छहढ़ालामें कहा है कि–

मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा;
सम्यकृता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।

अनन्तानन्त गुणोंका सागर ऐसे भगवान आत्माकी पर्यायमें यह जो पुण्य-पापके भाव हैं वे तो विकारी भाव हैं। दया, दान, व्रत, तप, पूजा भक्ति,–वे सब भाव शुभ विकार हैं। उन्हें छोडकर त्रैकालिक निर्विकारी प्रभुकी सत्ताका जो निर्विकल्परूपसे स्वीकार उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं; क्योंकि अंतरमें वस्तु स्वयं निर्विकल्प है।

जिनस्वरूप आत्मा असंख्यात प्रदेशी भले हो परन्तु दृष्टिमें ऐसा भेद नहीं है कि यह असंख्य प्रदेशी है। उसमें अनंत गुण विस्तारसे बिछे हुए हैं तथापि वहाँ गुणभेदकी दृष्टि नहीं है, क्योंकि वस्तु स्वयं निर्विकल्प चैतन्यघन है। शुभाशुभ राग विकार है, दुःख है। उसमेंसे रुचि हटाकर अंतरमें पूर्णानन्दस्वरूप वस्तुको देखना और मानना प्रगट करे, बाह्यमें देखना और मानना छोड़ दे तो उसे जैसा पूर्णस्वरूप है वैसा ज्ञान तथा उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन हो। अहा! बड़ी सूक्ष्म बात है! यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शनकी बात है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्यदर्शन। जो पूर्ण सत्य स्वरूप है, पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण आनन्दसे भरपूर पूर्ण सत्तावान वस्तु है, ऐसे निज ज्ञायक आत्माके सन्मुख होनेसे, निमित्त और देव-शास्त्र-गुरुकी ओरका लक्ष छोड़नेसे, उनके प्रति जो शुभराग हो उसका भी लक्ष छोड़नेसे, अरे! उस रागका जो ज्ञान हो उस ज्ञान पर्यायका भी लक्ष छोड़नेसे, अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य महाप्रभु विराजमान है कि जिसके दरबारमें अनंत गुणरत्नोंका भण्डार है उसे, बाहरका सब देखना छोड़कर, अंतर्मुख होकर देखने जाय तो सत्य जितना और जैसा है उतना और वैसा प्रतीतिमें आये। उसी प्रतीतिको सत्य दर्शन—सम्यग्दर्शन कहते हैं। अहा! ऐसी बात है भाई! सम्यग्दर्शनके बिना जो भी शास्त्रज्ञान, प्रभु भक्ति अथवा व्रतादि करे वह सब संसार है।

क्या कहते हैं? पूर्ण शक्तिके भण्डार ऐसे सत्स्वरूप भगवान आत्माके आश्रयमें जानेसे निर्विकल्प सत्यदर्शन हो तब उसके अनंत गुणोंका अंश—आंशिक शुद्ध परिणमन—प्रगट होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है।

वर्तमानमें सम्प्रदायमें तो आत्मा क्या है, कैसा है, उसकी खबर भी न हो और बाह्यमें देव-शास्त्र-गुरु सच्चे हैं ऐसा माने उसे संक्षेप रुचिवान सम्यक्त्वी मानते हैं। सम्प्रदायकी दृष्टि रखकर बाह्यमें क्रियाकाण्डसे धर्म मानना वह संक्षेपरुचिवाला सम्यक्त्व नहीं है। संक्षेप रुचिका अर्थ ऐसा है कि विशेष जानपना नहीं है, परन्तु भीतर अनंत ज्ञान एवं आनन्दका नाथ जो निज ज्ञायक भाव उसकी रुचि और अनुभव है। उस जीवको विशेष ज्ञान नहीं है, परन्तु ऐसा नहीं है कि विपरीत ज्ञान और विपरीत श्रद्धा हो फिर भी उसे संक्षेप रुचि कह देना। सम्प्रदायकी दृष्टि वह सम्यक्त्व और व्रत, तपादिका पालन करना वह चारित्र—यह दोनों मिथ्या हैं। अंतरमें आत्मा पूर्णानन्दका नाथ है उसकी जिसे दृष्टि हुई है उसे भले शास्त्रोंका अधिक विस्तारसे ज्ञान न हो, परन्तु उसे 'वस्तु अंतरमें पूर्ण है' ऐसा अनुभव–वेदन हुआ है इसलिये अनंत गुणोंका अंशतः यथा सम्भव व्यक्तपना हुआ है इसलिये वह सम्यक्त्वी है।

यहाँ तो कहते हैं कि—सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहलका स्वामी हो गया। अनंत ज्ञान, अनंत आनंद और अनंत सत्ता आदि निज गुणोंका पुंज जो प्रभु आत्मा उसके सन्मुख होकर जहाँ ज्ञान एवं प्रतीति हुई वहाँ वह चैतन्य वैभवसे भरपूर भवनका स्वामी बन गया। 'इसमें ऐसा है और इसमें ऐसा है' इस प्रकार बाह्य पदार्थोंमें कौतूहल और सुख बुद्धि होना वह मिथ्यादृष्टि है। दान दिये, व्रत बहुत पाले और उपवास करके शरीर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीर्ण किया!—इस प्रकार जिसे बाह्यकी महिमा है उसे अंतरकी दृष्टिका अभाव है।

जिसे शरीर एवं रागसे भिन्न निज आत्माकी प्रतीति है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थाश्रममें हो, चक्रवर्ती हो, राजाका कुँवर हो; जब विरोधी राजा युद्ध करने आये तब उसे युद्धका भाव आता है, परन्तु उस भावको अपना नहीं जानता, अपने भावमें रहकर उस भावका ज्ञाता रहता है; इसलिये वह ज्ञानी धर्मात्मा है। अज्ञानी गृहस्थाश्रम छोड़े, वस्त्रका एक टुकड़ा भी न रखे, पर जीवोंकी दया पाले, परन्तु अंतरमें रागकी मंदताकी महिमा आती है कि—'हमने तो बहुत किया, बहुत पाला'; इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। उसे भगवान आत्माकी, जिसकी मान्यता और अवलोकन करनेसे अंतरमें अनन्त आनन्दका फळ आये, अनन्त ज्ञानके अँकुर फूटे ऐसे ज्ञायकतत्त्वकी प्रतीति नहीं है—अनुभव नहीं है। प्रभुका मार्ग ऐसा है भाई! भले दुनियाको ऐसा लगे कि यह बात 'एकान्त' है। भाई! यह बात ही 'सम्यक् एकान्त' है। दया-दानादिके रागसे कल्याण नहीं होता किन्तु ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे ही कल्याण होता है—यही सच्चा अनेकान्त है; क्योंकि अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है।

सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहलका स्वामी हो गया। अनादि अज्ञानसे जो रागादिका स्वामी होता था वह मिथ्यात्व भाव था। समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके 'परिशिष्ट'में ४७ शक्तियोंमें अन्तिम 'स्वस्वामित्वमयी संबंध शक्ति' आती है। उस शक्तिके कारण द्रव्य, गुण और पर्याय—यह मेरे स्व और मैं इनका स्वामी—ऐसा संबंध है; परन्तु स्त्रीका, पैसेका, व्यापार-धन्धेका मैं 'स्वामी'—यह दृष्टि मिथ्यात्व है।

'तीव्र पुरुषार्थीको महलका अस्थिरतारूप कचरा निकालनेमें कम समय लगता है, मन्द पुरुषार्थीको अधिक समय लगता है, परन्तु दोनों अल्प-अधिक समयमें सब कचरा निकालकर केवलज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही।'

तीव्र पुरुषार्थीको अंतरमें उग्र रमणता होती है, उसे अस्थिरतारूप कचरा निकालनेमें थोड़ा समय लगता है। सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञानी अस्थिरताका स्वामी मिट गया, परन्तु उसे निकालनेमें तीव्र पुरुषार्थी जीवको अल्प समय लगता है और मन्द पुरुषार्थीको अधिक समय लगता है। श्री ऋषभदेव तीर्थंकर भगवानको भी—उनकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी और तिरासी लाख पूर्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित गृहस्थावस्थामें रहे—चारित्र नहीं था। चैतन्य महलके स्वामी हो गये थे, परन्तु अंतरमें जो चारित्रका पुरुषार्थ—स्वरूपरमणता चाहिये वह तिरासी लाख पूर्व तक नहीं आयी। एक पूर्वमे सत्तर लाख, छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। श्री ऋषभदेव भगवानको तिरासी लाख पूर्व तक पुरुषार्थकी मन्दता थी; और उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती तो बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंन्थपना प्रगट करके अंतरोन्मुख हुए और तीव्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुरुषार्थ करके अंतमुहुर्तमें केवलज्ञान प्राप्त किया। भरत चक्रवर्ती छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पदमें रहे, परन्तु जब शीश महलमें शीशेमें दृष्टि जाती है वहाँ अंतरमें स्वभावका दर्पण दिख गया; शीश महलके उद्यानमें द्रव्यभाव संयम अंगीकार करके निज ज्ञायक स्वभावका उग्रतासे अवलोकन किया। वह उग्र अवलोकन करने पर क्षणमें केवलज्ञान प्रगट हुआ। अहाहा! धन्य है उन तीव्र पुरुषार्थीको!

मन्द पुरुषार्थीको अधिक समय लगता है; परन्तु सभी अल्पाधिककालमें विभावका कचरा निकालकर अवश्य पूर्णज्ञान प्राप्त करेंगे ही। जो दूज उगी वह पूनम होगी ही। जिनको सम्यग्दर्शन हुआ, आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः स्वाद आया वे अल्प अधिक कालमें केवलज्ञान लेंगे ही। आया कुछ समझमें? वे केवलज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही।

*

वचनामृत–१६६

विभावोंमें और पाँच परावर्तनोंमें कहीं विश्रान्ति नहीं है। चैतन्यगृह ही सच्चा विश्रान्ति गृह है। मुनिवर उसमें बारम्बार निर्विकल्परूपसे प्रवेश करके विशेष विश्राम पाते हैं। बाहर आये नहीं कि अन्दर चले जाते हैं॥१६६॥

'विभावोंमें और पाँच परावर्तनोंमें कहीं विश्रान्ति नहीं है।'

बेनमें (–वचनामृतमें) अनेक बोल सूक्ष्म हैं। ब्रह्मचारी लड़कियोंके सामने वे बोल सहज ही अंतरके भावोंसे आये, और उनका संग्रह हो गया। उन्हें समझनेमें थोड़ी देर लगे, लेकिन हैं समझने योग्य। विभावोंमें—पुण्य और पापके भावमें, रागके विकल्पमें—और पाँच परावर्तनोंमें—जगतके द्रव्योंके संबंधमें, क्षेत्रके सम्बन्धमें कालके संबंधमें, भवके संबंधमें और शुभाशुभ भावके संबंधमें—कहीं विश्रान्ति नहीं है। अरे! दया, दान, व्रतादिके परिणामोंमें भी कहीं विश्रान्ति नहीं है। अहा! प्रभुका मार्ग ऐसा है। प्रभु तेरा स्वरूप ही ऐसा है। 'जैन' कोई सम्प्रदाय नहीं है, वह तो वस्तुका स्वरूप है। श्रीमद् कहते हैं:—

जिन सोही है आत्मा, अन्य होई सो कर्म:
कर्म कटे सो जिनवचन, तत्त्वज्ञानको मर्म।

यह किसी वाड़ेकी बात नहीं है, जीव स्वयं ही जिनस्वरूपी भगवान है। आता है ना!–

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन;
मत-मदिराके पान सौं, मतवाला समुझै न।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिन स्वरूप निज ज्ञायक आत्मामें श्रद्धा, ज्ञान करके स्थिर हो वह पर्यायमें जिन होता है। यह वस्तुका स्वरूप है, यह कोई वाड़ेकी या सम्प्रदायकी बात नहीं है कि–ऐसा करनेसे ऐसा होता है और ऐसा करनेसे ऐसा होता है। शुभभाव भी विभावमें आ जाता है। भक्ति, पूजा, स्वाध्यायादि शुभभाव तथा व्यापार-धन्धा आदि अशुभभाव—उन सब विभावोंमें तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भावरूप पाँच परावर्तनोमें कहीं विश्रान्ति–विराम नहीं है।

'चैतन्यगृह ही सच्चा विश्रान्ति गृह है।'

सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि अनंत गुणोंका अभेद एक पिण्ड ऐसा जो निज चैतन्य प्रभु, वही वास्तवमें विश्रान्ति लेनेका सच्चा गृह है। ज्ञानानन्द स्वरूप निज घर ही विश्रान्तिका स्थान है।

पर पद निज पद मानि मगन ह्वै, पर परिणति लिपटाये:
शुद्ध-बुद्ध-सुखकन्द-मनोहर, चेतन भाव न भाये;
–हम तो कबहुँ न निज घर आये।

रागादि परिणति पर घर और दुःखका स्थान है। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द ऐसा एक-एक गुण पूर्ण ऐसे अनंत गुणोंका–पूर्णरूप–निज चैतन्यघर ही विश्रान्तिका स्थान है। विश्रान्तिगृह भगवान आनन्दकन्दमें स्थित है। वह तो अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड है। प्रभु! इन्द्रिय विषयोंमें जो भी आनन्द लगता है, अच्छा लगता है–वह कल्पना तो भ्रम और दुःख है। अहाहा! स्वयं आनन्दका घर है ना। दुःखोंकी थकान उतारनेका विश्रान्तिगृह तो निज आत्मा ही है ना! अहा! ऐसा उपदेश!

'मुनिवर उसमें बारम्बार निर्विकल्परूपसे प्रवेश करके विशेष विश्राम पाते हैं।;

सम्यक्त्वीको अंतरमें बारम्बार एकदम निर्विकल्प उपयोग आये ऐसा नहीं है; बहुत समय लगता है। मुनि जोकि सच्चे वीतरागी संत हैं वे, निज आनन्दधाममें बारम्बार निर्विकल्प रूपसे, अभेद परिणति रूपसे प्रवेश करके अधिकाधिक विश्रान्ति पाते हैं। अहा! मुनिपना किसे कहें प्रभु! श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवादि वीतरागी संत बारम्बार निर्विकल्परूपसे भीतर स्वरूपमें प्रविष्ट होकर विशेष विश्राम पाते थे। आनंदके धाममें विशेष विशेष स्थिरता करे उसे मुनि कहते हैं। जिसने निज विश्रान्तिगृह देखा है, अनुभव किया है, वह अब बारम्बार उसमें निर्विकल्परूपसे जाना चाहता है। छठवें गुणस्थानमें विकल्प आये, परन्तु सीधे अंतरमें—जहाँ अतीन्द्रिय आनंदका पर्वत खड़ा है वहाँ—बैठना, स्थिर होना चाहता है। समझमें आया कुछ? ऐसा वीतरागमार्ग जैन परमेश्वरके सिवा अन्यत्र नहीं है। जैन कोई पक्ष नहीं है, वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। यह वस्तुस्थिति जगतके हाथ आना मुश्किल है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनंत गुणोंका धाम ऐसा जो निज ध्रुव परमात्मा उसमें विशेष स्थिरता करनेके लिये मुनिराज बारम्बार लालायित हो रहे हैं–'अरे! अपने स्वरूपगृहके बाहर इन महाव्रतोंके, अठ्ठाईस मूल गुणोंके, देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाके तथा देव-गुरुके प्रति विनयके विकल्पोंमें मैं कहाँ आ गया? मेरा धर्मका स्थान, विश्रामका स्थान, आनन्दका धाम तो अंतरमें है। मेरा देश–आनन्दका देश—अंतरमें है। पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण उसमेंसे बाहर आनेका यह जो विकल्प उठता है वह तो दुःख है।' अहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, जगतके साथ मेल होना मुश्किल है।

मुनि बारंबार निर्विकल्प रूपसे प्रवेश करते हैं; किन्तु काहेमें? कि–निज आनन्द स्वरूपमें। निर्विकल्परूपसे निज स्वरूपमें जाकर विशेष विश्राम, विशेष आनन्द प्राप्त करे उसे मुनि कहते हैं। मुनि तो पंच परमेष्ठीमें आनेवाले परमेश्वर हैं। जो अन्तरमें परमेश्वर-स्वभावमें दृष्टि करके स्थिर होता है वह पर्यायसे अंतरमें परमेश्वर है। रागको छोडूँ–ऐसा विकल्प भी उन्हें नहीं रुचता, तथापि पुरुषार्थकी हीनताके कारण आ जाता है; परन्तु वहाँसे हटकर निज विश्राम स्थानमें जाते हैं; वहाँ 'राग छोडूँ' ऐसा विकल्प भी नहीं है। सम्यग्दर्शन युक्त मुनिपना है; इसलिये वे बारम्बार स्वरूपमें विशेष प्रविष्ट हो जाते हैं।

'बाहर आये नहीं कि अन्दर चले जाते हैं।'

अहा! मुनि अर्थात् चारित्र; चारित्र अर्थात् मोक्षका कारण। जिसके अंतरमें ऐसी धन्य चारित्र दशा प्रगट हुई है वह निर्विकल्परूपसे रमने, जमने, जीमने, जम जानेके लिये बारम्बार अंतरमें जाता है। पुरुषार्थकी कमीके कारण बाहर आना हो जाता है, किन्तु बाहर आये–न आये कि फिर अन्दर चले जाते हैं। अहा! भाई! मार्ग तो ऐसा है। जैनके सम्प्रदायमें जन्मे हैं उन्हें इस बातकी खबर तक नहीं है।

*

वचनामृत–१७०

एक चैतन्यको ही ग्रहण कर। सर्व ही विभावोंसे परिमुक्त, अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्वको ही ग्रहण कर, उसीमें लीन हो, एक परमाणु मात्रकी भी आसक्ति छोड़ दे।।१७०।।

'एक चैतन्यको ही ग्रहण कर।'

निज चैतन्य वस्तु जो सहज शुद्ध ज्ञायकभाव उसीको दृष्टिमें पकड़, उसीको आश्रयरूपसे ग्रहण कर और उसीको महिमावंत जान। बाहर देखनेमें तुझे जो भी विस्मयता लगती है वह सब अज्ञान है। एक मात्र ध्रुवस्वरूप निज चैतन्यको ही अभेदरूपसे ग्रहण कर; राग,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय अथवा गुणभेदको नहीं। ध्रुवधामको धी (बुद्धि)में ध्यान द्वारा धीरजसे ध्येयरूपसे धारण कर; ध्रुव स्वरूपको ध्येयरूपसे ध्यानका विषय बना। जिस प्रकार आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका सागर है उसी प्रकार वह अतीन्द्रिय ज्ञान, दर्शन, स्वच्छता आदि अनंत-अनंत गुणोंका महासागर है, उसे एकको अभेद रूपसे ग्रहण कर।

'सर्व ही विभावोंसे परिमुक्त, अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्वको ही ग्रहण कर, उसीमें लीन हो, एक परमाणु मात्रकी भी आसक्ति छोड़ दे।'

'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं'—यह प्रभुस्मरणका भाव तक विकल्प है, विभाव है, बंधका कारण है; उससे धर्म नहीं होता, अंतरसे सच्ची आत्मशान्ति प्राप्त नहीं होती।

प्रश्न :—तब तो एकान्त नहीं हो जायगा?

उत्तर :—बाह्य व्यवहार और क्रियासे कुछ नहीं होता वह 'एकान्त' नहीं है; उससे कुछ नहीं होता इसका अर्थ यह है कि उससे बंध होता है, धर्म नहीं होता। इस प्रकार वह अनेकान्त है। सर्व विभावोंसे परिमुक्त अर्थात् व्यापार-धन्धेके अशुभ तथा दया, दान, व्रत, तपादिके शुभ विभावोंसे समस्त प्रकारसे रहित ऐसे निज शुद्ध ज्ञायक भावको अंगीकार कर, क्योंकि अंतरकी दृष्टि करनेमें विभावके एक अंशका भी आधार नहीं है।

अरेरे! जीवन बीत रहा है, मौतकी नौबत सर पर बज रही है। किस समय देहान्त हो जायगा उसकी खबर नहीं है। 'देख, मैं दो घन्टे बाद आउंगी, देहान्त हो जायगा, ध्यान रखना'—ऐसी चेतावनी देकर मौत नहीं आती। काल अचानक आकर तुझे ग्रस लेगा भाई! इसलिये तू शीघ्र कल्याण कर ले! दुनिया जो चाहे माने, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; दुनिया प्रमाण-पत्र दे कि—यह तो बड़े धर्मात्मा और ज्ञानी हैं उससे तेरा कल्याण हो जायगा—ऐसा नहीं है।

शुभाशुभ समस्त विभाव परिणामोंसे रहित ऐसे निज परमात्मतत्त्वको ग्रहण कर। अरिहंत देव परमात्मा हैं; परन्तु वह तेरा परमात्मा नहीं है, उस ओर लक्ष जायगा तो तुझे राग ही होगा।

प्रश्न :—अरिहंतकी भक्ति आदि भाव आगे बढ़नेका साधन हैं ना?

उत्तर :—राग मोक्षमार्गमें आगे बढ़नेका साधन कैसे होगा? राग तो संसारकी वृद्धिका साधन है। अरे! मुनिराजको—जो वीतरागी भावलिंगी संत हैं, स्वरूपमें विश्रामको प्राप्त हैं, उनको—भी पंचमहाव्रतादि जो विकल्प आते हैं वे जगपन्थ हैं, बंधका कारण हैं। समयसार-नाटकमें कहा है:—

ता कारन जग पंथ इत, उत शिवमारग जोर।
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रमाद संसारका कारण है और स्वानुभव मोक्षका कारण है। अहा! अंतरमें जिसे निज विश्रामगृह मिल गया है, उग्ररूपसे अंतरमें रहनेका स्थान मिल गया है और जो बारम्बार अन्दर जाते हैं ऐसे मुनिवरको भी छठवें गुणस्थानमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदिके जो शुभ विकल्प आते हैं वह भी जगपंथ है, प्रमाद है, उन्हें जितनी स्वरूप रमणता है वह शिवमारग है।

यहाँ गृहस्थको तो दिनभर स्त्री, बच्चे, व्यापार-धन्धा और पापके ढेर हैं; अहा! उसका परिणाम क्या आयेगा भाई! यहाँ तो, जिनको तीन कषायोंका अभाव हुआ है और बारम्बार अंतरमें प्रवेश करनेका उद्यम वर्तता है उनको पंच महाव्रतका, स्वाध्यायका, तत्त्व कहने तथा सुननेका जो विकल्प आये वह भी जगपंथ है, संसार है, राग है तथा औदयिक भाव है। अहा! देखो, यह वीतराग मार्ग! जिनवर परमात्माके उपदेशमें ऐसा आया है।

पंचमहाव्रतका जो विकल्प आये वह प्रमाद है, विकार है, मलिनता है। निज परमात्मतत्त्व अंतरमें अत्यन्त निर्मल है। उसे 'ही' ग्रहण कर।

प्रश्न :—'ही' कहनेमें एकान्त नहीं होता?

उत्तर :—नहीं; निज परमात्मतत्त्वको ही ग्रहण कर और विभाव तथा पर परमात्माकी ओरका लक्ष छोड़—यह सच्चा अनेकान्त है।

परमात्माकी प्रतिमाको पूजनेका भाव आये, परन्तु वह धर्म नहीं है। भूमिकामें अभी साधकपना है इसलिये ऐसे भाव आते हैं ना? सिद्धपना नहीं है उतना बाधकपना तो आयेगा ही। आये, परन्तु वह हेयरूपसे आता है; जाननेके लिये आता है; ज्ञानी तो उसका मात्र ज्ञाता ही है। अहा! ऐसी बातें हैं।

नाटक समयसारमें आता है ना!—'जिन प्रतिमा जिन सारखी'...

जाके मुख दरससौं भगतके नैननिकौं,
थिरताकी बानी बढ़े चंचलता विनसी।
मुद्रा देखी केवलीकी मुद्रा याद आवे जहाँ,
जाके आगे इन्द्रकी विभूति दीसै तिनसी॥

जाको जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,
सोई शुद्धमति होइ हुति जौ मलिन सी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहे जिनकी छबि सुविद्यमान जिनसी॥

जिनेन्द्रकी मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्रके समान शोभती है। जिस अपेक्षासे कहा हो वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपेक्षा जानना चाहिये। प्रतिमा है, उसकी पूजा, भक्ति आदि सब हैं। जब स्वरूपमें स्थिर नहीं हो सके तब अशुभसे बचनेके लिये ऐसा शुभभाव आये बिना नहीं रहता। 'ऐसा भाव आता ही नहीं'—ऐसा जो माने उसे वस्तु स्वरूपकी खबर नहीं है। और आता है, इसलिये 'उससे धर्म है'—ऐसा माने तो वह भी बराबर नहीं; वह शुभराग बंधका कारण है। अहा! ऐसी बाते हैं।

जब तक अबंध परिणाम पूर्ण प्रगट नहीं हुए तब तक अपूर्ण दशामें ऐसे बंधके परिणाम होते हैं। होते हैं इसलिये वे आदरणीय हैं—ऐसा भी नहीं है। अहा! इतनी अधिक अपेक्षा!

निज परमात्मतत्त्वको ही ग्रहण कर, उसीमें लीन हो। एक परमाणु मात्रकी भी आसक्ति छोड़ दे। जिसे निज परमात्मस्वभावका आश्रय करना है उसे रजकणको तथा रागके अंशको भी छोड़ देना पड़ेगा। उसमें अपनत्वका अभिप्राय छोड़ दिया इसलिये सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि ऐसा शुभभाव आता है। आये वह जानने योग्य है, जाना हुआ प्रयोजनवान है।

भाद्रपद कृष्णा—२

चम्पाबेन वास्तवमें अजोड़ रतन हैं; वे तो अंतरसे बिलकुल उदास हैं; उन्हें बाहरका कुछ रुचता नहीं है; परन्तु लोगोंको तो भक्तिप्रेमके कारण बहुमान करनेके भाव आयेंगे ही!

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन—६२

ता. १२-८-७८

वचनामृत—१७१

एक म्यानमें दो तलवारें नहीं समा सकतीं। चैतन्यकी महिमा और संसारकी महिमा दो एक साथ नहीं रह सकतीं। कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य करते हैं कि संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें चैतन्यकी समीपता नहीं होती। परन्तु चैतन्यकी महिमापूर्वक जिसे विभावोंकी महिमा छूट जाय, चैतन्यकी कोई अपूर्वता लगनेसे संसारकी महिमा छूट जाय, वह चैतन्यके समीप आता है। चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी चाहिये महिमा करनी चाहिये।।१७१।।

'एक म्यानमें दो तलवारें नहीं समा सकतीं।'

क्या कहा? कि—एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं। यह तो दृष्टांत है उसी प्रकार—

'चैतन्यकी महिमा और संसारकी महिमा दो एक साथ नहीं रह सकतीं।'

अंतरमें भगवान आत्मा जो कि अनंत-अनंत अतीन्द्रिय शान्ति एवं आनन्दका सागर है, उसकी महिमा और रागादि विकल्परूप संसारकी महिमा—यह दोनों एक साथ नहीं रह सकतीं। जिसे शुभाशुभ रागकी तथा उसके कर्तृत्वकी महिमा है उसे आनन्दका नाथ एवं विश्वका उदासीन साक्षी ऐसे निज चैतन्यप्रभुकी महिमा नहीं है। जिसमें परका करना-भोगना कुछ है नहीं, मात्र भीतर स्वरूपमें स्थित रहना है ऐसे चारित्रवंत शांत-शांत अकषाय स्वभावी निज चैतन्यकी महिमा और रागादि संसारकी महिमा एक साथ नहीं रह सकती।

जो पूर्ण परब्रह्म परमात्मा है तथा निर्मल स्वभावका पिण्ड है ऐसे निज चैतन्यकी महिमा जिसने भीतर पर्यायमें अनुभव सहित प्रगट की है उसे सम्यग्दर्शन है। राग व्रतादि पुण्य परिणाम, उससे बँधनेवाला पुण्य कर्म और उसके फल स्वरूप प्राप्त होनेवाली अनुकूल

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामग्रीकी जिसे अंतरमें रुचि है, महिमा है उसे निर्विकल्प आनन्दकन्द ऐसे निज चैतन्य आत्माकी महिमा अंतरसे नहीं आती। जिसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरु जोकि निज चैतन्यसे पर हैं उनकी तथा व्यवहाररत्नत्रयकी भी अंतरमें महिमा लगती है, उसे निमित्तके तथा रागके अभावस्वरूप आनन्दादि गुणोंसे परिपूर्ण ऐसे अपने द्रव्यस्वभावकी महिमा उदित नहीं होती। उसे पर्यायमें आनन्दभाव नहीं आता। कुछ समझमें आया? विषय सूक्ष्म है। जिसे शुभ राग और शरीरसे लेकर समस्त परकी महिमा, परमें कुछ भी आश्चर्य, अधिकता, विशेषता, विस्मयता लगती है उसे आनन्दकन्द निज ज्ञायकभावकी महिमा, आश्चर्य, अधिकता, विशेषता, विस्मयता एवं सौंदर्य भासित नहीं होता। अहा! मात्र सिद्धांत भरे हैं।

एक म्यानमें दो तलवारें नहीं समातीं तदनुसार, जिसे पुण्य-पापके भावकी, पुण्यके फलरूप बाह्य अनुकूलताकी और एक समयकी पर्यायमें ज्ञानके परलक्षी विकासकी महिमा है उसे निज चैतन्यकी महिमा—सम्यग्दर्शन नहीं है, और जिसे विकल्प तथा एक समयकी पर्यायसे पार ऐसे अनाकुल पूर्ण आनन्दकन्द भगवान आत्माकी महिमा अंतरसे जागृत हुई है—सम्यग्दर्शन हुआ है उसे राग, पर्याय अथवा गुणभेदकी महिमा नहीं होती।

आत्मामें एक 'भावभाव' नामकी शक्ति है। जिस जीवको 'भाव' अर्थात् अपने आनन्दमय शुद्ध ज्ञायकतत्त्वकी दृष्टि हुई है उसे द्रव्यमें और गुणमें विद्यमान आनन्दका 'भाव' पर्यायमें आता है। निज शाश्वत पदार्थकी महिमा आयी है उसे अशाश्वत रागकी, दया–दानादि विकल्पोंकी तथा पर वस्तुकी महिमा अंतर्दृष्टिमेंसे छूट गई है। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ ऐसे निज शाश्वत भावकी महिमा जिसे आयी उसे द्रव्य तथा गुणमें तो आनन्दभाव है ही, परन्तु पर्यायमें भी आनन्द भाव आता है। जिसे इन्द्रानी सुन्दर स्त्री आदि पर वस्तुकी सुन्दरताका लक्ष है उसे आत्माकी सुन्दरता लक्षमें नहीं आती।

आत्मा स्वयं परमात्मा परब्रह्म जिन स्वरूप है। जिसे अपने जिन स्वरूपकी महिमा नहीं है वह अनादिसे मान-प्रतिष्ठा, कीर्ति बाह्य साधनादिकी महिमामें पड़ा है। स्वयं अंतरमें परमात्मा क्या वस्तु है, उसकी कोई खबर या कीमत नहीं है।

देह-देवालयमें ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुण शोभायुक्त चैतन्य देव विराजता है। अंतरमें सम्यग्दर्शनमें जिसे उसकी महिमा आयी उसे बाहरी चमक-दमककी—समवसरण देखे तो उसकी भी—महिमा नहीं आती। समवसरण अर्थात् श्री जिनेन्द्रदेवकी धर्मसभा, जहाँ सौ इन्द्र, राजा आदि मनुष्य, सिंह-बाघ आदि पशु भगवानकी वाणी श्रवण करने आते हैं; स्फटिक आदि विविध रत्नों द्वारा बने हुवे कोट होते हैं, बीचमें तीन पीठिकाऐं, उन पर गंधकुटी, रत्नोंका सिंहासन तथा एक लाख पंखुरियों वाला कमल होता है, उस पर भगवान बिना आधारके विराजते हैं; परन्तु वह तो सब बाह्य शोभा है। अंतरमें जिसे भगवान आत्माकी महिमा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आयी उसे किसी बाह्य वस्तुकी महिमा नहीं आती। जिसे अपने चैतन्यकी महिमा आयी उसे निजात्मामें सुखबुद्धि हुई और राग पुण्यपरिणाम तथा सर्व बाह्य वस्तुओंमेंसे सुखबुद्धि छूट गई।

प्रश्न :—समवसरणमें विराजते हैं वे भगवान तो हैं ना?

उत्तर :—वे भगवान तो तुझसे पर हैं। वे ऐसा कहते हैं कि—हमारे दर्शन करनेसे तो शुभभाव—बंधन होगा। यह तो वीतराग मार्ग है भाई! जिसे अंतरमें रागकी महिमा है उसे वीतरागस्वरूपी निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभुकी महिमा नहीं है। एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं। ऐसी बात है भाई! क्या किया जाय?

बेनकी वाणी तो अनुभवके आनन्दमेंसे निकली है ना! वाणी निकली वह तो वाणीके कारण निकली है; परन्तु ऐसा कहा जाता है कि निमित्त है इसलिये आत्मामेंसे वाणी निकली है। अनाकुल आनन्दका नाथ ऐसे ज्ञायक प्रभुमें दृष्टि लगाने पर अनुभवमें आनन्दका वेदन आया और जो वाणी निकली वह निमित्त एवं व्यवहारसे उसकी कही जाती है। वह है तो जड़।

'कुछ जीव मात्र क्षणिक व्यवहार करते हैं कि संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें चैतन्यकी समीपता नहीं होती।'

क्षणिक वैराग्यसे चैतन्यकी समीपता नहीं होती। अंतरमें पुण्य-पापके भावसे विरक्ति वह वैराग्य है। श्री समयसारके पुण्य-पाप अधिकारमें कहा है;—

जीव रक्त बाँधे कर्मने, वैराग्य प्राप्त मुकाय छे,
—ए जिन तणो उपदेश, तेथी न राचतुं कर्मो विषे।१५०।

'रागी जीव अवश्य कर्म बाँधता है और विरागी जीव ही कर्मसे छूटता है'—ऐसा जो आगमका वचन है वह, सामान्यतः रागीपनेकी निमित्तताके कारण शुभ और अशुभ दोनों कर्मोको अविशेषरूपसे बंधके कारणरूप सिद्ध करता है और दोनों कर्मको निषेधता है।

यह संसार असार है, अनित्य है, अशरण है,—इस प्रकार कुछ जीव क्षणिक स्मशान वैराग्यसे अपनेको अधिक मानते हैं, परन्तु उस क्षणिक वैराग्यसे चैतन्यकी समीपता नहीं होती। स्त्री-बच्चोंको छोड़ा, ब्रह्मचर्य ले लिया—ऐसा कृत्रिम वैराग्य करनेवाले जीवको निज भगवानकी समीपता नहीं होती। जिसे अंतरसे रागका प्रेम छूट गया है वह चैतन्यके समीप हो जाता है। जिसे आनन्द स्वरूप भगवान आत्माकी दृष्टि नहीं हुई है रागसे विरक्तता नहीं हुई है उसे आत्माकी समीपता नहीं होती। राजपाट छोड़कर, हजारों रानियां छोड़कर, अनंतबार द्रव्यलिंगी मुनि हुआ, अट्ठाईस मूलगुणोंका निरतिचार पालन किया, उसके लिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई चौका लगाये–आहार बनाये तो, प्राण जाने पर भी आहार न ले—ऐसी क्रिया भी मूल वैराग्य नहीं है। वह क्षणिक वैराग्य–स्मशान वैराग्य–शाश्वत चैतन्यकी समीपता नहीं ला सकता।

'परन्तु चैतन्यकी महिमापूर्वक जिसे विभावों की महिमा छूट जाय, चैतन्यकी कोई अपूर्वता लगनेसे संसारकी महिमा छूट जाय, वह चैतन्यके समीप आता है।'

वीतराग स्वरूप निज शाश्वत चैतन्य पदार्थकी महिमासे सम्यग्दृष्टि होकर जिसे अंतरसे समस्त विभावोंका रस छूट जाता है, वह भगवान ज्ञायक आत्माके समीप आता है। अहा! यह भाव भरे हैं इसमें यह कोई साधारण पुस्तक नहीं है।

जिसे अंतरंगसे निज ज्ञायक प्रभुका प्रेम जागृत हुआ उसे विकारी भावोंका प्रेम रह ही नहीं सकता। जिन भावोंसे तीर्थंकर नामकर्म बँधता है उन शुभभावोंकी महिमा भी छूट जाती है। वे भाव धर्म नहीं हैं, शुभभावरूप अधर्म हैं, उनसे जो प्रकृति बँधे वह विषका वृक्ष है। समयसारमें कहा है:–

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥२३०॥

समस्त कर्मफलकी संन्यास भावना करनेवाला कहता है कि–कर्मरूपी विषवृक्षके फल मेरे भोगे बिना ही खिर जाओ; मैं अपने चैतन्यस्वरूप आत्माको निश्चलरूपसे संचेतता हूँ–अनुभवता हूँ।

जो पुरुष कर्मरूपी विषवृक्षोंके फलको, उनका स्वामी होकर, नहीं भोगता और वास्तवमें निज आत्मस्वरूपसे ही तृप्त है वह पुरुष, पूर्वमें संसार दशामें कभी नहीं हुई थी ऐसी किसी भिन्न प्रकारकी कर्मरहित स्वाधीन सुखमय दशाको प्राप्त होता है। १४८ कर्मप्रकृत्तियाँ विषवृक्ष हैं, उनमें तीर्थंकरनामकर्म प्रकृति भी आ गई।

प्रश्न:—तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति भी विषका वृक्ष है?

उत्तर:–हाँ, समस्त कर्म विषवृक्ष हैं। भगवान आत्मा निज चैतन्य ज्ञायकदेव वह अमृतका कल्पवृक्ष है। अंतरमें उसकी जितनी एकाग्रता करे उतना उसकी पर्यायमें आनन्दामृत झरता है। स्वतत्त्वकी ऐसी अद्‌भुतता अंतरसे भासित हो उसे शुभाशुभ समस्त विभावोंकी महिमा छूट जाती है। भाई! शब्द थोड़े किंतु भाव अति अपूर्व हैं।

अंतरमें चैतन्यकी कोई अद्‌भुत अपूर्वता लगनेसे संसारकी समस्त महिमा छूट जाती है। सम्यग्दृष्टिको, भले ही वह चक्रवर्तीपदमें हो, अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका स्वाद आया है; उसे 'यह भगवान आत्मा तो अंतरमें चैतन्यरत्नोंसे भरपूर है, अनन्तानन्त चैतन्य-हीरोंका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विशाल रत्नाकर है'—ऐसी महिमा अंतरमें आयी है, इसलिये उसको संसारकी बाह्य महिमा छूट गई है। जो चैतन्यसे दूरका दूर वर्तता है उसे संसारकी महिमा है, रागकी महिमा है। अपने ज्ञायकस्वभावकी महिमा द्वारा विभावकी महिमा अंतरसे निर्मूल होती है, आत्मा निज चैतन्यके समीप जाता है।

'चैतन्य कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी चाहिये, महिमा करनी चाहिये।'

अहा! चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है!

प्रश्न :— अपूर्व वस्तु......वह क्या है?

उत्तर :— भाई! चैतन्यतत्त्व ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुणरत्नोंका अद्भुत भण्डार है, उसकी क्या बात कही जाय? वाणी कितना काम करेगी भाई! वाणी तो जड़ है, उसे खबर नहीं है कि यह महिमावान पदार्थ कौन है। क्या भगवानकी वाणीको खबर है कि यह आत्मा कैसा है? वाणीसे पार ऐसे निज चैतन्य प्रभुकी, अंतरसे अपूर्व महिमा लाकर, पहिचान करनी चाहिये। जन्म-मरण रहित होनेके लिये करना तो यह है। अंतरमें पहिचानकर चैतन्यकी महिमा लाये तो सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान हो और जन्म-मरणका अन्त आये—ऐसा भगवान कहते हैं वही यह वाणी है। आया कुछ समझमें?

ज्ञायक आत्मा कोई अपूर्व वस्तु है; उसे कोई दृष्टांत या उपमा लागू नहीं होती, इसलिये वह अतुल एवं निरुपम है। भगवान आत्मा अंतरमें निर्लेप एवं निरावरण, अल्पज्ञता एवं अशुद्धता रहित, सर्वज्ञता एवं शुद्धतासे परिपूर्ण महाप्रभु है। उसे किसकी उपमा दी जाय? अधिक कहें तो कहा जायगा कि सिद्ध जैसा। उस ज्ञायक प्रभुकी पहिचान करके उसकी महिमा लाना चाहिये। ऐसी बात है प्रभु! क्या किया जाय? वाद-विवादने आदमीको मार डाला। अंतरमें प्रतीतिपूर्वक महिमा लाये कि—यह ज्ञायक वस्तु कोई अद्भुत—अलौकिक वस्तु है, तो विभाव तथा संसारकी महिमा छूट जाय और निज ज्ञायक चैतन्यकी समीपता हो। भाई! यह तो अपूर्व बातें हैं।

*

वचनामृत—१७२

जैसे कोई राजमहलको पाकर फिर बाहर आये तो खेद होता है, वैसे ही सुखधाम आत्माको प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है। शान्ति और आनन्दका स्थान आत्मा ही है, उसमें दुःख एवं मलिनता नहीं है—ऐसी दृष्टि तो ज्ञानीको निरंतर रहती है॥१७२॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'जैसे कोई राजमहलको पाकर फिर बाहर आये तो खेद होता है, वैसे ही सुखधाम आत्माको प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है।'

जैसे किसीको हर प्रकारकी सुख सुविधापूर्ण अरबों रुपयेका राजमहल मिला हो तो उसे उसमेंसे निकलनेमें खेद होता है, दुःख होता है उसी प्रकार अतीन्द्रिय सुखधाम ऐसे निज ज्ञायक प्रभुको पाकर विकल्पमें आनेसे साधक जीवको खेद होता है, दुःख होता है। श्रीमद् कहते हैं:—

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीये केटलुं? कर विचार तो पाम।

स्वयं ज्योति सुखधाम, अतीन्द्रिय आनन्दका वज्रस्तंभ, अतीन्द्रिय चैतन्यघनको पाकर बाह्य शुभरागमें आ जाना वह खेद है, दुःख है। ऐसी वस्तुस्थिति है!

प्रश्न :—पूजा-भक्ति एवं व्रत-तपादि व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट होता है ना?

उत्तर :—भाई! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि जिसने निश्चय अर्थात् आनन्द स्वरूप आत्माका महल देखा है उसे व्यवहारके विकल्पोंमें बाहर आ जानेसे खेद होता है, दुःख होता है। विकल्पमें आनेसे धर्मीको ऐसा लगता है कि इस आनन्दके धाममेंसे बाहर निकलकर हम परदेशमें—विभावमें कहाँ आ पहुँचे? धर्मीने चैतन्यका—आनन्दधाम ज्ञायक प्रभुका—महल देखा है, अनुभव किया है, उसमेंसे बाहर निकलकर पूजा, दान, दयादिके विकल्प आयें तब भी उसे ऐसा लगता है कि—अरेरे! अपना देश छोड़कर हम परदेशमें कहाँ आ गये? 'हम परदेशी पंछी साधु, आ रे देशके नहीं।' परदेशी अर्थात् रागके देशसे पर—भिन्न हमारा देश है, वहाँके हम निवासी हैं; राग हमारा देश नहीं है। रागसे भिन्न ज्ञायकका अनुभव वह हमारा देश है; हमें शीघ्र ही वहाँ जाकर बसना है।

प्रश्न :—व्रत-तपादि व्यवहार आता तो है ना?

उत्तर :—ऐसा कहकर व्यवहारसे निश्चय होता है—ऐसा तुझे मानना है ना भाई? व्यवहारकी क्रिया अनन्तबार की; नववें ग्रैवेयकमें जाय ऐसी क्रिया भी अनंतबार की; किन्तु भाई! रागकी क्रियासे आत्मा प्राप्त होता है? व्रत, तप, भक्ति, आदि रागकी क्रिया लाख करे, हजारों वर्ष तक वाणी सुने, तथापि नहीं होता। परन्तु अंतरमें शुद्ध चैतन्यका स्पर्श करे—अनुभव करे तो आत्मा प्राप्त हो। अहा! बड़ी कठिन बात है।

देवाधिदेव भगवान आत्माको अपने अनुभवके लिये परकी—रंककी कोई आवश्यकता नहीं है। पर पदार्थ मेरे लिये रंक—अकिंचित्कर हैं। जिस प्रकार आत्माको अपनी अपेक्षासे 'द्रव्य' कहा जाता है उसी प्रकार वह अन्य पदार्थ—त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेवकी अपेक्षासे 'अद्रव्य'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। इस प्रकार आत्मा स्वयं ही कथंचित् 'द्रव्य' और कथंचित् 'अद्रव्य' है। स्वयं परकी अपेक्षासे 'अद्रव्य' अर्थात् 'अ-परद्रव्य' है तो उसे देव-गुरु आदि पर द्रव्य क्या सहायता कर सकते हैं? समयसार कलशकी टीकामें तो (कलश—२५२) ऐसा कहा है कि—'स्वद्रव्य' अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु, 'परद्रव्य' अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना, 'स्वक्षेत्र' अर्थात् आधार मात्र वस्तुका प्रदेश, 'परक्षेत्र' अर्थात् वस्तुका जो आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तु मात्ररूप कहा था वही प्रदेश सविकल्प भेद-कल्पनासे पर प्रदेश बुद्धिगोचररूप कहा जाता है; 'स्वकाल' अर्थात् वस्तु मात्रकी मूल अवस्था, 'परकाल' अर्थात् द्रव्यकी मूलकी निर्विकल्प अवस्था वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पनासे 'परकाल' कहा जाता है; 'स्वभाव' अर्थात् वस्तुकी मूलकी सहज शक्ति; 'परभाव' अर्थात् द्रव्यकी सहज शक्तिकी पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना, उसे 'परभाव' कहा जाता है। अहा! अवस्थान्तर-भेदरूप अपनी एक समयकी पर्यायको 'परकाल' कह दिया, तो परद्रव्यकी पर्याय कहीं दूर रह गई। भाई! यह मार्ग ही कोई अलग है, यह तो धैर्यवानोंका मार्ग है। जिन्हें पूर्वका आग्रह हो उन्हें यह बात बैठना कठिन है। उन्हें चैतन्यका विचार एवं स्वाद कहाँसे प्राप्त होगा?

वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावे विश्राम;
रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव याकौ नाम।

जिसे अंतरमें चैतन्यकी महिमा आयी उसे जगतकी महिमा छूट गई। बाह्य वैभव तो धूल है वह चैतन्यका वैभव है ही नहीं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने कहा है कि :—'अपने आत्माके निज वैभवसे मैं इस एकत्व विभक्त आत्माको दिखलाऊँगा। दिखलाऊँ तो तू स्वानुभव प्रत्यक्षसे उसे प्रमाण करना।' अहा प्रभु! यह पंचमकालका प्राणी आपके कहते ही प्रमाणभूत कर लेगा? इतनी अधिक जोरदार है आपकी बात!

भाई! आत्माको काल कहाँ लागू होता है? पंचमकाल तथा चौथाकाल कहीं आत्मामें है? नरकक्षेत्रमें जैसे सुखकी गंध नहीं है, वैसे ही भगवान चैतन्यदेवके क्षेत्रमें काल या शुभाशुभविभावकी गंध नहीं है, वह तो अकेला सुखका धाम है। श्रीमद्ने कहा है कि :—

सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिनरात्र रहे तद् ध्यान मही;
प्रशान्ति अनंत सुधामय जे, प्रणमुं पद ते वरते जयते।

प्रश्न :—पहले व्यवहारके विकल्पमें आये, फिर आनन्दमें जा सकेगा ना?

उत्तर :—भाई! जिसे व्यवहारकी रुचि है उसने परमार्थतत्त्वकी अचिंत्यता, अपूर्वता एवं अगाधता गुरुगमसे नहीं सुनी है। जिसे अंतरसे अनंत शक्तियोंका सागर ऐसे अपूर्व अगाध एवं अचिन्त्य निज परमात्मतत्त्वकी महिमा आयी है, उसे उसमेंसे बाहर निकलते हुए—उसमेंसे बाहर आते हुए—दुःख होता है। क्या दुःखके भावसे आनन्दमें पहुँचा जा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकता है? अज्ञानीको व्यवहारमें आनेसे अच्छा लगता है। ज्ञानीको व्यवहारके विकल्प आते हैं, आये बिना नहीं रहते, परन्तु उसे वे बाह्य भाव दुःखरूप लगते हैं।

'शान्ति और आनन्दका स्थान आत्मा ही है, उसमें दुःख एवं मलिनता नहीं है—ऐसी दृष्टि तो ज्ञानीको निरंतर रहती है।

अहा! अपूर्व आनन्द एवं अपूर्व शान्तिवाले अमाप ज्ञायक स्वभावको जिसने जाना और अनुभव किया उसे उसमेंसे बाहर आने पर दुःख होता है। सम्यक्त्वी ज्ञानी भी विषय-वासनाके विकल्पमें आते हैं, परन्तु उन्हें ऐसा लगता है मानों कोई बड़ा उपसर्ग आ पड़ा हो, संकट आ गया हो। उस विकल्पके समय भी उनकी दृष्टि स्वभाव पर ही है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दके खेलका खिलाड़ी है। जिसने उस खेलका अनुभव किया है उसे उसमेंसे बाहर निकलना दुःखद लगता है।

शान्ति और आनन्दका धाम आत्मा ही है। शान्ति वह चारित्रकी अपेक्षा है, और आनन्द वह सुखगुण—अनाकुल आह्लाद—की अपेक्षा है। जिसे रागके रसका प्रेम है उसने अपने अनंत अनंत गुणके निधानको तालेमें बन्द कर रखा है। ज्ञायकके अभ्यासरूपी कुंजी द्वारा रागकी एकताका ताला खोलने पर अंतरमें ज्ञान, शान्ति, आनन्दादि निज वैभवका अनुभव होता है। आत्मामें शांति एवं आनन्द अमाप है। उसमें दुःख और मलिनता नहीं है, वह तो मात्र एक समयकी पर्यायमें है, वस्तुके मूल स्वभावमें नहीं है।

प्रश्न :—यह क्या? दुःख पर्यायमें है और वस्तुमें नहीं है?

उत्तर :—भाई! दुःख और मलिनता है तो आत्माका वर्तमान पर्याय–अंश। दुःख और मलिनता वस्तुमें ही है, किन्तु पर्याय-अपेक्षासे त्रैकालिक ध्रुव स्वभावकी अपेक्षासे देखने पर वह विभाव वस्तुमें नहीं है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! क्या किया जाये? अरे! सर्वज्ञ परमात्माका इस भरतक्षेत्रमें विरह पड़ा, परन्तु उनके द्वारा कही गई यह बात रह गई जो लोगोंको—बाह्य रुचि रखनेवालोंको तथा निमित्तके प्रेमियोंको—समझमें आना कठिन है।

शान्ति और आनन्दका स्थान आत्मा है; उसमें दुःख और मलिनता नहीं है—ऐसी दृष्टि तो ज्ञानीको निरंतर रहती है। सम्यग्दृष्टिकी दृष्टि ध्रुव स्वभाव पर नित्य रहती है। अहा! सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है उसकी लोगोंको खबर नहीं है; मानते हैं कि देव-शास्त्र-गुरुकी तथा नव तत्त्वोंकी श्रद्धा करो, हो गया सम्यग्दर्शन...और फिर व्रत-तप करो।

परन्तु अन्तरकी दृष्टि तथा अनुभवके बिना वह सब थोथा—निरर्थक है। ज्ञानीकी दृष्टि तो सुखधाम आत्मामें है; उसे शान्ति एवं आनन्दका परमधाम प्राप्त हो गया है। आया समझमें?

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन—६३

ता. १३-८-७८

वचनामृत—१७३

आँखमें किरकिरी नहीं समाती, उसी प्रकार विभावका अंश हो तब तक स्वभावकी पूर्णता नहीं होती। अल्प संज्वलन कषाय भी है तब तक वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता।।१७३।।

'आँखमें किरकिरी नहीं समाती, उसी प्रकार विभावका अंश हो तब तक स्वभावकी पूर्णता नहीं होती।'

क्या कहते हैं? कि—जिस प्रकार आंखमें एक राई जितना कण चला गया हो तो खटकता रहता है, उसी प्रकार आत्मामें पूजा, भक्ति अथवा व्रतादिरूप विभावके अंशकी भी रुचि हो तब तक उसे अंतरसन्मुख सम्यग्दर्शन नहीं होता। अंतरमें जिसे चिदानंद स्वरूप निज ज्ञायक प्रभुका आदर, आश्रय एवं अनुभव नहीं है और विभावके एक अंशका भी अंतरमें प्रेम तथा आश्रय है उसे सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।

प्रश्न:—यह क्या? लोग तो ऐसा कहते हैं कि निश्चयके साथ व्यवहार होना चाहिये, और साथमें व्यवहारकी क्रिया हो तभी निश्चय बराबर है?

उत्तर:—जिन्हें यह बात बराबर लगती है उन्हें व्यवहारकी रुचि तथा विभावका उत्साह है। समयसारकी १४३वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि:—जिस प्रकार केवली भगवान विश्वके ज्ञाता होनेके कारण, श्रुतज्ञानके अंगभूत व्यवहार-निश्चयनयोंके स्वरूपको ही मात्र जानते हैं, परन्तु समस्त नयपक्षके ग्रहणसे दूर हो गये हैं इसलिये किसी भी नय पक्षको ग्रहण नहीं करते; उसी प्रकार श्रुतज्ञानी साधक आत्माको, श्रुतज्ञानात्मक विकल्प उत्पन्न होते हैं तथापि परका ग्रहण करनेके प्रति उत्साह निवृत्त हो गया है इसलिये व्यवहार-निश्चयनयोंके स्वरूपको ही केवल जानता है, परन्तु अनुभवके समय समस्त नयपक्षके ग्रहणसे दूर हो गया है इसलिये, किसी भी नयपक्षका ग्रहण नहीं करता। केवली भगवान दो नयोंके साक्षी हैं। उनके नय नहीं हैं, उसका अर्थ वे साक्षी हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समयसारकी १२वीं गाथाका अर्थ लोग गलत करते हैं। वहाँ तो ऐसा कहना है कि–परम भावके देखनेवालोंको तो शुद्ध आत्माका उपदेश करनेवाला शुद्धनय जाननेयोग्य है; और जो जीव अपरमभावमें स्थित हैं वे व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं। इसका भाव नहीं समझनेसे वे कहते हैं कि—केवलीको नय नहीं है। सातवें आदि गुणस्थानमें शुद्धनय है, वहां वह जाना हुआ प्रयोजवान है। जहाँ तक शुद्धनय नहीं है वहां तक अकेला व्यवहारनय है अर्थात् चौथे, पांचवें तथा छट्ठे गुणस्थानमें तो अकेला व्यवहारनय है। ऐसा विपरीत अर्थ करते हैं। बड़ी विचित्रता! उसका ऐसा अर्थ नहीं है।

अंतरमें रागके एक कणकी भी रुचि छूट जाय, भले ही वह शुभ राग हो या व्यवहाररत्नत्रयका विकल्प हो। उसका अवलम्बन और रुचि छूटकर अंतर्अनुभवमें जाता है वहाँ—चौथे गुणस्थानमें भी—नयपक्षका राग नहीं रहता। उपयोग बाहर आने पर उसे नयपक्षके विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु उन विकल्पोंको पकड़नेका उत्साह निवृत्त हो गया होनेसे, भूमिकानुसार उठता हुआ विकल्परूप व्यवहार उसे उस काल जाना हुआ प्रयोजनवान है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टिको दया, दान, पूजा, भक्ति आदि शुभभाव आते हैं, परन्तु अंतर्दृष्टिमें उनके प्रति उत्साह निवृत्त हो गया है; अनुभवकालमें तो विकल्प है ही नहीं। उसे शुद्धनयका–दृष्टिके विषयभूत निजशुद्धात्मद्रव्य सामान्यका—आश्रय तो निरंतर होता है, परन्तु भूमिकानुसार जो शुभराग आये वह, उस काल जाना हुआ प्रयोजनवान है। अहा! बड़ी सूक्ष्म बात है!

वीतराग जिनपरमेश्वरका पंथ कोई अलौकिक वस्तु है! आंखमें किरकिरी नहीं समाती, उसी प्रकार आनन्दकन्द चैतन्यस्वरूपके अनुभवमें–सम्यगदर्शन होनेमें–रागकी किरकिरी भी सहायक नहीं होती। रागकी किरकिरी भी वहाँ खटकती है। यहाँ तो विशेष बात करना है। आँखमें किरकिरी नहीं समाती उसी प्रकार पर्यायमें विभावका अंश हो तब तक स्वभावकी पूर्णता नहीं होती। व्यवहाररत्नत्रयरूप विभावका अंश हो तब तक केवलज्ञान एवं पूर्णानंद दशा प्राप्त नहीं होती।

ज्ञानीको व्यवहार–व्रत, तपादिके शुभ परिणाम आते हैं, उन भावोंरूप स्वयं परिणमता है इसलिये 'कर्ता' भी कहा जाता है; परन्तु वे भाव 'करने योग्य हैं' ऐसी बुद्धि उसे नहीं होती। व्यवहार–शुभराग 'मेरा कर्तव्य है' ऐसी बुद्धि ज्ञानीको छूट गई है। 'मैं शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ, अबद्ध हूँ' ऐसा विकल्प भी छूट जाय तब निर्विकल्प स्वानुभूति होती है।

चिदानन्द भगवान आत्माकी जो निर्विकल्प अनुभूति—स्वभावका अनुसरण करती आनन्द दशा—होती है उसमें विकल्पका अंश भी सहायक नहीं है। विकल्पके एक भी अंशकी रुचि रहे तब तक सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूति नहीं होती। ज्ञानीको राग है अवश्य, परन्तु उसकी रुचि और उत्साह नहीं है, अंशतः भी राग रहे तब तक स्वभावकी पूर्णता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होती।' अहाहा! आठ-आठ वर्षके बालक भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, संयम लेकर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रभु! आत्मामें इतनी शक्ति है कि उसे उम्रकी आवश्यकता नहीं है। भगवान अंतरमें शाश्वत वस्तु है ना! उसे दृष्टिमें लेकर अनुभव होता है, स्वरूपमें विशेष स्थिर होने पर केवलज्ञान होता है। रागमें अंशतः भी रुचि हो तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् भी जब तक रागका—आसक्तिका अंश भी रहे तब तक पूर्णता अर्थात् केवलज्ञान नहीं होता। अहा! वीतराग प्रभुका ऐसा मार्ग है।

प्रश्न:—सम्यग्दर्शन होनेके एक समय पूर्व दुःखका अनुभव है या सुखका?

उत्तर:—अभी विकल्प है ना? विकल्प तोड़कर भीतर जाये तो आनन्दका अनुभव होता है। अरे! 'मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, मुक्त स्वरूप हूँ, चिदानंन्दमय शाश्वत अस्ति तत्त्व हूँ' ऐसा विकल्प भी दुःखरूप है।

श्री समयसारमें आता है ना, कि—व्यवहारको तो हम प्रथमसे ही गौण करते आये हैं; अब यहाँ, जीव वस्तु अबद्ध, चैतन्यघन, अखण्डानन्द, अमेय, शाश्वत है—ऐसा शुद्धनयका भी जो पक्षपात (विकल्प) करेगा वह भी शुद्धस्वरूपके स्वादको—सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं कर सकेगा। 'अहा! यह आत्मा शुद्ध है!' ऐसा विकल्प आये वह भी दुःख है। राग एव विकल्पसे भिन्न होकर सहज ज्ञायकस्वभावकी सहज ज्ञायक महिमा आये तब सम्यग्दर्शन और सुख है। अहा! सूक्ष्म बात है, परन्तु अद्भुत है! सम्यग्दृष्टिको स्वानुभव होनेके पश्चात् भी विकल्प तो आता है परन्तु उसे 'वह मेरी वस्तु है' ऐसा उत्साह निवृत हो गया है, वह मात्र उसका ज्ञाता—जाननेवाला हो गया है। अहा! यह तो वीरका मार्ग है, इसमें कायरोंका काम नहीं है।

लोगोंसे व्यवहारकी बातें कहो तो अच्छी लगती हैं, खुश होते हैं; परन्तु भाई! गुणगुणीका भेद भी राग और व्यवहार है। रागसे आत्माको धर्मका लाभ होता है? 'परमात्मप्रकाश'में सविकल्प एवं निर्विकल्प—ऐसे निश्चयनयके दो भेद लिये हैं। 'मैं एक शुद्ध पूर्णानन्दमय हूँ;—ऐसा विकल्प वह सविकल्प निश्चयनय है, सास्रव है; और अंतरमें ध्रुव ज्ञायक स्वभावका आश्रय हुआ वह निर्विकल्प निश्चयनय है, निराश्रव एवं संवर भाव है। अहा! वस्तुस्वरूप ऐसा है, वाद-विवादसे अंत नहीं आ सकता।

आत्मामें रागका अंश भी नहीं है ऐसा अनुभव होनेके पश्चात् भी पर्यायमें रागका अंश रहे तब तक वीतरागता—पूर्णता प्राप्त नहीं होती। रागका सम्पूर्ण अभाव करे तो पूर्णताकी प्राप्ति हो।

'अल्प संज्वलन कषाय भी है तब तक वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता।'

चौथी कषाय चोकड़ीका अंश भी हानिकारक है, पंचमहाव्रतादिका बुद्धिपूर्वक विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी हानिकारक है। वह कषायांश जीवको शुद्धिमें आगे नहीं बढ़ने देता। भीतर ध्यानमें लीन होनेके बाद भी जब तक अबुद्धिपूर्वक राग आये तब तक पूर्णता प्राप्त नहीं होती। अहा! वीतरागका मार्ग ऐसा है। कोई गड़बड़ी करे तो उसके घरकी। ज्ञानीको भी राग आता है, परन्तु हेयबुद्धिसे।

सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि वीतराग स्वभावसे भरपूर ज्ञायक वस्तुको विकल्पका सहारा–सहायता माने तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। उसके बाद भी विकल्पका सहारा हो तो केवलज्ञान नहीं होता। वस्तु ऐसी है। पहले ज्ञानमें ऐसा निर्णय करना पड़ेगा। यदि निर्धारमें फेर होगा तो अंतरमें नहीं पहुँच सकेगा। रागके कणका गहरे-गहरे प्रेम होगा तो चैतन्यके घरमें प्रवेश नहीं कर सकता। तब तक वीतरागता एवं केवलज्ञान नहीं होगा।

वचनामृत पुस्तककी बहुत प्रशंसा हो रही है। हिन्दी 'आत्मधर्म'में कुछ लोगोंने लिखा है कि–'पुस्तक बड़ी अच्छी है....बहुत ही सुन्दर; भाई! आग्रह छोड़कर जरा शान्तिसे 'सत्य क्या वस्तु है' उसका ज्ञान करे तो पता चल जाय कि–यह बात ही सत्य है।

प्रश्न :–व्यवहार आता तो है ना?

उत्तर :—भाई! व्यवहार आता है, परन्तु व्यवहार कथनके शब्दार्थानुसार वस्तुका स्वरूप मानना वह असत्य है। समयसारकी ७वीं गाथाकी टीकामें आचार्यदेवने निकटवर्ती शिष्यको 'आत्मा' कहा, परन्तु वह उसका अर्थ नहीं समझा; तब आचार्यदेव, निश्चयसापेक्ष व्यवहारमें आकर उसका अर्थ बतलाते हैं कि–'दर्शन, ज्ञान, चारित्रको जो प्राप्त हो वह आत्मा'; उस परसे शिष्य परमार्थ अभेद ज्ञायक आत्माको समझ ले तो उसे वह व्यवहार कथन समझनेमें निमित्त हुआ कहा जाय। अहा! दिगम्बर संतोंकी वाणी! उसके साथ अन्य किसीकी तुलना नहीं हो सकती।

अहा! सहज ज्ञायक निज तत्त्वको समझनेका, निर्णय और अनुभव करनेका अवसर मनुष्यभवमें प्राप्त हुआ। जिस प्रकार चिन्तामणिकी प्राप्ति दुर्लभ है उसी प्रकार निगोदसे निकलकर त्रस पर्यायकी प्राप्ति भी अत्यंत दुर्लभ है। एक शरीरमें अनन्त जीव, उनके ज्ञानका विकास अक्षरके अनन्तवें भाग, उनके दुःखोंका वेदन वे स्वयं करते हैं और मात्र केवली जानते हैं; एक श्वास प्रमाण कालमें अठारहवार जन्म-मरण करते हैं–इस प्रकार जीव अनन्तानन्त काल तक निगोदके भवमें जन्म-मरणके दुःख भोगते हैं। वहाँसे कोई जीव बाहर निकलकर चिन्तामणि तुल्य दुर्लभ त्रसपर्याय प्राप्त करता है। भाई! तुझे मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई उसका तेरे मन कोई मूल्य नहीं है! यह मनुष्यभव विषय–भोगके लिये नहीं है, व्यापार–धन्धा और पापके लिये नहीं है।

प्रश्न :—मनुष्य किसे कहते हैं?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—मनुते, जानाति, ज्ञायते अनेन इति वा मनुष्यः। स्व-परके विवेकपूर्वक जो जाने वह मनुष्य है, बाकी सब पशु हैं। मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति। अंतरमें पूर्णानन्द चैतन्यमूर्ती भगवान ज्ञायक है उसकी प्रतीति बिना नर भी पशु समान है। जिसका अंत–छोर नहीं है ऐसे अनन्त गुणोंसे भरपूर यह क्या वस्तु है! अहा प्रभु! ऐसी वस्तु प्राप्त करना है। जिसे रागके कणका भी प्रेम छूट जाता है उसे तो इस अपूर्व वस्तुका अनुभव होगा ही; परन्तु उसे भी जब तक अबुद्धिपूर्वकके रागका कण भी रहेगा तब तक केवलज्ञान प्रगट नहीं होगा। व्यवहार आता है, राग आता है, परन्तु वह अच्छा है, सहायक है, ऐसी जिसकी मान्यता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है, उसे निज शुद्ध आत्माकी प्राप्ति नहीं होती।

*

वचनामृत–१७४

'मैं हूँ चैतन्य।' जिसे घर नहीं मिला है ऐसे मनुष्यको बाहर खड़े खड़े बाहरकी वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है; परन्तु जिसे घर मिल गया है उसे घरमें रहते हुए बाहरकी वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है; उसी प्रकार जिसे चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है उसे उपयोग बाहर जाय तब भी शान्ति रहती है।।१७४।।

''मैं हूँ चैतन्य।' जिसे घर नहीं मिला है ऐसे मनुष्यको बाहर खड़े-खड़े बाहरकी वस्तुएँ धमाल देखने पर अशान्ति रहती है''

यह तो मक्खन है—अकेला तत्त्वका। 'मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ' ऐसा जहाँ अपना निजघर मिला, अपना त्रैकालिक ध्रुव निर्मल आवास प्राप्त हुआ उसे अंतरसे सदा शान्ति रहती है। परन्तु जिसे अपना ज्ञायक घर, अपना आनन्द स्थान नहीं मिला है ऐसे जीवको अंतरमें निरंतर अशान्ति और दुःख बना रहता है। जैसे किसी मनुष्यको रहनेका घर नहीं मिला हो तो उसे बाहर रास्ते पर ठण्ड-गरमीमें बाहरकी वस्तुएँ, धमाल आदि देखनेसे अशान्ति लगती है; परन्तु जिसे रहनेके लिये अच्छा पक्का मकान मिल गया है उसे घरमें रहते हुए खिड़की छज्जे या दरवाजेमेंसे बाहरकी वस्तुएँ, धमाल आदि देखने पर भी शान्ति रहती है; उसी प्रकार जिसे निज घर जो चैतन्य ज्ञायक वस्तु, आनन्दामृतसे भरपूर चैतन्यनिधान, मिल गया है उसे चैतन्य घरमें रहते हुए बाहरकी शुभाशुभ भावरूप धमाल देखने पर शान्ति रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होलीके दिन घरसे बाहर निकले तो लोग रंग डालते हैं, परन्तु बाहर ही नहीं निकले तो कौन रंग डालेगा? घरमें रहे, द्वार बन्द करके बैठे तो फिर कोई चिन्ता नहीं रहती; उसी प्रकार जो निज ज्ञायकघरमें रहता हो उसे बाहरी वस्तुएँ, धमाल आदि देखने पर भीतर शान्ति रहती है। अरे रे! जीवने अपना घर—आनन्दका धाम कभी देखा नहीं है। श्री पं. दौलतरामजीने कहा है ना।—

हम तो कबहुं न निज घर आये....हम तो०
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये....हम तो०

परपद निजपद मानि मगन ह्वै, पर परनति लपटाये;
शुद्धबुद्ध सुखकन्द मनोहर, चैतन्य भाव न भाये...हम तो०

जिसे निज घर मिल गया है, अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि प्रगट हुई है, उसे तो उपयोग जब बाहर परज्ञेयोंमें जाता है तब भी अंतरमें सदा शान्ति वर्तती है। श्रीमद् राजचन्द्रजीने अन्तमें कहा है:—

सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिनरात्र रहे तद्ध्यान मही;
प्रशान्ति अनंत सुधामय जे, प्रणमुं पद ते वर ते जयते।

प्रशांत स्वभावमेंसे अनंत अमृतमय प्रशान्ति प्रगट हुई; उस प्रशान्त स्वभाव भगवानको, प्रशान्तरूप परिणतिको, मैं नमन करता हूँ। वह पद वर अर्थात् उत्कृष्ट है, उसकी जगतमें जय हुई;—ड़ंके बजाये अंतरसे त्रिलोकी नाथके....उन चैतन्यस्वरूप भगवान केवलीकी पर्यायसे भी अनन्तगुना सामर्थ्य मेरा है—ऐसा लोग नहीं जानते। घरमें क्या भरा है उसकी खबर नहीं है। वह यहाँ कहते हैं—अनन्त समृद्धिसे भरपूर निज द्रव्यस्वभावमें जिसकी दृष्टि पड़ी है उसे निज चैतन्यघरमें रहते हुए बाहरकी सब उथलपुथल ज्ञात हो तब भी शान्ति रहती है। स्वयं ज्ञाता-दृष्टा रहा, वहाँ बाह्यमें विकल्पोंकी धमाल हो तथापि वह तो उसका मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहता है; विकल्पका किंचित् खेद है, परन्तु स्वयं मात्र ज्ञाता-द्रष्टा रहता है इसलिये उसे निरंतर शान्ति रहती है।

वणिक व्यापार-धन्धेसे निवृत्त नहीं होते। भाई! कहावत है ना—दाने दाने पर लिखा है खानेवालेका नाम। बाह्यमें लक्ष्मी आदि जो—जितना आना होगा वह-उतना ही आयगा; परन्तु श्रद्धा कहाँ है? जिन्होंने चैतन्यघर नहीं देखा है वे बाहर रागमें स्थित रहकर विकारी होते हैं।

'परन्तु जिसे घर मिल गया है उसे घरमें रहते हुए बाहरकी वस्तुएँ धमाल देखने पर शान्ति रहती है; उसी प्रकार जिसे चैतन्यघर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसे उपयोग बाहर जाय तब भी शान्ति रहती है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसे सुखामृतके पिण्डस्वरूप निज शाश्वत चैतन्य वस्तु प्राप्त हो गई है उसे बाहरके चाहे जैसे प्रसंगोंमें भी अंतरमें शान्ति रहती है। प्रभु! बिजली गिरनेसे पर्वतके दो टुकडे हो जायँ तो वे साँधनेसे नहीं सँधते; उसी प्रकार भगवान आत्मा और राग–दोके बीच प्रज्ञाछैनी पटकनेसे जो दो टुकड़े हुए वे फिर कभी एक नहीं होते। अहा! ऐसा मार्ग है।

यह तो अभी सम्यग्दर्शन स्वरूप प्रथम भूमिकाका कोई अलौकिक मार्ग है। चारित्र तो उससे भी कोई अलौकिक है भाई! चारित्रका अर्थ है चरना। पशु चरते हैं ना? तो घास हो तब चरेंगे? पथ्थरोंमें क्या चरेंगे? उसी प्रकार भगवान ज्ञायक आत्मा दृष्टि और अनुभवमें न आये तो रमना कहाँ? चरना कहाँ? जिसे अंतरकी दृष्टि प्राप्त हुई है उसका उपयोग विकल्पमें–शुभरागमें आये तथापि अंतरमें शान्ति रहती है। भगवान आत्मा उपशम रसका सागर है। 'उपशम रस बरसेरे प्रभु तुम्हारे नयनोंमें....' उपशमकन्द भगवानका अंतरमें निर्णय हुआ वहाँ शान्ति शान्ति शान्ति वर्तती है! धर्मात्माको शरीरकी क्रिया आदि बाहरकी धमाल दिखाई देती है परन्तु अंतरमें तो वे ज्ञातादृष्टा रहते हैं। धर्म ऐसी सूक्ष्म वस्तु है भाई! एक क्षण भी सम्यग्दर्शन हुआ तो भवका अंत आ गया। ऐसी वह वस्तु है। आया कुछ समझमें?...

भाद्रकृष्णा २, सं. २०२०

अरे! यह जीव (बहिन श्री चम्पाबेन) तो कोई अलौकिक है! अधिक नहीं बोलतीं इसलिये कुछ है नहीं–ऐसा नहीं है। यह तो गम्भीर द्रव्य है।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६४

ता. १४-८-७८

वचनामृत–१७५

साधक जीवको अपने अनेक गुणोंकी पर्यायें निर्मल होती हैं, खिलती हैं। जिस प्रकार नन्दनवनमें अनेक वृक्षोंके विविध प्रकारके पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार साधक आत्माको चैतन्यरूपी नन्दनवनमें अनेक गुणोंकी विविध प्रकारकी पर्यायें खिल उठती हैं।।१७५।।

'साधक जीवको अपने अनेक गुणोंकी पर्यायें निर्मल होती हैं, खिलती हैं।'

क्या कहते हैं? कि–चौथेसे बारहवें गुणस्थान तक साधक कहा जाता है। चौथे गुणस्थानमें वर्तते जीवको भी—अपने त्रैकालिक सहज ज्ञायकस्वभावका, उसकी दृष्टिपूर्वक अनुभव हुआ होनेसे—साधक कहा जाता है। निमित्तका, शुभाशुभ भावस्वरूप संकल्प विकल्पोंका एक समयकी पर्यायका तथा गुण-भेदका लक्ष छोडकर, अंतरमें अभेद एक ज्ञायकस्वरूपकी महिमा प्रगट करके उसका श्रद्धा सहित अनुभव करना सो सम्यक्त्व है।

'अप्पा सो परमप्पा'—वह परमात्म स्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा 'घट घट अंतर जिन बसे'–अंतरमें जिन स्वरूपसे विराजमान है। उसे स्वभाव कहो, शक्ति कहो, सामर्थ्य कहो अथवा व्यक्त–प्रगट कहो; पर्यायकी अपेक्षासे स्वभाव व्यक्त करना है, परन्तु वस्तु स्वभावकी अपेक्षासे प्रभु चैतन्यज्योति सदा प्रगट है। आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय प्रभुता तथा अतीन्द्रिय कर्त्ता-कर्म-करणादि शक्तियोंका पिण्ड है; उसकी वर्तमान पर्यायमें प्रतीति एवं ज्ञान वह साधक दशा है। साधक किसे कहते हैं? सम्यग्दर्शन होने पर साधक भाव प्रारम्भ हो जाता है। पूर्णानन्द ज्ञायककी प्रतीति होनेसे, निर्विकल्प दृष्टि होनेसे, उसकी प्रतीति पर्यायमें आती है। उस प्रतीति स्वरूप वर्तमान पर्यायमें त्रैकालिक वस्तु नहीं आती। ज्ञानकी एक समयकी जो पर्याय है उसमें पूर्णानन्दके नाथका ज्ञान होता है, परन्तु उस पर्यायमें वह पूर्णानन्द स्वरूप प्रभु आता नहीं है।

अहा! जब अंतरमें सम्यग्दर्शन हुआ तब साधक जीवको अपने अनेक गुणोंकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायें यथासंभव निर्मल होती हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजीने कहा है:—'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व।' वही बात पं. टोडरमलजीने रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें इस प्रकार कही है:—'चोथे गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं, तेरहवें गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादिक गुण सर्वथा प्रगट होते हैं!' अंतरमें आत्माकी दृष्टि और अनुभव होने पर अनन्त गुणोंका यथासंभव निर्मल अंश व्यक्त परिणमनमें आ जाता है। अहाहा! आया कुछ समझमें? पहले आत्मा क्या वस्तु है उसका सच्चा ज्ञान तो करो! वह किसी क्रियाकाण्ड या शुभभावसे प्राप्त हो जाय ऐसी वस्तु नहीं है। वस्तु रूपसे आत्मा जिन स्वरूप है, अकषाय वीतराग स्वभावस्वरूप है। उसे दृष्टिमें लेनेसे अनंत गुणोंकी पर्याय यथासंभव निर्मल होती है; क्योंकि द्रव्यदृष्टि होनेसे द्रव्यमें विद्यमान जितनी शक्तियाँ हैं उन सबका यथासंभव निर्मल अंश प्रगट वेदनमें आता है।

अहा! यह पुस्तक! 'आत्मधर्म'के सब ग्राहकोंको भेंट दी गई है। यह बेनके वचनामृत हैं। अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमेंसे यह वाणी आयी है। बात बड़ी सूक्ष्म है भाई! साधक जीवके अपने जो अनन्त गुण हैं उनकी पर्याय निर्मल होती है, खिलती है। जिस प्रकार सूर्यके निमित्तसे कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भगवान आत्माकी अंतर्मुख दृष्टि हुई वहाँ सर्व गुण अंशतः विकसित हो जाते हैं। अहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! अनन्तकालमें कभी भी ऐसी अंतरकी साधना नहीं की है। छहढालामें आता है ना!—

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

इसका क्या अर्थ हुआ? कि—अनंतबार मुनिव्रत धारण किये, अट्ठाईस मूलगुण तथा पंच महाव्रतोंका पालन किया, किन्तु सुखका एक अंश भी प्राप्त नहीं हुआ। अरे! व्रतादिके परिणाम तो शुभ राग हैं, दुःख हैं। शुभाशुभ राग रहित ज्ञानानन्दस्वभावी निज त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि और अनुभव—सम्यग्दर्शन होने पर सच्चा अतीन्द्रिय सुख प्रगट होता है। अंतरमें निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर मात्र सुख ही नहीं परंतु आत्मवस्तुकी जितनी त्रैकालिक शक्तियां हैं—शक्ति कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, सत्‌का सत्त्व कहो—उन सबकी यथासंभव व्यक्त निर्मल पर्याय प्रगट होती है। सर्व गुण अपनी निर्मल पर्यायमें अंशतः खिल उठते हैं। उसके लिये दृष्टांत देते हैं:—

'जिस प्रकार नन्दनवनमें अनेक वृक्षोंके विविध प्रकारके पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार साधक आत्माको चैतन्यरूपी नन्दनवनमें अनेक गुणोंकी विविध प्रकारकी पर्यायें खिल उठती हैं।

मेरु पर्वतमें नन्दनवन है; वहाँ अनेक प्रकारके छोटे बड़े वृक्ष होते हैं; वे अनेक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकारके पत्र, फूल और फलोंसे भर जाते हैं; उसी प्रकार स्वभाव दृष्टिवंत साधक जीवको चैतन्यरूपी नन्दनवनमें वृक्ष अर्थात् अनंतगुण है और प्रत्येक गुणकी पर्यायमें आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, ईश्वरता आदि अनन्त फल फलते हैं। चैतन्यरूपी नन्दन वनमें अनन्त गुणोंकी विविध प्रकारकी निर्मल पर्यायें, अंतर्स्वभावकी दृष्टि और अनुभव होने पर, खिल उटती हैं। अहाहा! इसका नाम धर्म, इसका नाम साधक दशा।

प्रश्न :—यह कला आप हमें सिखाईये ना?

उत्तर :—वही बात तो चल रही है; कला तो अपनेको स्वयं सीखना है या सीखानेवालेको? प्रभु! तेरी प्रभुता तुझमें पूर्ण भरी पड़ी है; तेरी प्रभुतामें पामरताका अंश भी नहीं है। आता है ना!—

प्रभु मेरे! तू सब बाते पूरा॥ प्रभु मेरे०
परकी आश कहा करे प्रीतम, तू किस बात अधूरा? प्रभु मेरे.....

तो वह प्रभुता निमित्तके आश्रयसे प्रगट हो ऐसी पामरता वस्तुस्वभावमें है ही नहीं; क्योंकि प्रत्येक वस्तुमें एक अकार्य-कारणत्व नामकी शक्ति है। इसलिये यदि दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभरागरूप कारण हो तो अंतरमें निर्मल वीतराग पर्यायरूप कार्य होगा ऐसा वस्तुस्वरूपमें है ही नहीं। अकार्यकारणत्वशक्ति आत्मामें होनेसे उसके सर्व कार्य परसे निरपेक्ष हैं। ज्ञानकी पर्याय जो खिलती है वह परके लक्षसे, सुन-सुनकर खिलती है—ऐसा नहीं है। परन्तु अंतरमें पूर्ण ज्ञानानन्दस्वभावी निजज्ञायक आत्माकी जो दृष्टि हुई और उसका जो आश्रय लिया उससे निर्मल पर्याय खिल उठती है। आश्रयका अर्थ है कि—जो पर्याय निमित्त, राग एवं वर्तमान पर्यायकी ओर झुकती थी वह निज त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी ओर झुकी, उससे कहीं पर्याय थोड़े ही ध्रुवमें प्रविष्ट हो जाती है? 'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि· जीवो'—पर्यायमें त्रैकालिक भूतार्थ ज्ञायक स्वभावका जो लक्ष किया वह, उसका आश्रय लिया ऐसा कहा जाता है।

अहाहा! ज्ञानादि अनंतगुणोंका अभेद आधार ऐसा जो निज ज्ञायक द्रव्य, उसके आश्रयसे प्रगट हुई शुद्ध पर्याय भी अकार्यकारणभावरूप परिणमी है क्योंकि वह शुद्धि व्यवहारका कार्य भी नहीं है और कारण भी नहीं है। व्यवहार कारण और निश्चय कार्य अर्थात् राग कारण और वीतरागता कार्य—ऐसा वस्तुके स्वरूपमें ही नहीं है। स्वद्रव्यकी दृष्टि होने पर सम्यग्ज्ञानकी जो पर्याय हुई उसमें, बाह्य ज्ञातृत्व, कर्मका क्षयोपशम, गुरुके निकट श्रवण आदि कारण हैं—ऐसा है ही नहीं। सम्यग्ज्ञानकी वह पर्याय स्वद्रव्य स्वभावके आश्रयसे परके अकार्यकारणरूप परिणमी है। आया कुछ समझमें?

प्रश्न :—आपने समझाया तब हमारी समझमें आया ना?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—यह तो निमित्तका कथन है भाई! अहाहा! प्रत्येक प्राणीका आत्मा स्वयंभू चैतन्यरत्नाकर है। मध्यलोकमें अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र है; वह असंख्य योजन चौड़ा है। जंबूद्वीपसे लेकर अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र तकके असंख्य द्वीप-समुद्रोंकी चौड़ाईका जोड़ करनेसे अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रकी चौड़ाई तीन लाख योजन अधिक है। उस महा समुद्रके तलमें रेतके बदले अकेले रत्न पड़े हैं। उसी प्रकार इस चैतन्य महासागरके तलमें ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुणरत्न भरे पड़े हैं। उस चैतन्यरत्नाकरका आश्रय करनेवाली दृष्टि निर्विकल्प होती है। विकल्पका सामर्थ्य नहीं है कि चैतन्यतलमें पहुँच सके। यहाँ तो चैतन्य नन्दनवनकी बात चल रही है; उसमें अनन्त गुणरूपी वृक्ष ज्ञानानन्दकी निर्मल पर्यायरूप पत्र, पुष्प एवं फलोंसे खिल उठता है। पर्यायमें सर्व गुण, स्वभावकी दृष्टि तथा स्थिरता होने पर, यथासम्भव खिल उठते हैं। यह तो अभी साधककी बात है। अरेरे! वस्तुस्वरूपकी प्रतीति बिना लोग कुछसे कुछ मान बैठे हैं। यहां तो कहते हैं कि अंतर्स्वभावकी दृष्टि होने पर सर्वगुणोंकी विविध प्रकारकी पर्यायें खिल उठती हैं।

*

वचनामृत–१७६

मुक्त दशा परमानन्दका मन्दिर है। उस मन्दिरमें निवास करनेवाले मुक्त आत्माको असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त आनन्द परिणमित होता है। इस मोक्ष रूप परमानन्द मन्दिरका द्वार साम्यभाव है। ज्ञायकभावरूप परिणमित होकर विशेष स्थिरता होनेसे साम्यभाव प्रगट होता है॥१७६॥

ज्येष्ठ शुक्ला एकमसे दोपहरको यह (वचनामृत पर प्रवचन) प्रारम्भ किया है; उसमें १७५ बोल पूर्ण हुए। यों तो ४३२ बोल हैं।

'मुक्त दशा परमानन्दका मन्दिर है। उस मन्दिरमें निवास करनेवाले मुक्त आत्माको असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त आनन्द परिणमित होता है।'

सिद्ध दशा वह परमानन्दका मन्दिर है। अनंत गुणस्वरूप भगवान आत्मामें दृष्टि फैलाकर उसमें पूर्ण स्थिरता द्वारा प्राप्त की हुई परमात्मदशामें निवास करनेवाले मुक्त आत्माको असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त आनंद परिणमता है। सर्वज्ञके मतके सिवा अन्य किसी मतमें 'असंख्य प्रदेश'की बात नहीं है। अन्यमत भले 'आत्मा....आत्मा...—ऐसी बातें करे किन्तु सर्वज्ञदेवके सिवा जीवके असंख्य प्रदेश और उनमें अपार–अनन्त गुणादि असीम अनन्तताकी बात उनमें नहीं है। असंख्य प्रदेश तथा गुणकी अनन्तताका स्वरूप तो एक मात्र सर्वज्ञ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवानने स्वयं जानकर कहा है और वह स्वरूप सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान आत्मामें है।

प्रश्न :—भगवानने कहा इसलिये ऐसा है?

उत्तर :—भगवानने कहा इसलिये ऐसा है—ऐसा नहीं है, किन्तु 'है' इसलिये ऐसा कहा है। 'मिसरी' शब्दमें मिसरी नामक वस्तु नहीं है परन्तु 'मिसरी' शब्द मिसरी नामक वस्तुको बतलाता है। 'मिसरी' शब्दमें 'मिसरी' पदार्थका और 'मिसरी' पदार्थमें 'मिसरी' शब्दका अभाव है। इस प्रकार वाणी पदार्थको बतलाती है। वहाँ वाणीमें चैतन्य पदार्थका और चैतन्य पदार्थमें वाणीका अभाव है। अहाहा! त्रिलोकीनाथ सीमंधर भगवान महाविदेहक्षेत्रमें साक्षात् विराजते हैं, वहाँ एकावतारी इन्द्र वाणी श्रवण करने जाते हैं। प्रभु! कैसी होगी वह वाणी? दया पालो, व्रतोंका आचरण करो आदि बातें तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भी करते हैं। सच पूछो तो पर जीवकी दया तो आत्मा तीनकालमें नहीं पाल सकता। परकी दयाका भाव आये वह अपनी हिंसा है। श्री 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय'में आता है कि :—रागादिनामुत्पत्तिः एव हिंसा...' दयाका भाव राग है और वह अपने आत्माकी हिंसा है। अहा! वीतरागका मार्ग कोई अलग है! तथा एक बात ऐसी है कि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायको चूमता है क़िन्तु पर द्रव्य या परके गुणपर्यायोंको नहीं चूमता। आत्माने अपने गुण-पर्यायोंके सिवा कर्म या नोकर्मका कभी स्पर्श नहीं किया है; और ज्ञानावरणीयादि कर्म तथा शरीरादि नोकर्मरूप जड़ पुद्गल पर्याय आत्माको कभी स्पर्श नहीं करती। अहाहा! ऐसा वीतराग जिनेन्द्र भगवानका बतलाया हुआ आत्माका मार्ग है यह मार्ग श्रवण करनेके लिये इन्द्र भी भगवानकी सभामें आते हैं। वह क्या—दिव्यध्वनि कैसी होगी भाई! भगवान कहते हैं कि मुक्त आत्माको असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द परिणमित होता है।

'इस मोक्षरूप परमानन्द मन्दिरका द्वार साम्यभाव है।'

प्रवचनसारकी ७वीं गाथामें कहा है कि—चारित्र, धर्म तथा साम्यभाव एकार्थ हैं। परमानन्दका धाम जो मोक्ष उसका द्वार कौन है? परमानन्दधामका द्वार चारित्र, वीतराग धर्म, साम्यभाव है। प्रवचनसारमें कहा है कि—वीतराग चारित्र वह उपादेय है; बीचमें पंचमहाव्रतादि व्यवहारचारित्रके रागका कण आता है, परन्तु वह चारित्र नहीं है, उपादेय नहीं है, हेय है। मोक्षरूपी मन्दिरके भीतर प्रवेश करनेका द्वार कौनसा?—तो कहते हैं कि—वीतरागभाव, साम्यभाव। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने 'प्रवचनसार' शास्त्र प्रारम्भ करते ही कहा है ना, कि—मैं साम्यभावको अंगीकार करता हूँ। किसलिये? निर्वाणकी सम्प्राप्तिके लिये।

अपने ज्ञायकस्वरूपकी सम्यक् प्रतीतिपूर्वक जो वीतरागता उत्पन्न होती है वह साम्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। अहा! अर्थात् चारित्र क्या है? चारित्र तो अंतरमें आनन्दामृतका भोजन करनेवाला है। उस चारित्रको यहाँ बेनने साम्यभाव कहा है। स्वरूपानंदमें चरना, रमना, स्थिर होना सो साम्यभाव है। वह मोक्ष स्वरूप परमानन्द मन्दिरका भव्य द्वार है।

अहा! वचनामृतकी यह बातें! अब हिन्दीमें भी 'वचनामृत' दस हजार छपकर आ गये हैं।

मोक्ष अर्थात् क्या? परमानन्दकी पूर्ण प्राप्ति वह मोक्ष। आत्माके ज्ञानान्दस्वभावकी पूर्ण व्यक्तताका लाभ सो मोक्ष। वह परमानन्दका मन्दिर है। उसमें प्रविष्ट होनेका द्वार कौनसा?—साम्यभाव। रागका एक सूक्ष्म कण भी उसमें प्रवेश कर सके ऐसा नहीं है। आत्मा स्वभावसे जिन स्वरूपी साम्यभावरूपी है। 'घटघट अंतर जिन बसे घट घट अंतर जैन'—आत्मा अंतरमें त्रिकाल जिनस्वरूपी अर्थात् साम्यभाव स्वरूप है। उस त्रैकालिक साम्यभावस्वरूप वीतराग स्वभावका आश्रय लेकर शक्तिमेंसे जो वीतराग भावरूपी व्यक्तता हुई वह परमानन्दरूपी मोक्षका द्वार है।

प्रश्न :—उसमें निमित्त तो कोई होगा ना?

उत्तर :—भाई! निमित्त है, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि निमित्त परमें कुछ कार्य करता है। निमित्त उसे कहा जाता है जो नैमित्तिक कार्यमें अनुकूल होने पर भी उसमें कुछ न करे। यह चर्चा २०१३में मधुवनमें खूब चली थी। वहाँ कहा था कि—जीवमें जो विकृत दशा होती है उसमें जीवके अपने ही छह कारक हैं, परके या कर्मके कारक नहीं हैं–विकारमें कर्म निमित्त है, परन्तु निश्चयसे वह विकार कर्मके (निमित्तके) कारकोंकी अपेक्षा रहित निरपेक्ष है। पंचास्तिकायमें ६२वीं गाथाकी टीकामें कहा है: निश्चयनयसे अभिन्नकारक होनेसे वास्तवमें जीव स्वयमेव अपने षट्कारकरूप वर्तता होनेसे अन्य कारककी अपेक्षा नहीं रखता और कर्म भी स्वयमेव अपने षट्कारकरूप वर्तता होनेसे अन्य कारककी अपेक्षा नहीं रखता। जहाँ शुभाशुभ विकार-अवस्थामें भी कर्म या बाह्य पदार्थकी अपेक्षा नहीं है तो मोक्षमार्गकी निर्मल पर्याय परकी अपेक्षा रखती है–यह बात ही कहाँ रही? वास्तवमें तो, मोक्ष या मोक्षमार्गकी पर्यायरूपसे जीव स्वयं अपने षट्कारकोंसे परिणमता है। उस निर्मल पर्यायका कर्ता जीव स्वयं, निर्मल पर्यायरूप कर्म भी जीव स्वयं, निर्मल पर्यायका कारण, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण भी जीव स्वयं ही है, जड़ कर्म तथा बाह्य निमित्त आदि अन्य कोई नहीं।

'साम्यभावसे मोक्ष होता है' यह भी अपेक्षित कथन है। अपूर्ण पर्यायको पूर्ण पर्यायका कारण कहना वह भी व्यवहार कथन है। वास्तवमें तो जीव द्रव्य स्वयं अपने षट्कारकरूप परिणमित होकर पूर्ण मोक्ष पर्यायको प्राप्त करता है। शुभरागसे–व्यवहारसे तथा परनिमित्तसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है—मात्र यह निषेध करनेके लिये यहाँ सम्यग्दर्शन सहित साम्यभावको मोक्षका द्वार कहा है। निश्चयसे तो भगवान ज्ञायक आत्मा स्वयं मोक्ष पर्यायरूपसे–पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्दादि पूर्णदशारूपसे–अपने षट्कारकसे परिणमता है। अहाहा! भाई! वस्तुका ऐसा स्वरूप है—ऐसी जब अंतर प्रतीति आती है तब निर्विकल्प आत्मदर्शन–सम्यग्दर्शन होता है।

लोगोंको वस्तुका स्वरूप समझमें नहीं आता इसलिये पुकार करते हैं कि—यह एकान्त है, एकान्त है। किन्तु भाई! निश्चयनयका विषय सम्यक् एकान्त है ना? प्रमाण तो निश्चय और व्यवहार—उन दोनों विषयोंको एकसाथ जानता है। उसमें श्रुतप्रमाणके अवयवभूत ऐसा निश्चयनय वह सम्यक् एकान्त है। श्रीमद्‌ने भी कहा है:—'अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निज पदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है।' अपनेसे अपनी परिणति होती है वह सम्यक् एकान्त है।

यहां बेन कहती हैं:–मोक्षरूप परमानन्द मन्दिरका द्वार साम्यभाव है। चारित्रसे मुक्ति होती है—यह सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान मुक्तिका परम्पराकारण है और वीतराग चारित्र—साम्यभाव वह मुक्तिका साक्षात् कारण है। पुण्यभावरूप बाह्य व्यवहार चारित्र मोक्षका कारण नहीं है यह बतलानेके लिये साम्यभावको उसका द्वार कहा है।

अहाहा! मोक्षरूप परमानन्द मन्दिरका द्वार साम्यभाव है। प्रवचनसारकी सातवीं गाथामें कहा है:—

चारित्र है वह धर्म है, जो धर्म है वह साम्य है;
अरु साम्य जीवका मोहक्षोभविहीन निज परिणाम है।

शुद्धात्माकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वसे विरूद्ध भाव (अर्थात् मिथ्यात्व) वह मोह, और निर्विकार निश्चल चैतन्य परिणतिरूप चारित्रसे विरुद्धभाव (अर्थात् अस्थिरता) वह क्षोभ। मोह तथा क्षोभ रहित परिणाम, साम्य, धर्म तथा चारित्र यह सब एकार्थवाचक हैं। वह वीतराग साम्यभाव मोक्षमन्दिरका भव्य द्वार है। अहा! बहुत सूक्ष्म बात है भाई! यहाँ तो थोडा-बहुत पढ़कर मान बैठते हैं कि 'हम तो समझ गये'! अरे! भाई! वीतराग प्रभुका यह मार्ग तो अलौकिक है।

प्रश्न:—परन्तु इसकी क्रिया क्या?

उत्तर:—यह उसकी क्रियाकी ही बात चलती है। निर्मल वीतरागी पर्याय ही उसकी क्रिया है। उस साम्यभावरूप वीतरागी क्रियाके कर्ता, कर्म, करणादि सब निज आत्मा ही है। शुभरागसे या निमित्तसे वीतरागी साम्यभावरूप क्रिया नहीं होती, क्योंकि निज कारकानुसार होनेरूप जीवकी क्रियाशक्ति उसके अपनेमें ही है।

प्रश्न:—उसके लिए ध्यान किसका करना?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर:—यह बात बेन अब १७८वें बोलमें कहेंगी कि—पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है कि इन शरीर, वाणी आदि सबसे मैं भिन्न हूँ; अंतरमें शुभाशुभ विभाव हों वह मैं नहीं हूँ, उच्चसे उच्च शुभभाव हों वह मैं नहीं हूँ; सबसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ। सच्चे ज्ञानके बिना ध्यान सच्चा होता ही नहीं है। वस्तुका स्वरूप क्या है—इसप्रकार पहले सच्चा ज्ञान होना चाहिये। सम्यग्ज्ञान तो बादमें, पहले धारणाज्ञान सच्चा होना चाहिये। यदि धारणा ज्ञानमें ही विपरीतता हो तो उसे स्वरूपमें एकाग्रतारूप सच्चा ध्यान कभी हो ही नहीं सकता।

चैतन्य ज्ञायक प्रभु स्वभावसे जिन स्वरूप है तो पर्यायमें जिनस्वरूप साम्यदशा प्रगट होती है। वह वीतरागी साम्यपर्याय मोक्षका द्वार है। व्यवहार रत्नत्रय—महाव्रतादिका शुभ राग—मोक्षका द्वार नहीं है; वह तो बंधमें प्रविष्ट होनेका द्वार है। समझमें आया कुछ? मार्ग सूक्ष्म है भाई! अहाहा! यह तो अलौकिक बातें हैं। साम्य किसे कहते हैं–वह अब कहते हैं।

'ज्ञायकभावरूप परिणमित होकर विशेष स्थिरता होनेसे साम्यभाव प्रगट होता है।'

भगवान आत्मा ज्ञायक–ज्ञाता, ज्ञाता मात्र ज्ञाता तत्त्व है। पारिणामिकभाव न कहकर उसे ज्ञायक भाव कहा, क्योंकि पारिणामिक भाव तो परमाणु आदि दूसरे द्रव्योंमें भी होता है। आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप त्रैकालिक पारिणामिकभाव है उसे त्रैकालिक ज्ञायकभावरूपी परिणमित होकर अर्थात् 'मैं मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसे श्रद्धा-ज्ञानरूपसे परिणमित होकर ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे विशेष स्थिरता होनेसे जो अकषाय साम्यभाव प्रगट होता है वह मोक्षका द्वार है।

*

> इन बेनकी तो लाईन ही अलग है। उनका वैराग्य, जातिस्मरणज्ञान उनकी दशा सब अलग ही है। उन्हें कहां किसीकी पड़ी है! कोई वंदन करे या न करे, वे वहां किसीके देखतीं हैं। —*पू. गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६५

ता. १५–८–७८

वचनामृत–१७७

चैतन्यकी स्वानुभूतिरूप खिले हुए नन्दनवनमें साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है। बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता।।१७७।।

'चैतन्यकी स्वानुभूतिरूप खिले हुए नन्दनवनमें साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है।'

क्या कहते हैं? यह आत्मा अतीन्द्रिय पूर्ण ज्ञान, शान्ति एवं आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव कर ले। दया, दान, व्रत, तप और भक्ति आदिके विकल्प आयें परंतु वे कोई धर्म नहीं हैं वे मोक्षका परम्परा कारण भी नहीं है। 'मैं निर्विकल्प सहज ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ' ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन–ऐसा उग्र स्वानुभव मोक्षका साक्षात् कारण है, और सम्यग्दर्शन–ज्ञान पूर्वक मन्द शुद्धि वह मोक्षका परम्परा-कारण है। मन्द शुद्धिके साथ जो शुभराग रूप कचास है उसे आरोपसे परम्परा–कारण कहा जाता है। अंतर-स्थिरतारूप शुद्धिमें जो वृद्धि होगी वह व्रतादिके विकल्पका अभाव करके होगी, इसलिये सम्यग्दृष्टिके व्रतादिस्वरूप शुभरागको मोक्षका परम्पराकारण कहा है, मिथ्यादृष्टिके व्रतादि स्वरूप रागको नहीं।

अरे प्रभु! तूने सच्चिदानन्दस्वरूप निज ज्ञायकतत्त्वकी दृष्टि कभी नहीं की, उसका आश्रय नहीं लिया और 'पुण्यभावसे मेरा कल्याण होगा' इस प्रकार उसका आश्रय करके मिथ्यात्वभावका सेवन किया। मिथ्यात्वभावके कारण चौरासीलाख योनिमें अनन्तबार अवतार धारण किये। अहा! नरकके वे भयंकर दुःख! भगवान ऐसा कहते हैं कि–नरक गतिके एक क्षणके दुःख ऐसे हैं कि करोंड़भवोंमें करोड़ जिह्वाओंसे नहीं कहे जा सकते; उन्हें तो जीव स्वयं भोगता है और केवली उन्हें जानते हैं। नरकके दुःखोंका वर्णन 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार; (पं. सदासुखदासजी) तथा छहढालामें किया गया है। भाई! तूने उत्कृष्ट तैतीस सागर और जघन्य दस हजार वर्षकी तथा एक-एक समयकी वृद्धि होनेसे बीचकी अनंत प्रकारकी स्थितिसे नरकमें अनन्तबार जन्म लिया। उस दुःखका भयानक वेदन! अरे! उसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विचार तूने कभी नहीं किया। अब तो उन भयंकर दुःखोंका अंत करनेके लिये, एक बार सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति प्रगट कर।

साधक जीवकी दृष्टि ज्ञायक स्वभावकी ओर हुई होनेसे, उसकी रुचि निमित्त, राग तथा पर्यायके ऊपरसे हट गई है; उसे आनन्द निधान ज्ञायक भाव अनुभवमें आया है। उस स्वानुभूति स्वरूप खिले हुए नन्दनवनमें ज्ञानी साधक आत्मा आनन्दमय केलि करता है, विहार करता है। समयसारकी ४१२वीं गाथामें साधक जीवको सम्बोधन करते हुए कहा है कि:—

तुं स्थाप निजने मोक्षपंथे, ध्या अनुभव तेहने
तेमां ज नित्य विहार कर, नहि विहर परद्रव्यो विषे।४१२।

हे भव्य! तू मोक्षमार्गमें ही निरंतर विहार कर; अन्य द्रव्योंमें विहार न कर। प्रभु! तेरी वस्तु अंतरमें आनन्दका धाम है; तेरी प्रभुता अपार है। उसके सन्मुख होकर स्वानुभूति करना वह धर्मका प्रथम प्रारम्भ है। उसके बिना दान, भक्ति, पूजादि शुभभाव दुःखरूप हैं। ज्ञान-आनन्दादि अनंत पवित्र स्वभावोंसे भरपूर ऐसे निज ज्ञायकके सन्मुख होनेसे उसका अनुभव होता है। वह स्वानुभव होने पर जीव सम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्ज्ञानी कहलाता है; बाकी सब थोथा है—निःसार है।

प्रश्न :—स्वसन्मुखता किस प्रकार करना?

उत्तर :—यह बाह्य लक्ष करता है या नहीं? आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान अनादिसे करता आया है या नहीं? परका, रागका तथा पुण्यका ध्यान करता आया है या नहीं? वह सब ध्यान मिथ्यात्व एवं रागरूप है, दुःखरूप है। उसी प्रकार अब बाह्य लक्ष छोड़कर अंतर ज्ञायक स्वभावमें ध्यान लगाना है। वह बात अब अगले बोलमें आयेगी। अहा! यह बात कोई अलग है भाई! लोगोंने तो आजकल मार्गको छिन्नभिन्न कर दिया है।

ज्ञानकी पर्यायमें भीतर त्रैकालिक ज्ञायकका लक्ष करके, श्रद्धाकी निर्मल पर्यायमें उसका आश्रय करके अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादपूर्वक जो अनुभूति प्रगट हुई वह ज्ञानचेतना है। अपने स्वरूपका साधक सम्यग्दृष्टि जीव स्वानुभूतिरूप खिले हुए निजनन्दनवनमें आनन्दमय विहार करता है। भले ही वह गृहस्थाश्रममें हो, परन्तु धर्मी सम्यक्त्वी उसे कहते हैं जो अपने अतीन्द्रिय आनन्दमें विचरे। स्वरूपमें विचरते हुये धर्मीको अनंत गुणवृक्षोंका आनन्दकारी नन्दनवन खिल उठता है। अहा! सूक्ष्म बात है प्रभु! लेकिन समझना तो पड़ेगा न?

अहा! ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त हुआ, जैनकुलमें जन्म लिया, वीतरागकी वाणी सुननेको मिली, प्रभु! अब तुझे अपने आत्महितके लिये कुछ करना तो पड़ेगा ना? ऐसे तो जन्म-मरणके चक्रमें अनन्तबार एक श्वासमें निगोदके अठारह भव किये हैं। विचार कर तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खबर पडेगी। छहढालामें कहा है कि–'एक श्वासमें अठदस बार, जन्म्यो मर्यो भर्यो दुःख भार;' भाई! वह, सब तू भूल गया है इसलिये वह नहीं है—ऐसा कैसे कहा जा सकता है? अरे! इस मनुष्यभवमें जन्म लेनेके बाद तेरी माताने तुझे प्रथम छह महीनोंमें नहलाया-धुलाया, दूध पिलाया—वह सब क्या तुझे याद है? याद नहीं है इसलिये वह नहीं था–ऐसा कैसे कहा जा सकता है? बचपनमें तूने किस प्रकार खाया-पिया, कैसे रोया–यह सब तुझे याद है? याद नहीं है इसलिये वह नहीं था ऐसा कौन कहेगा? इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण नहीं है इसलिये पूर्वमें ऐसा दुःखसहन किया वह नहीं था—ऐसा कैसे कहा जा सकता है? आता है कुछ समझमें? यह सब 'लॉजिक'से समझना पड़ेगा भाई!

प्रभु कहते हैं कि अंतरमें तेरी कितनी महान प्रभुता पड़ी है उसे एक बार सुन तो सही! तेरे द्रव्यमें अनंत अनंत शक्तियां हैं और एक-एक शक्तिमें अनंत-अनंत प्रभुता है। ऐसी अनंत प्रभुताके पिंडस्वरूप अंतरमें जो तेरी वस्तु है उसे आचार्यदेव 'भगवान; रूपसे सम्बोधन करते हैं। समयसारकी ७२वीं गाथाकी टीकामें तीन बार इस ज्ञायक आत्माको 'भगवान; कहकर वर्णन किया है। (१) पानीमें काई है वह मैल है; उस काईकी भाँति दया, दान, व्रत-तप, भक्ति तथा यात्रादि शुभभावके तथा व्यापार-धन्धा अशुभभावके हेतुरूप आस्रव मैलरूप अनुभवमें आते हुए अशुचि हैं, अपवित्र हैं; और 'भगवान; आत्मा तो सदा अति निर्मल चैतन्य मात्र स्वभावरूप ज्ञायक होनेसे अत्यंत शुचि ही है, पवित्र ही है और उज्वल ही है। (२) आस्रवोंको जड़ स्वभावपना होनेसे वे अन्य द्वारा ज्ञात होने योग्य हैं क्योंकि जो जड़ हो वह अपनेको तथा परको नहीं जानता, उसे दूसरा ही जानता है, इसलिये वे ज्ञायकसे अन्य स्वभाववान हैं, और भगवान आत्मा तो अपनेको सदा विज्ञानघन स्वभावपना होनेसे स्वयं ही ज्ञाता है—अपनेको तथा परको जानता है–इसलिए चैतन्यसे अनन्यस्वभाववान ही है, चैतन्यसे अन्यस्वभाववाला नहीं है। (३) आस्रव आकुलताके उत्पादक होनेसे दुःखके कारण हैं; और 'भगवान' आत्मा तो सदा निराकुलता स्वभावके कारण किसीका कार्य तथा कारण न होनेसे, दुःखका अकारण ही है, दुःखका कारण नहीं है। ऐसे विज्ञानघन स्वरूप भगवान आत्माको भूलकर दया, दानादि शुभभावसे आत्माका कल्याण होगा ऐसी मान्यता वह मिथ्यात्वका सेवन है, श्रद्धामें भी महापाखंडका सेवन है।

प्रश्न: —पुण्यसे तो अरिहंत पद प्राप्त होता है न?

उत्तर:—'पुण्यफला अरिहंता' जो कहा है उसका अर्थ दूसरा है। पुण्य जिनको फलता है ऐसे तीर्थंकरको पुण्यका विपाक तो अकिंचित्कर ही है, स्वभावका किंचित् भी घात नहीं करता–ऐसा कहना है वहाँ लोग उसका ऐसा अर्थ करते हैं कि–'पुण्यसे अरिहंतपद की प्राप्ति हुई है; वह अर्थ बिलकुल मिथ्या है। ऐसा श्रद्धान तो मिथ्यात्व एवं अज्ञान है। तीर्थंकर अरिहंत भगवानको जो दिव्यध्वनि, विहारादि क्रियाएं हैं वे पूर्वबद्ध कर्मके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उदयसे उत्पन्न हुई हैं। इसलिये औदयिक है वे औदायिकी क्रियाएँ भगवानको चैतन्य विकाररूप भावकर्मको किंचित् भी उत्पन्न नहीं करतीं, क्योंकि उनके विकारके निमित्तभूत मोहनीय कर्मका अत्यंत क्षय हो गया है। इसलिये अरिहंतकी औदयिकी क्रियाको क्षायिकी माना गया है। जैसे निचली भूमिकामें साधक ज्ञानी अपने स्वरूपमें ध्यानमग्न हैं, उस काल उदयमें आये हुए कर्म निषेक खिर जाते हैं; उसी प्रकार केवली भगवानको भी वाणी विहार वगैरहमें निमित्तभूत कर्मोदय खिर जाते हैं; उनकी औदयिकी क्रिया स्वभावका घात करनेमें अकिंचित्कर होनेसे क्षायिकी मानी गई है। वहां 'पुण्यके फलमें अरिहंत पद प्राप्त होता है' ऐसा कहना ही नहीं है, अरिहंत पद तो वीतराग एवं सर्वज्ञता होनेसे होता है, पुण्यसे नहीं। आत्मा स्वयं ही अपने शुद्धोपयोगसे केवलज्ञानको प्राप्त करके 'स्वयंभू' कहलाता है। आत्मा स्वयं ही कर्ता, कर्म, करण, आदि षट्कारकरूपसे परिणमित होकर अपनेसे ही केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न करता है, संहननकी मजबूतीसे या पूर्वकी अपूर्ण पर्यायसे नहीं। अहा! ऐसा स्वरूप है भाई! भगवानका मार्ग न्यायका है, न्यायसे वस्तुकी सिद्धि करता है। अन्यायसे अथवा कुन्यायसे सिद्ध करने जायेगा तो तुझे मिथ्यात्वका दोष लगेगा।

दया, दानादि भावोंमें जो राग मन्द किया है वह पुण्य है, दुःख है। उस भावमें सम्यग्दृष्टिको, उसका स्वामित्व न होनेसे पुण्यानुबंधी पुण्य बँधता है और मिथ्यादृष्टिको, रागका स्वामित्व होनेसे, पापानुबंधी पुण्य बंधता है। जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हो वह शुभ राग भी दुःख है, सुख स्वरूप तथा सुखका कारण तो भगवान ज्ञायक आत्मा है, अंतरमें भगवान आत्माकी जो आनन्द दशा है वह रागका कार्य भी नहीं है और कारण भी नहीं है। 'आत्मख्याति' टीकाके परिशिष्टमें एक 'अकार्यकारणत्व शक्ति' कही है; उस शक्तिकी ध्वनि ७२वीं गाथाकी टीकामें विद्यमान है। रागकी दिशा, भले तीर्थंकर नामकर्मका शुभराग हो, परकी ओर है और वीतराग भावकी दिशा स्वकी ओर है। मोक्षपाहुडकी १६वीं गाथामें कहा है कि–'पर दव्वाओ दुग्गई' पराश्रय भावसे, भले वह शुभभाव हो, दुर्गति होती है। परमार्थ दृष्टिसे तो देवादि चारों दुर्गति हैं, मात्र ज्ञायकभाव रूप परिणमन वह एक ही सुगति है। अहा! अद्भुत बात है ना! श्री कुन्दकुन्दाचार्य तथा भगवान भी ऐसा कहते हैं कि–हम तुम्हारी अपेक्षा परद्रव्य हैं। हमारी ओर भी तुम्हारा लक्ष जायेगा, अभिप्रायका जोर होगा, तो तुम्हारे चैतन्यकी दुर्गति–विभाव परिणमन होगा। अरेरे! लोगोंको मूल तत्त्वकी तो खबर ही नहीं है। 'सद्दव्वाओ सुग्गई'–पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप निज भगवान आत्माका यथार्थ लक्ष करके जो अनुभूति हुई वह चैतन्यकी सुगति है, उसका फल सुगति अर्थात् सिद्ध दशा है, सिद्ध दशा सुगति है और चार गति वह दुर्गति है। अहा! आता है कुछ समझमें?

समयसारकी १२वीं गाथाका मर्म न समझनेसे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि—चौथे,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पांचवें और छट्ठे गुणस्थानमें शुभयोग ही होता है, शुद्धोपयोग नहीं होता। वे कहते हैं कि परमभावदर्शीको—केवलीको शुद्धोपयोग होता है, और जो अपरमभावमें स्थित है उन्हें मात्र व्यवहार कहना योग्य है। तथा श्री जयसेनाचार्यका आधार देकर वे कहते हैं कि पहलेसे तीसरे गुणस्थान तक घटता हुआ अशुभोपयोग, चौथेसे छट्ठवें तक बढ़ता हुवा शुभोपयोग और सातवेंसे बारहवें तक बढ़ता हुआ शुद्धोपयोग होता है। तेरहवें गुणस्थानमें सर्वज्ञ दशा वह शुद्धोपयोगका फल है। परन्तु भाई! उपयोगकी यह बात तो बहुलताकी अपेक्षासे कही है। श्री 'द्रव्यसंग्रह'की ४७वीं गाथामें कहा है कि—दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि...' दोनों प्रकारका मोक्षमार्ग भीतर आत्माश्रित ध्यानमें प्राप्त होता है। उसका अर्थ क्या? आनन्दधाम ज्ञायक आत्माके भीतर जो अनुभूति–सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्रकी एकतारूप शुद्धि—हुई वह निश्चय मोक्षमार्ग है और उसके साथ भूमिकाके अनुरूप श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र सम्बन्धी जो राग रहा उसे, मंद शुद्धिका सहचारी होनेसे, उपचारसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है। परमार्थतः रागका कोई प्रकार या अंश मोक्षमार्ग नहीं है, बंधमार्ग है। अरेरे! जिसे मार्गका सच्चा ज्ञान भी नहीं है उसे व्यवहार भी सच्चा नहीं होता, तो फिर सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति तो उसे कहाँसे होंगे?

सम्यग्दृष्टि आनन्दमें विहार करता है।

'बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता।'

आत्माका सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान जिसे हुआ वह निज आनन्दधाममें विचरता है। उसे शुभाशुभ विकल्प उठते हैं, उपयोग बाहर जाता है, परन्तु उसे विकल्पमें या बाह्य विषयमें कहीं रस नहीं है, बाहर आना उसे बोझ लगता है। अहा! ऐसी 'वचनामृत' पुस्तक प्रकाशित हुई! चालिस–पचास हजार पुस्तकें छप चुकी हैं। यह बेनकी पुस्तक पढ़ी या नहीं? यह तो बार बार पढ़ने योग्य है।

यहां बेन कहती हैं की–जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, अतीन्द्रिय आनंदका अंशतः अनुभव हुआ, धर्मकी प्रथमदशा प्रगट हुई उसे बाहर आनेमें दुःख लगता है, बाहर कहीं रस नहीं लगता। सम्यग्दृष्टि इन्द्र भी पगमें घुँघरु बाँधकर भगवानकी भक्ति करते हैं। नन्दीश्वर द्वीपमें शाश्वत बावन जिनालय हैं। अष्टाह्निकामें इन्द्र, देव, देवीयां, वहां जाते हैं, भक्ति करते हैं, भगवानके सामने नाचते हैं। ज्ञानीको भी भगवानके सामने नृत्य करना आदि बाह्य उत्साह दिखायी देता है, परंतु अंतरमें रागका उत्साह नहीं है। नृत्य करनेकी क्रिया तो जड़ शरीरकी है, और जो रागका विकल्प उठता है वह विकार है, दुःख है।

ज्ञानीको क्षायोपशमिक दशा है, अल्प दशा है, इसलिये विकल्प आता है, परन्तु विकल्पमें उत्साह नहीं हैं। अहाहा! यह मार्ग कोई अलौकिक है। जैनदर्शनके सिवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अन्यत्र कहीं यह वस्तु नहीं है; और जैनमें भी दिगम्बर जैनदर्शन ही सच्चा जैनदर्शन है। बाकी तो क्या किया जाय? पक्षके आग्रहमें पड़कर लोग सत्यको असत्य कर देते हैं। अन्यथा करेंगे तो उनकी दृष्टि अन्यथा रहेगी, वस्तुस्वरूपमें अन्यथा नहीं होगा; वस्तु तो वस्तु ही रहेगी।

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानीका उपयोग किंचित् बाहर जाता है, परंतु वहाँ उसे रस नहीं आता। भरतचक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे। गृहस्थदशामें, अस्थिरताके कारण, भोगोपभोगके परिणाम आते थे, परन्तु रागका रस न होनेसे दूसरे ही क्षण अशुभोपयोग पलटकर स्वरूप सन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभवमें आ जाते थे; क्योंकि उन्हें अंतरमें स्वभावकी लगन थी, रागका प्रेम—रस नहीं था। ज्ञानीको स्वभावकी लगन है इसलिये बाहर आनेसे उसे अन्यत्र कहीं रस नहीं लगता। आया समझमें? ज्ञानीको रागमें रस नहीं होता।

*

वचनामृत—१७८

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है कि—मैं इन शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ; अंतरमें जो विभाव होता है वह मैं नहीं हूँ. ऊँचेसे ऊँचे जो शुभ भाव वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ।।१७८।।

'पहले ध्यान सच्चा नहीं होता।'

क्या कहते हैं? आत्माका सच्चा ज्ञान होनेसे पूर्व जो ध्यान किया जाता है वह ध्यान सच्चा नहीं होता, वह तो 'मैं ध्यान करता हूँ' ऐसी मात्र कल्पना है। पहले ज्ञानमें सत्यता आना चाहिये। रागसे कल्याण होगा, राग मेरा कर्तव्य है—ऐसे असत्य ज्ञानमें सच्चा ध्यान नहीं होता। अहा! बात तो जरा सूक्ष्म है भाई! मार्ग तो ऐसा है। त्रिलोकीनाथ सीमंधरपरमात्मा महाविदेहक्षेत्रमें विराजमान हैं; वहाँसे यह (वचनामृत) वाणी आयी है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने विदेहक्षेत्र जाकर आनेके पश्चात् समयसारादि शास्त्रोंकी रचना की थी। यह व्यक्तिगत बात शायद तुम्हें न बैठे, परन्तु बेन (बहिनश्री चम्पाबेन) महाविदेहक्षेत्रसे आयी हैं। व्यक्तिगत बात न बैठे तो उसे एक ओर रखो; परन्तु तत्त्व क्या है वह सुनो और समझो। अहाहा! जिस प्रकारसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्र जाकर वाणी लाये थे, उसी प्रकार यह बहिन भी विदेहकी वाणी लायी हैं। यह बहिन भी वहाँ पुरुषरूपमें थीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वहाँ किंचित् भूल हो गई इसलिये यहाँ स्त्री पर्यायमें जन्म हो गया है। अहा! इनकी यह वाणी तो देखो!

कोई समझे बिना पहले ध्यान करेगा तो उसे सच्चा ध्यान नहीं होगा। प्रथम ज्ञान सच्चा होता है पश्चात् सच्चा ध्यान होता है। राग विभाव है उससे आत्माको सुखका कोई लाभ नहीं होता, स्वभावसे लाभ होता है—इस प्रकार पहले विकल्पवाले ज्ञानमें भी सत्यता आना चाहिये।

'पहले ज्ञान सच्चा होता है कि—मैं इन शरीर, वर्ण, गंध, रस स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ;।'

सम्यग्ज्ञान तो बादमें, परन्तु ज्ञानके विकासमें प्रथम यह बात सत्यरूपसे आना चाहिये। समयसारकी १३वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि—प्रथम प्रमाण, नय, निक्षेपसे वस्तुका सच्चा ज्ञान होना चाहिये; अभी ज्ञानमें विपरीतता हो तो अंतरमें किस प्रकार जा सकेगा? पहले नव तत्त्वोंका प्रमाण, नय, निक्षेपसे सच्चा ज्ञान होता है और फिर भूतार्थनयके आलम्बन द्वारा उसमेंसे एकत्वको लेकर एकाग्र होने पर—भीतर एकत्वस्वभावमें जाने पर—ध्यान होता है।

कोई कहे कि—जिन प्रतिमाकी पूजा मिथ्यादृष्टिको होती है, सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् नहीं होती। भाई! न्यायसे विचार करे तो, आत्मानुभूति होनेके बाद ही भावश्रुतज्ञान होता है। सच्चा स्थापना निक्षेप भी भावश्रुतज्ञानीको ही होता है। इसलिये जिनप्रतिमाकी पूजा भी सच्चे ज्ञानीको ही होती है। सच्चे नय और निक्षेप भी ज्ञानीको ही होते हों; अज्ञानीको नय निक्षेप एक भी सच्चे नहीं होते।

स्वर्गमें भी शाश्वत जिनालय एवं जिनप्रतिमाएं हैं। जिस प्रकार केवलज्ञानी परमात्मा त्रिकाल होते हैं, उसी प्रकार उनकी प्रतिमाएं भी लोकमें त्रिकाल होती ही हैं।

यहां कहते हैं कि—जेसे अभी पहले व्यवहार-ज्ञानमें भी सत्यता नहीं आयी है उसे अंतरमें परमार्थ तत्त्वका सच्चा ध्यान कहांसे हो सकता है? बात कुछ अजान लगेगी, किन्तु भाई! मार्ग तो यही है।

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता; पहले ज्ञान सच्चा होता है। क्या कहा? शरीर, वाणी, तथा शरीरके वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि जो दिखते हैं वह मैं नहीं हूँ; इन सबसे मैं भिन्न हूँ। सच्चा ध्यान होनेसे पूर्व ऐसा सच्चा ज्ञान होना चाहिये।

'अंतरमें जो विभाव होता है वह मैं नहीं हूँ;'

अंतरमें दया, दान, व्रत-तप, भक्ति, तीर्थयात्राके तथा गुरुसेवाके भाव होते हैं वह शुभ राग है, वह मेरे शुद्ध स्वरूप नहीं है, विभाव भाव है। अंतरमें सच्चा ध्यान–सम्यग्दर्शन

२२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होनेसे पूर्व विकल्प दशामें भी ऐसा सच्चा ज्ञान होना चाहिये। सच्चे ज्ञानके बिना भीतर ध्यानमें स्वरूप सन्मुखता नहीं हो सकेगी। अंतरमें विभाव हो वह मैं नहीं हूँ—ऐसे सत्यस्वरूपसे विरुद्ध ज्ञान हो तो उसे सच्चा ध्यान नहीं हो सकता।

'ऊँचेसे ऊँचा जो शुभ भाव वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ।'

जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बँधे वह भाव मैं नहीं हूँ। वह शुभ भाव अपराध है, दोष है। वह भाव सम्यग्दृष्टिको ही आता है, मिथ्यादृष्टिको नहीं। सम्यग्दृष्टि को उच्चसे उच्च शुभभाव आये वह भी बंधका कारण है। उच्चसे उच्च शुभभाव भी मैं नहीं हूँ, मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ।—इस प्रकार प्रथम ज्ञानमें सच्चाई आना चाहिये। उसके सम्दर्शन या सच्चा ध्यान कदापि नहीं होता।

❀ तू भी उसी मार्ग पर चल ❀

गुरुदेवके पास जो सुना है उसका बारंबार घोलन करना। ध्येय एक शुद्धात्माका ही रखना। उसीके लिये वांचन, विचार, मंथन करने जैसा है। शुद्धात्माको पहिचानकर, उसका अवलम्बन लेकर, तद्रूप परिणति करनेका ही गुरुदेव कहते थे। जीव अनादि कालसे शुभाशुभ भाव करता आया है, अब तो शुद्धात्माको ग्रहण कर। अनन्त जीवोंने उस शुद्धात्माके मार्ग पर चलकर स्वानुभूतिकी साधना की है, अन्तर समाधिको साधा है। तू भी उसी मार्ग पर चल।—यही गुरुदेवकी शिक्षा थी।

—पू. बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६६

ता.१६–८–७८

वचनामृत–१७६

ध्यान वह साधकका कर्तव्य है। परन्तु वह तुझसे न हो तो श्रद्धा तो बराबर अवश्य करना। तुझमें अगाध शक्ति भरी है; उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है।।१७६।।

वचनामृतका १७६वां बोल जरा सूक्ष्म है।

'ध्यान वह साधकका कर्तव्य है।'

सूक्ष्म बात है भाई! निज शुद्ध ज्ञायक आत्माको ध्येय बनाकर उसका ध्यान करना वह सम्यग्दृष्टिका कर्तव्य है। यह मुख्य वस्तु सूक्ष्म है। दया, दान, व्रत, भक्तिके परिणाम वह तो पुण्यबंधका कारण है, धर्म नहीं है। आत्माका परमार्थ कर्तव्य नहीं है।

प्रश्न :—धर्मकी दशा कब प्रगट होती है?

उत्तर :—ध्रुवको ध्येयरूपसे धारण करके धैर्यपूर्वक ध्यानकी धूनी रमाए तब धर्म होता है। आता है ना! 'धुनरे धुनिया अपनी धुन, जाकी धुनमें पाप न पुन।' एक समयकी पर्यायसे भी भिन्न अपना जो पूर्णानन्दमय स्वरूप उस पर लक्ष करके, उसे ध्येय बनाकर ध्यान करना वह साधकका कर्तव्य है। इसके बिना कभी तीन कालमें धर्म नहीं होता। द्रव्यसंग्रहकी ४७वीं गाथामें श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवने कहा है :—

'दुविहं पि मोक्खहेतुं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा।'

दोनों प्रकारका मोक्षमार्ग मुनि नियमसे ध्यानमें प्राप्त करता है। इसलिये त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभावको ध्यानमें लेकर, ध्रुवको ध्येय बनाकर, ध्रुवको वर्तमान पर्यायका विषय बनाकर ध्यानकी धुनि रमाना वह धर्मीका कर्तव्य है। व्रतादिके शुभ परिणाम भी आत्माका कर्तव्य नहीं है। सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान निज आत्माका ध्यान लगानेसे सम्यग्दर्शन होता है। पूर्णानन्दका नाथ प्रभु स्वभावसे पूर्ण शुद्ध होने पर भी पर्यायमें उसे जो शुभाशुभ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव होते हैं वे धर्म नहीं है, शुद्ध आत्म स्वभावके घातक होनेसे अधर्म हैं। शुभ तो वास्तवमें अशुभकी अपेक्षासे कहा है वैसे तो दोनों अशुद्ध ही हैं, परमार्थतः अशुभ हैं। अहा! जन्म-मरणका अन्त लानेकी वस्तु वह वीतराग धर्म वास्तवमें कोई अद्‌भूत है! ऐसे तो अनंतबार भक्ति की, लाखों–करोड़ों रुपये दानमें दिये, भगवानके बड़े बड़े मन्दिर बनवाये, परन्तु भाई! उसमें तूने कषाय मन्द की हो तो शुभ भाव है और जो बाहर क्रिया होती है वह तो जड़–पुद्गलकी है, तुझसे वह नहीं होती। इसलिये यदि आत्मकल्याण करना हो, चौरासीके अवतारोंका अन्त करना हो, आत्माकी साधना करनी हो तो अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावको पहिचानकर, उसका श्रद्धान करके, उसमें लीनता रूप ध्यान करना वह प्रथम कर्तव्य है।

प्रश्नः—इसमें तो बाहरका सब कुछ उड़ जाता है?

उत्तरः—भाई! आत्मा क्या बाहरका कार्य कर सकता है? यह सब—तीर्थफण्ड करना, मंदिर बनवाना, प्रतिष्ठाएँ कराना आदि—जड़की क्रिया है, उसमें आत्मा क्या करेगा? उस परकी क्रियाके समय कदाचित् शुभभाव हो तो वह भी राग है, दुःख है। प्रभुका मार्ग तो उससे भिन्न है।

प्रश्नः—शुभभावके फलमें अनुकूल पदार्थ तो मिलते हैं ना?

उत्तरः—वे पदार्थ कहाँ अनुकूल थे? वे तो मात्र ज्ञेय हैं, उनमें अनुकूलता कहांसे लाया? अनुकूलता किसे कहा जाय? पर पदार्थ तो ज्ञानके ज्ञेय हैं, उनमें इष्ट या अनिष्टपना है ही नहीं। अहा! यह तो मुख्य रकम है। निज ज्ञायक सत्त्वको पहिचानकर उसमें स्थिरता करना वही करने योग्य है, परन्तु वह अनादिसे कभी नहीं किया। मन्दिर जाना, भगवानकी पूजा-भक्ति करना आदि बाह्य क्रियाओंमें अज्ञानी धर्म मानता है, परन्तु वह कदापि धर्म नहीं है। धर्म किसे कहा जाय वह त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवकी दिव्यध्वनिमें जो आया है, संत वह कहते हैं और वही बहिनकी वाणीमें आया है। अहा! यह (वचनामृत) पुस्तक तो देखी है ना? यह तो सबको (आत्मधर्मके ग्राहकोंको) भेंट दी गई है।

अहा प्रभु एक बार सुन तो सही अपनी प्रभुताकी बात! आचार्यदेव तुझे 'भगवान' रूपमें संबोधन करके उपदेश देते हैं। समयसारकी पहली गाथाकी टीकामें कहा है–अपनी पर्यायमें तो मैंने अनंत सिद्धोंको स्थापित किया है, और हे श्रोताओ! तुम अपनी पर्यायमें अल्पज्ञता होने पर भी, 'द्रव्य-अपेक्षासे सिद्ध समान शुद्ध हूँ'—इस प्रकार अनंत सिद्धोंको स्थापित करो; रागको नहीं, राग तो स्वभावसे भिन्न है। बात कुछ सूक्ष्म है, प्रभु! चलते हुए पंथसे सर्वज्ञ भगवानका मार्ग कोई भिन्न प्रकारका है। अहा! जैनधर्म अर्थात् क्या? जैन धर्म पूर्णतः आत्मानुभूति पर आधारित है। जिसमें गुरुका उपदेश आदि बाह्य निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमार्थतः अकिंचित्कर हैं। निमित्तके लक्षसे जो ज्ञान हुआ उससे भी आत्माकी प्रतीति नहीं होती। परलक्षी ज्ञान भी यथार्थ ज्ञान नहीं है, उससे धर्म नहीं होता।

आत्मानुभूति ही जैन धर्म है। अहा! यह मुख्य मुद्देकी बात यहां जैनकुलमें जन्मे हुए भी नहीं जानते। 'निर्वाण' क्या है उसकी भी खबर नहीं है। निर्वाण आत्मामें है। आत्मवस्तु मुक्तस्वरूप–निर्वाण स्वरूप ही है। समयसारमें (१९८वें कलशमें) आता है कि–'स हि मुक्त एव।' भगवान आत्मा बंध तथा शुभाशुभ रागसे रहित मुक्त स्वरूप ही है। अहाहा! तेरी प्रभुता! वह प्रभुता इतनी अपार है कि उसमें दृष्टि करनेके लिये किसी विकल्प या अन्य कारणकी आवश्यकता नहीं है–ऐसी उसमें अकार्यकारणत्व नामकी त्रैकालिक शक्ति है। उस शक्तिके कारण ज्ञायककी दृष्टि करनेमें, ध्यान करनेमें शुभराग या व्यवहारकी सहायता हो तो सम्यग्दर्शन और आत्माका ध्यान हो सके–ऐसा वस्तुस्वरूपमें ही नहीं है। आया कुछ समझमें!

लोगोंको ऐसे वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है; आत्माकी समझ बिना बेचारे यों ही जीवन गवाँ देते हैं।

प्रश्नः—'बेचारे'! बड़े राजा और सेठ हों तो वे भी बेचारे! उन्हें कौन बेचारे कहेगा?

उत्तरः—शास्त्र उन्हें 'वराकाः'–बेचारे कहते हैं। अंतरमें अपनी वस्तु जो अनंत आनंद, अनंत ज्ञानादि समृद्धिसे भरपूर है उसकी प्रतीति तथा मूल्य नहीं है, वह भले ही अरबपति सेठ हो, इन्द्र हो या नग्न दिगम्बर साधु हो वे सब 'वराकाः'–बेचारे हैं, निज आत्म बादशाहको भूल गये हैं। समयसारमें (कलश-२०२) कहा हैः—

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो बत ते वराकाः।
कुर्वन्ति कर्म तत् एव हि भावकर्म-
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः॥

आचार्यदेव खेदपूर्वक कहते हैं कि–अरेरे! जो इस वस्तुस्वभावके नियमको नहीं जानते वे बेचारे जिनका पुरुषार्थरूपी तेज अज्ञानमें डूब गया है ऐसे, शुभाशुभ परिणामरूप कर्मको करते हैं; इसलिये भावकर्मका कर्ता चेतन ही स्वयं होता है, अन्य कोई नहीं।

अहा! निर्ग्रंथ मुनिको कहाँ किसीकी पडी है कि लोगोंको अच्छा लगागा या नहीं। वे तो नग्न मुनिराज हैं, 'नंगे खुदासे बड़े'। बादशाह हो या अरबपति हो–वह बाह्य लक्ष्मी तो धूल है। प्रभु! तेरी लक्ष्मी तो भीतर तेरे आत्मामें भरी पड़ी है। तुझमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील, स्वच्छत्व, कर्तृत्व, चिति, दृशि, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शीत्व, सर्वज्ञत्व, प्रकाशत्व, असंख्यप्रदेशत्व, त्यागोपादानशून्यत्व, परिणम्यपरिणामकत्व, अगुरु लघुत्व–ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसी अनंत शक्तियाँ हैं। ऐसी असीम अमाप अनंत शक्तियोंका पिण्ड तू है। उसे ध्यानमें लेने पर, अभेद निजतत्त्वमें एकाग्रता करनेसे ध्यानकी पर्याय निर्विकल्प हो जाती है। अहा! उसी अभेद ज्ञायकतत्त्वके आश्रय बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन धर्मका प्रथम सोपान है।

यहाँ बेनने कहा है कि–निज आत्मस्वरूपका ध्यान वह धर्मी जीवका कर्तव्य है।

'परन्तु वह तुझसे न हो तो श्रद्धा तो बराबर अवश्य करना।'

यदि भीतर ध्यानमें न जा सके तो श्रद्धा तो ऐसी अवश्य रखना कि अंतरमें जाना चाहिये; अंतर स्वरूपमें एकाग्र होकर गहरे उतरना सो ध्यान है और वही कर्तव्य है। अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ जो निज ज्ञायक परमात्मा उसके ध्यानमें जाना वही मोक्षका मार्ग है; बाकी सब थोथा है।–ऐसी श्रद्धा तो अवश्य करना; उसके बिना मार्ग तेरे हाथ नहीं आयेगा।

'तुझमें अगाध शक्ति भरी है; उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है।'

प्रभु तुझमें अनन्तानन्त अगाध शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज आनन्द, सहज वीर्य आदि अनंत गुण–जिनके स्वभावकी अनन्तताका कोई पार नहीं है ऐसी अनन्तानन्त शक्तियाँ–तुझमें सदा विद्यमान हैं। तुझमें तेरा समस्त वैभव भरपूर पड़ा है, उसमें कुछ भी बाहरसे लाना नहीं है। समस्त विश्वको एक समयमें जाननेवाली ऐसी अनन्त सामर्थ्यवान केवलज्ञानकी एक समयकी पर्याय और ऐसे अन्य अनन्त गुणोंकी एक समयमें परिपूर्ण पर्यायें–वह सब प्रगटनेकी अगाध शक्ति तुझमें विद्यमान है। प्रभु! तू अन्यत्र कहां खोजने जाता है? अरेरे! कस्तूरी अपनी नाभिमें होने पर भी हिरन उसे खोजने जंगलमें भटकता है! उसी प्रकार यह जीव भी, शक्ति है अंतरमें और खोजता है बाह्यमें। यह भी हिरन जैसा ही है–'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।' अपनी अगाध शक्तिकी प्रतीति और ज्ञान नहीं है वे रागको और परको अपना मानकर, मृगकी भाँति, चार गतियोंमें भ्रमण करते हैं।

आत्मानुभवके बिना मुनिपना लिया, अट्ठाईस मूलगुण पाले, किन्तु वह कोई वस्तु है? वस्तु तो जिसमें अनंत-अनंत ज्ञान-आनन्दादि अगाध शक्तियाँ भरी पड़ी हैं ऐसी निज ज्ञायक वस्तु है। छहढालामें कहा है कि:—

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।

पंच महाव्रत, पाँच समिति आदि अट्ठाईस मूलगुणके विकल्प भी राग हैं और दुःख हैं। जिसे आनन्दादि अगाध शक्तियोंके पिण्ड प्रभु आत्माका दृष्टिमें स्वीकार हो और उसकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

महिमा लाकर अंतरमें विश्वास बैठा हो, पर्याय, राग एवं निमित्तसे रुचि हट गई हो वह इस अंतर्मुख स्वभावके विश्वाससे स्वकी ओर लक्ष करे, ज्ञायक निज तत्त्वका ध्यान करे; तो उसे अंतरमें सम्यग्दर्शन—अनंत आनन्दका उदय होगा। किन्तु अरेरे! उसकी किसे पड़ी है! इस बाहरी खान-पानमें, स्त्री-पुत्रोंकी उपाधिमें पाप करके जीवन गँवा देते हैं, वहाँ धर्म तो नहीं है किन्तु पुण्य भी नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि—पुण्य-पापके भावसे रहित तुझमें ज्ञान, आनन्दादि अनंत अगाध शक्ति भरी पड़ी है, उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है।

अहा, बेनकी वाणी! ऐसे ४३२ बोल हैं, उनमें यह १७६वाँ बोल चल रहा है। बेन कभी बोली होंगी और ब्रह्मचारी बैटियोंने लिख लिया होगा। उनमेंसे छाँटकर उनके भाई हिंमतभाईने यह बनाई और प्रकाशित हुई। ज्यों ही यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) हाथमें आयी, पढ़ी और रामजीभाईसे कहा: 'भाई! इसकी लाख पुस्तकें छपाओ।' संस्थाकी ओरसे अब तक बीस लाख पुस्तकें छप चुकी हैं, उनमें मैंने कभी नहीं कहा कि—पुस्तकें छपाओ या मकान बनाओ। मैं तो मात्र तत्त्वकी बात करता हूँ। यह सब तो रामजीभाई करते हैं; लोग अपने भावसे करते हैं।

आज एक शास्त्रीका पत्र आया है। वे लिखते हैं: महाराज! आपके द्वारा अध्यात्म धर्मका प्रचार खूब हुआ है, किन्तु वह जैनोंतक सीमित रहा। ब्राह्मण, हिन्दू, ईसाई आदि सबमें उसका प्रचार हो उसके लिये आप अपने उपदेशकी बोलती फिल्म बनवाईये।

अरे भाई! मैंने तो परमें कभी कुछ किया ही नहीं है। मैं प्रचार करने नहीं आया हूँ। मैं तो अपने आत्माका करता हूँ। विकल्प आता है उससे यह बात आती है, मैं न तो कुछ बनाता हूँ और नहीं कुछ रचता हूँ।

'फिल्म बनाओ, हजारों गीत रचो तो तुम्हारा नाम रहे।'

भाई! हमारा नाम ही कहाँ है? हम तो आत्मा हैं। और वह तो एक समयकी पर्यायके निकट, पर्यायसे भिन्न, शुभाशुभ रागसे भिन्न, शरीर-वाणी-लक्ष्मी तथा नामसे भी भिन्न भीतर पातालमें पड़ी, हुई ज्ञायक वस्तु है।' आत्मवस्तु अपना ध्रुव परिपूर्ण सामर्थ्य रखकर सदा विद्यमान है, वह कहीं एक समयकी पर्यायमें पूर्ण नहीं आ गयी है। अरेरे! तत्त्वकी ऐसी बात जीवको कहीं सुननेको भी नहीं मिलती! जीवन बीत रहा है, मौतकी नौबत सिर पर बज रही है। एक समय ऐसा आयेगा कि तेरा यह सुन्दर शरीर राख होकर मिट्टीमें मिल जायेगा।

ज्यों तितर पर बाज, मच्छ पर बगला रे;
तेरी कंचनवरणी काया, होगी ढगला रे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मौत पूर्व सूचना देकर नहीं आयेगी कि–मैं आ रही हूँ, तैयारी कर ले।' क्या मौत कहकर आती है? शरीर जड़ है, संयोगी है, वह तो उसकी अवधि पूर्ण होने पर छूट जायेगा।

यहां कहते हैं: शरीर एवं रागादिसे भिन्न, ज्ञान, आनन्दादि अगाध शक्तियोंसे भरपूर ऐसे निज शुद्ध ज्ञायक आत्माकी यथार्थ श्रद्धा तो अवश्य करने योग्य है।

*

वचनामृत–१८०

उपयोग अंतरमें जाय वहाँ समस्त नय पक्ष छूट जाते हैं; आत्मा जैसा है वैसा अनुभवमें आता है। जिस प्रकार गुफामें जाना हो तो वाहन प्रवेशद्वार तक आता है, फिर अपने अकेलेको अन्दर जाना पड़ता है, उसी प्रकार चैतन्यकी गुफामें जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है, भेदवाद सब छूट जाते हैं। पहिचाननेके लिये यह सब आता है कि 'चेतन कैसा है,' 'यह ज्ञान है,' 'यह दर्शन है,' 'यह विभाव है,' 'यह कर्म है,' 'यह नय है,' परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे वहाँ सब छूट जाते हैं। एक-एक विकल्प छोड़ने जाय तो कुछ नहीं छूटता, अन्दर जाने पर सब छूट जाता है।।१८०।।

'उपयोग अंतरमें जाय वहाँ समस्त नय पक्ष छूट जाते हैं, आत्मा जैसा है वैसा अनुभवमें आता है।'

क्या कहते हैं? ज्ञानकी वर्तमान परिणतिका व्यापार भीतर ध्रुवतलमें जाय तब सर्व नयपक्ष–मैं शुद्ध हूँ, अबद्धस्पृष्ट हूँ, परिपूर्ण हूँ अथवा मैं पर्यायवान हूँ ऐसे समस्त विकल्प, रागमिश्रित विचार–छूट जाते हैं। 'पर्यायमें मैं रागवाला हूँ' यह व्यवहारका नयपक्ष तो छूट ही जाता है, परन्तु 'मैं राग रहित शुद्ध हूँ' यह निश्चयका नयपक्ष—विकल्प भी छूट जाता है।

अरेरे! इस भरतक्षेत्रमें सर्वज्ञप्रभुकी वर्तमानमें अनुपस्थिति है महाविदेहमें श्री सीमंधर भगवान विराज रहे हैं, उन्होंने जो दिया वह यह माल है। जगतको बैठे या न बैठे, परन्तु वस्तुस्वभाव तो यह है। इस भरतक्षेत्रमें सर्वज्ञ पर्यायकी उत्पत्तिका विरह पड़ा, मन:पर्यय एवं अवधिज्ञान आदिकी उत्पत्तिका विरह पड़ गया। उसमें ऐसा वीतराग मोक्षमार्ग निर्मल मति-श्रुतज्ञानकी पर्यायसे जाना जाता है, मात्र अकेले शास्त्रज्ञानसे ही ज्ञात होता

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ऐसा भी नहीं।' 'मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, रागादिके विभावोंसे रहित अभेद हूँ, अखण्ड हूँ,' ऐसी जो अंतरमें वृत्ति उठती है वह भी, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने अंतरध्यानमें जाय तब वह नय विकल्प भी छूट जाता है।

यह बात सूक्ष्म लगे, कठिन लगे किन्तु प्रभु! दूसरा क्या कहे? मार्ग तो तीनोंकाल यही है, तुम्हें न रुचे तो क्षमा करना, हमारे पास आत्मा और आत्माके अनुभवके सिवा दूसरी बात नहीं है। श्री पद्मनंदी–आचार्य ब्रह्मचर्य अधिकारका वर्णन करते हुए कहते हैं:—हे युवक–युवतियो! तुम्हें—विषय-वासनाके रंगमें फँसे हुओंको मेरा यह विषय रागके विस्मरण स्वरूप तथा निजानन्दनाथमें रमणस्वरूप ब्रह्मचर्यका उपदेश न रुचे तो क्षमा करना। मैं तो मुनि हूँ, तुम हमारे पास और क्या आशा रखोगे?

वीतराग प्रभुका मार्ग तो यह है। सम्यग्दर्शन होने पर जब आत्मा अनुभवमें आता है तब किसी भी नयपक्षके विकल्प नहीं होते, मात्र अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दका अभेद रसास्वाद होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन ध्यानमें प्राप्त होता है, विकल्पसे या बाह्यमें 'यह मानना और वह मानना' ऐसी रागकी क्रियासे प्राप्त नहीं होता। द्रव्यसंग्रहमें कहा है–'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि.....' मोक्षका हेतु—सम्यग्दर्शनादि—भीतर ध्यानमें ही प्राप्त होता है।

'जिस प्रकार गुफामें जाना हो तो वाहन प्रवेशद्वार तक आता है, फिर अपने अकेलेको अन्दर जाना पड़ता है, उसी प्रकार चैतन्यकी गुफामें जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है, भेदवाद सब छूट जाते हैं।'

आत्मा जैसा है वैसा अंतर अनुभवमें आये तब 'मैं ध्रुव हूँ, ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ' आदि विकल्प रुक जाते हैं। जैसे गुफामें जाना हो तो गुफाके प्रवेश द्वार तक मोटर, ताँगा, या रथादि वाहन आते हैं, फिर तो उसे वाहन छोड़कर अकेले अन्दर जाना पड़ता है; उसी प्रकार जीव त्रैकालिक सहज ज्ञायकगुफामें—निज आत्मस्वरूपमें भीतर जाता है तब उसे 'मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ' ऐसे विकल्पके वाहन छूट जाते हैं। क्या कहा? विकल्प उठते हैं; वह वाहन हैं, विकल्परूपी वाहन भीतर चैतन्यगुफामें प्रवेश करनेमें काम नहीं आते। विकल्पसे छूटकर जीव स्वयं अकेला भीतर ज्ञायक गुफामें प्रवेश करता है। आठ वर्षकी बालिका हो या सातवें नरकका नारकी हो, परन्तु जब वह सम्यक्त्व प्राप्त करता है—भीतर आत्मगुफामें जाता है तब उसे भी—नारकीको इतने भीषण दुःखोंके बीच भी—मैं शरीरसे, वेदनासे तथा विकल्पसे भिन्न शुद्ध ज्ञायक आनन्दमूर्ति हूँ; ऐसे विकल्परूप वाहन छूट जाते हैं, स्वयं भेदके विकल्पोंसे न्यारा होकर अकेला अन्तरमें स्वानुभूतिकी शीतलतायुक्त गुफामें प्रवेश करता है।

जैसे बर्फकी पचास-पचास मनके शीतल पाट होते हैं, उसीप्रकार यह आत्मा अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अविकारी अतीन्द्रिय चैतन्यमय शीतलस्वभावका पाट पड़ा है। बर्फकी शीतलता जड़ है, यह स्वानुभूतिकी शीतलता चेतन है। अहा! इस शरीर तथा कर्मके रजकणोंसे भिन्न, पुण्य और पापके भावोंसे भिन्न तथा 'मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ' ऐसे विकल्पसे भी भिन्न सहज ज्ञायक तत्त्व मैं हूँ। उस ज्ञायक तत्त्वमें प्रविष्ट होनेके लिये प्रथम उस प्रकारके विकल्प आते हैं, परन्तु उन विकल्पोंको छोड़कर भीतर स्वरूपमें प्रवेश करे तब आत्माका अनुभव होता है। यह तो अभी चौथे गुणस्थानकी—धर्मके प्रारम्भकी—बात है। पाँचवें और छट्ठे गुणस्थानकी बात तो कोई अलौकिक है भाई! यहाँ कहते हैं कि—चैतन्यकी गुफामें जीव स्वयं अकेला प्रवेश करता है; वहाँ सब भेदभाव छूट जाते हैं। क्या कहते हैं? शुभाशुभ विकल्प तो छूट जाते हैं, किन्तु 'मैं गुणी हूँ और मुझमें ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुण हैं' ऐसा भेद भी छूट जाता है।

समयसारकी ११वीं गाथाके भावार्थमें कहा है :—(१) प्राणियोंको भेदरूप व्यवहारका पक्ष—राग, पर्याय और भेदके आश्रयसे लाभ होगा ऐसा आग्रह—तो अनादिकालसे ही है; (२) शुभरागसे लाभ होगा, व्यवहार आचरणसे अंतरमें लाभ होगा, ऐसा उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं; (३) तथा जिनवाणीमें व्यवहारका उपदेश शुद्धनयका हस्तावलम्ब (सहायक) जानकर बहुत किया है, परन्तु उस व्यवहारके आश्रयका फल संसार ही है। इसलिये उपकारी ज्ञानी गुरुने शुद्धनयके आश्रयका फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानतासे दिया है।

'पहिचाननेके लिये 'चेतन कैसा है', 'यह ज्ञान है', 'यह दर्शन है', 'यह विभाव है', 'यह कर्म है', 'यह नय है' परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे वहाँ सब छूट जाते हैं।''

वस्तुस्वरूप जाननेके लिये पहले विकल्प आते हैं—प्रमाण, नय और निक्षेपके तथा 'यह चेतन है, जानना–देखना उसका स्वभाव है; शुभाशुभ रागभाव स्वभावसे विरुद्ध विभाव हैं; कर्म हैं, कर्म हैं वे जड़ हैं, मैं उनसे भिन्न शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसे विकल्प आते हैं—परन्तु जहाँ भीतर चैतन्यगुफामें प्रवेश करे वहाँ वे सब भेदविकल्प छूट जाते हैं।

अहा! लोग यह बात नहीं समझते इसलिये उन्हें सोनगढ़का 'एकान्त' लगता है। उन्हें ऐसा लगता है कि—व्रत, तप, भक्ति एवं व्यवहारसे कल्याण होगा ऐसा तो कहते नहीं है और अंतरमें मात्र निजात्माके आश्रयसे कल्याण होगा ऐसा कहते हैं; इसलिये वह एकान्त निश्चय है। उन्हें सम्यक् निश्चयकी बात समझमें नहीं आती इसलिये वे 'एकान्त' कहते हैं तो भले कहें। प्रभु! परन्तु कल्याणका मार्ग तो यह एक ही है। अंतरमें चैतन्य आनंदकंदकी दृष्टि करके जब उसमें निमग्न होता है तब व्यवहारके सब भेदभंग छूट जाते हैं, अकेला आनन्दमय आत्मानुभव रह जाता है और तब सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा प्रभुका मार्ग है। यह प्रभुकी पुकार है। अहा! बेन कहती हैं वही भगवान कहते हैं और भगवान कहते हैं वही बेन कहती हैं।

समयसारकी १४२वीं गाथाकी टीकामें आये हुए ७०वें कलशके भावार्थमें कहा है: इस ग्रंथमें प्रथमसे ही व्यवहारनयको गौण करके और शुद्धनयको मुख्य करके कथन किया गया है। 'मैं बद्ध हूँ' आदि व्यवहारनयका तो निषेध करते ही आये हैं, परन्तु 'मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ' ऐसे जो निश्चयनयके विकल्प उठते हैं उनका भी हम निषेध करते हैं; क्योंकि स्वरूपमें प्रविष्ट होनेके लिये वे विकल्प कार्यकारी नहीं होते। ऐसे विकल्पों तक आया परन्तु 'उससे क्या?' उससे तेरे आत्माको क्या लाभ हुआ? जब भीतर स्वरूपमें प्रवेश करता है, आनन्दके नाथका अनुभव करता है, तब वे सब विकल्प छूट जाते हैं।

'एक-एक विकल्प छोड़ने जाय तो कुछ नहीं छूटता, अन्दर जानेपर सब छूट जाता है।'

व्यवहारके भेदोंको, नयविकल्पके पक्षोंको—एक-एक नयपक्षको, एक-एक विकल्पको—क्रमशः छोड़ने जाय तो वे नहीं छूटते, परन्तु अंतरमें ज्ञानानन्दस्वभावमें जहाँ एकाग्रता होती है वहाँ समस्त नयविकल्प एकसाथ छूट जाते हैं। अहा! ऐसा उपदेश? प्रभु! मार्ग तो यह है; उसका यथावत् निर्णय तो करना चाहिये ना! आया कुछ समझमें? भीतर ज्ञायकस्वरूपमें जानेपर सब विकल्प छूट जाते हैं, एक-एक विकल्प गिन–गिनकर छोड़ना नहीं पड़ता। भीतर ज्ञायक प्रभुमें उन्मुख होनेसे, मग्न होनेसे सब विकल्प छूट जाते हैं और आत्मानुभव प्राप्त होता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र है। बाकी सब थोथी बातें हैं।

ता. २६-८-७२

बेनका आत्मा तो मंगलमय है, धर्म रतन है। हिन्दुस्तानमें बेन जैसी अद्वितीय महिलाओंमें कोई नहीं है, अजोड़ रत्न हैं। महिलाओंका तो महाभाग्य है कि ऐसा रत्न प्राप्त हुआ।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६७

ता. १७–८–७८

वचनामृत–१८१

निर्विकल्पदशामें 'यह ध्यान है, यह ध्येय है' ऐसे विकल्प टूट चुकते हैं। यद्यपि ज्ञानीको सविकल्पदशामें भी दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है, तथापि पंचपरमेष्ठी, ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादि सम्बन्धी विकल्प भी होते हैं; परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होनेपर विकल्प जाल टूट जाता है, शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। उग्र निर्विकल्प दशामें ही मुक्ति है।—ऐसा मार्ग है।।१८१।।

'निर्विकल्पदशामें 'यह ध्यान है, यह ध्येय है' ऐसे विकल्प टूट चुकते हैं।'

विषय कुछ सूक्ष्म है। अनादिकालमें अनंत अवतार धारण किये, अनंतबार मुनिपना धारण किया, पंच महाव्रत, पाँच समिति तथा तीन गुप्ति आदिका निर्दोष पालन किया, परन्तु यह ज्ञानानन्दमूर्ति निज आत्मा क्या वस्तु है और उसके आश्रयसे प्रगट होनेवाला जो सम्यग्दर्शन वह क्या वस्तु है—उसकी सच्ची प्रतीति कभी प्रगट नहीं की। ज्ञायक आत्माकी दृष्टि और अनुभव एक क्षण भी कभी नहीं किया। प्रभु! उसके बिना जन्म-मरणका दुःख नहीं मिटेगा।

प्रश्न :—सम्यग्दर्शन प्रगटे तब क्या होता है?

उत्तर :—सम्यग्दर्शन धर्मका प्रारम्भ है, प्रथम सोपान है। वह प्रगट होनेपर, अंतरमें पूर्णानन्द ज्ञायक आत्माकी दृष्टि होनेपर, निर्विकल्प स्वानुभवदशामें 'अंतरमें यह एकाग्र होना सो ध्यान है तथा यह त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक सो ध्येय है' ऐसे विकल्प भी छूट जाते हैं, अभेद ज्ञायकका अतीन्द्रिय आनन्दरस अनुभवमें आता है। सूक्ष्म बात है भाई! कभी सुनी नहीं है, परिचय नहीं किया, वहाँ अनुभवनेकी तो बात ही कहाँ रही? अंतरमें जब निर्विकल्प ध्यान हो तब सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति प्रगट होती है।

शुभाशुभभाव--बंधका कारण है। आत्मज्ञान होनेके बाद भी मुनिको जो व्रतादिके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभभाव आते हैं वे प्रमादभाव संसारके कारण हैं। अरेरे! जीवने कभी आत्मस्वरूपको नहीं समझा और धर्मके नामसे पुण्य करके चौरासी लाख योनिमें जन्म-मरण करके दुःखी हुआ। संसारमें परिभ्रमण करते-करते अनंतबार मनुष्यपना प्राप्त किया, अनंतबार बड़ा अरबपति सेठ हुआ, परन्तु 'मैं कौन हूँ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है? कहाँसे आया हूँ और कहाँ जाऊँगा?' यह बात सुननेका अवकाश नहीं मिला। कभी पापभाव छोड़कर पुण्यभाव करता है, परन्तु वह भी संसारमें परिभ्रमणका कारण है। शुभरागसे भी रहित अंतरमें ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माका लक्ष बाँधकर श्रद्धान-ज्ञान होनेसे निर्विकल्पदशाकी प्राप्तिके कालमें ध्यान और ध्येयका विकल्प भी छूट जाता है, अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव रह जाता है; उसे धर्म कहते हैं, और वह भवपरिभ्रमणके अंतका कारण है।

'यद्यपि ज्ञानीको सविकल्पदशामें भी दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है, तथापि पंचपरमेष्ठी, ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादि सम्बन्धी विकल्प भी होते हैं; परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होनेपर विकल्प जाल टूट जाता है, शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते।'

'मैं ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध पूर्ण परमात्मपदार्थ हूँ' ऐसी अंतरमें दृष्टि एवं अनुभूति होनेपर भी ज्ञानी धर्मात्माको सविकल्पदशामें अशुभ तथा शुभराग आता है। जब तक सम्पूर्ण वीतराग न हो तब तक धर्मीको भी अरिहंतादि पंच परमेष्ठी, वीतराग देव-शास्त्र-गुरु आदि परके प्रति लक्ष जाता है, उनकी भक्ति, पूजा एवं स्मरण आदिके शुभभाव आते हैं, ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादिके विकल्प भी उठते हैं, परन्तु अंतरोन्मुखता द्वारा निर्विकल्प आत्मानुभूति होनेसे वे सब विकल्प छूट जाते हैं।

सविकल्पदशाके समय भी ज्ञानीकी दृष्टि तो निरंतर निज ध्रुव ज्ञायक परमात्मतत्त्व पर ही होती है, शुभाशुभभाव आयें किन्तु अंतरमें उनका किंचित् भी स्वामित्व नहीं है, उच्चसे उच्च शुभभावके प्रति भी अंतरमें रुचि नहीं है।

प्रश्न :—जैनधर्म ऐसा होता है?

उत्तर :—जैनधर्म अर्थात् वस्तुका धर्म, आत्माका धर्म। जैनधर्म वह कोई पक्ष, सम्प्रदाय या वाड़ा नहीं है। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। देव-शास्त्र-गुरु आदि पर निमित्तका तथा रागका लक्ष छोड़कर, वर्तमान एक समयकी पर्यायका लक्ष छोड़कर 'मैं ही ध्याता, ध्यान और ध्येय हूँ' ऐसे विकल्प भी छोड़कर अंतरमें अपने पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्माका ध्यान हो तब समस्त विकल्प जाल टूटकर सम्यग्दर्शन होता है, स्वात्मानुभूति होती है। निर्विकल्पदशामें अधिक काल न रह सके इसलिये विकल्प आते हैं, परन्तु उस समय भी दृष्टि तो निरंतर स्व-परमात्मतत्त्व पर ही है; संयोग, राग या पर्याय पर नहीं।

अरेरे! यह बात जीवने कभी सुनी नहीं है, सुननेका अवसर मिला तो उसने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समझनेकी परवाह नहीं की। अनन्तबार मनुष्य हुआ, अनन्तबार महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लिया, अनन्तबार भगवानके समवसरणमें भी गया, किन्तु शरीर और रागसे भिन्न निज परमात्मतत्त्वको लक्षमें नहीं लिया। निजकल्याणकी बात ध्यानमें नहीं ली। केवलीके आगे रह गया कोरा।

जब मैं १७-१८ वर्षकी उम्रमें दुकान पर बैठता था तब सज्झायमाला पढ़ता था। उसमें एक सज्झाय (स्तवन)में ऐसा आता है कि—केवलीके आगे रह गया कोरा। तब मनमें ऐसा लगता था कि यह क्या कहते हैं? केवलज्ञानीके पास गया, वाणी सुनी, परन्तु हृदय नहीं भीगा। तीन लोकके नाथ परमात्माके पास भी रुखेका रूखा रहा। अनंतबार सुना किन्तु उसका हृदय कोरेका कोरा रहा, अंतरमें किंचित् भी स्पर्श नहीं होने दिया।

सज्झायमालामें दूसरी एक बात ऐसी आती है कि :—'द्रव्यसंयमसे ग्रैवेक पायो, फिर पीछो पटक्यो।' आत्मदर्शन-सम्यग्दर्शनके बिना बाह्यमें मुनिपना लिया, हजारों रानियाँ छोड़ीं, परन्तु वे पंचमहाव्रतके परिणाम भी बंधका कारण हैं। बाह्य क्रियाकाण्ड तथा मंद कषायके परिणामसे शुक्ल लेश्याके बलसे—शुक्ल ध्यानके नहीं—मरकर नववें ग्रैवेयकमें जाते हैं; यहाँ मुनिदशामें कोई विरोधी शत्रु चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तथापि क्रोध न करे ऐसी बाह्य समता रखे, परन्तु अंतरमें अखण्डानन्दस्वरूप अपने परमात्मतत्त्वकी प्रतीति एवं वेदन न होनेसे फिर पीछे गिरा। वहाँसे गिरकर क्रमशः नरक-निगोदमें जायगा। यह त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र भगवानका वचन है।

धर्मीकी दृष्टि निरंतर निज परमात्मतत्त्व पर ही होती है। पंच परमेष्ठीका या ध्याता-ध्यान-ध्येय आदि सम्बन्धी विकल्प आये तब भी निज द्रव्यस्वभावमेंसे तनिक भी नहीं हटती। दृष्टि अंतर्मुख होनेसे निर्विकल्प स्वानुभूति होती है तब वह विकल्प टूट जाता है। शुभाशुभ विकल्प बंधके कारण हैं। स्वानुभवके कालमें वे विकल्प नहीं रहते। समयसारकी १४२वीं गाथामें भी ऐसा ही आता है कि अंतर्दृष्टि करनेसे जो स्वानुभूति हुई उस कालमें 'मैं अबद्ध हूँ', शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ' ऐसे विकल्प छूट जाते हैं।

प्रभु! यह बात समझने जैसी है। अंतरमें ज्ञायक परमात्माकी दृष्टि करनेसे भवभ्रमणको छेदनेवाला ऐसा सम्यग्दर्शन होता है। और तो सब अनंतबार करके जन्म-मरणमें भटककर हैरान हुआ; आत्माको कहीं शान्ति नहीं मिली। अंतरमें जहाँ शान्ति है वहाँ दृष्टि नहीं की। पुण्य-पापके भाव विकल्प हैं, दुःखरूप हैं, वहाँसे दृष्टि नहीं हटी। यहाँ बेन कहती हैं : ज्ञानीको निर्विकल्प स्वानुभूति होनेपर विकल्पजाल छूट जाता है, शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते, मात्र अतीन्द्रिय परमानन्द रहता है।

'उग्र निर्विकल्पदशामें ही मुक्ति है।—ऐसा मार्ग है।'

तीन कषायके अभावस्वरूप संयमदशामें अंतरमें उग्र निर्विकल्प वीतराग परिणति हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तब मोक्ष होता है। सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति प्रगट होनेपर भी, नीचे अस्थिरताके कारण शुभाशुभ विकल्प होते हैं परन्तु दृष्टिमें उनका आश्रय नहीं रहता। उग्र निर्विकल्पदशा हो तब अस्थिरताका अंश नहीं रहता। उग्र निर्विकल्पदशामें ही मुक्ति है।—यह सर्वज्ञ त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवका कहा हुआ मार्ग है; अन्य सब अमार्ग हैं।

*

वचनामृत—१८२

'विकल्प छोड़ दूँ', विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करनेसे विकल्प नहीं छूटते। मैं यह ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूतिसे भरपूर तत्त्व हूँ—इसप्रकार अंतरसे भेदज्ञान करे तो उसके बलसे निर्विकल्पता हो, विकल्प छूट जायँ॥१८२॥

'विकल्प छोड़ दूँ', विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करनेसे विकल्प नहीं छूटते।'

भगवान ज्ञायक आत्मा निर्विकल्प परमात्मतत्त्व है। उस ज्ञायकतत्त्वमें जानेके लिये 'यह विकल्प छोड़ दूँ', 'यह विभाव छोड़ दूँ',—इसप्रकार विकल्प करते रहनेसे विकल्प नहीं छूटते। 'विकल्प छोड़ दूँ' ऐसा विकल्प भी राग है, दोष है; धर्म तो कोई निर्दोष अपूर्व वस्तु है। पूर्वमें अनन्तबार जैनकुलमें जन्म लिया, अनन्तबार द्रव्य श्रावक हुआ, पूजा-भक्तिके हेतु अनन्तबार जिनमन्दिर बनवाये, परन्तु वह सब शुभराग है। निज शुद्धात्माकी प्रतीति बिना—सम्यग्दर्शन बिना—पूर्व अनन्तकालमें एक क्षण भी धर्म नहीं हुआ।

प्रश्न :—दिगम्बर जैनकुलमें जन्म लेनेवाले तो सम्यग्दर्शन लेकर ही आते हैं ना?

उत्तर :—अरे भाई! दिगम्बर जैनकुलमें तो जीवने अनन्तबार जन्म लिया है। अनन्तबार जैनसाधु हुआ, परन्तु उसमें आत्माको क्या मिला? 'मुनिव्रतधार अनन्तबार ग्रीवक उपजायौ'—स्वर्गमें अनन्तबार गया, परन्तु 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' पंचमहाव्रतके परिणाम भी राग हैं, आस्रव हैं, दुःख हैं।

यहाँ कहते हैं—अंतरमें निर्विकल्प ज्ञायक वस्तु परमात्मस्वरूपमें बिराजमान है; उसमें विकल्प छोड़ूँ, राग छोड़ूँ—ऐसा करते रहनेसे विकल्प नहीं छूटते। मार्ग तो ऐसा है प्रभु!

मैं यह ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूतिसे भरपूर तत्त्व हूँ—इसप्रकार अंतरसे भेदज्ञान करे तो उसके बलसे निर्विकल्पता हो, विकल्प छूट जायँ।'

मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विभावसे भिन्न मैं तो प्रभु, ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूतिसे भरपूर हूँ, ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—इसप्रकार अंतरमें सच्ची आत्म प्रतीति करे तो उस अंतर्मुखताके बलसे निर्विकल्पता हो, विकल्प छूटें और अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप स्वात्मानुभूति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त हो। धर्मी जीवको स्वानुभूति प्राप्त होनेके बाद भी राग तो आता है, परन्तु वह उसका मात्र ज्ञाता है—स्वामी नहीं है, उसे अपना कर्तव्य नहीं मानता। बात कुछ सूक्ष्म है, जीव अनन्तवार जैन श्रावक तथा द्रव्यलिंगी मुनि हुआ। परन्तु रागरहित पूर्णानन्दसे भरपूर अपना जो त्रैकालिक शुद्धस्वरूप है उसपर कभी दृष्टि नहीं की, उसका अंतर्मुख होकर अनुभव नहीं किया।

ज्ञान-आनन्दादि अनन्त वैभवसे भरपूर मैं ज्ञायक तत्त्व हूँ—ऐसा अंतरसे भेदज्ञान करे, व्यवहारके जो विकल्प आयें उनसे अपनेको भिन्न जाने, गेहूँ और कंकरोंको पृथक् करते हैं तदनुसार भगवान आत्माको रागसे भिन्न करे, तो उसके बलसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, विकल्प छूटते हैं और निर्विकल्पता होती है। शुभाशुभ रागकी वृत्तियाँ उठें वह मैं नहीं हूँ, मैं तो अनन्त ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञायक परमात्मा हूँ—ऐसा भेदज्ञान करे तो विकल्प छूटे और अतीन्द्रिय आनन्दकी प्राप्ति हो। 'समयसार-नाटक'में कहा है :—

भेदज्ञान साबू भयौ, समरस निरमल नीर।
धोबी अंतर आतमा, धोवै निज गुन चीर॥

सम्यग्दृष्टि अंतरात्मस्वरूप धोबी, भेदज्ञानरूप साबुन तथा समतारसरूप निर्मल जल द्वारा आत्मगुणरूप वस्त्रको धोता है। यह तो अभी चौथे गुणस्थानकी बात है भाई! समतारसरूप निर्मल जलके द्वारा भेदज्ञानी अंतरात्मा अपने गुणरूप वस्त्रको धोता है, उसमें जो राग है उसे भिन्न करता है। श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव समयसारकी टीकामें कहते हैं :—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

अभी तक जो कोई मुक्तिको प्राप्त हुए हैं वे भेदज्ञानसे—अपनेको रागसे भिन्न करके—प्राप्त हुए हैं; और जो कोई बंधनमें पड़े हैं वे भेदज्ञानके अभावसे—रागकी भिन्नताके अभावसे—पड़े हैं।

प्रश्न :—आत्मा तो सिद्धस्वरूप है ना?

उत्तर :—आत्मा स्वभावसे सिद्धस्वरूप है ऐसा दृष्टिमें स्वीकार कहाँ है? 'मैं सदा सिद्धसमान शुद्ध हूँ'—ऐसा स्वीकार उसने दृष्टिमें किया है? समयसार-नाटकमें कहा है :—

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महातम घेरौ॥
ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुणनाटक आगम केरौ।
जासु प्रसाद सधै शिवमारग, वेगि मिटै भववास बसेरौ॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मेरा त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूप सदा चैतन्यरूप, निरूपम तथा अमूर्तिक सिद्धसमान है; परन्तु मिथ्यात्वरूप गाढ अंधकारके कारण आत्मा रागकी क्रियाको अपनी मानकर मोहमें प्रविष्ट हो गया है, अज्ञानसे मोह एवं रागको आत्माके साथ जोड़ दिया है। अब रागसे भिन्न अपनी ज्ञायक वस्तुकी मुझे प्रतीति हुई है, जिसके द्वारा मैं समयसार नाटक कहूँगा, कि जिसके फलरूपमें रागके विकल्पको तोड़कर सिद्धपद सधता है, मुक्ति प्राप्त होती है और भववास अथवा घटवास—शरीरमें निवास करना—शीघ्र मिट जाता है। यह घट—अस्थि-चर्मका शरीर तो जीवको अनन्तबार मिला है। शरीर भववास तो जीवको कलंक है, लज्जाजनक है। श्री योगीन्द्रदेव कहते हैं :—

नर्कवास सम जर्जरित जाने मलिन शरीर;
करि शुद्धातम भावना, शीघ्र लहे भवतीर।
ध्यानवडे अभ्यंतरे, देखे जे अशरीर;
शरमजनक जन्मो टले, पिये न जननी क्षीर।

भवकलंक—शर्मजनक जन्मोंका अंत करनेके लिये, शरीर और रागसे भिन्न अपने ज्ञानानन्दमय स्वरूपका भेदज्ञान द्वारा अनुभव करके, अस्थिरताके रागसे भी भिन्न होकर, भीतर स्वरूपमें स्थिर हो जाना ही एक सच्चा उपाय है, क्योंकि स्वरूपमें उग्र निर्विकल्प स्थिरतासे ही मुक्तिदशा प्राप्त होती है।

अंतरमें स्व-परका, स्वभाव–विभावका भेदज्ञान करे तो उसके बलसे विकल्प छूटते हैं; निर्विकल्पता होती है और ज्ञानानन्दादि अनंत विभूतियोंसे भरपूर निज ज्ञायक प्रभुका संवेदन प्रगट होता है। भरत चक्रवर्ती, जिन्हें हजारों राजा चँवर ढोरते थे, जिनके हजारों रानियाँ थीं तथापि क्षायिक सम्यग्दृष्टि, आत्मज्ञानी और अतीन्द्रिय आनन्दांशके अनुभवी को किंचित् राग आता था, किन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं है—ऐसी ज्ञानधारा अंतरमें निरंतर परिणमित होनेसे, चक्रवर्ती पद पर रहते हुए भी तथा बाहुबलीजीके साथ युद्ध करने पर भी अंतरमें उसका स्वामित्व न होनेसे वे तो मात्र उसके ज्ञाता ही हैं। यह दशा मात्र धारणा ज्ञानसे प्रगट नहीं होती, अंतरमें भेदज्ञान होनेसे प्रगटती है।

श्री ऋषभदेव भगवानने अष्टापद पर्वत पर मोक्षदशा प्राप्त की। भगवानके वियोगसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तीन ज्ञानके धारी और तद्भव मोक्षगामी ऐसे भरत चक्रवर्तीको रुदन आ गया। अभी रागदशा है ना? 'अरेरे! भरतक्षेत्रमें जिनेन्द्रसूर्यका उदय हुआ था वह आज अस्त हो गया; प्रभुका विरह हुआ'—इसप्रकार अंतरमें खेदखिन्न होते हैं तब इन्द्र उनसे कहता है : 'भरतजी! आप क्यों रुदन करते हैं? आप तो चरमशरीरी हैं, हमें तो अभी एक भव करना है।' भरतजी उत्तर देते हैं : 'हे मित्र! सुनो; मैं जानता हूँ कि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैं इसी भवमें मोक्ष प्राप्त करनेवाला हूँ, परन्तु मेरे अंतरमें भूमिकानुसार राग वर्तता है, इसलिये भगवानके विरहका विषाद हो आता है और रुदन आ जाता है। विषादके परिणाम तथा रुदनकी क्रिया होनेपर भी मैं उसका कर्ता या स्वामी नहीं हूँ।' दृष्टि-अपेक्षासे तो वे मात्र ज्ञाता ही हैं।

मुनियोंको भी पंचमहाव्रतादिका विकल्प आता है, ज्ञानी श्रावकको भी विषयका राग आता है, परन्तु राग विभाव है, दुःख है, काले सर्प जैसा है, उससे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा भेदज्ञान निरन्तर परिणमता होनेसे, उस भेदज्ञानके बलसे विकल्प छूट जाता है और निर्विकल्पता—स्वानुभूतिकी वृद्धि —होती है।

वचनामृत–१८३

चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान। बाहर रमणीयता नहीं है। शाश्वत आत्मा रमणीय है, उसे ग्रहण कर। क्रियाकाण्डके आडम्बर, विविध विकल्परूप कोलाहल, उस परसे दृष्टि हटा ले; आत्मा आडम्बर रहित, निर्विकल्प है, वहाँ दृष्टि लगा; चैतन्य रमणता रहित विकल्पोंके कोलाहलमें तुझे थकान लगेगी, विश्राम नहीं मिलेगा; तेरा विश्रामगृह आत्मा है; उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी, शान्ति प्राप्त होगी॥१८३॥

चैतन्यदेव रमणीय है, उसे पहिचान।

क्या कहते हैं? भगवान ज्ञायक आत्मा आनन्दमय रम्य पदार्थ है। 'निजपदमें रमे उसे राम कहते हैं।' आत्मा, क्रीड़ा करनेके लिये रमणीय उद्यान है; उसमें आकुलता उत्पन्न करनेवाले पुण्य-पापके भाव नहीं हैं। ज्ञान, आनन्द, प्रभुत्व आदि अनंत वैभवसे भरपूर ज्ञायक–उद्यानको जानकर, उसका अनुभव करके, उसमें आनन्दमय क्रीड़ा करना सो धर्म है।

प्रश्न :—हमने तो दया–दान–भक्तिमें धर्म है ऐसा सुना है, आपने यह नया धर्म कहाँसे निकाला?

उत्तर :—भाई! वीतराग भगवानका यह धर्म नया नहीं है, अनादिकालसे है। सुननेको नहीं मिला इसलिये नया लगता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—ऐसा मार्ग किसने कहा?

उत्तर :—अरे प्रभु! अनंत तीर्थंकर, अनंत केवली और अनंत दिगम्बर जैन संत हुए; उन सबने इसीप्रकार मार्गकी प्ररूपणा की है। प्रवचनसारकी ८२वीं गाथामें कहा है :—

अर्हंत सौ कर्मोतणो करी नाश ए ज विधि वडे,
उपदेश पण एम ज करी, निर्वृत थया; नमुं तेमने।

निज शुद्ध ज्ञायक आत्माकी प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन प्राप्त करके स्वानुभूतिमें विशेष लीन होना वही एक मोक्षमार्ग है। तीनोंकालमें अन्य कोई मोक्षका मार्ग नहीं है। सर्व अरिहंत भगवंतोंने इसी विधिसे मोक्ष प्राप्त किया है और अन्य मुमुक्षुओंको भी उसी मार्गका उपदेश दिया है। उन भगवन्तोंको नमस्कार हो।

वीतरागका मार्ग इस कालमें लुप्त हो गया है। पं. दीपचन्दजीने 'भावदीपिका' ग्रन्थमें लिखा है : अरेरे! आगमानुसार सच्ची श्रद्धावाले वर्तमानमें कोई दिखाई नहीं देते। सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है उसकी लोगोंको खबर नहीं है। सम्यक्त्वकी बात कहता हूँ तो कोई सुनता नहीं है, विरोध करते हैं; इसलिये वह बात ग्रन्थमें लिखे जाता हूँ। लोगोंको कहाँ अंतरतत्त्वकी पड़ी है? दुनियाको रागका रस है। रागके रसवाले मिथ्यादृष्टि हैं, वे भीतर स्वरूपमें नहीं जा सकते। राग आत्माका स्वभाव नहीं है। जिसे रागका प्रेम है उसे स्वभावका अनादर है। परमात्मप्रकाशमें कहा है कि—जिसे आत्मा उपादेय है उसे राग हेय है और जिसे राग उपादेय है उसे आत्मा हेय है। धर्मी जीवको, अनंत आनंदका नाथ निज ज्ञायक आत्मा रमणीय, उपादेय और आदरणीय है; अज्ञानीको शुभराग उपादेय एवं आदरणीय है उसे भगवान आत्मा हेय है।

यह तो केवलीके नियम हैं। मैं चैतन्यदेव रमणीय हूँ। रमणीय अर्थात् जिसमें रमनेसे आनन्दकी प्राप्ति हो ऐसी रम्य वस्तु हूँ। शुभाशुभ रागमें रमनेसे दुःख होता है। चक्रवर्तीके छियानवे हजार रानियाँ होती हैं; उनके प्रति जो राग आता है वह दुःख है; छूट नहीं सकता इसलिये आता है, परन्तु वह है दुःख। चैतन्यदेव उससे भिन्न आनन्दस्वरूप है।

१७ वर्षकी उम्रमें पालेजमें रामलीला देखने गया था। उसमें वैराग्यकी ऐसी धून चढ़ी कि उस धुनमें छह कडियोंका पद बन गया था। उसमें पहली पंक्ति थी : 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव।' मोक्षरमणीका वरण करनेवाला तू ही देवाधिदेव है, इस अस्थि-चर्मकी स्त्रीके साथ रमनेवाला तू नहीं है। और उसके बाद वैराग्यप्रेमके कारण ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा ले ली।

प्रभु! तू चैतन्य देवाधिदेव है। ज्ञानादि एक-एक शक्तिमें रमनेसे आनन्द प्राप्त हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसी अनंतानंत शक्तियोंकी रमणीयता तेरे आत्मामें भरी पड़ी है; उसे पहिचान, उसका ज्ञान कर तथा उस ओर उन्मुख हो शास्त्रकी जानकारीसे अंतरमें ज्ञायकदेवकी पहिचान नहीं होती।

'बाहर रमणीयता नहीं है।'

शरीर, वाणी तथा रुपये-पैसेमें तो रमणीयता नहीं है, परन्तु पुण्य–पापके भावोंमें भी रमणीयता नहीं है। अनंत शक्तिका सागर ऐसे चैतन्यदेवकी रमणीयताके निकट बाहरकी रमणीयता किसी विसातमें नहीं है।

'शाश्वत आत्मा रमणीय है, उसे ग्रहण कर।'

प्रभु! तू शाश्वत है ना! जिसकी सर्वथा नवीन उत्पत्ति या सर्वथा नाश नहीं है ऐसे निज शाश्वत ज्ञायकभावको जान और उसे ग्रहण कर। राग आये परन्तु उसे ग्रहण न कर। अहाहा! शाश्वत ज्ञायक-आत्मा रमने योग्य रमणीय पदार्थ है।

'क्रियाकाण्डका आडम्बर, विविध विकल्परूप कोलाहल उस परसे दृष्टि हटा ले; आत्मा आडम्बररहित, निर्विकल्प है, वहाँ दृष्टि लगा, चैतन्य रमणतारहित विकल्पोंके कोलाहलमें तुझे थकान लगेगी, विश्राम नहीं मिलेगा; तेरा विश्रामगृह आत्मा है; उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी, शान्ति प्राप्त होगी।'

व्रत-तपादि भिन्न-भिन्न प्रकारके रागरूप कोलाहल हैं। कल्याण करना हो तो उन परसे दृष्टि हटा ले। भगवान आत्मा विकल्पके आडम्बरसे रहित आनंदमूर्ति शुद्ध ज्ञायक है, वहाँ दृष्टि लगा। चैतन्यकी अतीन्द्रिय रमणतासे, रहित शुभाशुभ रागके कोलाहलमें तुझे थकान लगेगी, वहाँ विश्राम नहीं मिलेगा। सहज ज्ञायकदेव ही तेरा विश्रामगृह है; उसमें जा तो तुझे थकान नहीं लगेगी। शाश्वत शांति प्राप्त होगी। शुभाशुभ विभावमें तो थकान लगेगी।

*

ता. २२-१-७८

हम भगवानके पाससे सीधे ही आ रहे हैं। इस 'वचनामृत'में भगवानकी ध्वनिके मंत्र भर गये हैं। बेनकी (चम्पाबेनकी) क्या बात करें! वे तो ध्यानमें ध्यानमें बस ध्यानमें रहती हैं; आनन्द आनन्द आनन्दमें हैं। उनका शरीर स्त्रीका है इसलिये ख्यालमें नहीं आता। —*पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६८

ता. १८-८-७८

वचनामृत–१८४

चैतन्यकी ओर झुकनेका प्रयत्न होने पर उसमें ज्ञानकी वृद्धि, दर्शनकी वृद्धि, चारित्रकी वृद्धि—सर्व वृद्धि होती है; अंतरमें आवश्यक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, व्रत, तप सब प्रगट होता है। बाह्य क्रियाकाण्ड तो परमार्थतः कोलाहल है। शुभभाव भूमिकानुसार आते हैं परन्तु वह शान्तिका मार्ग नहीं है। स्थिर होकर अंतरमें बैठ जाना वही कर्तव्य है।।१८४।।

'चैतन्यकी ओर झुकनेका प्रयत्न होने पर उसमें ज्ञानकी वृद्धि, दर्शनकी वृद्धि, चारित्रकी वृद्धि—सर्व वृद्धि होती है; अंतरमें आवश्यक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, व्रत, तप सब प्रगट होता है।

सूक्ष्म बात है। अकेला तत्त्वका मक्खन है। समस्त शुभाशुभ विभावभावसे रहित ऐसे, जिसमें चैतन्यस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव, स्वच्छत्वस्वभाव, प्रभुत्वस्वभाव आदि अनंत-अनंत गुणोंके भण्डार भरे हैं ऐसे, भगवान ज्ञायकस्वभावकी ओर झुकनेका पुरुषार्थ करनेसे, चैतन्यस्वरूपमें एकाग्रता करनेसे, अंतरमें सम्यग्ज्ञानकी वृद्धि होती है।

क्या कहा? बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञानसे सम्यग्ज्ञान या उसकी वृद्धि नहीं होती। ग्यारह अंगका ज्ञान अनंतबार किया, परन्तु वह कोई ज्ञान नहीं है। शास्त्र तो परवस्तु है, उसका ज्ञान करना वह तो अपनी पर्यायमें परलक्षी ज्ञानका अंश है; उसे वास्तविक ज्ञान ही नहीं कहते। जब अंतरमें पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्माकी दृष्टि और अनुभव करे तब ज्ञानकी वृद्धि, दर्शनकी वृद्धि, स्थिरताकी वृद्धि—यथासम्भव सर्व वृद्धि, अनंत गुणोंके परिणमनमें शुद्धिकी वृद्धि होती है। अंतरमें पूर्ण चैतन्यसागर उछलता है। अहा! यह कैसे बैठे? जिसप्रकार महासागर जब मध्यबिन्दुसे उछलता है तब उसमें ज्वार आता है, उसीप्रकार चैतन्यस्वभावका आश्रय लेनेसे, ज्ञायकस्वभावकी ओर झुकनेका प्रयत्न करनेसे, आराधनाकी पर्यायमें ज्ञानका ज्वार, दर्शनका ज्वार, चारित्रका ज्वार, सर्व गुणोंके परिणमनमें यथासम्भव ज्वार आता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह ज्वार बाहरसे नहीं किन्तु भीतरसे आता है। ऐसी बात है, आता है कुछ समझमें?

प्रथम तो पर और विभावसे भिन्न ज्ञायकवस्तुकी प्रतीति हो तब शुद्धिकी उत्पत्ति होती है; पश्चात् अंतरस्वरूपमें विशेष एकाग्रता होनेसे आत्माकी निर्मल पर्यायमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी वृद्धि होती है।

शास्त्र श्रवण-पठन या देव-गुरुसे ज्ञान नहीं होता, ज्ञान तो अंतरमें ज्ञायकतत्त्वका आश्रय करनेसे होता है। सम्यक्त्वी कहता है कि मेरी यह बात सुनकर दुनिया मुझे पागल कहती है तो कहो! मीराबाई कहती है :

'मैं तो गिरधरके रंग राची,
राणाजी, मैं तो गिरधरके रंग राची।'

मीराबाई गिरधर (श्रीकृष्ण)के रंगमें रंग गई थी, सम्यक्त्वी अपने आत्माके रंगमें रंग गया है। उसे ज्ञायक आत्माका रंग चढ़ा है।

रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी रुचि हो—आवश्यकता लगे उस ओर वीर्य ढले बिना नहीं रहता। संसारके रागकी रुचि है इसलिये वीर्य अनादिकालसे रागकी ओर ढलता है। 'अहाहा! मैं तो पूर्णानन्दका नाथ, सहजात्मस्वरूप त्रैकालिक ध्रुव वस्तु हूँ'—इसप्रकार जिसे स्वकी लगन लगे, रागकी लगन टूटे, उसका वीर्य पुरुषार्थ और प्रयत्न लगनीके अनुसार स्वरूपोन्मुख हुए बिना नहीं रहता। जिसे शुभाशुभ रागकी रुचि और रस छूट गया है तथा पूर्णानन्दमूर्ति वीतराग जिनस्वरूप निज ज्ञायक आत्माकी रुचि और रस लगा है, उसके अपने वीर्यका झुकाव स्वरूपोन्मुख हो ही जाता है। यह कल्याणकी विधि है।

विरोधी इस बातका विरोध करते हैं, परन्तु साथ ही कुछ लोग कहते हैं कि 'कानजीस्वामीकी बात तो सच्ची है, किन्तु हमने जो पक्ष लिया है उसे कैसे छोड़े?' अरे भाई! यह तो वीतराग परमात्माके घरकी बातें हैं। महावीर भगवान कहते थे और वर्तमानमें सीमंधर परमात्मा कह रहे हैं वही यह बात है भाई! यह किसी पक्ष या सम्प्रदायकी बात नहीं है। अरे भाई! पक्ष सम्प्रदाय या दुनियाकी मान-बढ़ाई कुछ काम नहीं आयँगे। एक दिगम्बर साधु कहते थे कि 'कानजीस्वामी कहते हैं वह श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी बात है; कानजीस्वामीने इस कालमें आचार्य जैसा कार्य किया है।' प्रभु! क्या कहा जाय? यह तो हमारे अंतरकी बात है, बाहरकी नहीं। हम तो पिछले भवमें विदेहमें थे। कुन्दकुन्दाचार्यदेव श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें पधारे तब हम वहाँ उपस्थित थे। भगवानकी वाणीमें आया कि—यह राजकुमार (—कानजीस्वामी) भरतक्षेत्रमें जन्म लेकर कुन्दकुन्दाचार्यदेवके मार्गका प्रवर्तन करेंगे। वहाँसे हम यहाँ आये हैं और बेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(बहिनश्री चम्पाबेन) भी विदेहमेंसे आयी हैं।

पं. टोडरमलजीके 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ग्रन्थका भी कुछ लोग विरोध करते हैं। विरोधी भले ही विरोध करें, किन्तु वह ग्रन्थ बहुत उच्च है। अहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। यहाँ बेन कहती हैं : अतीन्द्रिय आनंद और शान्ति आदिसे छलाछल भरे हुए निज ज्ञायक भगवानकी ओर झुकनेसे ज्ञानकी वृद्धि, दर्शनकी वृद्धि तथा चारित्रकी वृद्धि होती है। पंचमहाव्रतका विकल्प वह राग है, परमार्थतः अचारित्र है; उससे चारित्रकी वृद्धि नहीं होती। अनंत गुणोंके पिण्डस्वरूप निज चैतन्यप्रभुमें एकाग्रता करनेसे, जितने गुण पर्यायमें विभावरूप परिणमे हैं उन सबमें शुद्धिकी वृद्धि होती है। ऐसा मार्ग है भाई!

प्रश्न :—प्रभु! उसका कोई साधन तो बताओ?

उत्तर :—देहादि परसे तथा शुभाशुभ रागसे आत्माकी भिन्नता जानना, भेदज्ञान करना; प्रज्ञा उसका साधन है। राग और ज्ञानकी संधिमें प्रज्ञाछैनी पटकनेसे वे दोनों पृथक् हो जाते हैं। समयसारकी टीकामें (१८१वें कलशमें) प्रज्ञाछैनीकी बात आयी है। छहढालामें कहा है :—

जिन परमपैनी सुबुद्धि छैनी, डारि अंतर भेदिया;
वरणादि अरु रागादि तैं निज भावको न्यारा किया।

समयसारकी स्तुतिमें भी हमारे पं. हिम्मतभाईने लिया है :—

'तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञानने उदयनी संधि सहु छेदवा।'

अपने यहाँ तो कई वर्षोंसे यह बात चल रही है। सोनगढ़में ४४वाँ चातुर्मास चल रहा है। यहाँ यह बात चल रही है कि भगवान आत्मा शान्ति एवं वीतरागतासे भरपूर छलाछल भरा है। उस ओर एकाग्र होनेसे चारित्रकी वृद्धि होती है, अरे, सर्वगुणोंकी यथासम्भव वृद्धि होती है। अहा! बड़ी सरस बात है।

स्वभावोन्मुख पर्याय होनेसे भीतर आवश्यक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, व्रत, तप सब प्रगट होते हैं। पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञायकस्वभावोन्मुख होनेसे जो अकषाय शुद्धि प्रगट होती है उसीका नाम समायिक, प्रतिक्रमण, वंदना, प्रत्याख्यानादि आवश्यक हैं। अंतरमें रागसे हटकर स्वभावमें एकाग्रता करनेसे प्रतिक्रमणादि क्रिया—वीतरागदशा उत्पन्न होती है। समयसारकी ३४वीं गाथामें कहा है कि—'ज्ञान प्रत्याख्यान है' अर्थात् पूर्णानन्द चैतन्यस्वरूपकी ओर झुकनेसे चैतन्यकी निर्मलदशा होती है उसे प्रत्याख्यान कहा जाता है। बाह्य प्रतिक्रमण, भगवानकी स्तुति आदि तो शुभ राग है, बंधका कारण है। वह परमार्थतः प्रतिक्रमण या स्तुति आदि नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रीमद् राजचन्द्र अपने सम्बन्धमें कहते हैं :—

अवश्य कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे;
तेथी देह एक ज धारीने, जाशुं स्वरूप स्वदेश रे।'

श्रीमद् गृहस्थाश्रममें थे। जवाहिरातका व्यापार करते थे। उन्हें आत्मज्ञान हो गया था। वे एक भवमें मोक्ष जायँगे। स्वभावका अनुभव है, परन्तु रागका भाग अभी है वह नहीं छूटता; इसलिये कहते हैं कि—अपरिहार्य कर्मका भोग भोगना शेष है, इसलिये एक शरीर धारण करके स्वरूप-स्वदेशमें जायँगे। हमारा बतन तो शुद्ध चिदानन्दघन निजस्वरूप है, उसमें सदाके लिये स्थिर होकर रहेंगे। (आगे बेनके ४०१वें बोलमें 'वतन'की बात आयी है।) हमारा मूल वतन तो आनन्दादि अनंत गुणके पिण्डस्वरूप असंख्यातप्रदेशी आत्मद्रव्य है। वही हमारा स्वदेश है। हमारी पर्यायमें थोड़ा रागका अंश है और ऐसा लगता है कि वह कुछ काल रहेगा, इसलिये हमारे आत्मामें भीतरसे ऐसा भाव आता है कि एक भव करके हम केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षमें जायँगे। 'तेथी देह एक ज धारीने जाशुं स्वरूप स्वदेश रे।' तथा आता है ना!—'हम परदेशी पंछी साधु जी, आ रे देशके नाहीं रे....' पुण्य और पापके—रागके देशके हम नहीं है। दया, दानादिका जो विकल्प आता है वह विभाव है—परदेश है; उस देशके हम नहीं हैं। ४०१वें बोलमें बेनने भी कहा है : ज्ञानीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपकी ओर ढल रहा है। ज्ञानी अपने स्वरूपमें परिपूर्णतया स्थिर हो जानेके लिये तरसते हैं। स्वरूपकी स्थिरतामें कब पूर्ण हो जाऊँ—इसप्रकार अंतरकी अभिलाषा है। बाह्यमें जो धूलके ग्राम-नगरादि हैं वह तो हमारा स्वदेश नहीं है, परन्तु अंतरमें जो दया, दान, व्रत, तपादि पुण्यके—व्यवहाररत्नत्रयके भाव उठते हैं वह भी हमारा स्वदेश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता। समकीतिको शुभराग भी किंचित् अच्छा नहीं लगता। ज्ञानी कहते हैं : विभावस्वरूप परदेशमें हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंत गुणरूप हमारा परिवार बसता है वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें शीघ्रतासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे निवास करना है जहाँ सब हमारे हैं।

यहाँ कहते हैं : शुद्ध चैतन्यकी ओर झुकनेका पुरुषार्थ करनेसे अंतरमें प्रत्याख्यान, व्रत, तप सब अपनेसे प्रगटता है। अंतरमें विकल्प उठे वह व्रत नहीं, किन्तु शुद्ध स्वरूपमें एकाग्रता होने पर आनन्दके साथ आलिंगित हो जाना, लिपट जाना सो व्रत है; और शुद्ध चैतन्यमें उग्र पुरुषार्थपूर्वक लीन होना, स्वरूपका प्रतपन—देदीप्यमान होना सो तप है।

'बाह्य क्रियाकाण्ड तो परमार्थतः कोलाहल है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाह्य तप—अनशन, उनोदर आदि क्रियाकाण्ड, यदि कषाय मन्द किया हो तो, शुभराग है; वह तो परमार्थतः कोलाहल—क्लेश है।

'शुभभाव भूमिकानुसार आते हैं परन्तु वह शान्तिका मार्ग नहीं है।'

मुनिको व्रतादिके तथा चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वीको भक्ति-पूजा आदिके शुभभाव भूमिकानुसार अशुभ रागसे बचनेके लिये आते हैं, परन्तु वह वीतरागी शान्तिका मार्ग नहीं है।

'स्थिर होकर अंतरमें बैठ जाना वही कर्तव्य है।'

प्रथम चैतन्यस्वरूप ज्ञायकप्रभुके भीतर दृष्टि तथा अनुभव करके पश्चात् भीतर स्वरूपमें स्थिर हो जाना, अंतर आनन्दधाममें जम जाना—विश्राम लेना। अहाहा! क्या कहा? कि—अपने शुद्ध चैतन्य स्वदेशमें पूर्ण विश्राम लेना वही कर्तव्य है; स्वरूपमें स्थिरता ही करने योग्य है।

वचनामृत–१८५

मुनिराज कहते हैं :—चैतन्य पदार्थ पूर्णतासे भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदाकी प्राप्ति करना वही हमारा विषय है। चैतन्यमें स्थिर होकर अपूर्वताकी प्राप्ति नहीं की, अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है वह हमने प्रगट नहीं किया। बाहरमें उपयोग आता है तब द्रव्य-गुण-पर्यायके विचारोंमें रुकना होता है, किन्तु वास्तवमें वह हमारा विषय नहीं है। आत्मामें नवीनताओंका भंडार है। भेदज्ञानके अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की, तो मुनिपनेमें जो करना था वह हमने नहीं किया॥१८५॥

नियमसारके परम-समाधि अधिकारमें १२२वीं गाथाकी टीकामें मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने (२००वें श्लोकमें) जो बात कही है वह बात यहाँ ली है। वहाँ मुनिराजने कहा है कि :—

"किसी ऐसी (अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओंके हृदयमें स्फुरती, समताकी अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदाको जब तक हम नहीं अनुभवते, तब तक हमारे जैसोंका जो विषय है उसे हम नहीं अनुभवते।"

२५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुनिराज कहते हैं :—चैतन्य पदार्थ पूर्णतासे भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदाकी प्राप्ति करना वही हमारा विषय है।'

भगवान चैतन्यदेव ज्ञानानन्दकी पूर्णतासे भरा हुआ अद्‌भुत ज्ञायक पदार्थ है। उसमें राग तो नहीं है किन्तु अपूर्णता भी नहीं है। उस ज्ञायक आत्माके अंदर जाना और अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मसम्पदाकी प्राप्ति करना वही हमारा—मुनियोंका विषय है। व्यवहाररत्नत्रयका शुभराग भी हमारा विषय नहीं है, क्योंकि वह शुभभाव आस्रव है, बंधका कारण है। चैतन्यप्रभु अंतरमें महासम्पदासे भरपूर है। रुपया, हीरा-मोती तो आत्माकी सम्पदा नहीं है, किन्तु पुण्य भी सम्पदा नहीं है; वह तो विपदा-आपदा है। मुनिराज कहते हैं : पंचमहाव्रत पालना वह हमारा विषय नहीं है, अंतरमें आनन्दस्वरूपमें स्थिर हो जाना वह हमारा विषय है—हमारा कर्तव्य है।

'चैतन्यमें स्थिर होकर अपूर्वताकी प्राप्ति नहीं की, अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है, वह हमने प्रगट नहीं किया।'

अहाहा! पूर्णानन्द प्रभुमें लीन होकर पूर्वकालमें कभी नहीं की ऐसी अपूर्व शान्ति तथा जिसका कथन न हो सके ऐसी कोई अद्‌भुत समाधि यदि हमने प्राप्त नहीं की तो हमें जो करना था वह हमने नहीं किया। संकल्प-विकल्पस्वरूप आधि, शरीरके रोग स्वरूप व्याधि और बाह्यमें स्त्री-पुत्र तथा व्यापार-धन्धारूप उपाधिसे रहित वीतराग शान्तदशा सो समाधि है; साधु-बाबा लगाते हैं वह समाधि नहीं है। ऐसा मार्ग है।

जिनको तीन कषायोंका अभाव हो गया है और अंतरमें निज पूर्णानन्द प्रभुका विशेष अनुभव हो गया है तथापि यदि पर्यायमें पूर्णता प्राप्त नहीं की तो वे मुनिराज कहते हैं कि हमने अपना विषय—अपूर्व समाधि प्रगट नहीं की।

'बाहरमें उपयोग आता है तब द्रव्य-गुण-पर्यायके विचारोंमें रुकना होता है, किन्तु वास्तवमें वह हमारा विषय नहीं है।'

मुनिको बाह्यमें जो विकल्प आते हैं, द्रव्य-गुण-पर्यायमें विचार रुकते हैं, वह भी आवश्यक नहीं है। नियमसारकी १४५वीं गाथामें कहा है :—

जे चित्त जोड़े द्रव्य-गुण-पर्यायकी चिन्ता विषे,
तेने य मोहविहीन श्रमणो अन्यवश भाखे अरे!

जो तपोधन निज ज्ञायकतत्त्वमें चित्त नहीं लगाता और द्रव्य, गुण तथा पर्यायोमें मनको रोक रखता है उसे भी, वह पर विकल्पोंके वश होता है इसी कारण, अन्यवश कहा जाता है। पंचमहाव्रत पालनका तथा व्यवहाररत्नत्रयका विकल्प तो नहीं, किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार तक, मुनि कहते हैं, हमारा विषय नहीं है। आता है कुछ समझमें? अहा! कठिन बात कहना और पूछना कि—'आता है कुछ समझमें?' किन्तु बात तो ऐसी है भाई!

अरेरे! यह शरीर तो छूट जायगा भाई! कहाँ डेरा डालेगा? अंतरमें अपने ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं की और रागके प्रेममें रुक गया तो चौरासीके अवतारोंमें परिभ्रमण करेगा; क्योंकि आत्मा तो अनंतकाल रहनेवाला है। यह शरीर तो छूट जायगा, फिर कहाँ रहेगा? जिसे रागका रस है वह तो मिथ्यात्वमें—परिभ्रमणमें रहेगा और जिसे आत्माका रस है वह सादि-अनंतकाल आत्मामें—सुखमें रहेगा।

स्त्री, पुत्र, पैसा और व्यापार–धंधेके विकल्प करना वह तो पाप है, परन्तु अंतरमें द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक वस्तु, गुण अर्थात् त्रैकालिक स्वभाव और पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा—ऐसे विचार आयें वह भी शुभभाव है। त्रैकालिक एकरूप ज्ञायक प्रभुकी अंतर्दृष्टि करके स्थिर होना सो धर्म है। परन्तु उसमें स्थिर न हो सके और द्रव्य-गुण-पर्यायके विकल्पोंमें रुकना हो वह राग है; वास्तवमें वह हमारा विषय नहीं है, अपने सहज ज्ञायकस्वरूपमें रहना—रमना वह हमारा विषय है, कर्तव्य है।

'आत्मामें नवीनताओंका भण्डार है।'

नवीन-नवीन आनन्द, शान्ति, समाधि आदि अनंत नवीनताओंका आत्मामें भण्डार है। पुण्य-पापके भाव वह कोई नवीन नहीं है; वे तो अनादिकालसे करता आया है; वे तो क्लेशरूप भाव हैं। मुनिराज कहते हैं; हमारा विषय तो पूर्णानन्द ज्ञायकमें रहना है; उसमें नहीं–रह सके इसलिये बाहर—द्रव्य–गुण–पर्यायके विचारोंमें परदेशमें आ गये, जहाँ कोई हमारा नहीं है। हमारा अनंतगुणोंका परिवार अंतरमें है। हमें अपने स्वरूपस्वदेशमें शीघ्रतासे जाना है।

लोगोंको बाह्य वस्तुओंमें नवीनता लगती है। पच्चीस पचास लाख रुपयोंकी आमदनी हो, पाँच-दस करोड़की पूंजी हो, तब भी उसे सुख नहीं मिलता। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा स्वयं ही अनंत नवीनताओंका–अचम्भोंका भण्डार है; अनंत ज्ञान, अनंत शांति, अनंत आनंदादि, जो कभी प्रगट नहीं हुई हैं ऐसी अपूर्व समृद्धियोंका अद्भुत भण्डार है। उसकी ओर दृष्टि करके उसमें लीन होनेसे पर्यायमें जो अपूर्व शान्ति प्रगट होती है वह धर्म है।

'भेदज्ञानके अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की, तो मुनिपनेमें जो करना था वह हमने नहीं किया।'

परसे तथा रागसे भिन्न ऐसे निज ज्ञायक प्रभुका भेदज्ञान करके यदि वह नवीनता–अपूर्वता नहीं प्रगट की, अनंत आनन्दमेंसे उसका अंश बाह्यमें न आया—अनुभवमें न आया, शान्तिके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सागरका आश्रय लेकर पर्यायमें अपूर्व शांति–वीतरागता न आयी, भेदज्ञानके गहन अभ्यास द्वारा अंतरमें अतीन्द्रिय अद्‌भुतता प्रगट नहीं हुई तो मुनिपनेमें हमें जो करना था वह हमने नहीं किया। मुनिपनेमें तो यही करना था। नियमसारके कलशमेंसे बेनने यह बात कही है।

अहा! मुनिपना किसे कहा जाता है? मुनिपना अर्थात् परमेष्ठिपद। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्दमें केलि करते-करते, झूलते-झूलते केवलज्ञानपद प्राप्त करते हैं। नियमसारके टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे, आचार्य नहीं थे। श्री कुन्दकुन्द भगवान तथा अमृतचन्द्र आचार्यपद पर थे। श्री पद्मप्रभ मुनिराज टीका करते हुए कहते हैं कि—हमारा विषय जो नवीनता–स्थिरता, शांति, आनंद आदिमें अपूर्वता—वह यदि हमने भेदज्ञानके तीक्ष्ण अभ्यास द्वारा प्रगट नहीं की, तो मुनिपनेमें हमें जो करना था वह हमने नहीं किया। अंतर्‌स्वरूपमें दृष्टि लगाकर आनन्दमें स्थिर हो जाना वह मुनिपनेका कर्त्तव्य है मुनिपनेका जो कार्य है वह हमने नहीं किया। अहाहा! भीतर स्वरूपमें स्थिर हो जाना था—वह कार्य हमने नहीं किया तो हमने कुछ नहीं किया।

*

साधकोंकी दशा जगतसे निराली होती है। कोई कोई बार स्वरूपमें सहजरूपसे—निर्विकल्परूपसे स्थिर हो जाते है, और फिर बाहर आते है तब भी भेदज्ञानकी—ज्ञाताधाराकी—सहज समाधि परिणमति रहती है। स्वरूपमें लीन होते हैं तब आत्माके अचिंत्य अनन्त गुणपरिणमनकी तरंगोको वेदते हैं। ऐसा होते होते, साधकधारा बढ़ते बढ़ते मुनिपनेकी दशा प्रगटते, मुनिपना आता है और क्रमसे श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्रगटाते हैं, स्व-पर प्रकाशक—स्वभाववाला ज्ञान पूर्णरुपसे परिणमता है, आनन्द आदि अनन्त गुण पूर्णरूपसे परिणमते हैं। उस दशाको धन्य है, बारम्बार धन्य है।

सुख और आनन्द स्वरूपमें है, विभाव सब दुःखरूप और उपाधिरूप है।

—पू. बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६९

ता. १६-८-७८

वचनामृत–१८६

गृहस्थाश्रममें वैराग्य होता है परन्तु मुनिराजका वैराग्य कोई और ही होता है। मुनिराज तो वैराग्य महलके शिखरके शिखामणि हैं।।१८६।।

'गृहस्थाश्रममें वैराग्य होता है परन्तु मुनिराजका वैराग्य कोई और ही होता है।'

क्या कहते हैं? कि—ज्ञानी धर्मात्मा गृहस्थाश्रममें हो, गृहस्थदशामें चक्रवर्तीका राज्य हो, परन्तु अंतरमें उसे पूर्णानन्द प्रभु ऐसे निजात्माका स्पर्श करके अतीन्द्रिय आनंद वर्तता है इसलिये वह साधक धर्मात्मा कहलाता है। व्रत-तप और पूजा-भक्ति करे इसलिये वह धर्मी साधक है ऐसा नहीं है; क्योंकि व्रतादिके भाव तो शुभराग है, आस्रव है। शुभाशुभभावसे भिन्न पूर्णानन्दमूर्ति ध्रुवज्ञायकस्वभावकी प्रथम दृष्टि एवं अनुभूति करनेसे जब सम्यग्दर्शन होता है तब उसे समस्त प्रकारके रागसे विरक्तिस्वरूप वैराग्य साथ ही होता है। साधक जीवको ज्ञान और वैराग्य-शक्ति दोनों साथ ही प्रगट होते हैं। ज्ञान अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूपकी प्रतीति और वैराग्य अर्थात् शुभाशुभभावसे विरक्ति। बाह्यमें स्त्री, कुटुम्बादिको छोड़ना वह वैराग्य नहीं है। बाह्य वस्तु आत्मामें है ही कहाँ? वह तो सदा पृथक् ही पड़ी है।

आत्मामें अनंत शक्तियाँ हैं, उनमें एक त्याग-उपादान-शून्यत्व नामक शक्ति है। उस शक्तिके कारण आत्मा परवस्तुके त्याग-ग्रहणसे रहित है। परवस्तुका—स्त्री-पुत्रादिका—त्याग करूँ और परवस्तुका ग्रहण करूँ—यह बुद्धि ही मिथ्या है। रजकणसे लेकर किसी वस्तुको ग्रहण करूँ या छोड़ूँ वह आत्मवस्तुके स्वरूपमें ही नहीं है—ऐसी दृष्टि जब अंतरमें होती है तब धर्मकी प्रथम सीढ़ी, प्रथम सोपान—सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। वह दशा प्राप्त होनेपर उसे रागके प्रेमका अभाव होकर अंतरमें वैराग्यदशा प्रगट होती है।

आत्मा अखंडानन्दमूर्ति शुद्ध परमात्मस्वरूपमें भीतर विराजमान है। यदि शक्तिरूपसे परमात्मस्वरूप न हो तो व्यक्त पर्यायमें परमात्मपद आयगा कहाँसे? लैंडीपीपल कदमें छोटी, रंगमें काली और चखनेमें अल्प चपराहटवाली लगती है, तथापि उसमें चौंसठपुटी चपराहट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट हो ऐसी शक्ति सदा विद्यमान है। उसे चौंसठ पहोर घोंटनेसे जो पूर्ण चपराहट प्रगट होती है वह कहाँसे आती है? भीतर शक्ति भरी है उसमेंसे आती है। इसप्रकार भगवान आत्मा भी पर्यायमें पुण्य-पापवाला और अल्पज्ञ दिखायी देता है, तथापि उसमें भीतर शक्तिरूपसे ज्ञानानन्दस्वभाव परिपूर्ण भरा है, उस पर दृष्टि करके स्थिरता करनेसे—अंतरमें आनन्दरस घोंटनेसे—पूर्ण परमात्मपद प्रगट होता है।

अरेरे! अनादिकालसे भटकते हुए इस जीवने चौरासी लाख योनियोंमें अनंतबार जन्म-मरण किया, परिभ्रमणमें अनंतानंतकाल बिताया, तथापि अंतरमें अपना ज्ञायक आत्मा क्या वस्तु है उसकी प्रतीति नहीं की। अहाहा! मुनि किसे कहते हैं? कि—जो शीघ्र-शीघ्र निज शुद्धात्मामें डुबकी लगाकर अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन करते हों वे मुनि हैं; उनकी दशा अद्भुत है, जगतसे न्यारी है। मुनिको अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका ज्वार आता है। जिसप्रकार पूर्णमासीके पूर्ण चंद्रके योगसे समुद्रमें ज्वार आता है, उसी प्रकार मुनिराजको पूर्ण चैतन्यचंद्रके एकाग्र अवलोकनसे आत्मसमुद्रमें ज्वार आता है—वैराग्य उमड़ता है, आनन्द उछलता है, सर्व गुण-पर्यायोंमें यथासम्भव वृद्धि होती है। अहा! मुनिराजका वैराग्य—रागके रसरहित उग्र विरक्तभाव—कोई और ही है। धन्य वह मुनिदशा!

पंचपरमेष्ठीमें जिनका स्थान है उन मुनिराजका अंतर वैराग्य कोई अद्भुत है। वे स्वरूपानन्दमें इतने लीन हुए हैं कि भूमिकानुसार जो महाव्रतादिका शुभराग आता है वह भी दुःख लगता है। सूक्ष्म बात है भाई! प्रभु! तू कौन है उसकी भी तुझे खबर नहीं है। कस्तूरी मृगकी नाभिमें होनेपर भी उसकी खबर नहीं है, उसी प्रकार मृग जैसे अज्ञानी जीवको अपनी पूर्णानन्दशक्ति भीतर विद्यमान होनेपर भी उसकी खबर नहीं है। मानों बाहरसे—स्त्री, परिवार, पैसा, अधिकार आदिमेंसे—आनंद आता हो ऐसा उसे लगता है। परमें सुखबुद्धि होनेसे अज्ञानीको अपने पूर्णानन्द प्रभुका अनादर वर्तता है, अपने ज्ञायक भगवानका उसके मन कोई मूल्य नहीं है। मुनिराजको तो वैराग्य परिणतिमें अतीन्द्रिय आनंदकी बाढ़ आती है। उस अतीन्द्रिय आनंदके स्वादमें पुण्य-पापके रागसे अत्यंत वैराग्य—विरक्ति वर्तती है।

प्रश्न :—वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर :—स्त्री-बच्चोंको छोड़ देना कोई वैराग्य नहीं है। वैराग्य तो उसे कहते हैं कि—अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप अपने परमात्माका वेदन होने पर अंतरसे राग तथा पुण्य-पापका रस छूट जाय। समयसारमें (पुण्य-पाप अधिकारमें) कहा है : रक्त अर्थात् रागी जीव अवश्य कर्म बाँधता है और विरक्त अर्थात् विरागी जीव ही कर्मसे छूटता है। अहा! मुनिराजका वैराग्य तो कोई और ही होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुनिराज तो वैराग्यमहलके शिखरके शिखामणि हैं।'

यह शब्द श्री नियमसार शास्त्रकी टीकाके हैं। वैराग्यका महल, उसका शिखर और उसके शिखामणि। अहाहा! अंतरमें वैराग्य एवं आनन्दकी कैसी दशा! टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारीदेव तो यहाँ तक कहते हैं कि—मुनिराको—स्ववश योगीको भूमिकानुसार किंचित् रागका मन्द अंश है तथापि सर्वज्ञ-वीतरागमें और उन स्ववश योगीमें कभी कुछ भी भेद नहीं है; अरेरे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद मानते हैं। सच्चे भावलिंगी संतकी यह बात है। बाह्य द्रव्यलिंग तो अनंतबार धारण किया, नग्न हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ीं—वह कोई वैराग्य नहीं है, वह कोई त्याग नहीं है।

भीतर पूर्णानन्दस्वभावमें जाने पर वहाँ स्वरूपकी आसक्ति (लीनता) होती है और रागकी आसक्ति छूट जाती है—ऐसा ज्ञान एवं वैराग्य ज्ञानीके अंतरमें वर्तते हैं। मुनिराज तो वैराग्यमहलके शिखरके शिखामणि हैं। अहा! मुनिराज ऐसे होते हैं वह समझना चाहिये भाई! 'धन्य मुनिदशा' नामकी छोटी पुस्तिका आयी है ना? उसमें सब वचन बेनके हैं। प्रचुर स्वसंवेदन मुनिका भावलिंग है। समयसारकी पाँचवीं गाथामें श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि—अपने निजवैभवसे उस एकत्व-विभक्त आत्माको दर्शाऊँगा। कैसा है वह निज वैभव? निरन्तर झरता—आस्वादमें आता, सुन्दर जो आनन्द उसकी छापवाला जो प्रचुर संवेदन स्वरूप स्वसंवेदन, उससे जिसका जन्म है। भीतर जो ज्ञानकी धारा, सम्यक्त्वकी धारा और वीतरागताकी धारा उत्पन्न हुई वह हमारा निजवैभव है।

अरे! यह बँगला, लक्ष्मी, मोटर, स्त्री, कुटुम्बादि बाह्य वैभव तो धूल है, जड़ है। उससे भिन्न ज्ञायक भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है।—इसप्रकार अंतरमें भेदज्ञान होनेपर रागसे विरक्ति होकर स्वरूपानन्दका ज्वार आता है। वह ज्वार बाहरसे नहीं किन्तु अंतरमेंसे आता है। ज्ञायक चन्द्रका अंतरमें स्थिरतापूर्वक अवलोकन करनेसे आनंदसागर उल्लसित होता है। अहा! धन्य वह अद्भुत मुनिदशा! यहाँ तो कहते हैं—मुनिराज तो वैराग्यमहलके शिखरके शिखामणी हैं।

*

वचनामृत–१८७

मुनि आत्माके अभ्यासमें परायण हैं। वे बारम्बार आत्मामें जाते हैं। सविकल्पदशामें भी मुनिपनेकी मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर नहीं जाते। मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर जायँ तो अपनी मुनिदशा ही न रहे॥१८७॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुनि आत्माके अभ्यासमें परायण हैं।'

मुनिराज तो अंतरमें आनन्दस्वरूप आत्माके अभ्यासमें तत्पर हैं। शास्त्रके अभ्यासका शुभभाव तो विकल्प है, राग है। सम्यक्त्वी गृहस्थाश्रममें हों तथापि वे अपनी ज्ञानधारामें तत्पर हैं; भूमिकाके अनुरूप शुभाशुभराग आता है परन्तु वे तो मात्र उसके ज्ञाता हैं, स्वामी नहीं हैं। यहाँ तो मुनिराजकी बात चलती है। परमानन्दमय प्रचुर स्वसंवेदनका निरंतर वेदन करनेवाले मुनिराजको राग आता है परन्तु अति अल्प आता है। उसे संज्वलन कषाय कहते हैं। वह अति मंद कषाय भी आत्माकी शान्तिको जलाती है; उस विकल्पके समय भी मुनिराज अंतरमें अपनी ज्ञानधाराके अभ्यासमें ही परायण हैं।

पाताल कुएँमें भीतर पानीकी धारा प्रवाहित रहती है; उसीप्रकार मुनिकी दृष्टि अंतरके ध्रुव पातालमें पड़ी है; मुनिने ध्रुवस्वभावका दृढ़ आश्रय लिया है। ध्रुव ज्ञायकका आश्रय सम्यक्त्वीको भी है, किन्तु थोड़ा है। जो अंतरमें आनन्दस्वरूप भगवान आत्माके समीप गये हैं और जिनके अंतरमें शान्ति तथा आनन्दकी धाराका प्रवाह तीव्रतासे बह रहा है ऐसे मुनिराज आत्माके अभ्यासमें तल्लीन हैं। शास्त्रके अभ्यासमें परायण, लीन हैं ऐसा नहीं; क्योंकि शास्त्र परवस्तु है; उस ओर लक्ष जानेसे विकल्प उठते हैं। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानामृतसे भरपूर कलश है। उसके लक्षके अभ्यासमें जो अतीन्द्रिय आनन्दामृतकी धारा बहती है उसमें मुनिराज सतत तत्पर हैं।

'वे बारम्बार आत्मामें जाते हैं।'

मुनिराजको आनन्दका स्वाद आया है ना? इसलिये वह स्वाद लेनेके लिये वे बारम्बार अंतरमें जाते हैं। सम्यग्दृष्टिके अंतरमें ऐसा ज्ञान और अनुभव तो होता है कि 'मैं पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मतत्त्व हूँ, मैं राग नहीं अल्पज्ञ नहीं और निमित्त भी नहीं', परन्तु उन्हें भूमिकाके अनुरूप तीनकषायके रागकी तीव्रता है इसलिये उपयोग बारम्बार अंतरमें नहीं जाता; उपयोग अंतरमें जाय तो अंतर्मुहूर्तमें जाता है, न जाय तो किसीको अधिक समय—सप्ताह, पखवाड़ा, महीना, दो महीना—भी लगता है; जब कि मुनिराज तो बारम्बार अंतरमें जाते हैं।

'सविकल्पदशामें भी मुनिपनेकी मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर नहीं जाते।'

मुनिको पंचमहाव्रतका विकल्प आता है, देव-शास्त्र-गुरुकी विनयका, भक्तिका विकल्प आता है, क्योंकि वे अभी रागकी भूमिकामें हैं: ऐसा होने पर भी मुनिदशाकी मर्यादा तोड़कर विशेष बाहर नहीं जाते। पंचमहाव्रतादिका मुनिदशाके योग्य विकल्प आता है, परन्तु उससे आगे नहीं जाते। 'मैं दूसरोंका कल्याण कर दूँ अथवा पाठशाला चला दूँ'—ऐसे विकल्पमें नहीं जाते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर जायँ तो अपनी मुनिदशा ही न रहे।'

बाहरकी संभाल करने जायँ तो मुनिदशा ही न रहे, अपनी वीतरागी दशा ही न रहे।

*

वचनामृत–१८८

जो न हो सके वह कार्य करनेकी बुद्धि करना मूर्खताकी बात है। अनादिसे यह जीव जो नहीं हो सकता उसे करनेकी बुद्धि करता है और जो हो सकता है वह नहीं करता। मुनिराजको परके कर्तृत्वकी बुद्धि तो छूट गई है और आहार-विहारादिके अस्थिरतारूप विकल्प भी बहुत ही मन्द होते हैं। उपदेशका प्रसंग आये तो उपदेश देते हैं, परन्तु विकल्पका जाल नहीं चलता॥१८८॥

'जो न हो सके वह कार्य करनेकी बुद्धि करना मूर्खताकी बात है।'

क्या कहते हैं? कि—शरीरकी क्रिया कर सकता हूँ, भाषा बोल सकता हूँ, पैसा ले-दे सकता हूँ—यह सब क्रियाएँ आत्माकी नहीं हैं, जड़ पुद्‌गलकी हैं। वह क्रिया आत्मासे नहीं हो सकती तथापि 'मैं उसे करता हूँ, ऐसी मान्यता करना वह मूर्खता है। मुनिको भाषासमितिका विकल्प आये वह राग है किन्तु वे उसके कर्ता नहीं हैं। ज्ञानी रागके कर्ता नहीं हैं, ज्ञाता हैं। राग वह तो विष है, काला नाग है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दामृतका सागर है। उसका जिसे अनुभव हुआ उसे अशक्तिवश भले थोड़ा राग आये, परन्तु स्वानुभवके स्वादके सामने वह विष जैसा काले नाग जैसा लगता है, दुःखमय लगता है। समयसारके मोक्ष अधिकारमें प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहरण आदि शुभभावोंको विषकुम्भ कहा है ना? वे सब विकल्प विषके घड़े हैं और भगवान ज्ञायक आत्मा तो वीतरागी अमृतस्वरूप है।

अमृतसागर ऐसे ज्ञायक प्रभुका जिसे अनुभव हुआ—पर्यायबुद्धि एवं विकारदृष्टि छोड़कर अंतरमें धर्मदृष्टि हुई—है ऐसे ज्ञानी सम्यक्त्वीको विषयवासनाके भाव आते हैं परन्तु वे काले नागके समान विषमय लगते हैं। श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरहनाथ—तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव थे। तीनों पदवियाँ थीं, मति, श्रुत एवं अवधि—तीनों ज्ञान साथ लेकर माताके गर्भमें आये थे, सम्यग्दर्शन और आत्माका अनुभव वर्तता था। उन्होंने छियायनवे हजार रानियोंके साथ विवाह किये। विवाह करूँ तो उससे सुख प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होगा ऐसी बुद्धि उनके अंतरमें नहीं थी। आत्माके ज्ञान एवं आनन्दका अंशतः स्वाद होनेपर भी निर्बलतावश किंचित् अविरतिका राग आता है, परन्तु वह विष जैसा लगता है, दुःखमय लगता है।

जीव परके कार्य नहीं कर सकता, तथापि 'मैं परका मोक्ष कर दूँ' ऐसी परके कार्य करनेकी जो बुद्धि है वह मिथ्यात्व है। समयसारके बंध-अधिकारमें विस्तारसे आता है कि—परको मैं बँधाता हूँ, छुड़ाता हूँ, वह मान्यता तो अज्ञानभाव है; परजीव तो अपने रागभावसे बँधाता है और अपने वीतरागभावसे मोक्ष प्राप्त करता है, उसमें इस जीवने क्या किया? परमें मैं कुछ कर सकता हूँ—यह बुद्धि ही मूर्खतापूर्ण है, मिथ्यात्व है। परका जीवन-मरण उसकी आयुके अनुसार होता है, उसमें तू क्या मार-बचा सकेगा? तथापि मैं परको मार-बचा सकता हूँ वह मान्यता अज्ञान है, भ्रमणा है। यहाँ कहते हैं कि—जो नहीं हो सकता वह कार्य करनेकी बुद्धि करना वह मूर्खताकी बात है।

'अनादिसे यह जीव जो नहीं हो सकता उसे करनेकी बुद्धि करता है और जो हो सकता है वह नहीं करता।'

'रोगियोंकी सेवा करूँ, गरीबोंकी सेवा करूँ, अरे! देशकी सेवा करूँ'—इसप्रकार भाई! परका करनेकी बुद्धि करना वह मूर्खता है। वि. सं. १९९५में एक देशनेता व्याख्यान सुनने आये थे। उस समय भी यही बात आयी थी कि—मैं परको जिला सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ, देशकी सेवा कर सकता हूँ,—ऐसी मान्यता रखनेवाला जीव अज्ञानी, मूढ और मिथ्यादृष्टि है। समयसारके बंध अधिकारमें आता है :—

जे मानतो—हुं मारुं ने पर जीव मारे मुजने,
ते मूढ छे, अज्ञानी छे, विपरीत ऐथी ज्ञानी छे।

व्याख्यानमें तो सिद्धान्तका न्याय बतलानेके लिये बात आयी थी। यहाँ तो यह बात चलती है कि परका करनेकी बुद्धि वह अज्ञान है, मिथ्यात्व है।

श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं : एक तिनकेके दो टुकड़े करनेकी भी हममें शक्ति नहीं है। श्रीमद् आत्मज्ञानी थे, गृहस्थाश्रममें थे, जवाहिरातका व्यापार करते थे। वि. सं. १९२४में उनका जन्म हुआ था, ३३ वर्षकी छोटी उम्रमें वि. सं.१९५७में उनका स्वर्गवास हो गया था। २३वें वर्षमें उन्हें आत्मज्ञान—आत्माका अनुभव हुआ था। व्यापारका विकल्प था किन्तु अंतरमें उसके कर्ता नहीं थे, रागसे भिन्न ज्ञाता थे। छोटी-सी उम्रमें उनमें जो तीक्ष्ण बुद्धि थी उससे गाँधीजी खूब प्रभावित हुए थे। वास्तवमें उस समय ऐसे तीक्ष्ण क्षयोपशमवाले एक श्रीमद् ही थे।

मैं परको सुखी करूँ, दुःखी करूँ—यह सब परकी क्रिया करनेका भाव वह अनादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

महा मिथ्यात्व है, महा असत्य भाव है, पाखण्ड भाव है। क्या मन्दिर बनाया जा सकता है? मन्दिर भी पर द्रव्य है। जीवसे परका कुछ भी नहीं हो सकता, तथापि उसका कर्ता होनेकी बुद्धि करना वह अनादि अज्ञानभाव है। लोकमें कहा जाता है ना!—'मैं करूँ, मैं करूँ, यही अज्ञानता शकटका भार ज्यों श्वान ढोवे।' बैलगाड़ीके नीचे कुत्ता चल रहा हो तो वह ऐसा मानता है कि यह गाड़ी मुझसे चल रही है, उसी प्रकार बाहरके कार्य मुझसे होते हैं ऐसा माननेवाला मूढ़, अज्ञानी है।

अज्ञानी जीव अनादिसे जो नहीं हो सकता उसे करनेकी बुद्धि करता है और जो अपनेसे हो सकता है—ज्ञानस्वरूप आत्मामें एकाग्रता, ज्ञान एवं आनन्दका अनुभव—वह नहीं करता।'

'मुनिराजको परके कर्तृत्वकी बुद्धि तो छूट गई है और आहार-विहारादिके अस्थिरतारूप विकल्प भी बहुत ही मन्द होते हैं।'

अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत श्रावकको भी परके कर्तृत्वकी बुद्धि तो छूट ही गई है, परन्तु मुनिराजको तो परके कर्तृत्वकी बुद्धि छूटनेके उपरान्त राग भी अधिक टल गया है, आहार-विहारादिके अस्थिरतारूप विकल्प खूब ही मन्द हो गये हैं। मुनिराज अंतरमें वीतराग चैतन्यबिम्ब हो गये हैं, अक्रिय जिनबिम्ब समान हो गये हैं, अतीन्द्रिय आनन्दमें रमते हैं, झूलते हैं। 'निजपद रमे सो राम कहिये, रागमें रमे सो हराम कहिये।'

भरत और बाहुबली दोनों भ्राता आत्मज्ञानी थे। राज्यके रागके कारण दोनोंने युद्ध किया। उन्हें अंतरमें प्रतीति है कि युद्धकी क्रिया आत्मा नहीं कर सकता और जो रागकी वृत्ति उठती है उसमें उन्हें कर्तृत्वबुद्धि नहीं है, तथापि जो विकल्प आते हैं उनके वे ज्ञाता ही हैं, स्वामी नहीं हैं। मुनिराजको तो स्वरूप स्थिरता खूब ही बढ़ गई है, इसलिये उनको कर्तृत्व तो कदापि नहीं है, परन्तु व्यवहारचारित्रके पालनरूप अस्थिरताका राग भी अत्यन्त मन्द हो गया है।

'उपदेशका प्रसंग आये तो उपदेश देते हैं, परन्तु विकल्पका जाल नहीं चलता।'

मुनिराजको विकल्प आते हैं परन्तु उनकी धारा नहीं चलती। उपदेश देते-देते भी वे अंतरस्वरूपमें लीन हो जाते हैं, छट्ठे-सातवें गुणस्थानमें हजारों बार आते-जाते हैं, प्रमत्त दशामेंसे हटकर तुरन्त ही अप्रमत्त दशामें—आनन्दके उग्र अनुभवमें आ जाते हैं। लोगोंको बाहरसे उपदेश देते दिखायी देते हैं, किन्तु अंतरमें वे बारम्बार निर्विकल्प स्वानुभव दशामें आजाते हैं। सूक्ष्म बात है। लोगोंको अभी खबर नहीं है कि मुनिदशा क्या है, तथा केवलज्ञान दशा क्या है।

उपदेश देनेका प्रसंग आये तो किसी धर्म लोभी जीवको देखकर उपदेश देते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षमार्ग प्रकाशकमें पं. टोडरमलजीने कहा है : मुनिराज मुख्यरूपसे तो निर्विकल्प स्वरूपाचरणमें ही मग्न रहते हैं, और कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवोंको देखकर, रागांशके उदयसे करुणाबुद्धि आ जाय तो, उनको धर्मका उपदेश देते हैं। उस शुभरागको, जोकि अपनी अशक्तिसे आता है, उसे भी छोड़कर तुरन्त ही अंतर आनन्दमें विशेष लीन हो जाते हैं। उपदेशसे मुझे लाभ होगा या मेरे उपदेशसे दूसरोंको लाभ होगा—ऐसी मान्यता किंचित् भी नहीं है। अहा! लोग मानते हैं उस बातमें बड़ा फेर है, लोगोंके साथ बात-बातमें फेर है। त्रिलोकनाथ जिनेश्वर भगवानका मार्ग कोई अलौकिक है, यहाँ कहते हैं कि—मुनिराजको विकल्प उठता है, परन्तु विकल्पका जाल परम्परा नहीं चलती, विकल्प तोड़कर वे तुरन्त ही निर्विकल्प आनन्दमें स्थिर हो जाते हैं।

बेनकी पुस्तक तो ऐसी प्रकाशित हुई है कि मेरे हिसाबसे तो सबको भेट देना चाहिये। बड़ी सरल—बालक जैसी भाषा, संस्कृत भाषा नहीं। बड़ी जोरदार गंभीर बातें हैं इसमें। —*पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–७०

ता. २०-८-७८

वचनामृत–१८६

अपनी दृष्टिकी डोर चैतन्य पर बाँध दे। पतंग आकाशमें उड़ाये परन्तु डोर हाथमें रहती है, उसीप्रकार दृष्टिकी डोर चैतन्यमें बाँध दे, फिर भले उपयोग बाहर जाता हो। अनादि-अनंत अद्भुत आत्माका–परम पारिणामिक भावरूप अखण्ड एक भावका–अवलम्बन ले। परिपूर्ण आत्माका आश्रय करेगा तो पूर्णता आयगी। गुरुकी वाणी प्रबल निमित्त है परन्तु समझकर आश्रय तो अपनेको ही करना है॥१८६॥

'अपनी दृष्टिकी डोर चैतन्य पर बाँध दे।'

इस बोलमें तात्त्विक बात आयी है। सम्यक्त्वी धर्मी जीव अपनी दृष्टिकी डोर चैतन्य पर बाँध देता है, दृष्टि ध्रुव स्वभावमें स्थिर करता है, ध्रुव आत्मा पर जोर देता है। सम्यकदृष्टि उसे कहते हैं कि जिसने ध्रुव ज्ञायकभाव पर दृष्टिकी डोर बाँध दी है; फिर भले विकल्प आता हो परन्तु दृष्टि तो ध्रुव स्वभाव पर ही है। वह वहाँसे जरा भी नहीं हटती, हिलती नहीं है। प्रभु! तुझे कल्याण करना हो तो संयोगके ऊपरसे लक्ष हटा दे और त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य भगवान पर दृष्टिकी डोर बाँध दे। कैसे बँधती है? कि—अपनी वर्तमान उत्पन्न होनेवाली पर्यायको वहाँ ध्रुव ज्ञायकमें लगा दे। कैसे लगायी जाय? कि—अंतर्मुख होकर लगा दे। अंतर्मुख कैसे हुआ जाता है? वह तो अंतर्मुख होनेवाला स्वयं करेगा या दूसरा कोई कर देगा? अपनी जो वर्तमान पर्याय परकी ओरके लक्षवाली है उसे छोड़ दे और त्रैकालिक ज्ञायक भावपर दृष्टिको लगा दे। अब, 'लगा दे' ऐसा कहा तो किस प्रकार लगायी जाय? क्या कहें भाई! अनुभव कैसे होता हैं यह बात आजकल नहीं चलती, परन्तु समयसार कलशटीकामें ऐसा कहते हैं कि 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसा ज्ञानका जो परिणमन होता है वह अनुभव है। भगवान आत्मा जो कि पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु है उसमें अंतर्मुख दृष्टि होना, उसका अनुभव होना, उसने स्वभावकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ओर डोर बाँध दी है ऐसा कहा जाता है। भाषामें तो अधिक क्या आ सकता है?

'पतंग आकाशमें उड़ाये परन्तु डोर हाथमें रहती है, उसीप्रकार दृष्टिकी डोर चैतन्यमें बाँध दे, फिर भले उपयोग बाहर जाता हो।'

त्रैकालिक ज्ञायक प्रभुको भूलकर पर्यायमें जो बुद्धि है वह मिथ्याज्ञान है, क्योंकि एक समय जितने अंशमें पूर्ण आत्मा नहीं आ जाता। एक समयके अंशको पूर्ण आत्मा मानना वह मिथ्यात्व है। उस वर्तमान पर्यायका लक्ष छोड़कर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभाव पर दृष्टिको लगा दे। फिर भले विकल्प आयें, परन्तु दृष्टि ध्रुव ज्ञायक पर है वह नहीं छूटती, हटती नहीं है, चलती नहीं है। उसका नाम सम्यक्‌दर्शन एवं धर्मकी प्रथम सीढ़ी कहा जाता है।

आत्मामें पुण्य एवं पापके विकल्प हों तथापि साधक जीवकी दृष्टिकी डोर चैतन्यके ऊपरसे नहीं छूटती। जैसे पतंग उड़ाते हैं उसमें डोर तो अपने हाथमें होती है, उसीप्रकार देव-गुरुकी पूजा-भक्तिके भाव आयें उसमें दृष्टिकी डोर ध्रुव ज्ञायकमें बाँध दी है वह कभी नहीं छूटती, स्वभावमेंसे दृष्टि कभी नहीं हटती। अहा! श्रद्धाका विषय जो पूर्ण चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा वहाँ दृष्टिको ले जाना है। कठिन कार्य है भाई! बेनकी भाषा सरल है, किन्तु वस्तु अलौकिक है।

अनादिकालमें जीवने चैतन्यकी दृष्टि कभी नहींकी, और जो किया है वह तो पुण्य-पापरूप परिणमन है, दुःखका वेदन है; वह वेदन वर्तमान दुःखरूप है और भविष्यमें उसका फल भी दुःख है। प्रभु! तेरी वर्तमान पर्यायमें भले दुःख हो, तेरी पर्याय भले पलटती हो, पर्यायमें हलचल हो, परन्तु तेरी त्रैकालिक ध्रुववस्तुमें हलचल नहीं होती, वह पलटती नहीं है, पलटती क्षणिक पर्यायमें हलचल रहित ध्रुववस्तु नहीं आ जाती। ऐसी बात है। भले मँहगी लगे, किन्तु वस्तुस्वरूप तो यही है। बाकी तो सब रस-संसारके रस-अनादिसे किये और भोगे हैं, परन्तु वह कोई परमार्थ वस्तु नहीं है।

अपनी दृष्टिकी डोर चैतन्यमें बाँध दे, फिर भले उपयोग बाहर जाय, फिर भले शुभभाव आये, किन्तु दृष्टिकी जो डोर ज्ञायक स्वभाव पर बँधी वह छूटती नहीं है। भले अशुभभाव भी आ जाय तथापि दृष्टिकी जो डोर ध्रुवस्वभावमें बाँध दी है वह वहाँसे नहीं छूटती। आता है कुछ समझमें?

प्रभु! तू अंतरमें कोई ध्रुववस्तु है या नहीं? अथवा वर्तमान पलटती पर्यायमें सम्पूर्ण तत्त्व आ जाता है? तू राग और पर्यायसे भिन्न त्रैकालिक ध्रुववस्तु है, तो वर्तमान पर्यायको त्रैकालिक ध्रुव वस्तुमें लगा दे। ऐसी बात है भाई! भाषा सादी है, परन्तु इस वस्तुकी प्राप्ति होनेके लिये अनन्त पुरुषार्थ चाहिये। भाई! तुझे आत्मकल्याण करना हो तो ध्रुव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि लगा दे। इस बातको समयसारकी ११वीं गाथामें 'भूतार्थ' शब्दसे कहा है ना! यहाँ बेनकी यह वाणी तो सादी गुजराती भाषामें है।

कहावत है कि—वाणी और पानीको पचाना कठिन है। भगवान आत्माके महिमाकी यह बात सुनकर एक श्रोता बोले : महाराज! यह बात पचाना कठिन है। भाई! भोजनमें रोज रोटी-रोटला खाते हो, किन्तु कभी स्वादिष्ट व्यंजन परोसे जायँ तो वहाँ इन्कार करते हो कि नहीं पचेगें? भले थोड़े लोगे, परन्तु पचनेका इन्कार नहीं करते। उसी प्रकार प्रभु! तेरी प्रभुताके गीत गाये जा रहे हैं, वे मेरी समझमें नहीं आते, यह बात मुझे नहीं पचेगी—इसप्रकार इन्कार मत करो। चौरासी लाख योनियोंके परिभ्रमणसे छूटना हो तो अपनी वर्तमान दृष्टिको अंतर तलमें उतार दे।

'अनादि-अनंत अद्भुत आत्माका—परमपारिणामिक भावरूप अखण्ड एक भावका—अवलम्बन ले।'

अनादि-अनंत चमत्कारी पातालमें—ज्ञायक आत्मामें जोकि अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनन्द, अनंत वीर्य आदि अनंत वैभवसे भरपूर परमपारिणामिक भावरूप अखण्ड एक भाव है उसमें दृष्टि ले जा तो तुझे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगी, जोकि धर्मका प्रथम सोपान है। बाकी तो सब भटकनेके मार्ग हैं। यहाँ कहते हैं कि—पूर्णानन्द ज्ञायकभावकी दृष्टि करके उसका अवलम्बन ले, जिससे तुझे परमानन्दकी प्राप्ति होगी।

'परिपूर्ण आत्माका आश्रय करेगा तो पूर्णता आयगी।'

निज शुद्धात्मद्रव्य तो ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनंत शक्तियोंसे परिपूर्ण है। उस त्रैकालिक पूर्ण प्रभुका जो आश्रय करेगा, उसका अवलम्बन लेगा, आधार लेगा, उसे पर्यायमें पूर्णता आयगी। क्या कहते हैं? कि—भीतर जो पूर्ण स्वभाव है उसके आश्रयसे पर्यायमें पूर्णता उत्पन्न होगी। केवलज्ञान एवं अनंत आनन्दस्वरूप जो पूर्ण पर्याय है वह परिपूर्ण स्वभावके आश्रयसे प्रगटती है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि परिपूर्ण ध्रुववस्तुके आश्रयसे परिपूर्ण पर्याय प्रगट होती है, मोक्ष या मोक्षमार्गकी पर्यायके आश्रयसे भी मोक्षरूप पूर्ण पर्याय प्रगट नहीं होती।

जिस प्रकार पूर्णमासीकी रात्रिको चन्द्रमा अपनी सोलहकलाओंसे परिपूर्ण खिलता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा जोकि अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनन्द, अनंतशक्ति, अनंत स्वच्छत्व आदि अनंत गुणरूप कलाओंसे परिपूर्ण ज्ञायक प्रभु है उस पर दृष्टि लगानेसे, उस परिपूर्ण तत्त्वका आश्रय करनेसे, पर्यायमें परिपूर्णता प्रगट होगी। अहा! कैसे विश्वास हो? अंतरमें एक समयकी पर्यायके निकट पूर्णानन्दका नाथ विद्यमान है, उसकी ओर कभी दृष्टि नहीं की, उसे कभी लक्षमें नहीं लिया! इसमें तो ऐसा कहना है कि मोक्षमार्गकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय है तो मोक्ष प्रगट होगा—ऐसा भी नहीं है, क्योंकि मोक्षमार्गकी अपूर्ण पर्याय अपने द्रव्यस्वभावके अपूर्ण आश्रयसे उत्पन्न हुई है और केवलज्ञानादि पूर्ण पर्यायें अपने द्रव्यस्वभावके उग्र–पूर्ण आश्रयसे उत्पन्न होती हैं। अहा! ऐसी बातें कठिन लगती हैं, किन्तु भाई! जन्म-मरणको टालनेका यह एक ही मार्ग है।

अरेरे! जिसपर जीवको अत्यन्त प्रेम है ऐसा यह शरीर वास्तवमें मात्र वेदनाकी मूर्ति है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भावपाहुड़में कहते हैं कि—एक अंगुलमें ९६रोग तो सम्पूर्ण शरीरमें कितने? विचार तो कर प्रभु!—यह शरीर तो जड़ है, वेदनाकी मूर्ति है। भगवान ज्ञायक आत्मा आनंदकी मूर्ति है, चैतन्य चमत्कारसे भरपूर महाप्रभु है कि जिसकी पूर्णपर्याय प्रगट होनेपर तीनकाल और तीन लोकको युगपद् देखती है। ऐसी अनंती पूर्ण पर्यायकी शक्तिका पुंज ऐसा ज्ञानगुण, ऐसी अनंती श्रद्धापर्यायकी शक्तिका पिण्ड ऐसा श्रद्धागुण, ऐसी अनन्ती स्थिरता पर्यायकी शक्तिका दल ऐसा चारित्रगुण, पूर्ण आनन्दकी पर्यायका ध्रुवतल ऐसा आनन्द गुण—ऐसे अनंतानन्त गुण परिपूर्ण शक्ति सहित भीतर भगवान आत्मामें विद्यमान हैं। अहा! उस परिपूर्ण द्रव्यस्वभावके अवलम्बनसे केवलज्ञानादि परिपूर्ण पर्याय प्रगट होगी, मोक्षमार्ग जोकि अपूर्ण पर्याय है उसके आश्रयसे भी परिपूर्ण पर्याय प्रगट नहीं होगी। पूर्ण ज्ञानानन्दकी शीतल शिला—ध्रुव द्रव्यस्वभाव—अंतरमें सदा विद्यमान है, उसका आश्रय करेगा तो सम्यग्दर्शन होगा, उसका उग्र आश्रय करेगा तो चारित्र होगा और उसके पूर्ण आश्रयसे केवलज्ञानादिकी पूर्ण दशा प्रगट होगी। छूटनेका मार्ग ऐसा है भाई!

छूटनेका मार्ग तो स्वद्रव्यका आश्रय करना वह एक ही है और बँधनेके कारण तो अनेक हैं। शुभ और अशुभभाव—दोनों बंधनके कारण हैं। शुभके भी असंख्य प्रकार हैं ऐसा भगवान कहते हैं। उन दोनोंसे पार भगवान निज परमात्मा है। विकारकी सीमा है, मर्यादा है, असीम नहीं है। बेनके बोलमें आता है : बाहरके सब कार्योंमें सीमा—मर्यादा होती है; अमर्यादित तो अंतर ज्ञान और आनंद हैं वहाँ सीमा-मर्यादा नहीं है। भीतर-स्वभावमें मर्यादा नहीं होती। जीवको अनादिकालसे जो बाह्य वृत्ति है उसकी यदि मर्यादा न हो तब तो जीव कभी मुड़ेगा ही नहीं। बाह्यमें ही सदा रुक जायगा। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्तिसे भरपूर है। विकृत अवस्थाकी सीमा है इसलिये वह मिट जायगी। इसलिये भीतर शक्तिसे भरपूर पूर्ण वस्तु क्या है उसका लक्ष करना चाहिये। जिसप्रकार पातालमें पानी भरा हुआ है, उसीप्रकार ज्ञायक आत्मामें ध्रुवशक्ति पूर्ण भरी पड़ी है। उसका आश्रय करनेसे पर्यायमें पूर्णता प्रगट होगी—ऐसा वस्तुका स्वरूप है। अहाहा! शक्ति-अपेक्षासे पूर्णता है तो पर्यायमें पूर्णता आयगी।

'गुरुकी वाणी प्रबल निमित्त है परन्तु समझकर आश्रय तो अपनेको ही करना है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देव, गुरु और उनकी वाणी निमित्त भले हो, परन्तु उनके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, मुनिपना या केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। वास्तवमें तो सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि—यह जड़ इन्द्रियाँ, एक-एक विषयको क्रमशः जाननेवाली भावेन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके विषयभूत देव-शास्त्र-गुरु अथवा स्त्री-पुत्र-परिवारादि पर पदार्थ, उन सबका लक्ष छोड़कर अतीन्द्रिय भगवान ज्ञायक आत्माका अंतरमें स्वीकार कर, उसका आश्रय कर, तो सम्यग्दर्शन होगा।

लोगोंको बाह्यमें लक्ष्मी, मकानादिमें विस्मय लगता है। भाई! यह तो सब धूल है, उसमें कुछ भी विस्मय होने जैसा है ही नहीं। विस्मयकारी, आश्चर्यकारी तो अंतरमें विद्यमान तेरा प्रभु है, परन्तु उसकी अद्भुतता की तुझे खबर नहीं है। तीर्थंकरकी वाणी तथा गुणकी वाणी उस चमत्कार पूर्ण ज्ञायक प्रभुका स्वरूप समझाती है, परन्तु समझकर ज्ञायक स्वभावका आश्रय तो अपनेको ही करना है। आश्रय कोई गुरु थोड़े ही कर देते हैं? पण्डित तो विवाह करवा देता है, परन्तु वह घर थोड़े ही चला देगा?—उसीप्रकार गुरु वाणी द्वारा सत्की बात कहते हैं, परन्तु सत्का आश्रय गुरु थोड़े ही कर देते हैं? अहा! यह बात बेन कहती हैं।

रागमें, शुभभावमें कुछ लाभ नहीं है। देव-गुरु आदि पर द्रव्यकी ओर लक्ष जाने पर राग होता है, अरे! तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ तीर्थंकर कहते हैं कि तू हमारी ओर लक्ष करेगा तो तुझे राग होगा। स्वद्रव्यके आश्रय बिना तीनकाल और तीनलोकमें कहीं कल्याण नहीं होता। महाविदेहक्षेत्रमें जीवने अनन्तबार जन्म लिया, भगवानकी वाणी भी सुनी, परन्तु वह तो निमित्त है। क्या निमित्त स्वका आश्रय करा देता है? सर्वज्ञ करा देते हैं? भीतर ज्ञायकमें दृष्टि करना वह तो आत्मा अपने पुरुषार्थसे कर सकता है। यह कार्य कोई दूसरा—गुरु—करा दे अथवा गुरुकी कृपासे हो जाय—ऐसा वस्तुस्वरूपमें है ही नहीं। अहा! भाषा गुजराती, परन्तु सादी है। यहाँ कहते हैं कि—गुरुकी वाणी प्रबल निमित्त है, परन्तु समझकर स्वतत्त्वका आश्रय तो अपनेको ही करना है।

*

वचनामृत-१६०

मैंने अनादिकालसे सब बाहर-बाहरका ग्रहण किया—बाहरका ज्ञान किया, बाहरका ध्यान किया, बाहरका मुनिपना धारण किया, और मान लिया कि मैंने बहुत किया। शुभभाव किये परन्तु दृष्टि पर्याय पर थी। अगाध शक्तिवान जो चैतन्यचक्रवर्ती उसे नहीं पहिचाना, नहीं ग्रहण किया। सामान्यस्वरूपको ग्रहण नहीं किया, विशेषको ग्रहण किया॥१६०॥

२७.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मैंने अनादिकालसे सब बाहर-बाहरका ग्रहण किया—बाहरका ज्ञान किया, बाहरका ध्यान किया, बाहरका मुनिपना लिया, और मान लिया कि मैंने बहुत किया।'

अनादिकालसे मैंने शुभभाव, अशुभभाव तथा पर वस्तुके ग्रहण-त्यागकी—सब बाहर-बाहर की—बातेंकी, बाहरी ज्ञान—डॉक्टरी विद्या, वकालातकी विद्या आदि बाह्य जानपना—किया, परन्तु वह सब तो आत्मज्ञानके बिना, कुज्ञान है। भगवान आत्मा अंतरमें ज्ञान एवं आनन्दकी लक्ष्मीसे भरपूर पड़ा है; उसकी प्रतीति बिना बाहरका—शास्त्रोंकी पढ़ाई आदिका—ज्ञान किया, बाहरका—भगवानका, रागका—ध्यान किया, बाहरका—नग्नपना, महाव्रत धारण आदि--मुनिपना अनंतबार लिया, और 'मैंने बहुत किया,'—ऐसा माना, परन्तु उसमें अपनेको क्या मिला? उससे क्या लाभ हुआ? क्योंकि सम्यग्दर्शनके बिना वह सब थोथा है—निःसार है। 'वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कुछ हाथ हजु न पर्यो।' आत्मज्ञानके बिना बाहरका सब व्यर्थ है, उससे किंचित् भी आत्मशान्ति, सुख या धर्म नहीं होता।

आठ वर्षके बालकको भी सम्यग्दर्शन तथा आत्मज्ञान होता है। चक्रवर्तीके राजकुमार मानों पुण्यकी मूर्ति—उन्हें अंतरमें आत्मज्ञान होता है और अंतरसे दीक्षा ग्रहण करनेकी भावना जागृत होती है, तब वे माताके पास आज्ञा लेने जाते हैं, और कहते हैं कि—हे माता! हमें संयम धारण करनेकी अनुमति दो! हमें अंतरमें आनन्दका स्वाद तो आया है। परन्तु उस अतीन्द्रिय आनन्दकी उग्र साधना करनेके लिये दीक्षा लेना है—हमें वनमें जाना है। वे मातासे कहते हैं :—

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो,
जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो।
अणागयं णेव य अत्थि किंची,
सद्धा खमं णे विणइत्तु रागं॥

हे माता! हम आज ही भगवती दीक्षा अंगीकार करेंगे। माता रोती है, आज्ञा नहीं दे सकती। पुत्र कहते हैं : माता एकबार रोना हो तो रो लें, परन्तु अब हम अपने आनन्द स्वरूपकी साधना हेतु जा रहे हैं। हम शपथ लेते हैं कि अब हम दूसरी माता नहीं करेंगे। अब हमें भव नहीं हैं। इसी भवमें मुक्ति रमाका वरण करेंगे।

गृहस्थ दशामें एकबार भावनगरमें ध्रुवका नाटक देखा था। ध्रुव राजकुमार था। बचपनमें उसकी माताकी मृत्यु हो गई थी। पिताने दूसरी स्त्रीसे विवाह किया। ध्रुवको वैराग्य आया और वनमें चला गया। जब वह वनमें ध्यानमग्न होकर बैठा था वहां दो अप्सराएँ विषय वासनाके लिये ललचाने आयी और बोलीं : अरे राजकुमार! हमारे सुन्दर सुकोमल शरीरको देखो। ध्रुव कहता है : हे माता! तुम्हारा शरीर सचमुच बड़ा सुन्दर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, परन्तु यदि मुझे अगले भवमें जन्म धारण करना पड़े तो तुम्हारी कोखसे जन्म धारण करूँ, दूसरी कोई बात नहीं है। उन दिनों तो वैराग्य-प्रेरक नाटक होते थे, आजकल सब बदल गया है। लोगोंकी बुद्धि बिगाड़नेमें निमित्त हों ऐसे कामोत्तेजक दृश्य होते हैं। आजकल तो नीतिका भी ठिकाना नहीं है।

यहां कहते हैं कि जीवने बाहरका बहुत किया—बाहरकी जानकारीकी, बाहरका ध्यान किया, बाह्य चारित्रका पालन किया और मान लिया कि मैंने बहुत धर्मसाधनाकी; परन्तु वह तो अज्ञान है। अपने स्वरूपकी प्रतीतिके बिना धर्मसाधना कैसी?

'शुभभाव किये किन्तु दृष्टि पर्याय पर थी।'

दया, दान, व्रत, तपादिके शुभभाव किये किन्तु दृष्टि तो वर्तमान राग, पुण्य एवं पर्याय पर थी। शुभरागके रसरूप दृष्टि ही मिथ्यात्व है। जहाँ श्रद्धा ही विपरीत है वहाँ धर्म या साधना सच्ची होती ही नहीं।

'अगाध शक्तिवान जो चैतन्यचक्रवर्ती उसे नहीं पहिचाना, नहीं ग्रहण किया।'

बाहरकी सब दौड धूप, शुभराग तथा धर्मके नामसे की जानेवाली सब क्रियाएँ की, परन्तु उनसे भिन्न अंतरमें ज्ञानादि अनंत शक्तिसम्पन्न चैतन्यचक्रवर्ती विराजमान है उसकी सच्ची पहिचान नहीं की, महिमा लाकर उसका ग्रहण नहीं किया।

'सामान्य स्वरूपको ग्रहण नहीं किया, विशेषको ग्रहण किया।'

जो त्रिकाल एक स्वरूप है ऐसे निज ध्रुव ज्ञायक भावको ग्रहण नहीं किया, अपने द्रव्यसामान्य का आश्रय नहीं किया, और विशेषका—राग तथा पर्यायका-ग्रहण किया वह तेरी मिथ्यादृष्टि है। सामान्य स्वरूप अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य जोकि त्रैकालिक ध्रुव है उसका ग्रहण कर, आश्रय कर, तो तुझमें सम्यग्दर्शनादि धर्म होंगे। उसके बिना सम्यग्दर्शन या धर्म नहीं होगा।

*

बेनश्रीको पुत्री कहूँ, बहिन कहूँ, धर्ममाता कहूँ या साधर्मी कहूँ, जो कुछ कहूँ—सब हैं।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-७१

ता. २१-८-७८

वचनामृत-१६१

दृष्टिकी डोर हाथमें रख। सामान्य स्वरूपको ग्रहण कर, फिर भले ही सब ज्ञान हो। ऐसा करते-करते अंतरमें विशेष लीनता होगी, साधक दशा बढ़ती जायगी। देशव्रत और महाव्रत सामान्य स्वरूपके आलम्बनसे आते हैं; मुख्यता निरंतर सामान्य स्वरूपकी—द्रव्यकी होती है॥१६१॥

'दृष्टिकी डोर हाथमें रख।'

सूक्ष्म बात है। जिसे अपना कल्याण करना है उसे, जो त्रिकाल ज्ञायक सामान्य स्वभाव है उसपर दृष्टि लगाना चाहिये। जो दृष्टि निमित्त, राग और पर्याय पर है वह तो मिथ्यात्व है। वीतराग देव-शास्त्र-गुरु जो कि संयोगी वस्तु हैं, पर वस्तु हैं उनका, उनकी श्रद्धा आदिका जो राग है उसका और जो विशेष अर्थात् वर्तमान पर्याय है उसका भी लक्ष छोड़ना चाहिये। दृष्टिको ध्रुव ज्ञायक पर लगा दे तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा, धर्मका प्रारम्भ होगा। वैसे लाखों बार क्रियाकाण्ड करे, व्रत-तप तथा पूजा-भक्तिका व्यवहार-आचार पाले, परन्तु वे तो रागके परिणाम हैं, अंतर स्वभावकी दृष्टि हुए बिना उससे आत्माका कुछ भी कल्याण नहीं होता। अरे! विशेष जो कि अपनी ज्ञानादि पर्याय है उसपर लक्ष करनेसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अहाहा! दृष्टिकी डोर हाथमें रखना चाहिये।

'सामान्य स्वरूपको ग्रहण कर, फिर भले ही सब ज्ञान हो।'

त्रिकाल एकरूप ध्रुव ज्ञायकभाव कि जिसमें पर्यायरूप विशेष भी नहीं है, उस सामान्य अभेद द्रव्यस्वभावमें दृष्टि लगा दे; श्रद्धामें और ज्ञानमें उसे ग्रहण कर। कठिन बात है! धर्म कैसे होता है यह बात कभी यथार्थरूपसे सुनी भी नहीं है। शुद्ध चिदानन्द घनस्वरूप त्रैकालिक द्रव्यस्वभावको ज्ञानमें बहुमूल्यभावसे ग्रहण करनेसे तथा श्रद्धामें उसका आश्रय लेनेसे, प्रथम सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रारम्भ—होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामान्य अर्थात् एकरूप त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक वस्तु जो कि सदा शुद्ध है उसमें दृष्टि लगा दे, निमित्त, राग और एकसमयकी पर्यायके भंगभेदको ग्रहण न कर, रुचिका जोर उसपर मत दे। अनादिकालमें वह नहीं किया इसलिये वह अपूर्व है। यह तो अभी धर्मके प्रथम सोपानकी—सम्यग्दर्शनकी बात है, पाँचवें-छट्ठे गुणस्थान-की स्थिति तो अलौकिक वस्तु है। लाखों या करोड़ों रूपये यह मानकर खर्च करे कि पैसा मेरा है, तो वह मिथ्यात्व भाव है। पैसा तो मूर्तिक अजीव तत्त्व है, भगवान आत्मा ज्ञायक अमूर्तिक जीवतत्त्व है। अजीव संयोग, राग और पर्यायसे रहित ऐसे निज सामान्य स्वरूप पर लक्ष दे, तो तेरी विशेष पर्यायमें सम्यग्दर्शन होगा।

अनंत जीव-अजीव पदार्थ, उनके गुण और पर्यायें यह सब जगत है। उसे ज्ञान भले जाने, तथापि ज्ञानीकी दृष्टि अंतरमें ध्रुव स्वभावमें स्थिर है वह नहीं हटती। शुद्ध ज्ञायक परमभावकी दृष्टि होनेसे जो सम्यग्ज्ञान हुआ वह, भले सब जाने—अनेक प्रकारके पदार्थोंको जाने, ध्यान करे, राग आये उसे जाने, शरीरकी जो क्रियाएँ हों उन्हें जाने—परन्तु वह मलिनता या बंधका कारण नहीं होता, उससे स्वरूपमें स्थिर उसकी दृष्टि चलित नहीं होती।

समयसारकी ११वीं गाथामें कहा है : 'भूतार्थने आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय छे.' ज्ञायक वस्तु जो सामान्य, एकरूप, भूतार्थ है उसमें दृष्टिकी डोर लगा दे। उसके साथ जो ज्ञान होगा वह सम्यग्ज्ञान है। वह ज्ञान राग तथा रत्नत्रयके विकल्प आयें उन्हें जानता है। दया, दानादि व्यवहारिक भावोंको 'मैं करता हूँ' ऐसा नहीं मानता। दया, दानादिके भावोंको मैं करता हूँ' ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाय। समयसारकी १२वीं गाथामें 'अपरम भावे स्थितने व्यवहारनो उपदेश छे' ऐसा आता है। टीकामें ऐसा कहा है कि—'व्यवहार उस काल जाना हुआ प्रयोजनवान हैं।'—इसके अर्थमें कई लोग विवाद करते हैं। कुछ तो ऐसा कहते हैं कि—चौथे, पाँचवे तथा छठवें गुस्थानमें तो व्यवहारनय ही होता है और शुद्धनय तो उपरके सातवें, आठवें आदि गुणस्थानोंमें होता है। परन्तु आचार्यदेव कहते हैं कि—प्रथम चौथे गुणस्थानसे शुद्धनय प्रगट होता है। अहाहा! जिसे आत्माका कल्याण करना है, जन्म-मरणरहित होना है, उसे प्रथमसे ही त्रैकालिक ज्ञायक सामान्यका आश्रय करना चाहिये।

'ऐसा करते करते अंतरमें विशेष लीनता होगी, साधक दशा बढ़ती जायगी।'

'चैतन्य स्वरूप सामान्य एकरूप अभेद ज्ञायक वस्तुका दृष्टिमें आश्रय करते-करते अंतरमें विशेष लीनता होती है, साधनाकी दशा बढ़ती जाती है। व्यवहार करते करते, निमित्त, शुभराग तथा पर्याय भेदका आश्रय करते-करते शुद्ध साधक दशा होगी—ऐसा तीनकालमें नहीं होता। व्यवहार, राग और निमित्त अपने सामान्य ध्रुव स्वरूपमें नहीं हैं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह अपनी वस्तु नहीं है। शुद्धात्मद्रव्यसामान्य पर दृष्टि देनेसे प्रभु! तुझे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। उसका स्वीकार करके अंतरमें रमते-रमते आनन्द स्वरूपमें विशेष-विशेष लीनता होगी। उसका नाम चारित्र, स्वरूपस्थिरता एवं आत्मरमणता है। शुद्ध ज्ञायक प्रभुको दृष्टिमें लेकर उसमें विशेष लीनता होने पर भीतर शुद्ध साधकदशा बढ़ जायगी।

निर्मल शुद्ध पर्याय निमित्त या पर्यायके आश्रयसे उत्पन्न नहीं होती, त्रैकालिक ज्ञायक सामान्यके आश्रयसे उत्पन्न होती है। उस त्रैकालिक आत्माको परमपारिणामिक भाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, सादृश्यभाव कहो, ध्रुवभाव कहो, नित्यभाव कहो, एकरूपभाव कहो—वह सब एकार्थ है। भगवान ज्ञायक पदार्थ अंतरमें वज्र समान ध्रुव स्तंभ है, उसका आश्रय लेनेसे दृष्टिमें उसका स्वीकार करनेसे सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानरूप धर्मका प्रारम्भ होता है। इसके बिना व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि सब बंधका कारण है। वह तो शुभराग है, उससे सम्यग्दर्शन कैसे होगा? अरे! शुभरागसे तो सम्यग्दर्शन नहीं होता, परन्तु उस रागको जाननेवाली जो ज्ञानकी पर्याय है, उसके आश्रयसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अहा! ऐसी महँगी बात है।

आत्मा त्रिकाल ज्ञायक, निर्वाणस्वरूप, मोक्षस्वरूप तथा अबद्धस्पृष्टादि भावस्वरूप है। उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, शुक्लध्यान तथा केवलज्ञानादि होते हैं। साधकदशामें दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति आदिके शुभ विकल्प आते हैं, परन्तु ज्ञानी उसका मात्र ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। सर्वज्ञ स्वरूप भगवान आत्मा तीनकाल और तीनलोकके सर्वपदार्थोंका ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। सर्व पदार्थ, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और उनकी भूत, वर्तमान एवं भविष्य सम्बन्धी सर्व पर्यायें उन सबका स्पर्श किये बिना, अपने क्षेत्रोंमें रहकर ज्ञान जानता है। ऐसी स्वपरप्रकाशक शक्ति आत्मामें है। आया कुछ समझमें?

समयसारकी ३८वीं गाथाकी टीकामें आता है कि परमेश्वर स्वरूप ऐसा जो मेरा आत्मा उसे मैं भूल गया था। अहा! समयसारमें तो सब आता है। समयसारमें भावोंके ढेरके ढेर भरे हैं। समयसार तो ग्रन्थाधिराज है, तत्त्वज्ञानका समुद्र है, साक्षात् सर्वज्ञ भगवानकी वाणी है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले यहाँसे महाविदेहक्षेत्रमें भगवान श्री सीमंधरस्वामीके पास गये थे। वहाँ आठ दिवस रहे थे। वर्तमानमें श्री सीमंधर भगवान समवशरणमें विराजते हैं, पाँच सौ धनुषका शरीर है, एक करोड़ वर्ष पूर्वकी आयु है। एक पूर्वमें ७०५६००० करोड़ वर्ष जाते हैं। यहाँके वीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथके कालमें सीमंधर भगवानका दीक्षा कल्याणक हुआ था और यहाँकी आगामी चौबीसीके तेरहवें तीर्थंकर होंगे तब मोक्ष पधारेंगें। जैसे यहाँ महावीर भगवान थे वैसे ही वे पूर्व विदेहमें अरिहंतपद पर विराजमान हैं। श्री जयसेनाचार्यदेव पंचास्तिकायसंग्रहकी टीका प्रारम्भ करते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुए, लिखते हैं कि :—श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव सर्वज्ञवीतराग श्री सीमंधरस्वामीके दर्शन करने पूर्व विदेह में गये थे और वहाँसे आकर शिवकुमार राजाके प्रतिबोधनार्थ इस शास्त्रकी रचनाकी है।

मैंने तो हजारों शास्त्रोंका अभ्यास किया है। संवत् १९६५से शास्त्रोंका अभ्यास है। यहाँसे (सोनगढ़से) ११ मील दूर उमराला ग्राम है। वह इस शरीरकी जन्मभूमि है १३ वर्ष वहाँ रहा, ९ वर्ष पालेज (भरुच और बड़ौदाके बीच) रहा। वहाँ १७ से २२ वर्षकी उम्र-पाँच वर्ष तक दुकान चलायी। दुकानमें भी मैं शास्त्र-स्वाध्याय करता था। २३ वर्षकी उम्रमें (स्थानकवासी सम्प्रदायमें) दीक्षा ली। संवत् १९७०में बड़े भाईने दो हजार खर्च करके उमरालामें हाथी पर शोभायात्रा निकालकर दीक्षा दिलायी। संवत् १९७८में समयसार शास्त्र हाथमें आया, पढ़कर ऐसा लगा कि—यह शास्त्र तो अशरीरी होनेकी वस्तु है! सिद्ध होनेका शास्त्र है। सम्प्रदायमें ३२ या ४५ सूत्र हैं, परन्तु उनमें कहीं यह बात नहीं है। आया कुछ समझमें?

फिर संवत् १९८७में मैंने बड़े भाईसे कहा : भाई! यह मार्ग नहीं है, यह साधुपना सच्चा नहीं है, मैं तो इसे छोड़ दूँगा। भाईने कहा : महाराज! आपकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि खूब है, इसलिये धीरे-धीरे छोड़ना। यहाँ सोनगढ़में गाँवके छोर पर 'स्टार ऑफ इन्डिया' नामका एक अलग मकान है वहाँ निवास किया। बड़े भाईकी उपस्थितिमें संवत् १९९१में महावीर जयन्तीके दिन मुँहपट्टी छोड़कर परिवर्तन किया था। अहमदाबादके एक पत्रकारने अपने अखबारमें समाचार छापा कि—'कानजी स्वामी अब स्थानकवासी साधु नहीं हैं।' पढ़कर स्थानकवासी समाजमें खलबली मच गई। क्या करें वीतराग दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य धर्म है, दूसरा कोई धर्म सत्य है नहीं। अरेरे! दिगम्बर सम्प्रदायवालोंको भी सत्य वस्तुस्थितिकी कहाँ खबर है? 'वे भी व्रत करो, तप करो, प्रतिमा ले लो, त्यागी हो जाओ'—इसप्रकार बाह्य क्रियाकाण्ड और शुभभावमें धर्म मानते हैं।

अनंत बार द्रव्य मुनिपना धारण किया, किन्तु त्रैकालिक ज्ञायकका आश्रय नहीं लिया, इसलिये आत्म दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। एक समयकी पर्यायके पीछे पूर्णानंदका नाथ विद्यमान है, उसका लक्ष नहीं किया, इसलिये अंतरमें साधकदशा प्रगट नहीं हुई। समयसारकी ४९ वीं गाथामें आत्माको 'अव्यक्त' कहा है। उसकी टीकामें टीकाकारने कहा है कि-छह द्रव्यस्वरूप लोक जो कि ज्ञेय है उससे यह टंकोत्कीर्ण ज्ञायक आत्मा भिन्न होने से वह अव्यक्त है। अरिहंत, सिद्ध आदि ज्ञान स्वरूप आत्माके पर ज्ञेय हैं, आत्मा उनका स्पर्श नहीं करता, उससे वे अन्य हैं, इसलिये अव्यक्त हैं।

तथा, द्रव्यसामान्य वर्तमान वर्तती पर्यायको स्पर्श नहीं करता, पर्यायरूप नहीं हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाता, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानादि पर्यायें द्रव्यसामान्यका स्पर्श नहीं करतीं, द्रव्यरूप नहीं हो जातीं; इसलिये आत्मद्रव्य अव्यक्त है। त्रैकालिक ज्ञायकके अवलम्बन द्वारा सम्यग्दर्शन हुआ, अंतरमें मोक्षका मार्ग प्रगट हुआ, वीतरागी पर्याय प्रगट हुई—वे सब पर्यायें ध्रुवसामान्यका स्पर्श नहीं करतीं, ध्रुवरूप नहीं हो जातीं,—इसलिये ध्रुव ज्ञायक आत्मा 'अव्यक्त' है। उसके आश्रयसे सम्यदर्शन एवं स्वरूप रमणता होती है, साधक दशा बढ़ती जाती है।

'देशव्रत और महाव्रत सामान्य स्वरूपके अवलम्बनसे आते हैं, मुख्यता निरंतर सामान्य स्वरूपकी-द्रव्यकी होती है।'

दृष्टि ध्रुव ज्ञायक पर है, तथापि भूमिकानुसार पाँचवे-छठवें गुणस्थानमें देशव्रत-महाव्रतके विकल्प आते हैं। सामान्यका अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकता स्वरूप जो मोक्षमार्ग हुआ—साधक दशा हुई—उसमें पूर्ण स्थिरता नहीं हो जाती इसलिये देशव्रत और महाव्रतके विकल्प आते हैं, परन्तु उस समय भी अंतरमें मुख्यता तो निरंतर द्रव्यसामान्यकी होती है। अहा! यह तो त्रिलोकीनाथ सीमंधर-भगवानकी वाणी है। बेन वहाँसे आयी हैं। वहाँ सीमंधर भगवानकी वाणीमें यह बात आती है। यह तो व्यक्तिगत बात है–बैठनेमें कठिनाई हो ऐसी बात है।

ज्ञायककी दृष्टि होने पर स्थिरता बढ़नेसे—सामान्यके अवलम्बनसे श्रावकको देशव्रतके विकल्प आते हैं। जिसे सामान्य स्वरूपकी दृष्टि नहीं है उसके व्रतादिके विकल्प बालव्रत एवं बालतप हैं, मिथ्यात्व सहित हैं। यह तो सर्वज्ञ भगवानसे सिद्ध हुआ तत्त्व है। वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप है। द्रव्यसामान्यके अवलम्बनसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है। अनंत द्रव्य हैं, अनंत आत्माएँ हैं—यह सब न्यायसे सिद्ध है। अन्य मतोंमें ऐसा तत्त्व नहीं है।

चैतन्य विज्ञानघन ऐसे निज आत्मद्रव्यमें जिसने दृष्टिकी डोर लगा दी उसे उसमें लीनता होते-होते ज्ञायककी शुद्ध दशा बढ़ती है। साधकको चौथेसे पाँचवें गुणस्थानमें आये तब बारह व्रतके विकल्प आते हैं। आगे बढ़ने पर मुनिपनेकी दशा आती है। वहाँ साधकपना तो ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे बढ़ता है। मुनिपना होनेसे पूर्व सातवाँ अप्रमत्त गुणस्थान आता है, फिर विकल्प उठे—प्रमत्त दशा हो—तब सातवेंमेंसे छठवाँ आता है। यह तो छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हुए सच्चे भावलिंगी मुनिकी बात है। उन मुनिराजको साधक दशामें निरन्तर सामान्य-स्वरूपकी मुख्यता रहती है। त्रैकालिक ज्ञायक भगवान उनकी दृष्टिमेंसे किंचित् भी ओझल नहीं होता।

यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) बड़ी अच्छी है। पचास हजार पुस्तकें छप चुकी हैं। छोटे ताड़पत्रोंमें वचनामृत आये हैं। छोटी गुटका आकारकी पुस्तकें भी छपी हैं। अहा! लोग जानें तो सही कि बेनने इसमें क्या कहा है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षपाहुडकी १६वीं गाथामें कहते हैं :—

परद्रव्यथी दुर्गति खरे, सुगति स्वद्रव्यथी थाय छे;
—ऐ जाणी निजद्रव्ये रमो, परद्रव्यथी विरमो तमे।

अपने ध्रुव चैतन्य स्वरूपके आश्रयसे जो पर्याय हो वह सुगति है। पर द्रव्यके आश्रयसे चैतन्य की परिणतिमें जो राग होता है वह चैतन्यस्वभावसे विरुद्ध होनेसे दुर्गति है। व्यवहार रत्नत्रयके शुभरागसे भी सिद्धगति नहीं होती, स्वर्ग मिले वह भी दुर्गति है, विभावगति है। चारो गतियाँ विभाव होनेसे दुर्गति हैं। मात्र ध्रुव ज्ञायक स्वभावके अवलम्बनसे जो निर्मलता—वीतरागता—प्रगट हो वह सुगति है।

प्रश्न :—तिर्यंचोका शरीर आड़ा क्यों हुआ ?

उत्तर :—भगवान कहते हैं कि आत्मस्वभावकी विराधना–आड़ाई बहुत की, उसके फलरूप उन्हें शरीर भी आड़े मिले। अरेरे! इस दुर्लभ मनुष्यभवमें धर्म क्या वस्तु है उसे समझनेकी परवाह नहीं, सत्समागमका भाव नहीं, दो-चार घण्टे स्वाध्यायका पुण्य भी नहीं। चौवीसो घण्टे मात्र पापके परिणाम करते हैं, उन्हें दूसरी कौनसी गति मिलेगी ? दुर्गति ही होगी। यहाँ कहते हैं कि—ज्ञानीको सदा द्रव्यस्वभावकी मुख्यता होती है।

*

वचनामृत–१६२

आत्मा तो निवृत्तस्वरूप-शान्त स्वरूप है। मुनिराजको उसमेंसे बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है। उच्चसे उच्च शुभभाव भी उन्हें बोझरूप लगते हैं-मानों पर्वत उठाना हो। शाश्वत आत्माकी ही उग्र धुन लगी है। आत्माके प्रचुर स्वसंवेदनमेंसे बाहर आना नहीं सुहाता ॥१६२॥

'आत्मा तो निवृत्तस्वरूप–शान्त स्वरूप है।'

भगवान आत्मा तो शरीर, वाणी आदि पर द्रव्यसे पृथक् तथा शुभाशुभ रागसे निवृत्त स्वरूप है। सच्चिदानन्द प्रभु विभावसे तो निवृत्तस्वरूप है किन्तु नवतत्त्वोंसे भी भिन्न है। नवतत्त्वोंमें आत्माका दस प्राण, जीवस्थान, गुणस्थान, मार्गणास्थानादिसे युक्तपना सो जीवतत्त्व है, कर्म, शरीर, लक्ष्मी आदि अजीव तत्त्व है, दया, दानादि परिणाम पुण्यतत्त्व है, मिथ्यात्व, हिंसा, झूठ, चोरी, आदि पापतत्त्व है, पुण्य और पाप मिलकर आस्रवतत्त्व है, रागमें रुक जाना वह बंध तत्त्व है, आस्रवका निरोध—आत्माके आश्रयसे प्रगट होनेवाली शुद्धि-संवरतत्त्व है, बंधका एकदेश अभाव—ज्ञायकके आश्रयसे शुद्धिकी वृद्धि—निर्जरातत्त्व है और परिपूर्ण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्ध दशा प्रगट होना वह मोक्षतत्त्व है। ज्ञायकतत्त्व तो नवों तत्त्वोंसे भिन्न है, क्योंकि यह नवतत्त्व पर्याय स्वरूप है और ज्ञायक सामान्य तो अपरिणामी ध्रुवस्वरूप है। आत्मा तो निवृत्तस्वरूप-शान्तस्वरूप है। शान्त कहो या अकषाय कहो—दोनों एकार्थ हैं। जिसमें व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदिके विकल्पोंका किंचित् मात्र स्थान नहीं है ऐसा ध्रुव ज्ञायक प्रभु अकषाय शान्त स्वरूप है, विभावसे निवृत्तस्वरूप है।

'मुनिराजको उसमेंसे बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है।'

मुनिराजको उस शान्त स्वरूपमेंसे बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है। वे तो भीतर आनन्दके सागरमें समा गये हैं। व्रतादिके विकल्प आते हैं परन्तु उन्हें, अरे! हम यहाँ विभावरूप परदेशमें कहाँ आ पहुँचे? हमारा ज्ञानानन्दकी अनुभूति स्वरूप स्वदेश तो अंतरमें है—ऐसा लगता है।

'उच्चसे उच्च शुभभाव भी उन्हें बोझरूप लगते हैं—मानों पर्वत उठाना हो।'

जिससे तीर्थंकर नामकर्म बँधे वह ऊँचेसे ऊँचा शुभभाव भी बोझरूप लगता है, क्योंकि वह भाव भी राग है ना? निवृत्तस्वरूप भगवान आत्माको पर्यायमें जो राग आता है वह बोझरूप लगता है, भार रूप लगता है। 'रागसे भिन्न हूँ'—ऐसी प्रतीति हुई वह सम्यक्त्वी, और प्रतीति होनेके पश्चात् अंतरमें विशेष स्थिरता होने पर व्रतादिका शुभराग भी बोझ लगे वह मुनिदशा। मुनिराजको बाहर विकल्पमें आना पड़े वह बोझरूप लगता है, मानों बड़ा पर्वत उठाना हो ऐसा भार लगता है। समयसारके मोक्षअधिकारमें प्रतिक्रमणादि शुभभावोंको विषकुम्भ कहा है। यहाँ उन्हें बोझरूप कहा है। मुनिराजको व्यवहार रत्नत्रयके विकल्प उठें वे भी भाररूप लगते हैं, मानों बड़ा पर्वत उठाना हो। भगवान ज्ञायक आत्मा तो विकल्पके बोझ रहित, निर्भार, निवृत्त, शान्त, और परम अमृत स्वरूप है।

'शाश्वत आत्माकी ही उग्र धुन लगी है। आत्माके प्रचुर स्वसंवेदनमेंसे बाहर आना नहीं सुहाता।'

मुनिराजको त्रैकालिक ज्ञायककी ही उग्र धुन लगी है। उन्हें अंतर आनन्दके वेदनमेंसे बाहर आना अच्छा नहीं लगता। विकल्पमें जरा भी नहीं सुहाता, परन्तु अशक्तिसे आना पड़ता है, परन्तु उसे दुःखरूप जानते हैं और वह बोझरूप लगता है। जो विभावको दुःखरूप जाने उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ कहा जाता है।

बेन तो महाविदेहसे आयी हैं। उनके अनुभवकी यह(वचनामृत) वाणी है। हीरों से सन्मान किया तब भी उन्हें कुछ नहीं। बेन तो (कुछ भवमें)केवलज्ञानी होंगी।

—पूज्य गुरुदेव।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–७२

ता. २२-८-७८

वचनामृत-१६३

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायकको ज्ञायक द्वारा ही अपनेमें धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीवको तथा मुनिको भेदज्ञानकी परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थको उसकी दशाके अनुसार उपयोग अंतरमें जाता है और बाहर आता है, मुनिराजको तो उपयोग अति शीघ्रतासे बारम्बार अंतरमें उतर जाता है। भेदज्ञानकी परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनोंके चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ तबसे कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टिको चौथे गुणस्थानके अनुसार और मुनिको छठवें-सातवें गुणस्थानके अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थके बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है।।१६३।।

'सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायकको ज्ञायक द्वारा ही अपनेमें धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।'

तात्त्विक बात है भाई! बेनकी वाणीमें तो तत्त्व-मक्खन भरा है। अपने पूर्ण परमानन्दकन्द शुद्ध ज्ञायकदेवकी जिसे प्रथम सानुभव प्रतीति हुई है वह सम्यग्दृष्टि जीव अपने चिदानन्दघन ज्ञायकतत्त्वको ज्ञायकभावके आलम्बन द्वारा ही अपनी ज्ञाताधारामें दृढ़रूपसे धारण कर रखता है, वह दया, दान, व्रत, तप आदि शुभराग द्वारा धारण करके नहीं रखा जाता। जो नित्य ध्रुवतत्त्व है, जिसमें आवरण, अशुद्धि एवं न्यूनता नहीं है ऐसे निज ज्ञायकभावको जिसने दृष्टि और अनुभवमें लिया वह ज्ञानी धर्मी जीव ज्ञायकको ज्ञायक द्वारा ही अपनेमें धारण कर रखता है, ज्ञायकभावको अपनेमें टिकाए रखता है और

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकभावको अपनेमें स्थिर रखता है,—ऐसी ज्ञानधारा सहज वर्तती रहती है।

ज्ञायकभाव है तो त्रिकाल सहज विद्यमान, परन्तु जब पर्यायमें उसका अनुभव हुआ, दृष्टिमें उसका आश्रय लेकर साक्षात्कार हुआ, तब ज्ञायकको ज्ञायक द्वारा ही अपनेमें धारण कर रखा, टिका रखा कहा जाता है, निमित्तमें, संयोगमें, रागमें या व्यवहारमें धारण कर रखा है ऐसा नहीं। 'तू ही देवोंका देव।' तेरे अपने अंतर अवलम्बनमें किन्हीं देव-गुरु, जिनप्रतिमादि निमित्त या व्यवहार रत्नत्रयके विकल्पकी अपेक्षा नहीं है। नियमसारकी दूसरी गाथाकी टीकामें कहा है : शुद्धरत्नत्रय अर्थात् निज परमात्मतत्त्वकी सम्यक् श्रद्धा, उसका सम्यक् ज्ञान और उसका सम्यक् आचरण परकी तथा भेदोंकी किंचित् भी अपेक्षा रहित होनेसे वह शुद्ध रत्नत्रय मोक्षका उपाय है; उस शुद्धरत्नत्रयका फल शुद्धात्माकी पूर्ण प्राप्ति अर्थात् मोक्ष है।

प्रश्न :—व्यवहारको सहकारी तो कहा जाता है ना?

उत्तर :—व्यवहार है अवश्य, परन्तु उसे साधन कहना उपचार है। अपने ज्ञायक स्वरूपका आश्रय लेकर जो स्वानुभूति—शुद्धि हुई वह निश्चय है। वहाँ भूमिकानुसार राग आता है उसे, शुद्धिका सहचर देखकर, उपचारसे—व्यवहारसे साधन कहा जाता है। वास्तवमें वह व्रतादिका शुभराग शुद्धिका साधन नहीं है। राग वीतरागताका साधन कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने ज्ञायक स्वरूपके अवलम्बनसे होते हैं, वह तो सत्यार्थ है, और भूमिकानुसार जो देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा-भक्तिका राग व्रतादिके परिणाम, शास्त्रोंका ज्ञान, व्यवहार रत्नत्रयके भाव आते हैं उसे, साथ ही अंतरमें ज्ञायकके आश्रयरूप निश्चय परिणमन वर्तता हो तो, आरोपसे सहकारी साधन कहा जाता है। वास्तवमें तो वह रत्नत्रय है नहीं, वह तो राग है, परन्तु अंतर स्वद्रव्याश्रित वर्तती शुद्धिका सहचर—साथ वर्तनेवाला—देखकर उपचारसे–व्यवहारसे साधन कहा जाता है। आया कुछ समझमें?

'सम्यग्दृष्टि जीवको तथा मुनिको भेदज्ञानकी परिणति तो चलती ही रहती है।'

शरीर, वाणी आदि परसे और शुभाशुभ रागसे भिन्न निज शुद्ध ज्ञायकका जो अनुभव हुआ वह भेदज्ञानकी धारा—अनुभवकी निर्मल परिणति सम्यग्दृष्टि तथा मुनिको अपनी-अपनी भूमिकानुसार सतत चलती ही रहती है। प्रत्येक प्रसंगमें 'रागसे भिन्न हूँ' ऐसा याद नहीं करना पड़ता, परन्तु शुभाशुभ परिणामके समय भी अंतरमें भेदज्ञानकी निर्मल धारा निरंतर चलती ही रहती है।

प्रश्न :—'भेदज्ञान करना' ऐसा कहा तो जाता है ना?

उत्तर :—कथनमें तो पहले ऐसा ही आता है कि परसे तथा रागसे भेदज्ञान करो।' वास्तवमें तो पर एवं रागसे भिन्न निज ध्रुव ज्ञायककी दृष्टि एवं अनुभूतिरूप परिणमन होना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही भेदज्ञानकी अटूट निर्मल धारा है। 'करना' ऐसा भाव परद्रव्य अथवा तो रागके आश्रयसे उत्पन्न होता है। रागसे तो भेदज्ञान करना है। तो जिससे भेदज्ञान करना है उस रागकी अपेक्षा रखकर, रागका आश्रय करके भेदज्ञान होगा? नहीं होगा। रागसे भिन्न ज्ञायक स्वभावका सहज आश्रय करनेसे भेदज्ञानकी निर्मल धारा चालू होती है। अहाहा! बड़ी कठिन बात है। ज्ञानीको क्षण-क्षण भेदज्ञान नहीं करना पड़ता, अंतर ज्ञायकके आश्रयसे परिणमित सहज पुरुषार्थसे, पर एवं रागसे भिन्न ऐसे ज्ञायकके अनुभव स्वरूप भेदज्ञानकी परिणति निरंतर चलती ही रहती है। आता है कुछ समझमें? सूक्ष्म बात है भाई!

'सम्यग्दृष्टि गृहस्थको उसकी दशाके अनुसार उपयोग अंतरमें जाता है और बाहर आता है, मुनिराजको तो उपयोग अति शीघ्रतासे बारम्बार अंतरमें उतर जाता है।'

जिन्हें रागसे भिन्न अपने पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभुका अनुभव हुआ है ऐसे सम्यग्दृष्टि गृहस्थको अपनी भूमिकानुसार उपयोग अंतरमें, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयके भेदरूप विकल्प छूटकर, कभी-कभी जाता है, मुनिको तो अति शीघ्रतासे बारम्बार अंतरमें उतर जाता है।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको चौथे तथा पाँचवें गुणस्थानमें आत्माके आनन्दका अनुभव है। उनका उपयोग उनकी दशा अनुसार अंतरमें जाता है और तुरन्त बाहर आ जाता है, निर्विकल्प अनुभवमें विशेष अंतर पड़ता है, क्योंकि मुनि जैसी उग्र दशा नहीं है। अविरत सम्यग्दृष्टिको एक अनंतानुबंधी कषायकी चौकड़ीका अभाव हुआ है और पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकको कषायकी दो चौकड़ीका अभाव हुआ है। उनका उपयोग भूमिकानुसार अंतरमें जाता है, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयका तथा ध्याता-ध्यान-ध्येयका भेद भी छूट जाता है और ध्रुव ज्ञायकके अनुभव स्वरूप अभेद उपयोग हो जाता है। परन्तु उसमें विशेष स्थिर नहीं रह सकते इसलिये उपयोग बाहर आ जाता है—विकल्प उत्पन्न होते हैं। मुनिराज को, कषायकी तीन चौकड़ीका अभाव हुआ होनेसे अंतर-आत्मशुद्धि बहुत बढ़ गई है इसलिये, उपयोग अति शीघ्रतासे बारम्बार अंतरमें उतर जाता है।

सम्यग्दर्शन एवं आत्मज्ञान सहित स्वरूपरमणता विशेष प्रगट हुई है ऐसे सच्चे भावलिंगी संतको बाह्यमें थोड़े विकल्प तो आते हैं, परन्तु पुनः तुरन्त अंतरमें लीन हो जाते हैं। छठवें गुणस्थानमें व्रतादिके विकल्प आते हैं, परन्तु क्षणभरमें झटसे सातवेंमें—भीतर निर्विकल्प अप्रमत्त स्वात्मानुभवमें—चले जाते हैं। गृहस्थका उपयोग अंतर में मुनि जितना एकाग्र नहीं होता। उसे भूमिकानुसार शुद्धपरिणति अंतरमें चलती रहती है, परन्तु उपयोग अंतर्मुख होने में विलम्ब होता है। मुनिराज तो, बाहर आये न आये कि तुरन्त अंतर्मुख हो जाते हैं।

प्रश्नः—यह तो मुनिकी बात है, इससे हमें क्या?

उत्तरः—भाई! मुनिदशा कैसी होती है उसका ज्ञान तो करना पड़ेगा ना? पंच

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमेष्ठीमें अरिहंत और सिद्ध देव व और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु—यह तीन गुरु हैं। गुरुका यथार्थ स्वरूप कैसा है वह जाने बिना अंतर साधनाका स्वरूप कैसे समझमें आयेगा? इसलिये साधक दशा—मुनिपना और श्रावकपना—क्या वस्तु है वह समझना पड़ेगा। भावलिंगी सच्चे संतको अंतरमें बहुत निर्मलता बढ़ गई है। उन्हें तो उपदेश देते-देते भी उपयोग अंतर स्वरूपमें चला जाता है।

मुनिराजको, जिसप्रकार ज्ञायकस्वभावमें शक्तिरूप परमेश्वरता है उसीप्रकार, व्यक्तिरूप परमेश्वरपद (अंशतः) प्रगट हुआ है, क्योंकि वे परमेष्ठी हैं ना? उन्हें भूमिकानुसार महाव्रतादिके विकल्प आते हैं, परन्तु उपयोग तत्काल अंतर आनन्दके नाथमें शीघ्रतासे चला जाता है।

'भेदज्ञानकी परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनोंके चलती ही रहती है।'

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ हो या मुनि हो—दोनोंके ज्ञातृत्वधारा ज्ञाता-द्रष्टाधारा तो निरंतर चलती ही रहती है। गृहस्थाश्रममें भले रागादि हो आते हैं, तथापि अंतरमें ज्ञातृधारा तो सदैव चलती ही रहती है।

'उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ तबसे कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।'

जबसे उन्हें राग और विकल्पसे भिन्न ज्ञायक स्वभावके भेदज्ञानपूर्वक निर्विकल्प आनन्दका अनुभव हुआ तबसे अंतरमें पुरुषार्थकी धारा सतत चलती ही रहती है। उनका कोई समय पुरुषार्थ रहित नहीं होता।

प्रश्न :—जब काललब्धि पके तब कार्य होता है ना?

उत्तर :—भाई! काललब्धि कहा किसे जाय? अपने स्वभावकी सन्मुखताका स्वयं जिस समय पुरुषार्थ किया वही काललब्धि है। जिसे अंतर स्वन्मुखताके पुरुषार्थका भास हुआ है उसीको काललब्धिका यथार्थ ज्ञान है। अंतरमें पुरुषार्थ भासे बिना ऊपर-ऊपरसे काललब्धिकी बातें करता रहे उसे काललब्धिकी यथार्थ समझ नहीं है। पण्डित टोडरमलजी कहते हैं :—

''प्रश्न :—मोक्षका उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यतानुसार बनता है, या मोहादिकका उपशमादि होने पर बनता है, या अपने पुरुषार्थपूर्वक उद्यम करने पर बनता है, वह कहो। यदि प्रथम दो कारण मिलने पर बनता है तो आप हमें उपदेश किसलिये देते हो? और यदि पुरुषार्थसे बनता है तो उपदेश तो सब सुनते हैं, तथापि उसमें कोई पुरुषार्थ कर सकता है तथा कोई नहीं कर सकता उसका क्या कारण?

उत्तर :— ×××पूर्वोक्तम तीन कारण कहे उनमें काललब्धि अथवा भवितव्यता तो कोई वस्तु ही नहीं है। जिस कालमें कार्य बने वही काललब्धि तथा जो कार्य हुआ वही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भवितव्य; तथा कर्मके उपशमादिक हैं वह तो पुद्गलकी शक्ति है, उसका कर्ता हर्ता आत्मा नहीं है, तथा पुरुषार्थपूर्वक उद्यम किया जाता है वह आत्माका कार्य है। इसलिये आत्माको पुरुषार्थ पूर्वक उद्यम करनेका उपदेश देते हैं। ×××इसलिये जो जीव श्री जिनेश्वरके उपदेशानुसार पुरुषार्थपूर्वक मोक्षका उपाय करता है उसे तो ×××अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है—ऐसा निश्चय करना। ×××जो उपदेश सुनकर पुरुषार्थ करता है वह तो मोक्षका उपाय कर सकता है, परन्तु जो पुरुषार्थ नहीं करता वह मोक्षका उपाय नहीं कर सकता। उपदेश तो शिक्षामात्र है परन्तु फल तो जैसा पुरुषार्थ करेगा वैसा आयगा।''

हमारे यहाँ तो १९७२के वर्षमें इस प्रश्न पर खूब चर्चा हुई थी। सम्प्रदायके गुरुभाई बारम्बार कहते रहते कि—केवलज्ञानीने देखा होगा तब अपना मोक्ष होगा, उसमें अपना पुरुषार्थ क्या काम आयगा? उस समय मैंने कहा था : भाई! आप यह क्या कहते हैं? जिसकी एक समयकी पर्यायमें तीनलोक और तीनकाल तथा विश्वके समस्त पदार्थ अपनी-अपनी तीनों कालकी पर्यायों सहित युगपद प्रत्यक्ष ज्ञात हों ऐसी पूर्ण शक्तिवाला केवलज्ञान स्वभाव तुम्हारे अंतरमें विश्वासमें बैठा है? केवलज्ञानमें सर्व ज्ञात होता है इसलिये क्या केवलीके आधीन तुम्हारा पुरुषार्थ है? केवलीके ज्ञानसे क्या तुम्हारा पुरुषार्थ बँध जाता है? उस समय उदाहरण देकर मैंने कहा था कि—श्री कृष्णके साथ उनके छोटे भाई गजसुकुमार नेमिनाथ प्रभुकी वाणी सुनने गये थे। वाणी सुनते ही अंतरमेंसे पुरुषार्थ फूटा और वे बोले : प्रभु! आत्मामें रमणता हेतु मैं दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ और द्वारिकाके महाकाल स्मशानमें जाकर भिक्षुकी बारहवीं प्रतिमा धारण करके आत्मध्यानमें लीन होना चाहता हूँ। भगवानकी वाणीमें आया : जैसे सुख उत्पन्न हो वैसा करो—पडिबंधं मा कुणह—पुरुषार्थमें प्रतिबंध मत करना। अहा! गजसुकुमारका कैसा तीव्रतासे प्रस्फुटित होता पुरुषार्थ? भगवानने देखा होगा तब होगा अथवा काललब्धि पकेगी तब होगा ऐसी पुरुषार्थ हीनता भरी बात वहाँ थी? उनका तो ऐसा पुरुषार्थ था कि इसी समय दीक्षा ले लूँ और आज ही केवलज्ञान प्रगट करूँ। गजसुकुमार महाकाल स्मशानमें ध्यानमग्न थे तब उनकी वाग्दत्ता पत्नीके पिता सोमिल सोनीने क्रोधाविष्ट होकर स्मशानमेंसे अग्नि लेकर उनके सिरपर रखी और उपसर्ग किया। गजसुकुमारने समताभावपूर्वक ध्यानमग्न रहकर केवलज्ञान प्रगट किया। अहा! प्रातःकाल राजकुमार और सायंकाल केवलज्ञानी भगवान! ऐसा अंतरका पुरुषार्थ करनेसे स्वभावोन्मुख हुआ जाता है। ज्ञानीको स्वभावोन्मुखताके पुरुषार्थकी धारा निरंतर चलती ही रहती है। उसका कोई काल, कोई परिणमन पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अहा! यह बात जगतसे बिलकुल भिन्न ही है।

पुरुषार्थहीनताकी बात मैं पहलेसे ही सहन नहीं कर पाता था। जब यह चर्चा चली तब अंतरसे ऐसा लगा कि—ऐसी पुरुषार्थको उड़ाने वाली विपरीत श्रद्धा और ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संग मुझे नहीं चाहिये, इसलिये एक दिन गुरु और गुरुभाईयोंका संग छोड़कर चल दिया था। फिर श्रावक लोग विनती करने आये कि 'महाराज! गुरुके निकट वापिस आ जाईये, और मुझे भी लगा कि उम्र अभी छोटी है, साधुदशामें अकेला रहना ठीक नहीं। वापिस गया, परन्तु अंतरमें सम्प्रदायके साधुओंकी श्रद्धा नहीं रही।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानीको भेदज्ञान हुआ तबसे कोई काल अंतर्मुख पुरुषार्थ बिना नहीं होता। अपना वीर्य स्वोन्मुख हुआ सो हुआ। स्वरूपकी रचना करना ही वीर्यका कार्य है। दया-दानादि रागपर्यायकी रचना करना वह स्वरूप-वीर्यका कार्य नहीं है। पर्यायमें रागकी रचना होना वह तो नपुंसकता है, स्वभाववीर्यका घात है। व्यवहाररत्नत्रयका जो राग होता है वह वीर्य गुणका स्वाभाविक कार्य नहीं है, अरे! वह तो वीर्यहीन नपुंसकताका कार्य है।

'अविरत सम्यग्दृष्टिको चौथे गुणस्थानके अनुसार और मुनिको छठवें-सातवें गुणस्थानके अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है।'

यहां कहते हैं कि—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी तथा मुनिराजको स्वभाव सन्मुखताके पुरुषार्थरूप कार्य निरंतर चलता ही रहता है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक तथा मुनिराजको अपने-अपने प्रमाणमें अन्तर्मुख पुरुषार्थकी धारा अविच्छिन्नरूपसे चलती ही रहती है। पं. दीपचन्दजी ज्ञानदर्पणमें कहते हैं कि—काललब्धि पकेगी तब अंतरमें निश्चयदशा प्रगट होगी—ऐसा तू कहता है, परन्तु भगवानने तो अंतरमें पुरुषार्थ करना कहा है। वह उपदेश निरर्थक होगा। श्रीमद् कहते हैं कि—

जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ,
भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहिं आत्मार्थ।

'पुरुषार्थके बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती।'

भेदज्ञानकी धारावाही परिणति पुरुषार्थके बिना स्थिर नहीं रह सकती। श्री नियमसारके परमभक्ति-अधिकारमें कहा है कि—आत्मज्ञानी श्रावक समस्त शुद्धरत्नत्रयकी भक्ति करते हैं। तथा भवभयभीरु, परम निष्कर्म परिणतिवाले परम तपोधन भी शुद्धरत्नत्रयकी भक्ति करते हैं।

श्रावक श्रमण सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्रनी भक्ति करे,
निर्वाणनी छे भक्ति तेने एम जिनदेवो कहे।

उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनोंको जिनवरों द्वारा कही हुई निर्वाणभक्ति वर्तती है। श्रावक तथा मुनि उसे कहते हैं कि जिसे अंतरमें ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी भक्ति, भजन एवं अंतर्मुख एकाग्रता हो। देव-गुरु आदिकी बाह्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भक्ति तो शुभराग है। अंतरकी भक्ति निर्विकल्प दशा है, उसे त्रिलोकनाथ परमात्मा अपनी दिव्यध्वनिमें 'निवृत्ति भक्ति' कहते हैं।

प्रश्न :—गृहस्थाश्रममें चारित्र होता है?

उत्तर :—ज्ञानी सम्यग्दृष्टि गृहस्थको अपनी भूमिकानुसार कषायकी दो चौकड़ीका अभाव हुआ है इतना–चारित्र है। चौथे गुणस्थानमें अविरत सम्यग्दृष्टिको भी स्वरूपाचरणरूप चारित्र होता है। पाँचवें गुणस्थानमें श्रावकको उसकी अपेक्षा विशेष स्वरूपरमणतारूप चारित्र है। मुनिकी तो बात ही क्या कहना। उनकी स्वरूपरमणता तो बहुत उग्र है। क्या कहते हैं? चौथे वालेको चौथेके अनुसार और मुनिको मुनिके अनुसार अंतरमें स्वरूपसन्मुखताका पुरुषार्थ निरंतर वर्तता ही रहता है। स्वभावाश्रित पुरुषार्थके बिना साधक परिणति सहजरूपसे स्थिर नहीं रह सकती। जो वीर्य ज्ञायकस्वभावका आश्रय करके अंतर्मुख हुआ उसकी धारा अंत में चलती ही रहती है।

'सहज भी है, पुरुषार्थ भी है।'

ज्ञातापरिणति अंतर्मुख प्रयत्नके बिना स्थिर नहीं रहती इसलिये उसमें पुरुषार्थ भी है, और ज्ञानधारा वह विकल्पवाला तथा रागवाला प्रयास नहीं है किन्तु ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे होनेवाला निर्विकल्प निरूपाधि परिणमन है इसलिये वह सहज भी है, उसमें विकल्पकी हठ नहीं है इसलिये वह सहज निर्मल परिणति है। अविरति सम्यग्दृष्टिको और मुनिको—समस्त साधक जीवोंको—अपनी भूमिकानुसार शुद्ध परिणति पुरुषार्थपूर्वक भी है और सहज भी है। अहा! देखो यह वचनामृत!

*

वचनामृत–१६४

पूज्य गुरुदेवने मोक्षका शाश्वतमार्ग अंतरमें बतलाया है, उस मार्ग पर जा ॥१६४॥

बेनने विनयपूर्वक यहाँका (पूज्य गुरुदेवका) नाम देकर बात कही है कि गुरुदेवने मोक्षका शाश्वत मार्ग अंतरमें बतलाया है, विकल्पमें या निमित्तसे नहीं। अंतरमें पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभुकी दृष्टि, ज्ञान एवं रमणता वह मोक्षमार्ग है, और देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धान, आगमका ज्ञान तथा महाव्रतादिका आचरण—वह व्यवहारमोक्षमार्ग पराश्रित शुभरागके परिणाम होनेसे बंधका कारण है।

२९.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—परन्तु वह बतलाया तो गुरुने ही है ना?

उत्तर :—स्वयं अंतरमें समझा तब बतलाया कहा जाता है ना? स्वयं अंतरमें दृष्टि करके समझे तो गुरुको निमित्त कहा जाता है। समवसरणमें भगवानने पूर्व अंनतबार समझाया परन्तु स्वयं अंतर्मुख पुरुषार्थ न करे तबतक बतलाया कहाँसे कहा जाय? स्वयं अंतरमें गहरे उतरकर समझनेका पुरुषार्थ करे तब भगवान या गुरुके उपदेशको निमित्त कहा जाता है। भगवानका और गुरुका उपदेश क्या है?—कि वीतरागता प्रगट कर। वीतरागता किस प्रकार प्रगट होती है?—कि वीतरागस्वभावी ध्रुव ज्ञायक स्वद्रव्यका आश्रय करनेसे पर्यायमें वीतरागता प्रगटती है। स्वयं वीतराग भावरूप परिणमित हुआ तब देव-गुरुको निमित्तपनेका आरोप आता है।

आत्मावलोकन ग्रन्थकी दूसरी गाथामें गुरु किसे कहना, वह बात कही है।

वियरायं वियरायं, जियस्स णिय ससरूओ वियरायं।
मुहु मुहु गणदि वियरायं सो गुरूपयं भासदि सया।।

जीवका निजस्वरूप वीतराग है—ऐसा जो बारम्बार कहता है वही गुरूपदवीमें शोभा देता है। अंतरमें संसारसे उदासीन परिणाम वर्तते हैं ऐसे जो जैन निर्ग्रन्थ साधु हैं वे अपनेको तो वीतरागरूप अनुभवते ही हैं, परन्तु वे जब अन्यको उपदेश देते हैं तब, दूसरी सब बातें छोड़कर, जीवके एक निज वीतरागस्वरूपका ही बारम्बार कथन करते हैं। इसलिये उन्हींको गुरूपदवी शोभा देती है।

घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन,
मति-मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न।

जिसने मति स्वच्छन्दताकी मदिराका पान किया है वह मतवाला जीव 'आत्मा अंतरमें जिनस्वरूप है' यह बात नहीं समझ सकता। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग तथा प्रथमानुयोग—इन चारों अनुयोगोंका तात्पर्य वीतरागता है। इसलिये गुरु बारम्बार वीतरागताका ही उपदेश देते हैं। व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि शुभ रागसे कल्याण होगा ऐसा उपदेश गुरु नहीं देते, रागसे लाभ होगा ऐसी प्ररूपणा करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

जेम निर्मलता रे रत्न स्फटिक तणी, तेम ज जीवस्वभाव रे,
ते जिन वीरे रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय-अभाव रे.

वीर भगवानने कषायके अभावको—वीतरागताको धर्म कहा है। जीवका स्वभाव तो स्फटिकमणिकी भाँति शुद्ध है। शुद्ध स्वभावके आश्रयसे निर्मल दृष्टि तथा वीतरागता प्रगटती है; शुभरागसे तीनकालमें वीतरागता प्रगट नहीं होती। अहाहा! समझमें आता है कुछ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सूक्ष्म बात है भाई! लोगोंको अभी तो मार्ग तथा उसकी विधिकी भी खबर नहीं है। किस विधिसे अंतरमें सम्यग्दर्शन होता है उसकी बात भी यथार्थ सुनी नहीं है। भगवानने तो सम्यग्दर्शन और वीतरागता का मार्ग अंतर-आत्मामें बतलाया है।

*

वचनामृत—१६५

सबको एक ही करना है :—प्रतिक्षण आत्माको ही ऊर्ध्व रखना, आत्माकी ही प्रमुखता रखना। जिज्ञासुकी भूमिकामें भी आत्माको ही अधिक रखनेका अभ्यास करना ॥१६५॥

'सबको एकही करना है :—प्रतिक्षण आत्माको ही ऊर्ध्व रखना, आत्माकी ही प्रमुखता रखना।'

चाहे जिस प्रसंगमें प्रतिपल ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान निज आत्माको ही अग्र रखना। प्रतिक्षण पूर्णानन्दके नाथको—ज्ञायक प्रभुको मुख्य रखना। अनादि अज्ञानसे जीवको पर्यायकी, शुभाशुभ रागकी तथा व्यवहारकी प्रमुखता रही है, अब वह छोड़कर, आनन्दकंद शुद्ध ज्ञायकको पहिचानकर उसीको दृष्टिमें ऊर्ध्व रखना। दृष्टिमें ध्रुव ज्ञायककी प्रमुखता छूट जायगी तो सम्यग्दर्शन नहीं रहेगा।

'जिज्ञासुकी भूमिकामें भी आत्माको ही अधिक रखनेका अभ्यास रखना।'

सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे पूर्व जिज्ञासुकी भूमिकामें भी त्रैकालिक ध्रुव आत्माको ही अधिक रखनेका पुरुषार्थ करना। अधिक अर्थात परसे भिन्न। समयसारकी ३१वीं गाथामें आता है: 'णाणसहावेण अधिगं मुणदि आदं'—.....ज्ञान स्वभावे अधिक जाणे आत्मने। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा उनके विषयोंसे—विषयोंमें देव-शास्त्र-गुरु भी आगये—भिन्न अपने पूर्णज्ञानस्वभावी आत्माकी निर्मल श्रद्धा सो सम्यग्दर्शन है और साथका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

ज्ञानानन्दमूर्ति भगवान आत्माको इन्द्रियाँ, राग और पर्यायसे भिन्न—पृथक् जानना, मानना वह जितेन्द्रिय जिनपना है। आत्माकी ऊर्ध्वताके बिना भले पँच महाव्रतकी क्रिया करता हो, नग्न हो, परन्तु उसे अभिप्रायमें रागकी तथा पर्यायकी मुख्यता वर्तती होनेसे वह मिथ्यादृष्टि है। जहाँ आत्माकी मुख्यता है वहाँ रागका प्रेम छूट ही जाता है। इसलिये जिज्ञासुकी दशामें भी आत्मा को ही मुख्य रखनेका अभ्यास करना। ध्रुव ज्ञायक आत्माको सदा ऊर्ध्व, मुख्य, अग्र रखना।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–७३

ता. २३-८-७८

वचनामृत–१६६

स्वरूप तो सहज ही है, सुगम ही है, अनभ्यासके कारण दुर्गम लगता है। कोई दूसरेकी संगतमें पड़ गया हो तो उसे वह संग छोड़ना दुष्कर मालूम होता है, वास्तवमें दुष्कर नहीं है, आदतके कारण दुष्कर मानता है। परसंग छोड़कर स्वयं स्वतंत्ररूपसे अलग रहना उसमें दुष्करता कैसी? वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना उसमें दुष्करता कैसी? वह तो सुगम ही होगा न?।१६।

'स्वरूप तो सहज ही है, सुगम ही है, अनभ्यासके कारण दुर्गम लगता है।'

क्या कहते हैं? कि—सहजात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्य विज्ञानघन प्रभु अंतरमें सहज ही है, वह कृत्रिम नहीं है। अंतरमें जो विद्यमान शुद्ध ज्ञायकवस्तु है वह सहज एवं सुगम ही है। सहज अस्तित्वमय अपनी ज्ञायक वस्तुकी प्राप्ति सुगम है, परन्तु अनादिकालसे परवस्तुके प्रेमके कारण अपने असंग चैतन्यका संग नहीं किया इसलिये उसके अनभ्यासके कारण दुर्गम लगती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयसारकी पाँचवीं गाथामें कहते हैं :—

दर्शावुं एक विभक्त ओ, आत्मा तणा निज विभवथी;
दर्शावुं तो करजो प्रमाण, न दोष ग्रह स्खलना यदि।

स्वभावसे एकत्व तथा रागादि विभावसे विभक्त ऐसे इस ज्ञायक भगवानको मैं शुद्धात्म स्पर्शी निजवैभवद्वारा दर्शाता हूँ, यदि मैं दर्शाऊँ तो तुम अपने स्वानुभव प्रत्यक्ष द्वारा परीक्षा करके उसका स्वीकार करना। अहा! पंचमकालके संत पंचमकालके श्रोताओंसे कहते हैं : प्रभु! ज्ञानानन्दके रसकससे भरपूर तेरी ज्ञायक वस्तु अंतरमें विद्यमान है ना? जागता जीव अंतरमें खड़ा है वह कहाँ जायगा? वह तो तुझे सहज ही है, सुगम ही है। उस सहज तथा सुगम स्वरूपको अपने अंतरके वैभवसे दर्शाता हूँ, उसे तू अनुभव प्रत्यक्षसे प्रमाण करना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक स्तुतिमें आता है—'सहजानन्दी आतमा, तुं सूतो कांई निश्चिंत रे!....' प्रभु! तू आनन्दका नाथ सहजात्म स्वरूप परमात्मा है ना? तू इस अज्ञानांधकारमें क्यों सोता है? तेरी वस्तु अंतरमें रागरहित निर्विकल्प आनन्द स्वरूप है उसे भूलकर क्यों निश्चिंत सो रहा है? जिसमें विकल्पका भी सहारा नहीं है ऐसा अतीन्द्रिय सुखकन्द प्रभु आत्मा अंतरमें सहज और सुगम ही है। परन्तु उसका अभ्यास न होनेसे वह दुर्गम लगता है। अरे! एक परमाणुको भी अपना करना चाहे तो वह अपना नहीं हो सकता; परन्तु जो अपनी वस्तु है वह तो अपनेको सहज एवं सुगम ही होगी ना? तथापि अनभ्याससे दुर्गम लगती है। सहजस्वरूपका अभ्यास नहीं है, उस ओर रुचिका जोर नहीं है, परद्रव्यकी तथा रागादि विकल्पोंकी महिमा है। उसमें तुझे विस्मयता लगी, और अपनी वस्तुकी विस्मयता तूने छोड़ दी, इसलिये सहजात्मस्वरूप अति दुर्गम लगता है। आया कुछ समझमें?

'कोई दूसरेकी संगतमें पड़ गया हो तो उसे वह संग छोड़ना दुष्कर मालूम होता है; वास्तवमें दुष्कर नहीं है, आदतके कारण दुष्कर मानता है।'

दृष्टान्त देते हैं :—कोई मनुष्य दूसरेकी कुसंगतमें पड़ गया हो तो उसे वह संग छोड़ना कठिन लगता है। वह कुसंग छोड़ना वास्तवमें कठिन नहीं है, परन्तु आदत पड़ जानेके कारण कठिन लगता है। परसंगकी ऐसी आदत पड़ गई है कि उसे छोड़ना दुष्कर लगता है।

'परसंग छोड़कर स्वयं स्वतंत्ररूपसे अलग रहना उसमें दुष्करता कैसी? वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना उसमें दुष्करता कैसी?

'परसंग छोड़कर'—यह तो बाह्य निमित्तकी बात है। परसंग छोड़कर स्वयं स्वाधीन रूपसे अलग रहना उसमें दुष्करता कैसी? यह तो दृष्टान्त हुआ। तदनुसार अपने वीतराग ध्रुव ज्ञायक भगवानको प्राप्त करनेमें दुष्करता कैसी? श्रीमद्ने भी कहा है : 'सत् सत् ही है, सरल है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति होती है, परन्तु वह बतलानेवाला सत् चाहिये।' जहाँ देखो वहाँ अंतरमें सर्वत्र नित्यज्ञानानन्द प्रभु विद्यमान है, परन्तु वह बतलाने वाले गुरु चाहिये। तेरी वस्तु तुझमें भीतर पूर्णानन्दसे भरपूर विद्यमान है–ऐसा गुरु बदलाते हैं ना! उस भरपूर ज्ञायकको अशुद्धता एवं अल्पताका संग नहीं है। ऐसी असंग आत्मवस्तुका, परसंग छोड़कर अपनेमें स्वाधीनरूपसे अकेला रहना उसमें दुष्करता क्या? अपना सहज स्वभाव जो अनंत ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, उसे पाना—प्राप्तकी प्राप्ति करना—उसमें कठिन क्या? स्वभाव तो सहज है, सुगम है तथा सुलभ है।

बारह भावनाओंमेंसे बोधिदुर्लभ भावनाके वर्णनमें कहा है कि—बाह्य वस्तुएँ अनन्तबार प्राप्त हुई हैं, किन्तु आत्मबोधिकी प्राप्ति कभी नहीं हुई, इसलिये वह दुर्लभ है। पर पदार्थके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संयोग उदयके योगसे अनंतबार प्राप्त हुये, उसमें कोई नवीनता नहीं है। भावनामें परसंगको सुलभ तथा आत्माको दुर्लभ कहा है। यहाँ तो कहते हें कि—अपना असंग आत्मा, जोकि निर्विकल्प आनन्दामृतका सागर है उसे प्राप्त करना सुगम है, सुलभ है। परसंगके ओरकी रुचि छोड़े तो प्राप्त करना सुगम है। 'नहीं है'को प्राप्त करना दुष्कर होता है, परन्तु स्वभाव 'है' उसे प्राप्त करनेमें दुष्करता कैसी ?

'वह तो सुगम ही होगा न ?'

प्रभु ! तेरी वस्तु असंग है। संगका लक्ष छोड़कर अंतरमें असंग तत्त्वको प्राप्त करना वह तो सुगम ही सहज ही है। भाई ! तेरी ज्ञायक वस्तु सहज एवं सुलभ है। समझमें आया कुछ ? यह १९६वाँ बोल जरा सूक्ष्म है। रुचिमें परका संग किया इसलिये तेरी असंग वस्तु—जो अंतरमें पूर्णानन्दरूपसे अस्तिस्वरूप है, सत् है, ध्रुव रूप है, शुद्ध ज्ञान एवं आनन्दसे भरपूर है वह—तुझे अनादिकालमें प्राप्त नहीं हुई।

प्रश्न :—व्यवहारसे निश्चय प्राप्त होता है ना ?

उत्तर :—भाई ! ऐसा है ही नहीं। व्यवहार तो पराश्रित भाव है और निश्चय तो स्वद्रव्याश्रित शुद्धभाव है। पराश्रित भावसे—व्यवहार रत्नत्रयके शुभभावसे—स्वद्रव्याश्रित शुद्ध निश्चयदशा प्राप्त होती है ? नहीं होती। अनेकलोग ऐसा मानते हैं कि—व्यवहार हो तो निश्चय होता है, किन्तु भाई ! व्यवहार कब कहा जाता है ? कि जब अंतर में रागसे भिन्न होकर स्वानुभव हुआ—स्वद्रव्याश्रित निर्मल निश्चय परिणमन हुआ—उस भूमिकामें जो उचित राग आये उसे व्यवहारसे साधन कहा जाता है; परन्तु स्वाश्रित शुद्ध दशास्वरूप निश्चय होनेसे पूर्व व्यवहार आया कहांसे ? परसे तथा पराश्रित भावस्वरूप व्यवहारसे अंतरमें धर्मरूप कार्य कभी नहीं होता—ऐसा लक्ष सदा रखकर पढ़ना भाई ! बात बड़ी सूक्ष्म है प्रभु !

व्यवहार साधन और निश्चय साध्य—ऐसा कथन शास्त्रमें भी आता है, परन्तु उसका अर्थ क्या ? जिसे राग और भेदव्यवहारकी रुचि छूटकर अंतरमें अभेद ज्ञायकके आश्रयसे शुद्धि उत्पन्न हुई है उसे, वास्तवमें तो पहलेकी मंद शुद्धि ही बादकी विशेष शुद्धिका साधन है, परन्तु पहलेकी मंद शुद्धिके साथ वर्तते हुए भूमिकाके अनुरूप शुभरागको व्यवहारसे—उपचारसे बादकी विशेष शुद्धिका—निश्चय कारण कहा जाता है। वहाँ रागरूप व्यवहार वास्तवमें विशेष शुद्धिरूप निश्चयका कारण नहीं होता।

स्वरूपका प्रेम छूटकर जिसे रागके प्रति प्रेम है उसे आत्माके प्रति क्रोध है, अप्रीति–द्वेष है। 'द्वेष अरोचक भाव'। जिसे अंतरमें आनन्द स्वरूप निजज्ञायक भगवान नहीं रुचता और जो रागके प्रेममें रुकता है उसे आत्माके प्रति द्वेष है। श्री परमात्म-प्रकाश शास्त्रमें आता है कि—जिसे रागका प्रेम है उसे आत्मा हेय है। जिसे दया, दान,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्रत, भक्ति आदि व्यवहारके शुभभावोंका प्रेम है उसे अंतरमें निश्चय शुद्ध आत्मा हेय हो गया, आत्माके प्रति द्वेष हो गया।

अरे, परसंगका राग छोड़ना उसमें कठिनाई क्या? संगका राग छोड़कर स्वयं स्वतंत्र रूपसे पृथक् रहनेमें कठिनाई कैसी? अरेरे! भगवान ज्ञायक आत्मा परसंगके प्रेममें—व्यभिचारमें लग गया है। उससे छूटना कठिन नहीं है, किन्तु आदतके कारण कठिन लगता है। 'रुचि अनुयायी वीर्य'। यदि रागकी रुचि है तो वीर्य कर्तारूप होकर रागका कार्य करता है, और यदि अंतरमें आनन्दके नाथकी रुचि है तो पुरुषार्थ उस ओर उन्मुख होता है—झुकता है। अहा! धर्मकी ऐसी बातें! लोग तो ऐसा मानते हैं कि पैसा खर्च करनेसे धर्म होता है; परन्तु भाई! पैसा खर्चनेमें धूल भी धर्म नहीं है। पैसा तो पुद्गल है, उसके कहां थे? समयसारके निर्जरा-अधिकारमें कहा है कि—पैसा, कर्म आदि अजीव हैं, अजीवको अपना मानूँ तो अजीव हो जाऊँगा।

भगवान निज ज्ञायक प्रभु जो स्वतःसिद्ध है वह तो सुगम ही होगा ना? उसे प्राप्त करनेमें मात्र दृष्टिको पलटना चाहिये। जिसे रागकी रुचि है उसे सारे संसारकी रुचि है। रागका कर्ता हुआ उसे 'सारी दुनियाका कर्ता हूँ'—ऐसा माना। अहा! वह मान्यता परसंगके कारण हुई है। परसंगका आश्रय छोड़कर स्वयं अपने असंगस्वरूपसे स्वतंत्ररूपसे रह सकता है। आत्मा असंग वस्तु है, उसका संग करना; रागादि तो अपनी मूल वस्तु में हैं ही नहीं, इसलिये उनका आश्रय छोड़ना। अपने असंग स्वभावको प्राप्त करनेमें दुष्करता कैसी? वह तो सुगम ही होगा न?

वचनामृत—१९७

प्रज्ञाछैनीको शुभाशुभ भाव और ज्ञानकी सूक्ष्म अंतःसंधिमें पटकना। उपयोगको बराबर सूक्ष्म करके उन दोनोंकी संधिमें सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचान कर।

अभ्रकके पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानी पूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव–विभावके बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभावको भिन्न जान ले। भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;—जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं तदनुसार।

प्रश्न :—सोना तो चमकता है इसलिये पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं, परन्तु यह भिन्न कैसे ज्ञात हों?

उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न? विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है। ज्ञानकी चमक चारों ओर फैल रही है। ज्ञानकी चमक बिना सोनेकी चमक काहेमें ज्ञात होगी?

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोतीका पारखी उसमेंसे सच्चे मोतियोंको अलग कर लेता है, उसीप्रकार आत्माको 'प्रज्ञासे ग्रहण करना।' जो जाननेवाला है सो मैं, जो देखनेवाला है सो मैं—इसप्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्माको और विभावको पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करनेका कार्य प्रज्ञासे ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों, परन्तु वे साधन नहीं होते, साधन तो प्रज्ञा ही है।

स्वभावकी महिमासे परपदार्थोंके प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। स्वभावमें ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। तभी अंतरकी सूक्ष्म संधि ज्ञात होती है। ऐसा नहीं होता कि परमें तीव्र रुचि हो और उपयोग अंतरमें प्रज्ञाछैनीका कार्य करे॥१६७॥

'प्रज्ञाछैनीको शुभाशुभ भाव और ज्ञानकी सूक्ष्म अंतःसंधिमें पटकना।'

ज्ञानलक्षण आत्मा स्वभावसे रागसे भिन्न ही है। खानमें जिसप्रकार पत्थरोंके बीच सांध-पतली सी दरार होती है, उस दरारमें बारूद भरकर फोड़ी जाती है और सैकड़ों मनके बड़े-बड़े पत्थर अलग हो जाते हैं; उसीप्रकार ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा और विभाव स्वरूप रागके बीच संधि है, निःसंधि कभी नहीं हुई। आत्माका चैतन्य दल और शुभाशुभ राग—भले ही वह तीर्थंकर नामकर्म बँधे ऐसा शुभराग हो—उन दोनोंके बीच साँध है; त्रैकालिक वीतराग स्वभाव और राग कभी भी एक हुए ही नहीं है। अनादि रागमें स्वपनेका अध्यास होनेके कारण अज्ञानीको एक लगते हैं, परन्तु आत्मा और राग कभी एक हुए ही नहीं हैं, माने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तब भी एक नहीं हुए हैं। अपने-अपने नियत लक्षणसे दोनों भिन्न ही हैं।

प्रश्न :—पत्थरकी दरारमें बारुद भरकर फोड़नेसे वह अलग-अलग हो जाता है, परन्तु अंतरमें आत्मा और रागको पृथक् करनेका साधन क्या?

उत्तर :—शुभाशुभ राग और ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा उन दोनोंकी सूक्ष्म अंतःसंधिमें प्रज्ञाछैनी पटकना वह उन्हें पृथक् करनेका एकमात्र साधन है। अनादिसे अभिप्रायमें रागके साथ एकता थी, उसे छोड़कर स्वभावके साथ एकता करना; वह प्रज्ञाछैनी दोनोंकी साँधमें पटकी ऐसा कहा जाता है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु और दुःखस्वरूप राग—इन दोनोंके बीच एकता—निःसंधि कभी भी नहीं हुई है, क्योंकि दोनोंका स्वरूप परस्पर विपरीत है; राग है वह दुःख है। छहढालामें कहा है :—

यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये;
चिर भजे विषय-कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये।

व्यापार-धंधेके रागका तो क्या कहना, परन्तु भले देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति और व्रतादिका शुभराग हो, किन्तु आत्माकी अकषाय शान्तिको जलानेवाला होनेसे वह भी है तो आग। द्रव्यस्वभाव तो शान्तिसे त्रिकाल भरपूर है, शुभाशुभ रागस्वरूप अग्नि पर्यायकी शान्तिको जलाती है इसलिये ज्ञानलक्षण आत्मा और शुभाशुभ विकार लक्षण राग उन दोनोंको अपने-अपने निश्चित् चिह्नों द्वारा बराबर पहिचानकर उनकी सूक्ष्म संधिमें प्रज्ञाछैनी को पटक, जिससे तत्क्षण दोनों भिन्न हो जायँ। छहढालामें आता है :—

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अंतर भेदिया,
वरणादि अरु रागादितैं निज भावको न्यारा किया;
निजमाहिं निजके हेतु निजकर आपको आपै गह्यो,
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो।

जिसप्रकार करवतसे लकड़ीके दो टुकड़े होते हैं उसी प्रकार भेदज्ञानरूपी करवत्से—प्रज्ञाछैनी रूपी साधनसे—राग जिसका लक्षण है ऐसे बंधको और ज्ञानानन्द जिसका लक्षण है ऐसे अपने आत्माको पहिचानकर भिन्न कर दे। बात कुछ सूक्ष्म है। करना तो बादमें, पहले धारणामें ऐसा लक्ष रख कि मार्ग तो यही है—रागसे भिन्न होनेका प्रज्ञाछैनी वह एक ही साधन है—अन्य कोई मार्ग नहीं है। जिसको विकल्पवाले धारणाज्ञानमें भी ऐसा सच्चा जानपना नहीं है, उसको रागसे भिन्न होनेकी योग्यता नहीं है। जीवको एक तो संसारकी हो–हा; उसमें धार्मिक व्याख्यान सुनने जाय तो 'यह करो और वह करो, व्रत लो और उपवास करो'—ऐसी राग और शरीरकी क्रियाके कर्तृत्वकी विपरीत बातें सुननेको मिलती हैं, वहाँ सच्ची समझ कहाँसे हो?

30.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—विषय-कषायका त्याग तो करना पड़ता है ना?

उत्तर :—परका ग्रहण या त्याग आत्मामें है ही नहीं। अनार आदिके रसका ग्रहण ही कब किया था कि उसका त्याग करे? रागरूप रसको एकत्वबुद्धिपूर्वक ग्रहण किया था, उसे छोड़ दे और अंतर आनन्दके रसमें एकबार आ जा। मोसंबीका रस या स्त्रीका विषय आत्मा नहीं भोग सकता, वह तो जड़ है। उसके संयोगकालमें आत्मा अपने आनन्दस्वभावका लक्ष छोड़कर 'यह विषय मुझे ठीक है, सुखकर है, इसप्रकार जो रागकी उत्पत्ति करता है उसका वह भोक्ता है। परपदार्थका भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं है। अरेरे! सारी दुनिया रागके रसमें प्रविष्ट हो गई है

ज्ञानलक्षण आत्मा और आकुलतालक्षण राग–दोनोंके स्वरूप भिन्न जानकर भेदज्ञान रूप प्रज्ञा द्वारा आत्माको रागसे भिन्न कर दे। रागसे भिन्न होनेके लिये प्रज्ञा एक ही साधन है। उसके द्वारा ज्ञातृधारा प्रगट होती है और रागधारा छूट जाती है। जिसप्रकार पानीका प्रवाह अटूट धारासे गिरता है, उसीप्रकार आत्माका जो ध्रुव ज्ञानप्रवाह अटूट चलता है उसमें प्रज्ञा द्वारा रागसे भिन्न होकर अंतरमें प्रविष्ट हो जा। अहा! ऐसी बात है। भाषामें कितनी आये? वह तो अनुभवगम्य है।

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्षको, अनुभव मोक्षस्वरूप।

आत्मानुभूतिको मोक्षमार्ग कहा है, रागानुभूतिको—व्यवहाररत्नत्रयके विकल्पको–नहीं। प्रज्ञाछैनी द्वारा रागसे भिन्न करके अपनेको पकड़ा तब जो अंतरमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी अतीन्द्रिय आनन्द झरती निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह स्वानुभव और मोक्षका मार्ग है। मंद राग पुण्य है, विष है। रागसे भी ज्ञायक आत्माको भिन्न करदे। राग विष है, दुःख है, आकुलता है, अग्नि है; भगवान आत्मा स्वभावसे शीतल एवं शान्तरस युक्त है। 'उपशम रस वरसे रे, प्रभु! तारा नयनमां।' प्रभु आपके नयनोंमें–मुद्रामें मात्र उपशान्त रस बरसता है, जहाँ अंतरमें विकल्प मात्रका उत्थान नहीं है, बाह्यमें जगतके समस्त शांतरसके परमाणु परमौदारिक शरीर रूपसे परिणमित होगये हैं। प्रभु! आपकी वाणीमें भी, परम शांतरस झरता है इसलिये, अद्भुत है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–७४

ता. २४-८-७८

वचनामृत–१६७

बेनके वचनामृतका १६७वाँ बोल चलता है। कल थोड़ा चला था, अब आगे...

'उपयोगको बराबर सूक्ष्म करके उन दोनोंकी संधिमें सावधान होकर उसका प्रहार करना।'

स्व और परको, ज्ञानको और रागको जाननेके स्वभाववाला जो यह उपयोग है उसे अंतरमें धीरजसे सूक्ष्म करके, आत्मा और राग—इन दोनोंकी सूक्ष्म संधिमें सावधान होकर प्रज्ञाछैनीका प्रहार करना। पत्थरकी दरारमें सुरंग फोड़नेसे हजारों मनके पत्थर अलग हो जाते हैं; उसीप्रकार ज्ञायक भगवान और रागके बीच सूक्ष्म संधि है; वे दोनों एक नहीं हैं, एक हों तो कभी किसीप्रकार पृथक् नहीं हो सकते। किन्तु पृथक् हो जाते हैं इसलिये वे एक नहीं हैं। ज्ञान और रागकी सूक्ष्म साँधमें भेदज्ञानरूपी सुरंग फोड़नेसे ज्ञान तत्काल रागसे भिन्न हो जाता है और आत्माका निर्विकल्प आनन्दमय अनुभव प्रगट होता है।

'सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचान कर।'

जहाँ ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा और दुःखस्वरूप रागकी भिन्नताको जाना वहाँ ज्ञानकी दशाको सावधानीपूर्वक स्वोन्मुख करके रागसे जो भिन्नता हुई उसे प्रज्ञाछैनीका सावधान होकर प्रहार किया कहाजाता है। पूर्णानन्दका दल और रागादिमय विकृतभाव—दोनोंके बीच संधि है, भेदक रेखा है, एकता नहीं है, एकता मानी है वह भ्रम है। एकताका वह भ्रम तोड़नेमें, जिसप्रकार लोहेकी छैनीसे दो टुकड़े होते हैं उसीप्रकार, भेदज्ञान स्वरूप प्रज्ञाछैनी एकमात्र साधन है। वह आत्माको रागसे भिन्न करके अंतरमें ले जाती है।

प्रश्नः—राग कहाँ चला जाता है?

उत्तरः—राग ध्रुव ज्ञायक स्वभावमें नहीं है ऐसी यथार्थ प्रतीति होनेपर अभिप्रायमें स्वानुभवपूर्वक उसका स्वामित्व हट जाता है। पश्चात् किंचित् अस्थिरताका राग है, किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञानी उसका स्वामी नहीं होनेसे, भिन्नरूपसे रहता है। स्वरूपमें स्थिरता बढ़ानेसे अस्थिरताका नाश होता है। पहले एकता टूटती है और फिर अस्थिरता छूटती है। अरे! यह कोई पण्डिताईकी वस्तु नहीं है, ग्यारह अंगका पाठी तो अनंतबार हो चुका है; यह तो अंतरके विवेककी बात है। यह तो अभी सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो उसकी बात है; चारित्रकी बात तो इससे आगे है; उसकी बात तो कोई अलौकिक है। इस अध्यात्म विषय को बराबर नहीं समझते इसलिये लोगोंको सोनगढ़का एकान्त लगता है, परन्तु भाई! यह सोनगढ़की नहीं भगवानके घरकी बात है; कल्याण करना हो तो इसे समझना ही होगा। आया कुछ समझमें?

अब, बेन उदाहरण देती हैं :–

'अभ्रकके पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसीप्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभावके बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर।

अभ्रमकके पर्त बहुत पतले होते हैं। उन्हें अलग करनेमें उतावला होकर जोर करने जाय तो वे टूट जाते हैं। धीरजसे सावधानीपूर्वक पृथक् किया जाता है। उसीप्रकार भगवान आत्माको...अरे! सावधानी क्या? पृथक् करना कैसा? उसे जाने बिना जगत बाह्य क्रियाकाण्डमें घुस गया है। अंतरमें प्रभु कौन है—वह बात रह गई; जो करना था वह रह गया।

दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत, तपादिके भाव शुभराग है, उसकी दिशा परकी ओर है। परकी दिशासे विकारी दशा उत्पन्न होती है। सम्यग्दर्शन एवं स्वरूपरमणता वह निर्मल दशा है, उसकी दशा स्वोन्मुख है। स्व-देशमें दृष्टि जाय तो वीतराग दशा उत्पन्न हो, क्योंकि वीतरागता वह अपना स्वदेश है। अरेरे! जो करना है वह जीवने नहीं किया। जीवन बीता जा रहा है। शरीर दुर्बल हो, आत्मा दुर्बल नहीं होता। बाल, युवा एवं वृद्धावस्था वह तो जड़–पुद्गलकी दशा है। वास्तवमें तो रागमें एकत्वबुद्धि रखना वह बाल्य-अवस्था है, रागसे भिन्न होकर अंतरमें ज्ञायक आत्माकी दृष्टि हुई वह युवावस्था है और अस्थिरताके रागको बिलकुल छोड़कर वीतराग दशा हो वह प्रौढावस्था—वृद्धदशा है। अहाहा! बात तो ऐसी है। लोगोको नवीन लगती है, किन्तु नई नहीं है, परमात्माके घरकी है। नहीं सुनी इसलिये नई लगती है।

जिसप्रकार अभ्रकके पर्त सावधानीपूर्वक अलग किये जाते हैं, उसीप्रकार अपने ज्ञानके उपयोगको सूक्ष्म करके स्वभाव और विभावके बीच भेदज्ञान स्वरूप प्रज्ञा द्वारा भेद कर। वह भेद करनेकी विधि भीतर ध्यानमें होती है। द्रव्यसंग्रहकी ४७ वीं गाथामें कहा है :—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह।।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागसे भिन्न होकर अंतरमें ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव हुआ, आनन्द और ज्ञानका वेदन हुआ उसे निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं क्योंकि वह स्वाश्रित निर्मल दशा है। और बाकी जो राग रहा उसे, शुद्धिका सहचर देखकर आरोपसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है। दोनों प्रकारके मोक्षमार्ग भीतर स्वाश्रित ध्यानदशामें प्राप्त होते हैं।

'जिस क्षण विभाव भाव वर्तता है उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभावको भिन्न जान ले।'

जिस क्षण शुभाशुभ विभाव वर्तता है उसी क्षण उपयोगको सूक्ष्म करके ज्ञातृत्व स्वभावको भिन्न जान ले। रागका विकल्प भले हो, परन्तु उसका स्वरूप आकुलता है और ज्ञायकका स्वरूप आनन्द है इसप्रकार दोनोंको भिन्न जानकर अंतरकी ज्ञाताधारा द्वारा स्वभावको विभावसे भिन्न कर दे।

'भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता।'

रागादि विभाव और ज्ञायक स्वभाव—दोनों भिन्न ही हैं परन्तु जीवको पर्यायबुद्धि होनेसे भिन्न दिखायी नहीं देते, वह अपनेको विभावपर्याय जितना ही मानता है। वास्तवमें तो आत्मा राग और उसकी रुचिसे भिन्न ही है परन्तु उसे अंतरमें भिन्नता भासित नहीं होती।

'विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;—जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न हैं तदनुसार।'

शुभाशुभ रागके विकल्प जो कि क्षणिक हैं और भगवान ज्ञायक स्वभाव जो कि त्रिकाल शाश्वत है—वे दोनों भिन्न-भिन्न ही हैं। सोनेके रजकण सहित पत्थरको सुवर्णपाषाण कहते हैं। खानमें सोना और पत्थर एक साथ होते हैं, परन्तु वे दोनों भिन्न-भिन्न ही हैं। जिस प्रकार सोना पत्थर एक दिखायी देने पर भी भिन्न-भिन्न हैं, उसीप्रकार रागादि विभाव और ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा एक जैसे दिखायी देते हैं परन्तु दोनों अपने-अपने स्वरूपसे भिन्न-भिन्न ही हैं।

समयसारके कर्त्ता-कर्म अधिकारकी ७२वीं गाथाकी टीकामें टीकाकार आचार्यदेवने आत्माको 'भगवान' तीन बार कहा है : पुण्य-पापके विकारी भाव मलिनरूपसे अनुभवमें आते होनेसे अशुचि–अपवित्र हैं और भगवान ज्ञायक आत्मा तो सदा अतिनिर्मल चैतन्यमात्र स्वभावरूप ज्ञायक होनेसे अत्यंत शुचि ही है। आस्रवोंको जड़ स्वभावपना होनेसे वे दूसरोंके द्वारा ज्ञात होने योग्य हैं इसलिये वे चैतन्यसे अन्य स्वभाववाले हैं; और भगवान आत्मातो, अपनेको सदा विज्ञानघनस्वभावपना होने स्वयं ही चेतक—ज्ञायक है इसलिये चैतन्यसे अनन्य स्वभाववाला ही है। शुभाशुभ आस्रव आकुलताको उत्पन्न करनेवाले होनेसे दुःखके कारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं; और भगवान आत्मातो सदा निराकुलता-स्वभावके कारण दुःखका अकारण ही है।

पुण्य-पापके भाव अशुचि हैं, अरे! जिससे तीर्थंकर नामकर्म बँधता है वह शुभभाव भी अशुचि है। शरीर तो हाड़-माँसका पिंजरा है, उसकी अशुचिकी यहाँ बात नहीं है, परन्तु भीतर जो पुण्य-पापके परिणाम होते हैं वह भी अशुचिता है। भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द ज्ञायक अत्यंत शुचिस्वरूप है। विभावकी अशुचिसे शुचि पिण्ड भगवान ज्ञायक भिन्न है।

प्रश्न :—कितना भिन्न है?

उत्तर :—त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभाव और वर्तमान पर्यायमें होनेवाला रागादि विभाव वे दोनों बिलकुल भिन्न हैं। सोलहों आना भिन्न हैं। रागका अंशमात्र भी कभी त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यस्वभाव नहीं होता, वह तो पर्यायमें ऊपर तैरता क्षणिक भाव है।

प्रश्न :—राग तो जीवकी पर्यायमें होता हैं, द्रव्यसे पर्याय भिन्न होती है?

उत्तर :—राग जीवकी ही पर्यायमें होता है और इसलिये प्रमाण-अपेक्षासे द्रव्य और पर्याय एकवस्तु होनेपर भी, द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल शुद्ध और ध्रुव ज्ञायकरुप है और रागादि पर्याय तो जीववस्तुका क्षणिक विभावभाव है। इसलिये ध्रुव द्रव्य और क्षणिक विभावपर्यायके बीच तद्‌अभाव स्वरूप अन्यत्व है। दोनों भिन्न हैं। रागादि विभाव तो भिन्न है ही, परन्तु सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्याय भी त्रैकालिक ध्रुवसे अतद्‌भावस्वरूपसे भिन्न है, क्योंकि एक समयकी निर्मल पर्यायमें सम्पूर्ण ध्रुवतत्त्व नहीं आ जाता, वर्तमान पर्याय जितना नहीं हो जाता। ध्रुवमें जितना भावसामर्थ्य है उतना श्रद्धानमें आता है, परन्तु मूल ध्रुव वस्तु क्षणिक पर्याय नहीं होती। वस्तुका ध्रुव अंश और पलटता अंश संज्ञा-लक्षण-प्रयोजन अपेक्षासे भिन्न है। अहाहा! ऐसी बात कभी सुनी नहीं होगी।

समयसारकी ४९वीं गाथाकी टीकामें 'अव्यक्त'के पाँचवे बोलमें कहा है : व्यक्तपना और अव्यक्तपना एकमेक मिश्रितरूपसे उसे प्रतिभासने पर भी वह व्यक्तपनेको स्पर्श नहीं करता इसलिये (आत्मा) अव्यक्त है। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य,—दोनों एकमेक मिश्रितरूपसे ज्ञात होते हैं तथापि अव्यक्त ध्रुव टंकोत्कीर्ण जीव व्यक्तपनेको—पर्यायको स्पर्श नहीं करता, त्रैकालिक ध्रुव अंश वर्तमान क्षणिक पर्यायांशरूप नहीं हो जाता। इसलिये ध्रुवद्रव्य और पलटती पर्याय दोनों भिन्न हैं। जहाँ पर्यायमात्र ध्रुवतत्त्वसे भिन्न है वहाँ रागादि विभावकी बात तो कहीं रह गई। वह तो भिन्न ही है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि व्यवहार श्रद्धाके अथवा मंदकषायके परिणामसे निश्चय ध्रुवतत्त्वकी प्राप्ति होगी यह दृष्टि ही विपरीत है। भाई! क्या किया जाये? तुझे इस मान्यतामें हानि है। तू उत्साहपूर्वक जगतको बतलाता है कि—हम निश्चय और व्यवहार दोनोंको मानते हैं, दोनोंसे लाभ होता है वह अनेकान्त है। भाई! वह सच्चा अनेकान्त नहीं है, अनेकान्ताभास है, एकान्त है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभावके आश्रयसे सदा लाभ होता है और पर्यायके, रागके या निमित्तके आश्रयसे कदापि लाभ नहीं होता–वही सच्चा अनेकान्त है।

भाई! अपनी विपरीत पकड़को छोड़ और जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसा समझ। अनुभवप्रकाश नामक ग्रन्थमें कहा है कि—तेरी शुद्धताकी तो क्या बात, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी है। अनंतबार भगवानके समवसरणमें गया परन्तु तूने अपनी अशुद्धता नहीं छोड़ी, देव-गुरु समझायें तो मुझे लाभ होगा—इसप्रकार दृष्टि परके ऊपर तथा शुभराग पर रही, अंतरमें अपने ज्ञायक प्रभुकी ओर दृष्टि तक नहीं डाली। अरेरे! इस शरीरकी स्थिति पूर्ण होगी, भाई! डेरा कहाँ डालेगा?–कहाँ जायगा? रागको और पुण्यको अपना मानेगा तो मिथ्यात्वमें रहेगा और उसके फलमें चारगतियोंमें भटकना होगा। भाई! तुझे अमूल्य मनुष्य भव प्राप्त हुआ है उसमें आत्माकी सच्ची पहिचान कर ले। आत्माकी सच्ची समझ और अनुभूतिसे तेरे परिभ्रमणका क्रमशः अंत आ जायगा।

भाई! तू शुभभावसे संतुष्ट हो जाता है, परन्तु 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' शास्त्रमें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने शुभ रागको 'अपराध' कहा है :–

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः।।२२०।।

रत्नत्रयके धारक मुनिराजको देवायु आदि पुण्यप्रकृतियोंका जो बंध होता है वहाँ रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप शुद्ध परिणति—तो निवार्णका ही हेतु है, बंधका नहीं, परन्तु रत्नत्रयपरिणत मुनिदशामें पुण्यका जो आस्रव होता है उसका हेतु शुभोपयोग स्वरूप अपराध है।

जिसप्रकार पत्थर और सोना दोनों एकमेक दिखायी देनेपर भी स्वरूपसे भिन्न ही हैं, उसीप्रकार ज्ञायकतत्त्व एवं पुण्य-पापतत्त्व भिन्न हैं। आत्मतत्त्व पुण्य-पापतत्त्वसे भिन्न है, नहीं तो नवतत्त्व ही नहीं रहेंगे। भगवान ज्ञायक आत्मा भिन्न है और पुण्य-पापतत्त्व भिन्न हैं।

'प्रश्न :—सोना तो चमकता है इसलिये पत्थर और सोना—दोनों भिन्न-भिन्न ज्ञात होते हैं, परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों?

सोनेमें चमक–कान्ति है, उसके द्वारा सोने और पत्थरकी भिन्नता जानी जा सकती है। परन्तु ज्ञायक और रागादि विभाव–दोनों भिन्न—भिन्न ही हैं वह किस प्रकार जाना जायगा?

'उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न?'

अपनेको जाने, रागको जाने—इसप्रकार ज्ञातारूपसे जो चमकता है वह ज्ञान अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ही है ना? जिसप्रकार सोना पत्थरसे भिन्न चमकती वस्तु है, उसी प्रकार चैतन्यमात्र चमकती वस्तु वह आत्मा है। पत्थरमें चमकता भाग वह सोना है उसीप्रकार आत्मामें चमकता क्या है? भाई! सुन तो सही, चेतन स्वयं ही चमकती वस्तु है जो कि अपनेमें रहकर अपनेको तथा रागादिको भिन्न जानता है। अहाहा! आया कुछ समझमें?

'विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है।'

पत्थर नहीं चमकता, सोना चमकता है, वैसे ही सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है, प्रकाशरूपसे अनुभवमें आता है। चैतन्यका चमकता प्रकाश अपनेको तथा परको जानता है। आँख द्वारा मात्र आँख जितने क्षेत्रको जाने—ऐसा नहीं है, उसके द्वारा पच्चीस-पचास कोसकी दूरीका ज्ञान होता है। ज्ञानचमक अपने क्षेत्रमें रहकर जानती है, स्वको स्वरूपसे और परको पररूपसे—जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा—जानती है। विकल्प–रागभाव कहीं चमकता नहीं है। सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है, ज्ञात होता है, अनुभवमें तथा ख्यालमें आता है।

कोई कहे कि—मुझे आत्मा दिखायी नहीं देता, इसलिये आत्मा है ही नहीं। भाई! 'आत्मा दिखायी नहीं देता'—ऐसा किस सत्तामें निर्णय किया? रागकी सत्तामें या ज्ञानकी सत्तामें? जिसे नहीं दिखता वही देखनेवाली ज्ञानसत्ता है। श्रीमद् कहते हैं :–

जे द्रष्टा छे दृष्टिनो, जे जाणे छे रूप;
अबाध्य अनुभव जे रहे, ते छे जीवस्वरूप।

आँख और रूपके ज्ञानरूपसे जो अनुभवमें आ रहा है, ज्ञातारूपसे चमक रहा है वही जीव है।

अरेरे! आदमीको स्त्री, बच्चे और परिवारके पालन-पोषणकी तथा खाने, पीने और कमानेकी चिन्ता चौबीसों घन्टे पाप, पाप और पाप!

प्रश्न :—स्त्री-बच्चोंका पालन-पोषण करना वह तो मनुष्यका कर्तव्य है ना?

उत्तर :—कर्तव्य? कैसा कर्तव्य? पापका? परकी रक्षा क्या आत्मा कर सकता है? शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि—परकी दया पालनेका भावभी, वह भाव राग होनेसे, आत्माकी हिंसा है। समस्त राग, फिर भले वह शुभ हो या अशुभ हो, स्वरूपकी हिंसा है। श्री 'पुरुषार्थसिद्धि–उपाय'में कहा है :-

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।४४।।

अपने शुद्धोपयोगरूप प्राणोंका घात रागादि भावोंसे होता है। इसलिये रागादि भावोंकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पत्ति न होना वही अहिंसा है। 'आदि' शब्दसे द्वेष, मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, शोक, जुगुप्सा, प्रमाद आदि अशुभ तथा दया-दानादि शुभ—समस्त विभावभाव जानना। समस्त विभावभाव हिंसाके पर्याय हैं। वे विभावभाव न हों वही अहिंसा है। उन रागादि भावोंकी उत्पत्ति ही हिंसा है—ऐसा जैनसिद्धान्तका रहस्य है। सारांश यह है कि—कर्तव्यके रागमें वीतराग स्वरूप भगवान आत्माकी अपनी वीतरागताकी हिंसा हो जाती है। ऐसा मार्ग है भाई! दुनियाके साथ मेल बैठे ऐसा नहीं है।

'ज्ञानकी चमक चारों ओर फैल रही है। ज्ञानकी चमक बिना सोनेकी चमक काहेमें ज्ञात होगी?'

अहाहा! सर्वत्र ज्ञानकी ही चमक है, चमत्कार है। ज्ञान रागको जानता है, शरीरको जानता है, लोकालोकको जानता है, छहों द्रव्योंको जानता है; ज्ञानकी चमक बिना सोनेकी चमक काहेमें ज्ञात होगी? पत्थरमें सोना है—ऐसा ज्ञानके बिना कौन जानेगा? सोनेकी चमक तो ज्ञान जानता है। पं. बनारसीदासजी कहते हैं :—

स्वपर प्रकासक सकति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी;
ज्ञेयदशा दुविधा परगासी, निजरूपा पररूपा भासी।

स्वको तथा परको जाननेकी शक्ति आत्माकी है। इसलिये परका तो मैं मात्र ज्ञाता–द्रष्टा हूँ, कर्त्ता-भोक्ता नहीं हूँ। पर वस्तु है तो परको मैं प्रकाशता हूँ—ऐसा भी नहीं है। स्वको तथा परको प्रकाशनेकी भक्ति मेरी अपनी अपनेसे ही है। आया कुछ समझमें?

वस्तुका सच्चा स्वरूप नहीं समझते इसलिये 'एकान्त है' ऐसा कहते हैं। भले कहें। परन्तु भाई! जैसा वस्तु-स्वरूप यहाँ कहा जाता है वही सच्चा अनेकान्त है। पत्रोंमें विरोध आता है; लेकिन क्या किया जाय?

जामैं जितनी बुद्धि है, उतनी देय बताय;
वाकौं बुरौ न मानिये, और कहाँसे लाय?

विरोध करनेवाला भी शक्ति-अपेक्षासे भगवान है। किसीके प्रति कोई चाहे जितना कहे वह तो उसके भाव हैं। उसका आत्मा भी भगवान है, साधर्मी है। भगवान आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है परन्तु पर्यायमें भूल है। चाहे जिसप्रकार कहो, किसीके प्रति विरोध नहीं है, द्वेष नहीं है। अहाहा! ज्ञानकी चमक चारों ओर फैल रही है, जिसमें स्व-पर सब जैसा है वैसा यथार्थ ज्ञात होता है।

'जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोतीका पारखी उसमेंसे सच्चे मोतियोंको अलग कर लेता है, उसीप्रकार आत्माको 'प्रज्ञासे ग्रहण करना'। जो जाननेवाला

३१.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है सो मैं, देखनेवाला है सो मैं—इसप्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्माको और विभावको पृथक् किया जा सकता है।'

मोतियोंका पारखी असली और नकली मोतीयोंको पृथक कर लेता है, सच्चे मोतियोंको अलग कर देता है। उसी प्रकार आत्माको ज्ञानसे ग्रहण करना। ज्ञानस्वरूप आत्मा सच्चा मोती है और शुभाशुभ विभावभाव खोटे मोती हैं। बात कुछ सूक्ष्म है भाई! जो जाननेवाला हूँ वह मैं हूँ, जिसकी सत्तामें जाननेका कार्य होता है वह ज्ञाता सत्ता ही मैं हूँ। जिसमें जाननेका भाव नहीं वह जड़। रागमें ज्ञातापना नहीं होनेसे वह परभाव है, आत्मा नहीं है। जो ज्ञाता है, वह मैं हूँ, जो द्रष्टा है वह मैं हूँ।—इसप्रकार उपयोगको सूक्ष्म करके आत्माको और रागको भिन्न किया जा सकता है, पृथक् किया जा सकता है।

'यह पृथक् करनेका कार्य प्रज्ञासे ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों, परन्तु वे साधन नहीं होते, साधन तो प्रज्ञा ही है।'

भेदज्ञान स्वरूप प्रज्ञासे ही आत्मा और रागको पृथक् किया जा सकता है, किसी दया, दान या व्रत, तपकी—रागकी क्रियासे आत्मा विभावसे पृथक् नहीं होता। जिससे पृथक् होना है उस राग द्वारा, रागका साथ लेकर पृथक् हुवा जाता है? अरे! व्यवहार-रत्नत्रयका विकल्प भी राग है, अंतरमें उसका साथ लेकर रागसे पृथक् हुआ जाता है? व्यवहार एवं रागसे पृथक् ऐसे निजज्ञायक स्वभावका दृष्टि एवं ज्ञानमें आश्रय करना वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। रागसे पृथक् अंतर आत्मदर्शन होने के पश्चात्, भले भूमिकानुसार व्रत, तप या त्यागादिके शुभभाव हों परन्तु वह शुभराग विभावको टालनेका साधन नहीं होता; विभाव टालनेका और ज्ञायकस्वभावकी साधनाका साधन तो एकमात्र प्रज्ञा ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–७५

ता. २५-८-७८

वचनामृत–१६७

वचनामृतका १६७वाँ बोल चल रहा है। अन्तिम 'पैरा'में कहते हैं कि:–

'स्वभावकी महिमासे परपदार्थोंके प्रति रसबुद्धि-सुखबुद्धि टूट जाती है।'

क्या कहते हैं इसमें? दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत एवं तपादिमें जो बाह्य क्रिया है वह जड़ है, शरीरकी दशा है, और तत्सम्बन्धी भाव है, वह राग है, विभाव है, अंतरमें ज्ञायकस्वभावकी महिमा आनेपर परकी क्रिया एवं रागके ओरकी रसबुद्धि–सुखबुद्धि उड़जाती है।

प्रश्न :—उससे पुण्य होता है या नहीं?

उत्तर :—राग मन्द किया हो तो पुण्य होता है, परन्तु पुण्यका प्रेम वह तो मिथ्यात्व है। भगवान आत्माका स्वभाव तो पुण्य-पापके विभाव रहित शुद्ध ज्ञानानन्दघन है। लोगोंको यह बात कठिन लगती है और इसलिये वे कहते हैं कि पहले व्यवहार करो, फिर व्यवहारसे निश्चय होगा। भाई! सर्वप्रथम निज द्रव्यस्वभावकी दृष्टि–निश्चय हुए बिना सम्यग्दर्शन ही नहीं होता, और सम्यग्दर्शनके बिना धर्मका प्रारम्भ कहाँसे लाया? दया, दानादि, बाह्य क्रियाओंका जबतक कर्ता हो, रागादिकी मन्दतामें—शुभभावमें 'यह मेरी वस्तु है, मैं उसका कर्ता हूँ, उससे मुझे लाभ है' ऐसी रसबुद्धि है तबतक वह जीव मिथ्यादृष्टि है, अनंत संसारी है। अहा! बहुत कठिन।

प्रश्न :—एक तो दानमें पैसा जाय, और ऊपरसे मिथ्यात्वका पाप लगे?

उत्तर :—हाँ, पैसे कब उसके थे? वे तो जड़ हैं। जड़ जड़के कारण आता है, रहता है और जाता है। पैसे मेरे हैं और मैंने खर्च किये ऐसी जो मान्यता वह मिथ्यात्वका महापाप है। अंतरमें आनन्दकंद ज्ञायकस्वभावकी महिमा जागृत हो तो पर पदार्थोंके प्रति, रागादि विभावके प्रति रस टूट जाय, और उनका रस टूट जाय तो मिथ्यात्वमय महापाप छूटे तथा आनन्दघन आत्माका सम्यग्दर्शन हो, तब धर्मका प्रारम्भ होता है। समझमें आया कुछ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—स्वभावकी महिमाका क्या अर्थ ?

उत्तर :—भीतर राग एवं विकल्पसे भिन्न विज्ञानघन और आनन्दकन्द चैतन्यप्रभु जो भगवान आत्मा है वह अकेला अनंत-अनंत गुणोंसे भरपूर है, अनंत चैतन्य चमत्कारोंसे खचाखच भरा है, जिनकी कोई संख्या या सीमा नहीं है ऐसे अनंत अद्भुत गुणोंसे परिपूर्ण है। इस अटूट भण्डारकी महिमा ही स्वभावकी महिमा है। उस ओर ढलनेसे दया, दानादिके रागका रस छूट जाता है। एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं, उसीप्रकार स्वभावकी महिमा और रागका प्रेम—दोनों एकसाथ नहीं रह सकते। अतीन्द्रिय ज्ञानानन्द स्वभावकी—'स्वयं ज्योति सुखधाम; की अंतरसे महिमा, बहुमान आये बिना रागका रस नहीं छूटता। जब तक रागका रस है तब तक जीव मिथ्यादृष्टि है। भले ही हजारों मन्दिर बनवाये, करोड़ों रूपयेका दान करे, परन्तु वह तो जड़की क्रिया है। अंतरमें मन्द राग हो तो पुण्यभाव है। यदि मानादिके लिये करे तो, पैसा देने पर भी, पाप भाव है, उससे अंशमात्र धर्म नहीं होता। समझमें आया ? समझनेमें कठिनाई हो ऐसी यह बात है। जिसे शुभरागका प्रेम है उसे भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकका अप्रेम अर्थात् द्वेष है। भाई ! बात तो बिलकुल सीधी और सरल है, परन्तु पुण्यका आग्रह होनेसे कठिन लगती है। क्या हो ? आहाहा ! अनन्तबार मुनिव्रतका पालन किया परन्तु वह सब शुभराग था। वर्तमानमें तो ऐसा शुभभाव भी नहीं है कि नववें ग्रैवेयकमें जा सके। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', परन्तु रागके रससे परमें अटका इसलिये 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' शुभरागका प्रेम छूटकर अंतरमें प्रभुके अद्भुत आनन्दका रस तथा महिमा कभी नहीं आया।

अहो ! आनन्द रसकी अद्भुत महिमा ! आनन्दघनजी कहते हैं :—

अनुभव रसमें रोग न सोगा, लोकवाद सब मेटा,
केवल अचल अनादि अबाधित, शिवशंकरका भेटा;
अबधू अनुभव कलिका जागी, मति मेरी आतम समरन लागी....अबधू।

अंतरमें पूर्णानन्द चैतन्य प्रभुका रस आये तो उसकी महिमाके आगे रागका रस, प्रेम और अनुभव छूट जाता है, रागमें रसबुद्धि–सुखबुद्धि थी वह टूट जाती है। अहा ! भाषा तो अत्यन्त सरस है और भाव भी अलौकिक हैं।

रागसे भिन्न होकर, अंतरमें आनन्दके नाथका आश्रय करके, अपनी परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्दका रस आये, वेदन आये, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, शुद्धात्माकी निर्विकल्प प्रतीति उसका लक्षण है। जिसके प्रगट होनेसे आनन्दादि अनन्त गुण अंशतः वेदनमें आयें वह सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक वस्तु है भाई !

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—सम्यग्दर्शन होने पर आत्माके सर्व गुण अंशतः वेदनमें आते हैं?

उत्तर :—हाँ! श्रीमद्ने कहा है : 'सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व' निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्द गुणकी आश्चर्यजनक पर्याय प्रगट होनेसे आत्माके सर्व गुणोंका यथासंभव आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और उसका वेदन होता है।

प्रश्न :—जैनकुलमें जन्म हुआ है इसलिये हमें तो सम्यग्दर्शन होगा ही ना?

उत्तर :—कुलमें धूल भी जैनधर्म नहीं है। जैन किसे कहते हैं? 'घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।' आनन्दकन्द वीतरागमूर्ति जिनस्वरूप भगवान तो अंतरमें विराजता है, उसे पहिचानकर, अनुभव करके, रागके साथकी एकत्वबुद्धिको जीतना उसे जैन कहते हैं। कुल या सम्प्रदायके जैन वे जैन नहीं हैं, जैनाभास हैं। भाई, यह भगवानका सन्देश है।

प्रश्न :—यह भगवानका सन्देश है ऐसा हम कैसे माने?

उत्तर :—न्यायसे तुलना करके मान सकोगे। विचार कर तुलना करे कि रागका रस तो आकुलतारूप है और आत्माका अनुभवरस आनन्द रूप है। दोनोंकी जाति ही बिलकुल भिन्न है, इसलिये राग और आत्मा दोनों एक कैसे हो सकते हैं? कदापि नहीं हो सकते। उन दोनोंके बीच बिलकुल भिन्नता है ऐसा भगवानका उपदेश है। व्यवहारसे निश्चय प्रगट होगा ऐसा माननेवालेको रागका—शुभका रस है। प्रभु! तेरी ध्रुव ज्ञायक प्रभुता अंतरमें इतनी खचाखच भरी है कि उसके समक्ष एकसमयकी पर्याय भी, विनाशशील होनेसे, पामर है, तब फिर रागकी तो बात ही कहाँ रही?

अरेरे! अंतरमें चैतन्यरत्न भगवान ज्ञायक आत्मा विराजमान है, परन्तु जीवने अनादिसे उसे नहीं पहिचाना।

परख्यां माणेक मोतियाँ, परख्यां हेम कपूर,
परख्यो एक न आतमा, त्यां रह्यों दिग्मूढ़।

यह ज्ञायकरत्न क्या वस्तु है, उसे जाने बिना सब जानकारी धूल है।

'स्वभावमें ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है।'

रागकी एकता छोड़कर जो जैन हुआ, धर्मी हुआ, उसे ज्ञायकस्वभावमें ही रस आता है, अन्य सब—चक्रवर्तीका राज्य, छियानवे हजार रानियाँ अथवा व्यवहारके शुभ भाव—नीरस लगते हैं, ज्ञानरस रहित बेस्वाद लगते हैं, वह सबको ज्ञानके परज्ञेय रूपमें जानता है।

'भरतेश वैभव' पुस्तकमें आता है कि—भरत चक्रवर्ती आत्मज्ञानी हैं; वे भोगमें हों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और भोगसे छूटकर तुरन्त दूसरे ही क्षण आत्माके निर्विकल्प अनुभवरसमें डूब जाते थे। ज्ञानीको भोगकी वासना आती है, परन्तु अंतरमें वह काले नाग जैसी लगती है, दुःखमय लगती है; अंतरसे रागकी मिठास छूट गई है। राग आनेपर विषयोंमें अल्प लीनता होती है, परन्तु वह अंतरमें रागके रस रहित है। अहाहा! ऐसी बात। जन्म-मरण रहित होनेकी कला कोई अलौकिक है। अंतरमें जिसे अतीन्द्रिय आनन्दका रस आता है उस सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको रागमें रस नहीं आता।

अहा! भगवानने एक श्वास जितने समयमें निगोदके अठारह भव कहे हैं। प्रभु! वे दुःख कैसे होंगे? उनका स्मरण कहाँ है? स्मरण नहीं है इसलिये वे नहीं थे ऐसा नहीं है भाई! कौन कहे? जन्मके बाद छह-बारह महीने तक क्या था, माताने किसप्रकार दूध पिलाया, नहलाया,—यह सब अभी याद है क्या? याद नहीं है इसलिये नहीं था? नहीं था—ऐसा कौन कह सकता है? भवभ्रमणमें नरक-निगोदके अनंत भव किये। अरे! उन दुःखोंका वर्णन क्या हो? सुनकर जगतके जीवोंकी आँखोंमें आँसू आ जायें ऐसे भयंकर वे दुःख हैं। भूल गया इसलिये क्या वे दुःख नहीं थे? उसीप्रकार तू अपने ज्ञायक भगवानको भूल गया, तो क्या वह नहीं है? 'नहीं है' ऐसा कौन कहेगा? आनन्दकन्द चैतन्य ध्रुव वस्तुको अनादिसे भूल गया है, परन्तु उससे क्या वह ज्ञायक परमात्मा चला गया है? कहीं नहीं चला गया।

अरेरे! लोगोंको बाहरका कितना रस और रुचि है? बड़ी-बड़ी सभाएँ लगती हों, धर्मका उपदेश करते हों। परन्तु भाई! उपदेशमें निकलती वाणी तो भाषावर्गणाकी पर्याय है। आत्मा उपदेश नहीं दे सकता, भाषाकी पर्यायको नहीं कर सकता। उपदेशका विकल्प भी राग है, उन्माद है, आत्माका स्वरूप नहीं है। 'समाधिशतक'में कहा है :-

बीजा उपदेशे मने, हुं उपदेशुं अन्य,
ऐ सौ मुज उन्मत्तता, हुं तो छुं अविकल्प. १९

मैं दूसरोंके द्वारा सीखने योग्य हूँ तथा मैं दूसरोंको सिखाता हूँ; वह मेरी चेष्टा उन्मत्त–पागल जैसी है; क्योंकि वास्तवमें तो मैं निर्विकल्प हूँ–वचनविकल्पोंसे अग्राह्य हूँ। अहा! सम्यग्दर्शन और उसका विषय त्रैकालिक ध्रुवज्ञायक आत्मा अलौकिक है। यह समझना जगतको कठिन लगता है भाई! पण्डित दीपचन्दजी 'भावदीपिका' में लिख गये हैं कि—आजकल जीवोंमें आगमानुसार श्रद्धा भी दिखायी नहीं देती, और कहता हूँ तो 'यह बात निश्चयाभासकी है'—ऐसा कहकर विरोध करते हैं; इसलिये अध्यात्मकी यह बात इस ग्रन्थमें लिखे जारहा हूँ।

वर्तमानमें आत्माकी यह बात सुननेवाले लोग निकले हैं, काल इतना अच्छा है। यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात दुनियासे बिलकुल भिन्न होने पर भी लोग सुनते हैं कि यह है क्या? कुरावड़ जैसे ग्राममें पंचकल्याणकके समय दस-बारह हजार और भोपालके पंच कल्याणकमें चालीस हजार लोग यह अध्यात्मकी—समयसारकी ऐसी सूक्ष्म बात रुचिपूर्वक सुनते थे। अपने यहाँ तो ४४ वर्षसे यह बात सतत चल रही है। अहा! सुन तो सही प्रभु! जिसे आनन्दकन्द चैतन्य प्रभुकी दृष्टि हुई, उसकी अंतरसे महिमा आयी, उसे रागका रस–महिमा छूट जाती है। अरे! जिसे शुभभावकी महिमा है उसे ज्ञानानन्दघन आत्माकी महिमा नहीं है और जिसे अंतरसे आनन्दकन्द आत्माकी महिमा आयी उसे रागका रस महिमा नहीं रहती।

आज अखबारमें जाति–स्मरणकी एक बात आयी है। छह वर्ष पहले एक राजपूत ठाकुरका लड़का कुएँमें गिर पड़ा था। ११ महीनेके बाद उसी माताके गर्भसे जन्म लिया। ऐसा तो हो सकता है, उसमें कोई विशेषता नहीं है, परन्तु अपने यहाँ बेन (बहिन श्री चम्पाबेन)को तो जाति-स्मरण ज्ञानमें असंख्य अरबों वर्षकी बात, कलकी बात हो इसप्रकार, स्पष्ट ज्ञात होती है। यह बात लोगोंको नहीं जमेगी, कहें तो आश्चर्य लगेगा। प्रभु! भले आश्चर्य लगे, परन्तु एक बार ध्यान देकर सुन तो सही!

जातिस्मरणकी बातसे लोगोंको आश्चर्य होगा, परन्तु वह कोई नई बात नहीं है। जातिके—पूर्वजन्मके—स्मरण करनेसे आत्मजातिका ज्ञान होना वह यथार्थ जातिस्मरण है। वह तो भवका ज्ञान है और यह तो आनन्दकन्द ज्ञायक जातिका ज्ञान है। अनन्त गुणका पिण्ड एवं आनन्दकन्दका जो नाथ है उसका अंतरसे स्मरण आना, उसका अनुभव होना, वही प्रथम कोटिका धर्म है। उसके बिना सब एकरहित शून्यके समान हैं। लाखों बार भक्ति करे, करोड़ों रूपये दानादि कार्यों में खर्चे, बाहरी दिखाव धामधूम करे, परन्तु वह सब राग है इसलिये धर्मके लिये निरर्थक है। आया समझमें?

'तभी अंतरकी सूक्ष्म संधि ज्ञात होती है।'

अंतरकी समस्त संधिका ज्ञान होता है। कब? कि जब रागसे भिन्न ऐसे शुद्ध चैतन्यस्वभावका सम्यक्‌दर्शन हो तब अंतरमें राग एवं ज्ञानकी सूक्ष्म संधिका ज्ञान होता है। अंतरमें स्वभावकी दृष्टि करनेसे रागसे भिन्नपनेकी साँधका यथार्थ ज्ञान होता है, संधि समझमें आती है। भगवान ज्ञायक और राग कदापि एक नहीं हुए हैं—इसप्रकार सूक्ष्म संधिके ज्ञानसे अंतरमें सम्यग्दर्शन होता है। अहा! ऐसी बात है।

इस मध्यलोकमें अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रमें असंख्य तिर्यंच सम्यग्दृष्टि हैं। उनमेंसे कितनोंको जातिस्मरणज्ञान भी है, कितनोंको अवधिज्ञान भी है। पूर्व कालमें सत्‌श्रवण किया हो, और उसका स्मरण करनेसे आत्माका अनुभव हो–ऐसे असंख्य तिर्यंच वहाँ पड़े हैं। अहा! भगवान आत्माकी बलिहारी है! श्री मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि—ज्ञानादिककी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हीनता होनेपर भी तिर्यंचादिक और केवली सिद्ध भगवानको सम्यक्त्वगुण तो समान ही है। भले चारित्रकी स्थिरताका अंतर हो, परन्तु चिदानन्द ज्ञायक प्रभुकी प्रतीतिमें कुछ भी अंतर नहीं है। अहा! वह सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है उसकी लोगोंको खबर नहीं है।

अंतरमें रागका रस छूट जाय, चेतनका रस आये। तब वे दोनों एक नहीं—भिन्न हैं ऐसी अंतरकी सूक्ष्म संधि ज्ञात हो। राग और ज्ञान दोनों एक हों तो कदापि भिन्न नहीं हो सकते, और जो भिन्न हों वे कभी एक नहीं हो सकते। सम्यग्दर्शन होनेपर ऐसी भिन्नताका ज्ञान होता है। यह तो वीरोंका मार्ग है भाई! इसमें कायरका काम नहीं है। रागमें और पुण्यमें धर्म मानने वाले कायर और नामर्द हैं। समयसारके पुण्य-पाप अधिकारमें कहा है कि—'दुरंत कर्मचक्रको पार उतरनेकी नपुंसकताके कारण (असमर्थताके कारण)....' शुभ रागका मैं कर्ता हूँ, स्वामी हूँ–ऐसी मान्यता नपुंसकता है। नपुंसकको जिस प्रकार पुत्र नहीं होता उसीप्रकार शुभभावसे भी धर्म रूपी संतान नहीं होती। स्वरूपकी रचना करे उसे वीर्य कहा जाता है, रागकी रचना करे वह तो नपुंसकता है। ज्ञानीको भी अस्थिरताका अल्प राग आता है; परन्तु वह रागका स्वामी नहीं है, कर्ता नहीं है, रागका मात्र ज्ञाता ही है।

क्या कहा? कि—वीर्य अर्थात् भगवान आत्माका बल उसे कहा जाता है कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी शुद्धता रचे; रागकी रचना वह उसका कार्य नहीं है, वह पण्डित वीर्य नहीं है। भगवान आत्मा ज्ञान, आनन्द, वीर्यादि अनंत गुणोंका महासागर है, चैतन्यके रत्नोंसे भरा हुआ महान रत्नाकर है, उसकी जिसे अंतरमें दृष्टि हुई, अन्तरमें उसकी महिमा लगी, उसे रागका रस-महिमा छूट जाती है। राग और आत्माके बीच सांध है उसकी समझ सम्यग्दृष्टिको होती है, अज्ञानीको उस सांधका पता नहीं चलता।

अंतरमें शुभाशुभ रागका प्रेम टूटे, चैतन्यका प्रेम जागृत हो, तभी अंतरकी सूक्ष्म संधिका पता चलता है। राग और ज्ञान दोनों भिन्न ही हैं—ऐसा संधिका ज्ञान ज्ञानीको ही होता है। अज्ञानीको तो 'रागका मैं कर्ता हूँ, शुभराग मेरी वस्तु है, वह करते–करते मुझे आत्मज्ञान होगा' ऐसी मान्यता होनेसे उसे राग और स्वभावके बीच संधिका पता ही नहीं है। अहा! ऐसी बात है भगवानकी।

हमें तो बचपनसे इसका अभ्यास है। दुकान छोड़कर यही व्यापार किया है। वि. सं. १९६८के वैशाख महीनेमें दुकान छोड़ दी थी। दुकान पर भी यही अभ्यास था। सर्वप्रथम 'अध्यात्मकल्पद्रुम' नामक पुस्तक पढ़ी थी। उसमें वैराग्यकी बात है, तत्त्वकी बात नहीं है। संवत् १९७८में जब 'समयसार' हाथमें आया और पढ़ा, तब अंतरसे ऐसा लगा कि—अहो! यह तो कोई अशरीरी होनेकी वस्तु है! सिद्ध कैसे हुआ जाता है उसकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसमें बात है।बाहर वनमें जाकर समयसारका अध्ययन किया था। श्वेताम्बरोंमें ३२-४५ सूत्र पढ़नेमें कई वर्ष लगाये, भगवती सूत्र तो टीकासहित १७ बार पढ़ा, परन्तु उसमें कुछ हाथ नहीं लगा। श्वेताम्बर शास्त्रोंमें अध्यात्मतत्त्वकी सत्य बात है ही नहीं। यह सम्प्रदाय दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर धर्ममेंसे निकला है। बादमें उन्होंने शास्त्रोंकी रचना करके सर्वज्ञके नाम पर चढ़ा दिया है; इसलिये लोग बेचारे उलझनमें पड़ गये। यह समयसार आदि तो सर्वज्ञ-वीतराग-अनुसारिणी वाणी है। उसमें ऐसा कहा है कि—जब ज्ञान और रागकी भिन्नताका ज्ञान होगा तब तुझे रागका रस छूट जायगा और आत्माके अतीन्द्रिय आनन्द रसका अनुभव होगा।

ऐसा नहीं होता कि परमें तीव्र रुचि हो और उपयोग अंतरमें प्रज्ञाछैनीका कार्य करे।'

शरीरमें तथा स्त्री, पुत्रादि परविषयमें, तीव्र प्रेम हो और उपयोग अंतरमें भेदज्ञानका कार्य करे—ऐसा कभी नहीं हो सकता। दया, दानादि, शुभ राग जोकि विकल्प है, उसकी जब तक अंतरमें तीव्र रुचि है तबतक अरागी चैतन्य भगवान हाथ नहीं आयगा।

'रुचि अनुयायी वीर्य'। रागकी रुचि हो उसका वीर्य रागका कार्य करता है और स्वभावकी रुचि हो उसका वीर्य स्वभावका—निर्मलानन्दके अनुभव रसका—कार्य करता है। ऐसी बात है भाई!

प्रश्न :—समाजको ऐसी बात समझना कठिन नहीं होगी?

उत्तर :—भाई! समाजमें भी अंतरमें आत्मा है या नहीं? प्रभु! शरीरकी ओर मत देख। स्त्री-पुरुष आदि तो चमड़ेके आवरण हैं। देह-मन्दिरमें भीतर चैतन्यप्रभु आत्मा विराजता है वह तो ज्ञानानन्दका कंद है, उसे पर्यायमें पूजा-भक्तिका राग भले आये परन्तु ज्ञानीको अंतरमें उसका रस-रुचि नहीं होती। वहाँ ऐसा नहीं होता कि रागमें तथा परमें तीव्र रुचि हो और उपयोग अंतरमें भेदज्ञान रूपी प्रज्ञाछैनीका कार्य करे।

प्रश्न :—रागके रसका अर्थ क्या?

उत्तर :—रागके साथ एकत्वपनेकी मान्यता, रागमें प्रेमपूर्वक तत्परता, उसे रागका रस कहा जाता है। एक विषयमें ज्ञानका तदाकार होना, एक ज्ञेयमें ज्ञान—पुरुषका भाव—लीन हो जाय और अन्य ज्ञेयकी इच्छा न रहे, वहरस है। प्रज्ञाछैनी द्वारा दो कार्य होते हैं : (१) रागका रस छूटता है, और (२) आनन्दकन्द ज्ञायक स्वभावमें ही रस लगता है। राग और ज्ञानमें एकता नहीं है परन्तु दोनोंकी बीच साँध है। प्रज्ञाछैनी उस साँधमें पटकनेसे आत्मा और राग पृथक् हो जाते हैं। जिसे रागका तीव्र रस है उसे रागसे भिन्न होने रूप करनेवाली प्रज्ञाछैनी हो—ऐसा कभी नहीं होता। एक म्यानमें दो तलवारें नहीं

32.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रह सकती; रागका तीव्र रस भी रहे और रागसे भिन्न होने रूप कार्य करने वाली प्रज्ञाछैनी भी रहे—ऐसा नहीं हो सकता। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, आत्माके अतीन्द्रिय अनुभवकी प्राप्ति करना हो उसे शुभरागका भी रस छोड़ना पड़ेगा।

प्रभु! तेरी अतीन्द्रिय प्रभुताका पार नहीं है भाई! परन्तु अपनी प्रभुताकी तुझे खबर नहीं है। 'अप्पा सो परमप्पा।' अरे! तेरा प्रभु परमेश्वर स्वरूप है। प्राप्तकी प्राप्ति है। अंतरमें शक्ति अपेक्षासे परमात्मा है तो पर्याय में व्यक्त परमात्मा होगा। उस ज्ञायक ध्रुव परमात्माकी ओर जहाँ दृष्टि हुई वहाँ रागका रस छूट जाता है। अंतरमें रागका रस–प्रेम रहे और रागसे भिन्न होनेरूप प्रज्ञाछैनी अंतरमें कार्य करे—ऐसा कदापि नहीं होता।

प्रशस्त या अप्रशस्त सर्व परिणति उपाधिस्वरूप है। सर्वके साक्षीरूप वेदनपरिणति वह समाधिरूप है तथा स्वरूपस्थिरता वह समाधिरूप है।

प्रतीतिरूप ऐसी ज्ञाताकी ज्ञातारूप वेदनपरिणतिमें स्थिरताको बढ़ाते बढ़ाते साधक साध्यरूपसे पूर्ण होता है, पर्यायकी पूर्ण निर्मलता होती है। द्रव्य तो अनादि-अनन्त परिपूर्ण शुद्धतासे भरपूर है। शुद्धात्मामें स्वरूपरमणता बढ़ते बढ़ते आत्म-उपयोग परलक्षसे सर्वथा छूटकर अपने कृतकृत्य स्वरूपको व्यक्त करता है, स्वरूपमें आकर, उसके साथ एकमेक होकर, सर्वांश जुड़ जाता है।

ऐसे अद्‌भूत स्वरूपको प्राप्त श्री वीतरागदेवको तथा उस वीतराग स्वरूपको बारम्बार नमस्कार है। —*पू. बहिनश्री चंपाबेन*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–७६

ता. २६-८-७८

वचनामृत–१६८

ज्ञातापनेके अभ्याससे ज्ञातापना प्रगट होने पर कर्तापना छूटता है। विभाव अपना स्वभाव नहीं है इसलिये कहीं आत्मद्रव्य स्वयं उछलकर विभावमें एकमेक नहीं हो जाता, द्रव्य तो शुद्ध रहता है; मात्र अनादिकालीन मान्यताके कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थको मैं करता हूँ, रागादि मेरा स्वरूप है, मैं सचमुच विभावका कर्ता हूँ' इत्यादि भ्रमणा हो रही है। यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो तो कर्तापना छूटता है।।१६८।।

ज्ञातापनेके अभ्याससे ज्ञातापना प्रगट होने पर कर्तापना छूटता है।'

व्रत, नियम और तपके—शुभ रागके—अभ्याससे आत्मा जाननेमें नहीं आता। मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे, ज्ञायककी ओर उन्मुख होनेसे अंतरमें ज्ञातापना प्रगट होनेपर आत्मा जाननेमें आता है और पर तथा रागका कर्तृत्व छूटता है। सम्यग्दर्शन करनेकी यह विधि है। मैं मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा अन्तर्मुख अभ्यास बारम्बार करनेसे पर्यायमें ज्ञातापना प्रगट होता है और तब परका कर्तापना छूटता है, रागका जो विकल्प है उसका कर्तापना भी तब छूटता है; अज्ञानी अपने ज्ञाता स्वभावसे अजान है। वह शरीरादि परकी क्रिया तो कर नहीं सकता; परन्तु वह ज्ञातापनेके अभ्याससे रहित है इसलिये व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि बाह्य क्रियाओं का तथा पुण्य-पापके विकारी भाव जोकि अपना स्वभाव नहीं है उसका वह कर्ता होता है। मात्र शास्त्रज्ञानके अभ्याससे ज्ञातापना प्रगट नहीं होता, और व्रत, नियम, भक्ति तथा पूजाके ढेर लगा दे तब भी उसे आत्माका ज्ञाता-द्रष्टापना प्रगट नहीं होता। अहा! ऐसी बात है प्रभु!

'विभाव अपना स्वभाव नहीं है इसलिये कहीं आत्मद्रव्य स्वयं उछलकर विभावमें एकमेक नहीं हो जाता, द्रव्य तो शुद्ध रहता है;'

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भले ही दया, दान, पूजा, भक्तिके विकल्प हों, परन्तु हैं वे विभाव। व्यवहाररत्नत्रयके विकल्प भी विभाव हैं आत्माका स्वभाव नहीं है। जिसप्रकार ज्ञाताद्रष्टापना जीवका नित्य स्वभाव है, वैसे ही विभाव उसका नित्य स्वभाव नहीं है। क्षणिक विभाव है इसलिये त्रैकालिक ध्रुव आत्मद्रव्य कहीं स्वयं उछलकर—उत्साहमें आकर रागद्वेषादि विभावमें एकमेक नहीं हो जाता। त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकस्वभाव कभी भी क्षणिक विभावके साथ एकमेक नहीं हो जाता। द्रव्य तो शुद्ध रहता है। भगवान ज्ञायक प्रभु द्रव्यसे तो शुद्ध ही है, क्या शुद्ध उछलकर कभी विभावमें एकत्वको प्राप्त होता है? अज्ञानी जीव विभावसे त्रिकाल रहित ऐसे अपने ज्ञायकस्वभाव की प्रतीति नहीं होनेके कारण, 'विभाव मेरा है' ऐसे अभ्यास द्वारा उसमें एकत्वबुद्धि करता है, उसका कर्ता होता है। भाई! दृष्टि इधरसे उधर करता है, उसमें आँखकी क्रियाका कर्ता आत्मा नहीं है; अज्ञानभावसे भी उसके परिणमनका कर्ता आत्मा नहीं है। कर्मका उदय और शरीरकी क्रिया आदि जड़ पुद्गलका परिणमन है, अज्ञानभावसे भी जीव उसकी पर्याय को नहीं कर सकता। मात्र अज्ञान भावसे कर्तापनेके विभावका अभ्यास होनेसे, 'मैं शरीरकी क्रियाका और रागादि विभावका कर्ता हूँ' ऐसा अज्ञानी जीव मानता है। मानता है इसलिये मूल ध्रुव द्रव्यस्वभाव कहीं स्वयं उछलकर विभावके साथ कभी भी एकमेक नहीं हो जाता।

जिसे शुभाशुभ विकारी भावोंका रस है वह विभावका कर्ता होता है; जिसे ज्ञाता वभावका रस है वह शुभाशुभ विभावका कर्ता नहीं होता हुआ अपनी ज्ञातृत्वमय दशामें कर 'मैं परसे पृथक् और विभावसे रहित हूँ' ऐसा यथार्थ जानता है। अहा! ऐसा है प्रभु!

एक पत्र आया है कि आप अपने प्रवचनोंकी बोलती फिल्म बनवायें, जिससे धर्मका खूब प्रचार हो! भाई! क्या कहें? बोलनेकी क्रिया आत्माकी नहीं है, उसकी जिसे रुचि और उत्साह हो वह भाषाकी क्रियाका कर्ता होता है। वह भले ही अपने को भाषाकी क्रियाका कर्ता माने, परन्तु वह उसमें कुछ कर नहीं सकता; क्योंकि ज्ञातृद्रव्यस्वभाव कभी विभावरूप नहीं होता। अपने द्रव्यस्वभावको छोड़कर विभावके अभ्यासमें 'विभावका कर्ता और रचयिता मैं हूँ' ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टिकी है। यह बातें कठिन हैं भाई! समझमें आया कुछ?—क्या? कि वस्तु जैसी है वैसी है। मात्र होता क्या है? द्रव्यस्वभाव तो शुद्ध रहता है। द्रव्यस्वभाव कहीं उछलकर—उत्साहमें आकर—रागकी क्रियामें या रागादि विभावमें तन्मय नहीं हो जाता। तब होता क्या है?

"मात्र अनादिकालीन मान्यताके कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थको मैं करता हूँ, रागादि मेरा स्वरूप है, मैं सचमुच विभावका कर्ता हूँ' इत्यादि भ्रमणा हो रही है।"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनादिकालीन विपरीत मान्यताके कारण पर पदार्थका—शरीरकी क्रियाका, भाषाका, व्यापार-धंधेका, उपदेशका—कर्ता मैं हूँ, दया-दानादि शुभराग मेरा स्वरूप है, मैं काम क्रोधादि विकारका कर्ता हूँ—इसप्रकार (अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वभावकी प्रतीति नहीं होनेसे) अज्ञानी जीवको भ्रमणा हो रही है। श्री समयसार-नाटकमें कहा है :—

करै करम सोई करतारा, जो जानै सो जाननहारा;
जो करता नहि जानै सोई, जानै सो करता नहि कोई।

व्रत, नियम आदि शुभरागकी पर्यायका कर्ता मैं हूँ—ऐसा रागका कर्ता होनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि है। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप त्रैकालिक ध्रुववस्तु हूँ—इसप्रकार अपने ज्ञायक स्वरूपके अनुभवमें जो रागका मात्र ज्ञाता रहता है, रागका कर्ता नहीं होता, वह जीव ज्ञानी सम सम्यग्दृष्टि है। भगवान ज्ञायक आत्मा अपना ज्ञातृस्वभाव छोड़कर कभी विभावमें आया नहीं है, आता नहीं है और आयगा भी नहीं। परन्तु ऐसे आत्मस्वभावकी प्रतीति न होनेसे अपनी पर्यायमें विकारी भावोंका अज्ञानी जीव कर्ता होता है।

प्रश्न :—आत्मा विभाव न करे, परन्तु जीव तो करता है ना?

उत्तर :—जीव कहो या आत्मा कहो—दोनों एक ही हैं। वेदान्तवाले कहते हैं कि—आत्मा तो शुद्ध ब्रह्म है, और जो जीव है वह विभाव–संसार करता है, परन्तु वस्तुका स्वरूप ऐसा नहीं है। आत्मा और जीव दोनों एक ही वस्तु है। आत्मा अर्थात् जीव स्वयं स्वभावसे जिन स्वरूप ही है।

घट घट अंतर जिनबसै, घट घट अंतर जैन;
मति–मदिराके पान सौं, मतवाला समुझै न।

भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुए जिन स्वरूप आत्माको, अपनी स्वच्छन्द-मतिकी मदिरा जिसने पी हुई है ऐसा अज्ञानी प्राणी, नहीं समझ सकेगा। मेरे ज्ञानानन्दमय स्वभावमें विभावका अभाव है, मुझमें जिसका अभाव है उसका मैं कर्ता नहीं हूँ। रागका जो कर्ता होता है उसे ज्ञानमात्र आत्मा क्या वस्तु है उसका ज्ञान नहीं हो सकता। मैं ज्ञानस्वरूपी प्रभु परमें और रागमें क्या करूँगा? मैं एक ज्ञाता हूँ और जगत पररूपसे मेरा ज्ञेय है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा स्वज्ञेय है और रागसे लेकर सब पर ज्ञेय है। उसका मैं ज्ञाता हूँ। परपदार्थ पर रूपसे ज्ञेय है; वे ज्ञेय हैं इसलिये कहीं ज्ञानमें नहीं आ जाते। बात कुछ कठिन है भाई!

मात्र अनादिकालीन अज्ञानजनित मान्यताके कारण जड़ पदार्थ, शरीर और वाणी आदिका मैं कर्ता हूँ; दुकान पर बैठकर व्यापारादि करता हूँ, पैसेका लेन–देन, ग्राहकोंको बुलाना–यह सब जड़की क्रिया मैं करता हूँ–ऐसी भ्रमणा अज्ञानीको हो रही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—यह सब करना तो पड़ता है ना?

उत्तर :—जड़की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता, परन्तु 'कर सकता हूँ' ऐसा भ्रमसे मानता है। जड़की क्रिया तो परद्रव्यकी पर्याय है। जड़की पर्याय रूप जड़ परिणमित हो उसमें तू क्या कर सकता है? तू अपने भाव कर सकता है, परद्रव्यकी पर्यायको पलटना या करना वह आत्माकी सत्ताकी बात नहीं है।

प्रश्न :—हमारे बिना जड़की क्रिया नहीं हो सकती?

उत्तर :—तुम्हारे बिना अर्थात् तुमसे अलग अपनी सत्तामें रहकर ही जड़ अपनी क्रिया करता है। तुम अधिकसे अधिक रागकी क्रिया कर सकते हो, परन्तु शरीरादि परद्रव्यकी क्रिया तुमसे–आत्मासे नहीं हो सकती! अहा! वीतरागमार्ग क्या वस्तु है! वीतरागकी वाणीमें वीतरागता प्रगट करनेका उपदेश आता है; राग करो, रागके कर्ता बनो—यह वाणी वीतरागकी नहीं है। सम्यग्दर्शन होनेपर 'मैं ज्ञाता हूँ' ऐसा अनुभव हुआ; फिर चाहे तो आर्तध्यान हो, रौद्रध्यान हो, उसका वह कर्ता नहीं होता, ज्ञाता-द्रष्टा रहता है। कर्तृनयसे, स्वयं रागरूप परिणमता है इसलिये कर्ता कहा जाता है; परन्तु राग करने योग्य है–ऐसी बुद्धि ज्ञानी को नहीं होती।

आत्मा स्व-परप्रकाशक है। स्वको तथा परको जैसे हैं वैसे जानना वह उसका स्वभाव है। 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी तातैं वचन भेद भ्रम भारी।' स्व-परको जानना आत्माका स्वभाव है, रजकण या रागका करना उसका स्वभाव नहीं है। रोटी खानेमें चबानेकी जो क्रिया है वह जड़की है, आत्माकी नहीं। लोग कहते हैं कि—चबा-चबाकर खाना चाहिये, मुँहमें दाँत हैं पेट में नहीं। भाई! चबानेंकी क्रिया क्या आत्मा करता है? आत्मा तो रोटीका स्पर्श भी नहीं करता, उससे बिलकुल भिन्न है। वह तो रोटी और रागका मात्र ज्ञाता ही है कर्ता नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि—रागादि भाव मेरा स्वरूप है, मैं वास्तवमें विभावका कर्ता हूँ, अणुव्रत एवं महाव्रतके विकल्पोंका कर्ता मैं हूँ—ऐसी भ्रमणा जीवको अनादिकालीन विपरीत मान्यताके कारण हो रही है।

श्रीमद् एक स्थान पर इस तात्पर्यका लिखते हैं कि—भगवान स्वभावसे तो परिपूर्ण है, परन्तु उसमें अवगुणोंका भी पार नहीं है। किसीको ऐसा लगे कि भगवानमें भी अवगुण? भाई! सुन तो सही। यह, भगवान आत्माकी बात है। भगवान आत्मा स्वभावसे तो परिपूर्ण है, परन्तु पर्यायमें 'राग और पुण्य मेरे हैं' ऐसी जो विपरीत मान्यता वह उसका अवगुण है।

सर्व आत्मा ज्ञान लक्षणलक्षित भगवान हैं, उनकी पर्यायमें जो राग होता है उससे स्वयंको पृथक् करके वह अपनेको जानता है। जाननेकी जो पर्याय हुई वह अपने से हुई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, निमित्तसे नहीं आत्मामें 'अकार्यकारणत्व' नामकी एक शक्ति अनादि अनंत है; उसके कारण आत्मा किसीका कार्य भी नहीं है और किसीका कारण भी नहीं है। रागसे ज्ञान हो या ज्ञानसे राग हो—ऐसा वस्तुस्वरूपमें ही नहीं है। अहा! यह बात कभी रुचिपूर्वक सुनी नहीं है।

यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो तो कर्तापना छूटता है।'

ज्ञायक आत्मवस्तु रागसे भिन्न विद्यमान है—ऐसी ज्ञाताकी यथार्थ प्रतीति होनेपर ज्ञातृत्वधारा अंतरमें प्रगट होती है और परका तथा रागका कर्तृत्व छूटता है। आत्मा और रागके बीच प्रज्ञाछैनी द्वारा जब भेद किया तब सम्यग्दृष्टिको ऐसा ज्ञात हुआ कि राग और मैं भिन्न हैं तो भिन्न हुए; और भिन्न होनेपर ज्ञातृत्वधारा द्वारा कर्तृत्व छूट जाता है।

अहा! मार्ग ही पूरा भिन्न है भाई! जन्म–मरणरहित होनेकी तथा सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी रीति ही अलौकिक है! यथार्थ ज्ञातृधारा प्रगट हो तो कर्तृत्व छूटता है। भाई! मेरी ऋद्धिमें ज्ञान, आनन्द एवं शान्ति भरपूर विद्यमान हैं, वह मेरी सम्पदा और लक्ष्मी है—इसप्रकार रागसे भिन्न होकर जब निज ज्ञानानन्दमय अतीन्द्रिय संपदाकी प्रतीति हुई तबसे यथार्थ ज्ञातृधारा प्रारम्भ हुई, यथार्थ ज्ञातृधारा प्रगट होनेसे आत्मामें परका तथा रागका कर्तृत्व छूट गया; मात्र ज्ञातृत्व रहा।

*

वचनामृत–१६६

जीवको अटकनेके जो अनेक प्रकार हैं उन सबमेंसे विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबारमें ही उपयोगको लगा दे, अवश्य प्राप्ति होगी ही। अनन्त–अनन्तकालसे अनन्त जीवोंने इसीप्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिये तू भी ऐसा कर।

अनन्त–अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न? अटकनेके तो अनेक–अनेक प्रकार हैं, किन्तु सफल होनेका एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबारमें जाना। स्वयं कहाँ अटकता है उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूपसे अटक जाता है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभभावकी मिठासमें रुक जाता है, 'यह रागकी मंदता, यह अट्ठाईस मूल गुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्षका मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार संतुष्ट होकर अटक जाता है, परन्तु यह अन्तरमें विकल्पोंके साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है उसे क्यों नहीं देखता? अंतरमें यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभावको त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर संतुष्ट होजाता है। सच्चे आत्मार्थीको तथा सम्यग्दृष्टिको तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है'–इसप्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।

गृहस्थाश्रममें सम्यक्त्वी ने मूलको पकड़ लिया है, (दृष्टि अपेक्षासे) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाएँ–पत्ते जरुर सूख जायँगे। द्रव्यलिंगी साधुने मूलको ही नहीं पकड़ा है, उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगोंको ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वीको अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनिने बहुत कर लिया', परन्तु ऐसा नहीं है। परिषह सहन करे किन्तु अंतरमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलताका वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं॥१६६॥

'जीवको अटकनेके जो अनेक प्रकार हैं उन सबमेंसे विमुख हो और मात्र चैतन्य दरबारमें ही उपयोगको लगा दे, अवश्य प्राप्ति होगी ही।'

जीवको अटकनेके, रुकनेके अनेक प्रकार हैं। परके कार्य करुँ, परवस्तु मेरी है, परसे और रागसे मुझे लाभ होता है—ऐसे जो भाव हैं वे मिथ्यात्वमें अटकनेके प्रकार हैं। स्थूल और सूक्ष्म रूपसे मिथ्यात्वके अनंत प्रकार हैं। श्री समयसारके बंध–अधिकारमें कहा है कि—'परको मार–जिला सकता हूँ? 'सुखी–दुःखी कर सकता हूँ', 'बंध–मोक्ष करा सकता हूँ' ऐसी जो मान्यता है वह मिथ्यात्वके असंख्य प्रकारोंमेंसे एक प्रकार है।

लक्ष्मी प्राप्त होना वह पुण्यका फल है, उसमें आत्माको क्या? पैसेकी समृद्धिसे अपनेको बड़ा मानने वाला भिखारी है, रंक है। एकबार एक राजा व्याख्यान सुनने आये थे तब कहा था : राजन्! अधिक माँगे वह बड़ा भिखमँगा, थोड़ा माँगे वह छोटा भिखमँगा। व्यापारी लाखोंकी तृष्णा करता है, वह छोटा भिखारी और राजा करोड़ों तथा अरबोंकी तृष्णा करता है वह बड़ा भिखारी, मतलब कि सब भिखमँगे, भिखारी तथा रंक ही हैं। अपनी चैतन्यलक्ष्मीकी जिन्हें खबर नहीं है और जड़की लक्ष्मीसे–पैसा दो, प्रतिष्ठा दो, स्त्री दो आदि भीख—माँगते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं उन्हें शास्त्रमें 'वराकाः' कहा है। भाई! यह बाह्य लक्ष्मी तो धूल है, भीतर भगवान आत्मामें ज्ञानानन्दमय चैतन्यलक्ष्मी विद्यमान है उसका तेरे मन कोई मूल्य नहीं है! अरे, तेरी चैतन्यसम्पदाकी क्या बात! अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतआनन्द, अनंतवीर्य–ऐसी अनंत–अनंत गुणलक्ष्मी तेरे चैतन्यभण्डारमें भरी पड़ी है। भगवान ज्ञायक आत्मा है तो शरीर प्रमाण इतने क्षेत्रमें, परन्तु उसके गुणोंकी संख्यामें इतनी अनंतता है कि अनंतका अनंत द्वारा अनंत अनंत अनंतबार गुणा करें तथापि कभी उन गुणोंकी अनंतताको प्राप्त नहीं हुआ जा सकता। अहा प्रभु! आत्मा क्या वस्तु है! आत्मामें ज्ञान–आनन्दादिकी अनन्तानन्त लक्ष्मी विद्यमान है उसकी तुझे खबर नहीं है। वही यहाँ कहते हैं।

जीवको अपनेमें आनेका मार्ग एक ही है, अटकनेके मार्ग अनेक हैं। किसी प्रकारके रागका कर्ता बनकर संतुष्ट होता है, किसी प्रकारके पुण्यका कर्ता होकर संतुष्ट होता है, लोगोंको अच्छी लगे ऐसी वाणीकी क्रियाका कर्ता होकर उससे सन्तुष्ट होता है—यह सब कर्तृत्व मिथ्यात्वभाव है, यह सब भाव जीवको अटकनेके स्थान हैं। द्रव्यस्वभाव तो सर्व जीवोंमें भरपूर भरा पड़ा है, किन्तु पर्यायमें भूल है। पहले कहा था न! कि—द्रव्य स्वभाव कहीं स्वयं उछलकर विभावमें नहीं आता। अहा! यह तो धर्मकथा है। जिससे वीतरागता उत्पन्न हो वह धर्मकथा है; जिससे राग उत्पन्न हो, जो रागसे लाभ बतलाये वह धर्म कथा नहीं है, वह तो पापकथा, विकथा है, जीवको अटकनेके स्थान हैं।

तेरी वस्तु अनंत–अनंत शक्तियोंका भण्डार है उसकी तुझे महिमा और मूल्य नहीं है, और तेरी वस्तुमें जो नहीं है उसका तुझे मूल्य और महिमा है, वह तेरा भ्रम है। द्रव्यलिंगी साधु हुआ तब भी क्या? वह भी शुभ राग आदि बाह्यमें उलझ गया। जीव अनेक प्रकारसे सूक्ष्म रूपसे बाह्य भावोंमें अटक जाता है, शुभरागकी मिठासमें रुक जाता है, परन्तु अंतरमें स्वयं अनंत–अनंत गुणोंका स्वामी भगवान विद्यमान है उसकी ओर दृष्टि नहीं करता, प्रेम नहीं करता।

प्रश्नः—भीतर आत्मामें दृष्टि डालनेसे कितने समयमें मिथ्यात्व दूर हो जाता है?

उत्तरः—'रभसा' तत्क्षण, एक समयमें मिथ्यात्व टल जाता है। जहाँ दृष्टि अन्तर्मुख हुई, ज्ञानने द्रव्यस्वभावका आश्रय किया वहां तुरन्त ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हो जाता है। भूल एक समयकी पर्यायमें है तो भूल दूर होकर भगवान भी एक समयमें हो जाता है। ज्ञातास्वभाव ज्ञाताके अभ्याससे ज्ञाता हो जाता है, परन्तु दया, दान, व्रत, नियम, पूजा, भक्ति आदि व्यवहार क्रिया की इसलिये ज्ञातपनेकी प्रतीति हो जायगी ऐसा नहीं है। अहा! ऐसी वस्तु है। दुनियाको कठिन लगती है इसलिये विरोध करती है। उसकी दृष्टिमें नहीं जँचती इसलिये विरोध करती है।

33.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमाणुकी सत्ता एकदेश प्रमाण, आत्माका सत्तागुण असंख्य–प्रदेश–प्रमाण और आकाशकी सत्ता अनंत–प्रदेश–प्रमाण—सर्वव्यापी, तथापि सबमें सत्तागुणकी शक्ति समान है। क्या है यह? वस्तुमें क्षेत्रकी महत्ता नहीं है परन्तु शक्तिकी गहनताकी महत्ता है। ऐसी बात है भाई! पूर्णानन्दका नाथ अंतरमें विराजमान है उसे रागसे भिन्न करके, उन दोनोंके बीच साँध है वहाँ प्रज्ञाछैनी पटककर उसे रागसे भिन्न—पृथक् कर दे।

जीवको साधनाके मार्ग पर जाते हुए अटक जानेके अनेक प्रकार हैं, उन सबमेंसे विमुख होकर उपयोगकोचैतन्य दरबारमें ही लगा दे। बाह्य संयोग, निमित्त, राग, विशेष और भेद—सर्वत्रसे विमुख होकर रुचिको अभेद ज्ञायक स्वभावसन्मुख कर दे। परसे तथा विभावसे पराङ्मुख हो जा, लौट जा। यह बात सूक्ष्म लगे इसलिये कहते हैं : मात्र निश्चयकी बात करते हैं, व्यवहारसे लाभ होनेकी कोई बात ही नहीं करते। भाई! व्यवहार तो पराश्रित भाव है, राग है। रागकी सीमा है, हद है। अंतरमें अविकृत ध्रुवस्वभावकी सीमा नहीं है, वह अपरिमित है। परिमित वस्तु छूट जाती है, अपरिमित स्वभाव कभी छूटता नहीं है। अज्ञानी माने भले, परन्तु वस्तुस्वभाव अंतरसे कमी छूट नहीं सकता, उसका अभाव नहीं हो सकता। अहा! वस्तुस्थिति ही ऐसी है। भगवान कहते हैं इसलिये वस्तु ऐसी है ऐसा नहीं है, किन्तु वस्तु जैसी है वैसी भगवानने देखी–जानी है और कही है।

भगवानका ज्ञान अनंतको अनंतरूपसे जान लेता है। अनंतको जान लिया इसलिये अनंतका अंत आ गया—ऐसा नहीं है। अरेरे! परम सत्य सुननेको ही न मिला हो वह विचार कहाँसे करे? कहाँ जाय और किससे कहे? वही यहाँ कहते हैं : उपयोगको चैतन्य दरबारमें लगा दे तुझे भगवान ज्ञायक आत्माकी अवश्य प्राप्ति होगी ही। अहा! प्रभुकी प्रभुता! अन्तरमें प्रभुकी प्रभुता रुचे तो वह गुप्त नहीं रह सकती, प्रसिद्धिमें–अनुभवमें आ ही जायगी, अंतरमें प्रभुता बैठे और पर्यायमें प्रभुता प्रगट न हो वह कभी हो ही नहीं सकता।

अनंत–अनंत कालसे अनंत जीवोंने इसीप्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिये तू भी ऐसा कर।'

अनंत जीवोंने भूतकालमें अनंत–आनन्दनिधान चैतन्यदरबारमें घुस जानेका पुरुषार्थ किया है। पुरुषार्थ करनेमें तू अकेला ही नहीं है। वर्तमानमें भी असंख्य साधक जीव वह पुरुषार्थ कर रहे हैं। अनंत जीव पुरुषार्थ द्वारा रागके कारागृहसे निकलकर मुक्तिपदको प्राप्त हुए हैं, इसलिये तू भी रागसे मुक्त होनेके लिये अंतरमें ज्ञायकको साधनेका पुरुषार्थ कर। अनंत जीवों ने जिस प्रकार पुरुषार्थ किया है उसीप्रकार तू भी कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-७७

ता. २७-८-७८

वचनामृत-१६६

१६६ वाँ बोल चलता है; यह दूसरा 'पैरा' है।

'अनंत-अनंतकाल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न?'

अनादि कालसे यह आत्मा परमें तथा रागादि भावोंमें कहीं न कहीं अटकता ही आया है। कहीं न कहीं अर्थात् राग और व्यवहारके प्रेममें। पैसा स्त्री, और शरीर—यह पर वस्तुएँ तो दूर रह गईं, परन्तु उनके प्रेममें, आगे चलकर शुभरागके—दान, दया, व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि शुभभावके प्रेममें, उससे आगे चलकर सूक्ष्म शुभरागके प्रेममें—ऐसे अटकनेके मार्ग अनेक प्रकारके हैं।

'अटकनेके तो अनेक-अनेक प्रकार हैं, किन्तु सफल होनेका एक ही प्रकार है—वह है चैतन्य दरबारमें जाना।'

अहा! यहाँ तो यह एक ही बात है कि अपने ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यदरबारमें जाना वही एक सफल होनेका उपाय है, बाकी सब अटकनेके मार्ग हैं। भगवान ज्ञायक बादशाह है और ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि अनंत गुण उसकी प्रजा है। आनन्दधाम चैतन्यप्रभु अर्थात् अनंत गुणोंका दरबार आत्मा जो अपना स्वदेश है, उसमें प्रवेश करना वह एक ही संसारके बंघनसे छूटनेका तथा मोक्ष प्राप्त करनेका मार्ग है। छहढलामें कहा है।

'लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जग दंद-फंद, निज आतम ध्याओ।'

लाख क्या? करोड़ बातोंका सार यह है कि निज ज्ञायक भगवानका आश्रय वह एक ही कल्याणका उपाय है, इसलिये जगतमें भटकनेके सर्व प्रकारोंको छोड़कर आनन्दनिधान ऐसे निज ज्ञायक प्रभुकी श्रद्धा, ज्ञान और ध्यान करो, उसीका अनुभव करो, सुखधाम ऐसे चैतन्यदरबारमें प्रवेश करो।

'स्वयं कहाँ अटकता है उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।'

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई लक्ष्मीके प्रेममें कोई कीर्तिके प्रेममें, कोई स्त्रीके प्रेममें, कोई शरीरके प्रेममें, कोई 'कर्मके कारण मुझे विकार होता है' ऐसा मानकर कर्मके प्रेममें, कोई शुभाशुभ रागके प्रेममें, कोई व्यवहारके प्रेममें और कोई गुण-गुणीके जो भेदविकल्प उठते हैं उनके प्रेममें–इसप्रकार जीव अनेक प्रकारसे अटकता है। अटकनेके अनेक प्रकार हैं, छूटनेका मार्ग एक ही है कि—भीतर चैतन्यप्रभुके दरबारमें जाना–ज्ञायक राजाकी शरणमें जाना–वह। अंतरमें सुख निधान ज्ञायक राजा विराजमान है उसकी प्रतीतिके बिना जीव जहाँ–तहाँ अटक जाता है। स्वयं कहाँ अटकता है उसका अंतरकी गहराईमें उतरकर विचार करे तो बराबर जान सकता है और उस अटकावसे मुक्त होकर अपने ज्ञायक प्रभुको प्राप्त कर सकता है।

अब दृष्टान्त देते हैं:–

"द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्म रूपसे अटक जाता है, शुभभावकी मिठासमें रुक जाता है, 'यह रागकी मंदता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्षका मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार संतुष्ट होकर अटक जाता है;"

'मैने बहुत शुभभाव किये—स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान छोड़ी, व्यापार छोड़ा' इसप्रकार द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव शुभरागकी मिठासमें रुक जाता है। रागकी मन्दताके प्रेममें कहीं सूक्ष्म रूपसे अटक जाता है। अहा! वह रागकी मंदता कैसी?–कि चमड़ी उतारकर कोई नमक छिड़के तथापि क्रोध न करें—ऐसा शुभभाव किया, वहाँ, 'मैंने बहुत किया' इसप्रकार संतुष्ट होकर रुक गया। अहा! शास्त्रका ज्ञान बहुत किया, व्याख्यान देनेकी कला भी आ गई, परन्तु निज ज्ञायकतत्त्वकी प्रतीतिके बिना, उसीमें अटक गया। श्रीमद् ने कहा है:–

सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत है मनसे, कछु और रहा उन साधनसे?
बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगल है कह बात कहे?

एक समयकी पर्यायकी पीछे (अर्थात् साथ ही) सम्पूर्ण भगवान आत्मा विराजमान है। उसकी प्रतीति बिना जीव अनादि कालसे भवाटवीमें भटकता है। नरक–निगोदके अनंत भव किये। अनंतकालमें मनुष्यका भव प्राप्त होता है तथापि मनुष्यके अनंत भव किये। उनसे असंख्यात गुने अनंत भव नारकीके किये। उनसे असंख्यात गुने अनंत भव देवके किये। स्वर्गमें अनंत बार गया। किस प्रकार? शुभभाव करके। शुभभावकी मिठासके कारण वहाँ अटका, आत्माकी प्रतीतिके बिना कहीं न कहीं अटक गया। २८ मूलगुण आदि शुभ भावकी मिठासमें फँस गया वह परिभ्रमणका कारण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मंद कषायमें मोक्षमार्ग मानकर जीव उसमें संतुष्ट हो जाता है, परन्तु मैं ज्ञायक तत्त्व तो विकल्पकी क्रियासे भिन्न पूर्णानन्दका नाथ हूँ—ऐसी प्रतीति नहीं करता। सच्चिदानन्द प्रभु रागसे भिन्न है। जिसप्रकार दूध और पानी भिन्न हैं उसी प्रकार भगवान आत्मासे राग बिलकुल भिन्न है। रागसे भिन्न ऐसे भगवान ज्ञायक आत्माकी ओर लक्ष, रुचिका झुकाव कभी नहीं किया; बाकी शास्त्रोंका ज्ञान तथा २८ मूलगुणके पालनकी क्रिया भी अनंतबारकी और उसमें संतोष मानकर अटक गया।

'परन्तु यह अंतरमें विकल्पोंके साथ एकताबुद्धितो पड़ी ही है उसे क्यों नहीं देखता? अंतरमें यह शांति क्यों नहीं दिखायी देती?

रागसे भिन्न निज ज्ञायकप्रभुका अनुभव प्रगट नहीं हुआ है इसलिये अंतरमें महाव्रतादिके विकल्पोंके साथ एकत्वबुद्धितो पड़ी ही है, उसे क्यों नहीं देखता? रागकी मंदता देखकर 'मैंने बहुत त्याग किया,' कुटुम्ब-परिवार, व्यापार-धंधेका भी त्याग किया, किन्तु भाई! उससे क्या हुआ? प्रभु! तूने कुछ नहीं किया। पर वस्तुका त्याग मैंने किया—इसप्रकार शुभ रागके साथ एकत्वबुद्धि वह महामिथ्यात्व है, उसे क्यों नहीं देखता? और अंतरमें यह शान्ति क्यों दिखायी नहीं देती?

क्या कहते हैं? २८ मूलगुणका पालन करता है; कषाय मंद हुआ है; परन्तु शान्तिका अनुभव क्यों नहीं होता?–अरेरे! ऐसा विचार भी कभी नहीं किया। शांत अकषायस्वभावी भगवान आत्माकी पर्यायमें अकषाय शान्तिका अनुभव आना चाहिये वह अतीन्द्रिय आनन्दमय शांति तो दिखायी नहीं देती, और कषायकी मन्दतामें द्रव्यलिंगी मुनिरूपसे भव पूरा हो गया, भवपरिभ्रमण तो ज्योंका त्यों रह गया। समझमें आता है कुछ?

दो बातें कहीं : (१) रागके साथकी एकत्वबुद्धिका ख्याल नहीं आता; (२) अंतरमें शान्ति दिखायी नहीं देती। शान्तस्वरूप भगवान आत्माकी व्यक्त पर्यायमें शान्तिका अनुभव होना चाहिये वह तो नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? कि–रागकी मिठासमें रुक जानेके कारण। अनादिकालसे जो करना था—रुचिको अंतर ज्ञायकस्वभावमें लगा देनेका कार्य—वह तो किया नहीं और जो नहीं करना था—रागके साथ एकत्वबुद्धि—वह किया। व्रतादिके शुभरागमें मोक्षमार्ग मानकर अटक जाता है, परन्तु वहां अंतरमें विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि तो पड़ी ही है उसे क्यों नहीं देखता? और यदि मोक्षमार्ग हुआ है तो अंतरमें शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती?

"पापभाव त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर संतुष्ट हो जाता है।"

अशुभ भावोंका त्याग किया, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहके भाव नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किये उसमें 'मैंने बहुत कर लिया' ऐसा मान बैठा। 'मैंने सब कुछ कर लिया' ऐसा मानकर अज्ञानी द्रव्यलिंगी साधु संतुष्ट हो गया।

"सच्चे आत्मार्थीको और सम्यग्दृष्टिको तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है'—इसप्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।"

'काम एक आत्मार्थका, अन्य नहीं मन रोग।' मात्र आत्महित ही जिसका प्रयोजन है ऐसे आत्मार्थीको तथा अंतरमें शुद्ध चिदानन्द प्रभुकी दृष्टि हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टिको 'अभी तो चारित्र, शुक्लध्यान, केवलज्ञानादि बहुत बाकी हैं' ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अविच्छिन्न रह सकता है।

'मैं केवलज्ञान एवं पूर्णानन्दका पिण्ड हूँ, परिपूर्ण शुद्धतत्त्व हूँ'—इसप्रकार जिसे अंतरमें दृष्टि, प्रतीति और अनुभूति हुई, वेदनमें अतीन्द्रिय आनन्दका अंश आया है, अकषाय शान्तिका अंशतः वेदन हुआ है ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मात्माको (तथा सच्चे आत्मार्थीको) तो ऐसा लगता है कि 'अरेरे! मुझे तो अभी बहुत करना बाकी है।' अहा! द्रव्यलिंगी अज्ञानी साधु ऐसा मानता है कि 'मैंने बहुत कर लिया', तब सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है कि 'अभी मुझे बहुत करना बाकी है।'

श्री 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'की ३१३वीं गाथामें कहा है :

जो ण कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्व अत्थेसु।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमेत्तं॥

सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्धात्माका अनुभव हुआ है, अंतरमें आनन्दका अंशतः स्वाद आया है, वह अंतरमें ऐसा मानता है कि—मैं तो पामर हूँ, तृणतुल्य हूँ, अहा! कहाँ यथाख्यातचारित्र? कहाँ केवलज्ञान? द्रव्यअपेक्षासे मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ परन्तु पर्याय में अभी पामर हूँ, मुझे तो बहुत साधना शेष है–स्वरूपमें रमणता बढ़ाकर चारित्र करना, उग्र एकाग्रता करके शुक्लध्यान करना, उसमें उग्रता लाकर केवलज्ञान करना आदि बहुत बाकी है।

प्रश्न :—सम्यग्दृष्टि तो कृतकृत्य हो गया है ना?

उत्तर :—दृष्टिकी अपेक्षासे कृतकृत्य हुआ है; परन्तु स्थिरता अपेक्षासे अभी बहुत बाकी है, पर्यायमें अभी पूर्ण कृतकृत्य नहीं हुआ है। अंतरमें उसे निरंतर अभिलाषा रहती है कि अभी मुझे अंतरमें स्वरूपरमणता करना बहुत बाकी है। मिथ्यादृष्टि २८ मूलगुण पालकर 'बहुत किया' ऐसा मान लेता है, जब कि सम्यग्दृष्टिको अंतरमें आत्माका अनुभव हुआ है, उसने भवका अंत—संसार परिमित—कर लिया है, तथापि 'मुझे अभी बहुत करना है' इस प्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपनेको तृणतुल्य लघु मानता है। अहा! ज्ञानी और अज्ञानीमें बड़ा अन्तर है।

प्रश्न :—'मुझे मोक्षकी भी इच्छा नहीं है' ऐसा सम्यग्दृष्टि कहता है ना?

उत्तर :—हाँ, 'मुझे मोक्ष भी नहीं चाहिये' ऐसा सम्यग्दृष्टि कहता है। श्रीमद् भी 'अपूर्व अवसर'में कहते हैं : 'भव मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो।' ज्ञानीकी दृष्टिका जोर सदा त्रैकालिक मुक्तस्वभाव पर वर्तता होनेसे 'भवका नाश करूँ या मोक्षको लाऊँ' ऐसी इच्छा नहीं होती। इसप्रकार दृष्टि-अपेक्षासे वह अपनेको मुक्तस्वरूप ही अनुभवता है; तथापि पर्याय-अपेक्षासे उसे 'मैं कब परमानन्दमय पूर्ण दशाको प्राप्त करूँ' ऐसी भावना रहा करती है।

प्रश्न :—इच्छा और भावनाके बीच क्या अंतर है?

उत्तर :—इच्छा विकल्प है, राग है, और भावना अंतरमें एकाग्रता है। श्रीमद् भावना भाते हैं :–

अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?
क्यारे थइशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कब महत्पुरुषने पंथ जो?....अपूर्व०

अहा! ज्ञानी भावना भाता है कि वीतरागके पंथमें—संयम मार्गमें—हम कब विचरेंगे? पूर्णानन्दके पंथमें हम कब विशेष रमणता पूर्वक रमेंगे? ऐसा अपूर्व अवसर हमें कब आयगा?

वीतराग निर्ग्रन्थमार्गमें वस्त्रसहित मुनिपना नहीं कहा है। अरे! नग्न हो जाय परन्तु २८ मूलगुणका निर्दोष पालन न करे तो उसे भी मुनिपना नहीं कहा है। द्रव्यलिंगी नग्न मुनि अंतरमें आत्मज्ञान—स्वानुभूति—न होने पर भी २८ मूलगुणोंका निर्दोष पालन करता है, प्राण जायँ तथापि अपने लिये बनाया गया आहार–जल ग्रहण नहीं करता। संवत् १९७०में (६५ वर्ष पहले) मैने अपने सम्प्रदायके गुरुसे पूछा था : महाराज! साधुके लिये बनाये गये मकानका उपयोग साधुको करना चाहिये या नहीं? यदि करे तो मन, वचन, कायाको करना, कराना, अनुमोदन करना—इन नवकोटिमेंसे कौनसी कोटि टूटेगी? अनुमोदन कोटि टूटती है।

प्रश्न :—आपको ६५ वर्ष पहलेकी बात याद है?

उत्तर :—वह तो क्या? ८७ वर्ष पहलेकी बात याद है। उस समय २ वर्षकी उम्र थी, बड़े भाईका विवाह था, घरकी अटारी पर मेरी बहिन मुझे लेकर बैठी थी।—इतना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्मरण अंतरमें हुआ था। बेनको (बहिनश्री चंपाबहिनको) तो विशेष स्मरण हुआ है, पूर्व भवोंकी अनेक बातें स्पष्ट स्मृतिमें आयी हैं।

यहाँ यह बात चल रही है कि—अज्ञानी महाव्रतादिका पालन करके "मैंने सर्वस्व कर लिया' ऐसा–मानता है, और ज्ञानी, आत्माकी प्रतीति हुई है, स्वरूपके आनन्दका स्वाद आया है, तथापि, 'मुझे अभी स्वरूपस्थिरता करना बहुत बाकी है' ऐसा मानता है।

प्रश्न :—'बहुत बाकी है' ऐसा माननेसे आकुलता नहीं होगी?

उत्तर :—नहीं, नहीं। उसमें आकुलता नहीं है, भावना है। ज्ञानीको निज स्वरूपमें परिपूर्ण रूपसे स्थिर हो जानेकी भावना आती है।

श्रीमद् राजचन्द्रजीने 'स्वात्मदशाप्रकाश'में कहा है कि—

'अवश्य कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे;
तेथी देह अेक ज धारीने, जाशुं स्वरूप स्वदेश रे।'

श्रीमद्‌का हीरे–जवाहिरातका व्यापार था, परन्तु दृष्टि अंतरमें रागसे भिन्न हो गई थी। उन्होंने कहा है कि—मेरी पर्यायमें अभी रागका भाग है, अंतरमें आनन्दके वेदनके साथ उसका भी वेदन साथ वर्तता है, और उससे एकाध भव भी करना पड़ेगा, परन्तु उस रागका नाश करके, पूर्णानन्द स्वरूप जो हमारा स्वदेश–पूर्ण परमानन्द स्वरूप मोक्ष दशा—वहाँ हम पहुँच जायँगे। सम्यग्दृष्टि साधक ऐसी भावना भाता है।

सम्यग्दर्शन हुआ इसलिये साधना पूर्ण होगई—ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी समग्रता होनेपर मोक्षमार्ग पूर्ण होता है, सम्यग्दर्शन हुआ इसलिये मोक्षमार्ग पूर्ण हो गया—ऐसा नहीं है। पूर्णताकी भावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि 'मुझे अभी स्वरूपस्थिरता करना बहुत बाकी है' ऐसा मानता है, और अज्ञानी तो हजारों रानियाँ छोड़ी, महाव्रत पालन किये उसमें सन्तुष्ट हो जाता है, परन्तु वह तो रागकी मन्दता है, वह कोई आत्माकी वस्तु नहीं है; धर्म नहीं है। ज्ञायक ब्रह्ममें विचरनेका नाम ब्रह्मचर्य है, वह तो अंतरसे प्रगट किया नहीं और शरीरसे ब्रह्मचर्य पाले तो उससे आत्माको कोई लाभ नहीं होता।

'गृहस्थाश्रममें सम्यक्त्वीने मूलको पकड़ लिया है, (दृष्टि–अपेक्षासे) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाएँ–पत्ते जरूर सूख जायँगे।'

गृह-संसारमें स्थित सम्यग्दृष्टि ज्ञानीने रागसे भिन्न ऐसे अतीन्द्रिय आनन्दके नाथका–निज ज्ञायक परमात्माका–अनुभव कर लिया है अर्थात् मूलको पकड़ लिया है। दृष्टिमें त्रैकालिक पूर्ण ज्ञायक परमात्माका आश्रय लिया है, इसलिये दृष्टि-अपेक्षासे उसने सब कर लिया है, अब जो अस्थिरतारूप विभाव है वह, मूलको पकड़ लेनेके कारण, अवश्य हट जायगा। दूजका उदय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुआ है तो १३वें दिन पूर्णिमा अवश्य होगी ही। मूल काट देनेसे जिसप्रकार इमलीके लाखों पत्ते सूखकर झर जाते हैं—नष्ट हो जाते हैं, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन रूपी कुठार द्वारा मिथ्यात्वरूपी मूलका छेदन करनेसे—काट देनेसे अस्थिरतारूपी शाखाएँ और पत्ते अल्पकालमें सूख जायँगे। अपनी निर्बलतासे अस्थिरताका दोष बना हुआ है, चारित्र मोहनीय कर्मके कारण नहीं। सम्यग्दर्शन—आत्मानुभूति—द्वारा संसार वृक्षके मिथ्यात्वरूपी मूलका छेदन किया होनेसे, अस्थिरतारूपी चारित्रका दोष अल्पकालमें—एक-दो भवमें—टलकर पूर्ण केवलज्ञानदशा प्रगट होगी।

'द्रव्यलिंगी साधुने मूलको ही नहीं पकड़ा है, उसने कुछ किया ही नहीं।'

मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनिने पंचमहाव्रत पाले, घोर परिषह सहन किये, परन्तु अपने मूल ज्ञायकस्वभावको नहीं पकड़ा रागको ही पकड़ा है इसलिये कुछ भी आत्महित किया ही नहीं। श्री रत्नकरण्ड-श्रावकाचारमें ऐसे द्रव्यलिंगी साधुकी अपेक्षा गृहवासी सम्यग्दृष्टिको उत्तम कहा है :

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

मिथ्यादर्शनरहित गृहस्थ मोक्षमार्गी है, परन्तु मिथ्यादर्शन सहित द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षमार्गी नहीं है, संसारमार्गी है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनिकी अपेक्षा निर्मोही (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थ श्रेष्ठ है। श्री प्रवचनसारमें, जिस साधुने अंतरमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग प्रगट किया है उसे 'मोक्षतत्त्व' और रागके कणको भी अपना माननेवाले द्रव्यलिंगी साधुको 'संसारतत्त्व' कहा है। अंतरमें ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे जिसे मोक्षमार्ग हुआ उसे 'मोक्षतत्त्व' कह दिया; और जिसने बाह्यसे नग्नपना ले लिया, महाव्रतोंका पालन किया, परन्तु अंतरमें शुभरागकी मिठास रह गई, उसे 'संसारतत्त्व' कहा है, क्योंकि उसने मूल ही—ज्ञायक द्रव्य ही—नहीं पकड़ा; बाह्य आचरण पाले परन्तु वास्तवमें उसने आत्माका हित किंचित् भी नहीं किया।

"बाह्यदृष्टि लोगोंको ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वीको अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनिने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है।"

बाह्यदृष्टि वाले लोगोंको भले ऐसा लगे कि—सम्यग्दृष्टि धर्मात्माको अभी बहुत करना बाकी है और द्रव्यलिंगी साधु शरीरसे यावज्जीवन ब्रह्मचर्यका पालन करता है, हजारों रानियोंका त्याग किया है, इसलिये उसने बहुत कर लिया; परन्तु ऐसा नहीं है।

'परिषह सहन करे किन्तु अंतरमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलताका वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं।'

३४.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यलिंगी मुनिको रागकी मन्दता है, परन्तु अंतरसे उसका कर्तृत्व नहीं छूटा है। रागका अंश भले ही मंद हो परन्तु उसके साथ एकताबुद्धि होनेसे आकुलताका वेदन बना रहता है, आनन्दका वेदन अंशतः भी प्रगट नहीं हुआ है।

भरत चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें थे, छह खण्डका राज्य था, परन्तु अंतरमें अपने ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति और अनुभव था, स्वरूपस्थिरता अभी बहुत बाकी थी तथापि वे मोक्षमार्गी थे। श्री ऋषभदेव भगवानका मोक्ष होने पर 'अरेरे! भरत क्षेत्रसे केवलज्ञानी तीर्थंकर सूर्य अस्त हो गया'—ऐसे भक्तिभावसे हृदय भर आनेपर भरत चक्रवर्तीको भगवानके विरहका रुदन आता है, परन्तु उस रागको तथा रुदनकी क्रियाको वे पर ज्ञेयरूप जानते हैं; अंतरसे रागकी तथा रुदनकी क्रियाके वे कर्त्ता नहीं हैं। द्रव्यलिंगी मुनि भले रोये नहीं, तथापि रागके साथ एकत्वबुद्धि होनेसे अंतरमें कर्तृत्व भावना टूटी नहीं है। खेदका वेदन होता है; परिषहादि सहन करने पर भी उसने कोई आत्महित किया ही नहीं। आया कुछ समझमें? दृष्टि और दृष्टिके विषयकी बलिहारी है प्रभु! परन्तु सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या?—उसका लोगोंने मूल्यांकन नहीं किया है।

दृष्टिके विषयभूत पूर्णानन्द प्रभुकी जिसे प्रतीति हुई उसे करना बहुत बाकी है, और जिसे उसकी अंतरप्रतीति नहीं है ऐसे द्रव्यलिंगीने बहुत कर लिया है—ऐसा बाह्यदृष्टि लोगोंको लगता है; परन्तु भाई! रागके साथ एकता नहीं तोड़ी इसलिये द्रव्यलिंगीने कुछ भी नहीं किया है, उसे तो करना सबकुछ बाकी है।

गृहस्थाश्रममें स्थित अविरत सम्यग्दृष्टिको अंतर्मुखतासहित, भगवान ज्ञायक आत्माका स्वीकार—विश्वास, ज्ञान और अनुभव—हुआ है, पर्यायमें शुद्धि और शान्तिका स्वाद आया है; अज्ञानी द्रव्यलिंगीको अंतर्मुखदृष्टि नहीं होनेसे, किंचित् भी अतीन्द्रिय शान्तिका स्वाद नहीं आता। भाई! द्रव्यलिंगी साधुको अंतरसे कर्तृत्वबुद्धि नहीं छूटी है, अंतरमें शान्तिका अनुभव नहीं हुआ है, वह तो तू देखता नहीं है और 'उसने बहुत कर लिया, बहुत कर लिया' ऐसा तूने किस प्रकार मान लिया? उसने आत्माका कुछ किया ही नहीं है, जिनसे भवभ्रमण बना रहे ऐसे ही भाव किये हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–७८

ता. २८-८-७८

वचनामृत–२००

शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्धनयके विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्माकी अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्डके भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व'–अनंत गुणोंका अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोकका स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्गसे यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्गसे मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भ हुआ; इसी मार्गसे देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखनेसे पूरे मालका पता चल जाता है। दूजके चन्द्रकी कला द्वारा पूरे चन्द्रका ख्याल आ जाता है। गुड़की एक डलीमें पूरी गुड़की पारीका पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्तमें) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिये सम्यक्त्वमें चौदह ब्रह्माण्डके भाव आ गये। इसी मार्गसे केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिये शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्माकी अनुभूति वह सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है।।२००।।

'शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्धनयके विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्माकी अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है।'

यह विषय श्री समयसारकी १४-१५वीं गाथामें आया है। वहाँ, 'शुद्धनय कहो,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मानुभूति कहो अथवा आत्मा कहो, एक ही हैं, भिन्न नहीं है' ऐसा कहा है। आत्माको जो अबद्धस्पृष्ट–बंधरहित तथा परके स्पर्श रहित, अनन्य मनुष्य—नारक आदि अन्यत्व रहित, नियत—न्यूनाधिकता रहित परिपूर्ण, अविशेष—ज्ञानादि गुणभेद रहित और असंयुक्त—विभावके संयोग रहित देखता है, अनुभवता है उसे शुद्धनय कहा जाता है। शुद्धनयके विषयभूत ऐसे ज्ञायक आत्माकी अनुभूति वह जिनशासनकी अनुभूति है। १४वीं गाथामें, अबद्धस्पृष्टादि भावस्वरूप आत्मानुभूति कहकर, सम्यग्दर्शनकी प्रधानतासे कहा है और १५वीं गाथामें, अबद्धस्पृष्टादि भावस्वरूप आत्मानुभूतिको ज्ञानानुभूति—सकल जिनशासनकी अनुभूति—कहकर ज्ञान प्रधानतासे कहा है। बात कुछ सूक्ष्म है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दका कन्द है। कब? सदा। संयोग, निमित्त, राग और वर्तमान पर्यायका लक्ष छोड़कर उस ओर उन्मुखता करे तो वह दृष्टिगोचर हो, अनुभवगम्य हो। निश्चयसे आत्मा वर्तमानमें ही स्वभावसे मुक्तस्वरूप, निर्वाणस्वरूप ही है। अबद्धस्पष्ट अर्थात् मुक्तस्वरूप आत्माका अंतरमें अनुभव होना वह सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है। जैन शासन अर्थात् बारह अंगमय जिनवाणीमें जो कहना था वह सब अनुभवमें आ जाता है।

'चौदह ब्रह्माण्डके भाव उसमें आ गये।'

जिनशासनकी अनुभूति अर्थात् शुद्ध ज्ञायककी अनुभूति। अनुभूति होनेपर चौदह ब्रह्माण्डके भाव उसके जाननेमें आ गये। चौदह ब्रह्माण्डके भावोंसे भरी ऐसी जिनवाणीकी अनुभूति वह भावश्रुतज्ञानकी पर्याय है। भगवान आत्मा अनुभूतिकी पर्यायमें नहीं आ जाता, एक समयकी पर्यायरूप नहीं हो जाता, परन्तु वस्तुका जैसा स्वरूप है वैसा ज्ञानके जाननेमें आ जाता है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको चौदह ब्रह्माण्डके भावोंका ज्ञातृत्व अनुभूतिमें आ गया।

'मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया।'

आत्मानुभूति कहो या ज्ञानानुभूति कहो—दोनों एक ही हैं। उसमें चौदह ब्रह्माण्डके भाव आ जानेके कारण साधक जीवको मोक्षमार्गका भी ख्याल आ गया, केवलज्ञान भी ख्यालमें आगया और मोक्ष भी ख्यालमें आ गया; उसने सब जान लिया।

''सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनंत गुणोंका अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोकका स्वरूप ज्ञात हो गया।''

'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'–यह श्रीमद्का कथन है। पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिठ्ठीमें ऐसा आता है कि—'इसी प्रकार चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माको ज्ञानादि गुण एकदेश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट हुए हैं उनकी तथा तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्माको ज्ञानादि गुण सर्वदेशरूप प्रगट हुए हैं उनकी एक ही जाति है।' निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्दगुणकी आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर आत्माके सर्व गुणोंका यथासम्भव आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है। आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्माके ही हैं, इसलिये एक गुणकी पर्यायका वेदन हो उसके साथ–साथ सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं। भले सर्वगुणोंके नाम न आते हों, और सर्व गुणोंकी संज्ञा भाषामें हो भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है। अहाहा! सम्यग्दर्शन—आत्मानुभूति होनेपर, आत्मामें अनंतानंत गुण हैं उन प्रत्येकका एक अंश व्यक्तरूपसे—पर्यायमें प्रगटरूपसे—वेदनमें आता है और समस्त लोकोलोकका स्वरूप, प्रत्येक वस्तुके द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप ज्ञात हो जाता है।

'जिस मार्गसे यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्गसे मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया।'

पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभुका अवलम्बन लेनेसे, उसका आश्रय करनेसे, उसके सन्मुख होनेसे अंतरमें सम्यग्दर्शन हुआ, अब उसी मार्गसे मुनिपना और केवलज्ञान प्रगट होगा। मुनिपना किसी व्रतादिकी क्रियासे अथवा शुभरागसे नहीं होगा। आज पत्रमें एक बात आयी है कि—द्रव्यलिंगी साधुको दर्शनमोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियोंका क्षय होता है।

प्रश्न :—द्रव्यलिंगीको सात प्रकृतियोंका क्षय होता है?

उत्तर :—हाँ। द्रव्यलिंगी साधुके तीन प्रकार हैं। (१) मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी—भीतर परिणाममें मिथ्यात्व हो और बाह्यमें मंदकषायके बलसे मुनिपनेका आचरण निर्दोष हो, शुक्ललेश्या हो और उससे, मरकर नववें ग्रैवेयक तक जाता है; (२) अविरत सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी—पहले अज्ञानदशामें मंदकषायके जोरसे मुनिपना ले लिया हो और फिर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हो परन्तु अंतरसे तीन कषाय-चौकड़ीके अभावस्वरूप संयमके योग्य पुरुषार्थ चलता न हो उसे भी द्रव्यलिंगी कहा जाता है; ऐसे सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगीको केवली अथवा श्रुतकेवलीके पादमूलमें दर्शनमोहनीयकी सात प्रकृतियोंका क्षय हो सकता है, (३) देशविरत सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी—ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे अंतरमें दो कषाय-चौकड़ीके अभावस्वरूप शुद्धपरिणति हुई है परन्तु बाह्यमें मुनिपनेकी क्रिया निर्दोष पालन करने पर भी अंतरमें मुनिदशाके योग्य शुद्धिका पुरुषार्थ नहीं चलता, उसे भी द्रव्यलिंगी कहा जाता है। उसे भी सात प्रकृतियोंका क्षय हो सकता है।

इसका आधार लेकर लोग कहते हैं कि—देखो, द्रव्यलिंगी साधु भी पूज्य है। परन्तु भाई! कौनसा द्रव्यलिंगी? जिनके अंतरमें रागसे भिन्न ज्ञायक आत्माकी अनुभूति हुई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, अंतरमें चौथे-पाँचवें गुणस्थानकी शुद्धि वर्तती है और बाह्यमें मंदकषाय बढ़ जानेसे मुनिदशाके योग्य आचरण करते हैं उन्हें भी द्रव्यलिंगी साधु कहा जाता है। परन्तु जिसको अंतरमें आत्माकी प्रतीति नहीं है और बाह्यमें नग्नदशा धारण कर ली है, २८ मूलगुणके पालनका ठिकाना नहीं है, मुनिके लिये बनाये गये आहार-जल लेता है, चौके लगवाता है वह तो शुद्ध द्रव्यलिंगी भी नहीं है, वह पूज्य कैसे हो सकता है? पं. टोडरमलजी 'मोक्षमार्ग प्रकाशक'में कहते हैं : '....द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोड़कर तपश्चरणादिक करता है तथापि वह असंयमी है, सिद्धान्तमें असंयत तथा देशसंयत सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा भी उसे हीन कहा है, क्योंकि उसके तो चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान है जबकि इसके तो पहला ही गुणस्थान है।'

प्रश्न :—भावलिंगीकी अपेक्षा उसे हीन कहो, परन्तु गृहसंसारी सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा उसे कैसे हीन कहा जायगा?

उत्तर :—अविरत सम्यग्दृष्टिको कषायोंकी प्रवृत्ति तो है परन्तु श्रद्धानमें उसे कोई भी कषाय करनेका अभिप्राय नहीं है, जबकि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी साधुको शुभराग करनेका अभिप्राय होता है, श्रद्धानमें शुभ कषायको भला भी जानता है इसलिये श्रद्धान-अपेक्षासे असंयत सम्यग्दृष्टिसे भी उसे अधिक कषाय है, इसलिये वह उससे हीन है।

'प्रश्न :—सम्यग्दृष्टि तो द्रव्यलिंगीको अपनेसे हीनगुणसहित मानता है, तो वह उसकी भक्ति क्यों करता है?

उत्तर :—द्रव्यलिंगीको व्यवहार धर्मका साधन बहुत है तथा भक्ति करना वह भी व्यवहार ही है। जैसे कोई धनवान न हो परन्तु कुलमें बड़ा हो तो उसे कुल-अपेक्षासे बड़ा जानकर उसका आदर-सत्कार किया जाता है, उसीप्रकार स्वयं सम्यक्त्वगुणसहित है, परन्तु यदि कोई व्यवहार धर्ममें प्रधान हो तो व्यवहार धर्मकी अपेक्षासे उसे गुणाधिक मानकर उसकी भक्ति करता है—ऐसा समझना। भले अंतरमें मिथ्यात्व हो, परन्तु यदि बाह्यमें २८ मूलगुण शुद्ध हों, प्ररूपणा आगमानुसार शुद्ध हो, तो वह व्यवहारसे पूजनीय कहलाता है। परन्तु जिसका व्यवहार भी शुद्ध नहीं है, २८ मूलगुणका पालन भी बराबर नहीं है तो वह सच्चा द्रव्यलिंगी भी नहीं है। वह पूजनीय कैसा?

यहाँ कहते हैं कि—शुद्ध ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे सम्यक्त्व हुआ, और अब उसीके उग्र आश्रयसे सच्चा मुनिपना प्रगट होगा; कोई व्यवहारके क्रियाकाण्डमें अथवा शुभभावमें बढ़ जाय तो मुनिपना आयगा ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी मुनिको त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे अंतरमें शुद्धि चतुर्थ गुणस्थान जितनी है और बाह्यमें क्रिया साधुपनेकी है; वहाँ वे ऐसा नहीं मानते कि इन महाव्रतादिके शुभभावोंसे अथवा बाह्यक्रियासे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैं आगे बढ़ूँगा। जिस ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे सम्यक्त्व हुआ उसीके विशेष आश्रयसे शुद्धिकी वृद्धि अर्थात् मुनिदशा प्रगट होती है।

अपने परिणामकी धाराका अपने अंतरमें ख्याल आ जाता है, और दूसरा ज्ञानी जीव भी उसे जान सकता है। 'धवला' टीकामें मतिज्ञानके भेदकी—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी—व्याख्या आयी है। वहाँ ऐसा कहा है : ईहाज्ञानमें 'सामने वाला जीव भव्य है या अभव्य' ऐसी जिज्ञासाके निर्णयरूप अवायज्ञानमें 'वह भव्य ही है, क्योंकि उसको सम्यक् रत्नत्रयका सद्भाव है' इसप्रकार एक जीव दूसरे जीवकी भव्यताका निर्णय बराबर कर सकता है। भाई! ज्ञानका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, वह क्या नहीं जानेगा? बाह्यमें द्रव्यलिंग सच्चा हो और अंतरमें मिथ्यात्वकी भूल हो तो ज्ञानीके ख्यालमें आ भी जाती है; तथापि दूसरेसे नहीं कहते; क्योंकि यदि उसकी प्ररूपणा शुद्ध चलती हो, भले अंतरमें अनुभव न हो परन्तु आचरण आगमानुसार निर्दोष हो तो उसे भी व्यवहारसे पूजनीय कहा जाता है। परन्तु दया, दान, व्रत, तप करो, वह करते-करते कल्याण हो जायगा—ऐसी जिसकी प्ररूपणा तथा श्रद्धा ही प्रगट रूपसे मिथ्या है उसे दर्शनमोहनीयका क्षयोपशम नहीं हो सकता। अहा! बड़ी बात है भाई!

जिसका आत्मा अंतरमें जागृत हुआ उसे भले ही कदाचित् शास्त्रोंका विशेष ज्ञान न हो परन्तु अंतरमें यदि स्वभावका ज्ञान हुआ है तो वह सम्यक्त्वी है। सम्यक्त्व चारों गतिमें होता है। जंगलमें रहने वाले किसी वाघ-सिंहको भी सम्यक्त्व होता है, किसीको पाँचवाँ गुणस्थान होता है। हजार योजन (चार हजार कोस) लम्बे विशालकाय असंख्य मच्छ अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रमें सम्यक्त्वी हैं, असंख्य तो पंचम गुणस्थानवर्ती हैं। सबको अंतरमें ज्ञायक-स्वभावका आश्रय लेनेसे सम्यग्दर्शन हुआ है, परका अथवा शुभरागका आश्रय करनेसे नहीं।

पूर्णानन्द प्रभु! तेरा स्वदेश भीतर विद्यमान है। भीतर 'है' वहाँ जाना है, उसमें कठिनाई कैसी? बेनके एक बोलमें आता है कि—किसीकी संगतकी हो तो उसे छोड़ना कठिन लगता है, परन्तु वास्तवमें संगरहित स्वतंत्र रहना वह तो सरल है, उसीप्रकार जीवको अनादिसे रागकी संगत है उसे छोड़ना कठिन लगता है; परन्तु संग तो पर है, वह छूट सकता है। अहाहा! उसने छूटनेका कभी प्रयत्न ही नहीं किया है।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान विदेहक्षेत्रमें विराजते हैं। अरे! यहाँ भरतक्षेत्रमें, जहाँ साक्षात् तीर्थंकरका विरह है, हमारा जन्म हो गया। अरेरे! परमात्माके पास क्यों जन्म नहीं हुआ? साक्षात् परमात्मा श्री सीमंधर भगवान केवलज्ञानरूपसे विराजमान हैं। उनको भावमोक्ष तो हो गया है, आयु पूर्ण होगी तब द्रव्यमोक्ष होगा। अहा! भगवानका विरह हुआ, परन्तु अपनी चैतन्यवस्तु अंतरमें विद्यमान है उसका तो किसी दिन विरह है ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं। पर्यायके समीप विद्यमान प्रभु परमात्मा उससे तो कभी दूर नहीं होता।

अहा! बेनके वचन तो देखो!—कि सम्यक्त्व जिस मार्गसे हुआ उसी मार्गसे मुनिपना होगा। पूर्णानन्दके नाथका अवलम्बन लेनेसे सम्यक्त्व हुआ और उसके उग्र अवलंबनसे मुनिदशा होगी। व्रतादि करनेसे मुनिदशा होगी—ऐसा नहीं है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! समस्त आत्मा परमात्मा हैं ना? न हों तो पर्यायमें प्रगट परमात्मपना आयगा कहाँसे? केवलज्ञान स्वरूप अरिहंतपद यदि स्वभावमें न हो तो पर्यायमें अरिहंतपद कहाँसे आयगा? सिद्धस्वरूप आत्मामें न हो तो पर्यायमें सिद्धपद कहाँसे आयगा? इसप्रकार भाव-आचार्य, भाव-उपाध्याय, भाव-साधु—ऐसा स्वभाव भीतर आत्मामें है। इसलिये वह साधुकी वीतरागी पर्याय अंतरमेंसे आती है, बाहरसे नहीं। समझमें आता है कुछ?

द्रव्यस्वभावके आश्रयसे सम्यक्त्व, चारित्रादि पर्यायें प्रगट होती हैं, पर्यायके आश्रयसे पर्याय प्रगट नहीं होती। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावके आश्रयसे सम्यक्त्व हुआ, तो सम्यक्त्व पर्यायके आश्रयसे चारित्र या मुनिपना प्रगट नहीं होता; और जो केवलज्ञान प्रगट होगा वह चारित्र पर्यायके आश्रयसे प्रगट होगा—ऐसा सम्यक्त्वी नहीं मानते। द्रव्यस्वभावके उग्र आश्रयसे मुनिपना, और उसके पूर्ण आश्रयसे केवलज्ञान प्रगट होगा। अहाहा! मोक्षमार्गसे मोक्ष होगा–यह बात भी यहाँ छोड़ दी है।

यहाँ कहते हैं कि—जो मोक्षमार्गकी पर्यायका व्यय होता है और केवलज्ञानकी पर्यायका उत्पाद होता है, उस व्ययमें से उत्पाद नहीं होता, परन्तु त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकके पूर्ण आश्रयसे केवलज्ञानका उत्पाद होता है। अहा! देखो तो प्रभुका मार्ग! 'प्रभुका मारग है वीरोंका, नहिं कायरका काम!' वीर प्रभुके मार्ग पर चलना वह वीरोंका काम है, रागके प्रेममें पड़े नपुंसक जैसों का वह काम नहीं है। अहा! ऐसी बात है। लोगोंको सुननेकी कितनी जिज्ञासा है! कितने लोग बाहरसे आये हैं! पोने आठसौ पुरुष तो शिबिरमें पढ़ने आये हैं, बहिनें-बेटियाँ सुनने आयी हों वे अलग, और बेनकी जन्म-जयन्तीके समय तो तीन हजार आदमी थे! परमागम मन्दिरमें समाते नहीं थे। लोगोंको यह सत्य बात सुननेका कितना प्रेम है! यह कोई कल्पना नहीं है, परन्तु भगवानके घरकी बात है। देखो, क्या कहते हैं?—ज्ञायककी प्रतीति एवं अनुभूति हुई वहाँ ज्ञान ऐसा हो गया कि जिस द्रव्यस्वभाव के आश्रयसे सम्यक्त्व हुआ, उसी ज्ञायकस्वभावके उग्र अवलम्बनसे चारित्र-मुनिपना होगा और उसीके पूर्ण आश्रयसे शुक्लध्यान तथा केवलज्ञान प्राप्त होगा। वहाँ ऐसा नहीं है कि अंतरमें चौथा गुणस्थान है और बाह्यमें महाव्रतादिकी क्रिया करते-करते मुनिदशा आ जायगी।

'पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भ हुआ, इसी मार्गसे देश विरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान–सब प्रगट होगा।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह तो अंतरमें निवृत्ति लेनेको कहते हैं। अरे! ऐसा तत्त्व कब सुननेको मिलेगा? एक गिलहरी स्वाध्याय मन्दिरमें दिनभर चक्कर लगाती रहती है; उसे देखकर कितने विचार आते हैं? अरेरे! यह कौन जीव होगा? कहाँसे आया होगा? इसे कब मनुष्यपना मिलेगा? यह तत्त्व सुननेका और विचारनेका योग उसे कब प्राप्त होगा? अरेरे! जिन्हें योग प्राप्त हुआ है वे भी परवाह नहीं करते।

यहाँ कहते हैं कि—त्रैकालिक ज्ञायकके आश्रयसे ज्ञान हुआ, पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भ हुआ, अब उसी मार्गसे साधक दशा बढ़ेगी, मुनिपना, शुक्लध्यान और केवलज्ञान—अनुक्रमसे सब प्रगट होगा; बाह्य क्रियाकाण्ड, तपस्या अथवा शुभराग करनेसे आत्मसाधना नहीं होगी।

प्रश्न :—मुनि शुद्धोपयोगके लिये उपवासादि करते हैं—ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशकमें आता है ना?

उत्तर :—आत्मानुभवी मुनिको उपवासके कालमें त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकके उग्र आलम्बनसे ही शुद्धोपयोग होता है। स्वरूपमें विशेष निवास होना वही उनका अंतरंग उपवास है; बाह्यमें उपवासादिकी क्रिया हो तथापि उससे शुद्धोपयोग अथवा शुद्धिकी वृद्धि नहीं होती। अहा! ऐसा है प्रभुका मार्ग! अरे! यह वस्तु वीतरागके सिवा और कहाँ है? यह कोई अलौकिक बातें हैं भाई!

स्वभाव कोई अलौकिक है, मात्र बहिर्लक्षी तर्कसे समझमें आ सके ऐसा नहीं है। मात्र तर्कसे सब समझमें आ जाय तो केवलज्ञानके लिये क्या बाकी रहेगा? परोक्ष भी यथार्थ प्रमाण है। लोग कहते हैं कि—आत्मा दिखायी नहीं देता तो कैसे मानें? भाई! परोक्ष भी प्रमाणज्ञान है। भावश्रुतज्ञानरूप परोक्ष प्रमाण द्वारा त्रैकालिक आत्माका आश्रय करके आत्मानुभूति प्रगट हुई; अब उसी ध्रुव आत्माके विशेष आश्रय द्वारा मुनिपना, पूर्ण चारित्रपना, केवलज्ञान और मोक्षदशा—अनुक्रमसे सब प्रगट होगा।

'नमूना देखनेसे पूरे मालका पता चल जाता है।'

जैसे नमूनेकी रुई देखनेसे पूरी गाँठकी रुईका ख्याल आ जाता है; जुआर, बाजरा, गेहूँ या चाँवलका चुटकी भर नमूना देखनेसे पूरे गोदामका ख्याल आ जाता है, उसीप्रकार ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे स्वानुभूति होने पर आत्मामें जो अतीन्द्रिय आनन्दके अंशका अनुभव हुआ उस नमूनेसे 'सम्पूर्ण आत्मा पूर्णानन्दमय है' ऐसा बराबर ख्यालमें आ जाता है। इसप्रकार सम्पूर्ण आत्मा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण सुख, पूर्ण वीर्य आदि अनंत गुणमय है—ऐसा ख्यालमें आ जाता है।

'दूजके चन्द्रकी कला द्वारा पूरे चन्द्रका ख्याल आ जाता है। गुड़की एक डलीमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पूरे गुड़की पारीका पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्तमें) तो भिन्न–भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है।'

चन्द्रकी दूज देखने से पूर्ण चन्द्रका ख्याल आता है; तेरहवें दिन अर्थात् पूर्णिमाको चन्द्र परिपूर्ण विकसित हो जायगा—ऐसा बराबर ख्यालमें आता है। गुड़की डली चखने पर पूरी पारीकी मिठासका ख्याल आ जाता है। इसीप्रकार यहाँ आत्मामें भगवान चैतन्यदेवका सम्यग्दर्शन तथा अनुभव होने पर उस अनुभवके नमूनेमें पूर्ण आत्माका—पूर्णानन्द के नाथका—ख्याल आ जाता है। दृष्टान्तमें तो भिन्न-भिन्न परमाणु हैं, और सिद्धान्तमें तो आत्मा एक अखण्ड वस्तु है।

'इसलिये सम्यक्त्वमें चौदह ब्रह्माण्डके भाव आ गये। इसी मार्गसे केवलज्ञान होगा। जिसप्रकार अंश प्रगट हुआ उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिये शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्माकी अनुभूति वह सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है।'

आत्मद्रव्य स्वयं अखण्ड और परिपूर्ण है—ऐसा अनुभूति के नमूनेमें मालका बराबर ख्याल आ गया। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होनेपर उसमें चौदह ब्रह्माण्डके भावोंका विश्वकी वस्तुव्यवस्थाका—बराबर ख्याल आ जाता है। अहा! यह तो मैं द्रव्यसे परमात्मा! उसकी पर्यायमें—स्वानुभूतिमें—पूर्ण परमात्मपनेका नमूना आ गया। चौदह ब्रह्माण्डका एक-एक द्रव्य अपने-अपने स्वभावसे परिपूर्ण है ऐसा ख्यालमें आ गया। उसका नाम सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति तथा मोक्षमार्ग का प्रारम्भ है। अब इसी मार्ग से केवलज्ञान प्रगट होगा। जिस ज्ञायक द्रव्यस्वभावके आश्रयसे अंश प्रगट हुआ उसीके आश्रयसे पूर्णता प्रगट होगी। इसलिये शुद्धनयकी अनुभूति कहो, शुद्ध आत्माकी—ज्ञायककी अनुभूति कहो या सम्पूर्ण जिन शासनकी अनुभूति कहो—सब एक ही है।

ओहो! सादी भाषा, मंत्र हैं मंत्र। यह तो लाखों शास्त्रों का निचोड़ है। लाखों क्या, करोड़ो, अनंत शास्त्रोंका आशय स्वावलम्बन कराना है। लोग पढ़ेगे तो अहाहा!.... बाहुबलिमें भट्टारकने देखा तो कहने लगे कि–'मुझे दे दो; आहा! ऐसी पुस्तक!

-पूज्य गुरुदेव

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–७९

ता. २९-८-७८

वचनामृत–२०१

अपरिणामी निज आत्माका आश्रय लेनेको कहा जाता है वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्रमें निश्चयनयके विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।

प्रमाण-अपेक्षासे आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते। परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्यायस्वभावके कारण होता ही रहता है, सिद्धमें भी परिणति तो होती है।

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायकपर—दृष्टि ही सम्यक्दृष्टि है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञानकी पर्याय', 'यह मेरी द्रव्यकी पर्याय' इसप्रकार पर्यायमें किसलिये रुकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—तलपर—दृष्टि स्थापि कर न!

परिणाम तो होते ही रहेगें। परन्तु यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है? पर्यायमें—पलटते अंशमें—द्रव्यका परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है? उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्यका अवलंबन कर न!

ज्ञानानन्दसागरकी तरंगोंको न देखकर उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर। तरंगे तो उछलती ही रहेंगी; तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है?

अनंत गुणोंके भेद परसे भी दृष्टि हटा ले। अनंत गुणमय एक नित्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निजतत्त्व—अपरिणामी अभेद एक दल—उसमें दृष्टि दे। पूर्ण नित्य अभेदका जोर ला; तू ज्ञाता द्रष्टा हो जायगा।।२०१।।

'अपरिणामी निज आत्माका आश्रय लेनेको कहा जाता है वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक;'

यह बोल कुछ सूक्ष्म है। क्या कहते हैं? कि—जो त्रैकालिक ज्ञायक परम पारिणामिक भाव है उसे यहाँ 'अपरिणामी निज आत्मा' कहा है, क्योंकि वह परिणामरूप—पर्यायरूप नहीं होता। निज आत्मा अर्थात् अपने आत्माकी यहाँ बात है, अन्यके आत्माका यहाँ काम नहीं है। सम्यग्दर्शनके लिये जिसका आश्रय लेने को कहा जाता है वह निज ज्ञायक आत्मा अपरिणामी अर्थात् ध्रुवस्वभाव है; वर्तमान पर्याय उसका आश्रय लेती है। यह मुद्दे की बात है। ध्रुव ज्ञायकतत्त्व परिणमनसे—पर्यायसे भिन्न है उस अपेक्षासे 'अपरिणामी' शब्दका प्रयोग किया है, बाकी है तो पारिणामिक स्वभाव। 'परिणामे भवः पारिणामिकः।'—ऐसा पंचास्तिकायसंग्रह की टीकामें कहा है। एक समयवर्ती पर्याय रहित जो त्रैकालिक ज्ञायक सहजस्वरूप वह अपरिणामी ध्रुव निज आत्मा है; उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि धर्मकी पर्यायें प्रगटती हैं।

''शास्त्रमें निश्चयनयके विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।''

आत्माके त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेनेवाली जो श्रुतज्ञानकी पर्याय उसे निश्चयनय कहते हैं। निश्चयनय स्वयं श्रुतज्ञानकी पर्याय है, परन्तु उसका विषय त्रैकालिक अखण्ड ज्ञायक आत्मा है। निश्चयनयका विषय—परमार्थनयका विषय जो अपरिणामी ध्रुवभाव उसे यहाँ अखण्ड ज्ञायक कहा है। वह अपरिणामी निज आत्मा ध्रुव ज्ञायक है।

यहाँ प्रथम निश्चयनयकी अपेक्षा का कथन लिया है। जो नय त्रैकालिक स्वद्रव्यसामान्यका आश्रय ले उसे निश्चयनय कहा है। उसे यहाँ अपरिणामी ज्ञायकभाव कहा गया है।

'प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है; अपरिणामी तथा परिणामी है।'

भगवान ज्ञायक आत्मा सर्वथा अपरिणामी नहीं है, प्रमाणदृष्टिसे देखने पर वह द्रव्य-अपेक्षासे अपरिणामी भी है और पर्याय-अपेक्षासे परिणामी भी है। ध्रुव स्वभावकी अपेक्षासे आत्मा पलटता नहीं है और वर्तमान पर्यायकी अपेक्षा से पलटता है। प्रमाणदृष्टिसे देखने पर आत्मा उन दोनों—स्वरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देनेसे परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते।'

नित्यानन्द ज्ञायक स्वभावरूप अपरिणामी तत्त्वपर दृष्टि देनेसे, अंतर्मुख ध्रुवतत्त्व पर दृष्टि स्थिर होनेसे, परिणाम गौण हो जाता है। ज्ञायक वस्तु अपने अपरिणामी ध्रुव स्वभावका आश्रय लेती है अपनी पर्याय द्वारा, परन्तु वह पर्यायका आश्रय नहीं करती। बड़ी बात है भाई! समझमें आती है? यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी कला है। अपरिणामी ध्रुवस्वभावपर दृष्टि देनेसे, वर्तमान परिणाम पर लक्ष—जोर नहीं रहता; इसलिये परिणाम गौण हो जाता है—ऐसा कहा जाता है; ऐसे कहनेसे परिणामका अभाव नहीं हो जाता। समयसारकी ११वीं गाथामें 'व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित...' कहा है। वहाँ व्यवहारनय को—पर्यायको—गौण करके अभूतार्थ, असत्यार्थ कहा है; अभाव करके 'पर्याय असत्य है' ऐसा नहीं कहा। भगवान ज्ञायक आत्माको मुख्य गिनकर निश्चय कहा है, और पर्यायके भेदभंग को गौण गिनकर व्यवहार कहा है। पर्यायभेद सो व्यवहार और अभेद द्रव्य सो निश्चय। निश्चयनय व्यवहारका प्रतिषेधक होनेसे उसका निषेध करता है। इसलिये व्यवहारको गौण गिनकर 'नहीं है' ऐसा कहा है।

'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।' शुद्धनय भूतार्थ है—ऐसा वहाँ ११वीं गाथामें कहा है। नय श्रुतज्ञान का अंश है। श्रुतज्ञानके भेदरूप शुद्धनय भी वस्तुके एक अंशको विषय करता है। कौनसा अंश? त्रैकालिक ध्रुव अंश। नयका विषय अंश है, प्रमाणका विषय पूर्ण पदार्थ है। निश्चयनयका विषय त्रैकालिक एकरूप द्रव्य है, परन्तु वह अंश है; पर्याय उसमें नहीं आती। प्रमाणमें द्रव्य तथा पर्याय दोनों एकसाथ ख्यालमें आते हैं। बात सूक्ष्म है, परन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा है। यह बात समझमें आये ऐसी है। यह बात किससे कही जा रही है? आत्मा जो कि ज्ञानानन्दस्वरूप है उसे समझाया जा रहा है न! यह बात क्या रागसे कहते हैं? शरीरसे कहते हैं? जो ज्ञाता है उससे कही जा रही है।

भगवान! तू ज्ञाता है न? ज्ञाताका जो त्रैकालिक ध्रुव अंश है उसे मुख्य गिनकर भूतार्थ, सत्यार्थ कहा है। आत्मवस्तुमें एक समयवर्ती पर्याय है अवश्य, परन्तु वह जोर देने योग्य नहीं होनेसे उसे गौण गिनकर 'नहीं है' ऐसा कहा गया है। 'पर्याय सर्वथा नहीं है' ऐसा यदि माने तो दृष्टि मिथ्या हो जाती है। समझमें आता है कुछ? चिदानंदकंद आत्मवस्तुके अपरिणामी ध्रुव स्वरूप पर दृष्टि देनेसे उसके परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते। आश्रय लेनेवाली पर्याय भी है तो अवश्य, परन्तु वह आश्रय लेती है वस्तुके त्रैकालिक ध्रुव अपरिणामी स्वरूप का। अहा! ऐसी बात है भाई!

'परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्याय स्वभावके कारण होता ही रहता है, सिद्धमें भी परिणति तो होती है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुमें क्षण-क्षण नवीन अवस्थाका उत्पाद और पूर्वकी अवस्थाका विनाश होता ही रहता है वह कहाँ चला जाय? उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यकी एकता स्वरूप वृत्ति वह परिणामका लक्षण है। अपनी मूल जाति को छोड़े बिना पर्यायमें पलटते रहना वह तो वस्तुका परिणमन स्वभाव है; स्वभाव कहाँ चला जाय? आत्मा भी वस्तु होने से, पर्याय स्वभावके कारण, द्रव्यस्वभावसे नित्य स्थिर रहकर पर्यायें पलटता ही रहता है। निज आत्मवस्तु द्रव्य तथा पर्याय स्वरूप होने पर भी दृष्टि तो मात्र उसके त्रैकालिक ध्रुव स्वरूपका ही स्वीकार करती है। परिणाम होनेपर भी, कल्याणके लिये आश्रय करने योग्य तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभाव ही है। दृष्टिके विषयकी प्रमुखतामें वर्तमान शुभाशुभ परिणाम गौण हो जाते हैं, परिणमन कहीं चला नहीं जाता। सिद्धमें भी परिपूर्ण शुद्ध परिणमन तो निरंतर होता ही रहता है। सिद्धपना स्वयं भी आत्माकी पूर्ण शुद्ध पर्याय है।

द्रव्य और गुण त्रैकालिक हैं, और पर्याय प्रतिसमय पलटती दशा है। मोक्ष, मोक्षमार्ग, संसार—सब पर्याय हैं। केवलज्ञान भी ज्ञानगुणकी पूर्ण पर्याय है, गुण नहीं है। वस्तुमें कोई न कोई पर्याय सदा वर्तती ही होती है; पर्याय कहीं चली नहीं जाती। पर्याय है तो अवश्य, परन्तु रुचिमें पर्यायका आलम्बन छोड़कर एक त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूति प्रगट होती है। इसी कारण त्रैकालिक ध्रुवस्वभावको मुख्य करके भूतार्थ एवं सत्यार्थ कहा है और सर्व प्रकारकी पर्यायों को गौण करके उन्हें अभूतार्थ कहा है। अहा! वस्तु स्वरूप ऐसा है।

"परन्तु अपरिणामी तत्त्वपर—ज्ञायक पर—दृष्टि ही सम्यक्दृष्टि है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञानकी पर्याय', 'यह मेरी द्रव्यकी पर्याय' इसप्रकार पर्यायमें किसलिये रुकता है? निष्क्रिय तत्त्वपर—तलपर—दृष्टि स्थापित कर न!"

शुभाशुभ विभाव तथा अपूर्ण पर्यायको गौण करके त्रैकालिक अभेद ज्ञायकस्वभाव पर जो दृष्टि होना, अपरिणामी अभेद ज्ञायक स्वभावका दृष्टिमें आश्रय होना, वही सम्यग्दर्शन है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञानकी पर्याय', 'यह मेरी श्रद्धाकी पर्याय', 'यह मेरी चारित्र की पर्याय'—इसप्रकार पर्याय पर इतना जोर किसलिये देता है? यह मेरी गुण की पर्याय है, यह मेरी द्रव्यकी पर्याय है '–इसप्रकार पर्याय पर तेरी रुचि का जोर क्यों जाता है? यहाँ तो कहते हैं कि जितने व्यवहार और विकल्प हैं वे सब हैं अवश्य, परन्तु उनपर लक्ष करनेसे, उनपर रुचिका जोर देनेसे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

सम्यग्दर्शनकी जो पर्याय प्राप्त हुई, उसके लक्षसे चारित्रकी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। चारित्रकी पर्याय भी त्रैकालिक ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे उत्पन्न होती है। अहा! ऐसा मार्ग है। अरे! आठ-आठ वर्ष के बालक भी आत्मज्ञान प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। भाई! आत्मामें महासामर्थ्य भरा पड़ा है; उसे काल या क्षेत्र कोई बाधक नहीं होता—विघ्न नहीं करता। नहीं होता उसमें अपने पुरुषार्थकी कमी–त्रुटि कारण है।

यह तो तत्त्वकी मूल बात है भाई! अंतरमें त्रिलोकनाथ चैतन्यदेव विराजता है वहाँ जा न! 'मुझे ज्ञानका बहुत विकास है'–इसप्रकार तेरा जोर वर्तमान पर्याय पर क्यों जाता है? पर्यायका लक्ष करके क्यों अटकता है? व्यवहार से निश्चय होगा, रागसे मुझे लाभ होगा—इसप्रकार रागपर तथा पर्यायपर क्यों जोर देता है? वर्तमानमें तो अन्य स्थानों पर यही प्ररूपणा चलती है कि–व्यवहार—कषायकी मंदता—निश्चय तक पहुँचा देती है; परन्तु भाई! ऐसा नहीं है। निमित्तसे कार्य होता है, कर्मसे विकार होता है—ऐसी भ्रान्ति घुस गई है; परन्तु भाई! यह बात सत्य नहीं है। विकार अपनी पर्यायमें अपनी उस प्रकारकी योग्यता से होता है, द्रव्यसे नहीं, गुणसे नहीं, पूर्वकी पर्यायसे भी नहीं।

प्रश्न :—तो क्या विकार ऊपरसे अध्धरसे होता है?

उत्तर :—शुभाशुभ विकारी भाव अपनी पर्यायमें ऊपर-ऊपरसे, अध्धरसे होते हैं, द्रव्य स्वभावमें से नहीं होते। विकार परके कारण अथवा द्रव्य और गुणके आश्रय से नहीं होता। अबद्धस्पृष्टादि भाव पर्यायमें ऊपर-ऊपर तैरते होने पर भी वे त्रैकालिक ज्ञायक स्वभावमें प्रतिष्ठा, शोभा या प्रवेश प्राप्त नहीं करते। वस्तुमें विकारी या अविकारी पर्याय वस्तुकी अपनी योग्यता के कारण अपनेमें होते हैं, उसमें अन्य कोई कारण नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि–त्रैकालिक ज्ञायक तत्त्वको भूलकर 'मुझमें ज्ञानकी पर्याय विकसित हुई', 'मुझे कुछ विशेष आनंद आया', इसप्रकार पर्यायके ऊपर क्यों लक्ष देता है? पर्याय पर जोर क्यों देता है? पुण्य-पापकी विभावक्रियासे रहित निष्क्रिय ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि स्थापित कर न! अरेरे! यह कहीं वाद-विवादसे पार पड़े ऐसा नहीं है। श्री नियमसारमें कहा है : 'णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।'

छे जीव विधविध, कर्म विधविध, लब्धि छे विधविध अरे!
ते कारणे निजपरसमय सह वाद परिहर्तव्य छे॥१५६॥

जीव अनेक प्रकारके हैं, कर्म अनेक प्रकार का है, लब्धि अनेक प्रकारकी है; इसलिये परमार्थके ज्ञाता स्वधर्मियों तथा परधर्मियों के साथ वाद करने योग्य नहीं है। जगतमें जीव, उनके कर्म, उनकी लब्धियाँ आदि अनेक प्रकार के हैं; इसलिये सर्व जीव समान विचारके हों वह होना असंभव है। इसलिये पर जीवोंको समझा देनेकी आकुलता करना योग्य नहीं है। स्वात्मावलम्बनरूप निजहित में प्रमाद न हो इसप्रकार रहना ही कर्तव्य है।

प्रभु! तू ज्ञायक द्रव्यस्वभावसे च्युत होकर पर्यायों के प्रकारमें किसलिये अटकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—ज्ञायक तलपर—दृष्टि लगा न! जिसमें शुभाशुभ विभावकी तथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपूर्ण एवं पूर्ण पर्यायकी कोई भी क्रिया नहीं है ऐसे निष्क्रिय ध्रुव ज्ञायक तत्त्वमें दृष्टि लगा दे न! लोगोंको इसमें निश्चयाभास जैसा लगेगा; परन्तु भाई! वस्तुकी स्थिति ऐसी है उसकी तुझे खबर नहीं है। त्रैकालिक ध्रुव निज द्रव्यस्वभावके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है; व्यवहारके आश्रयसे सम्यग्दर्शनादि होते हैं ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टिकी है। समझमें आता है कुछ?

अहा! ज्ञानादि अनंत गुणोंका सागर ऐसा यह अनुभूतिस्वरूप—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी एकता स्वरूप—भगवान ज्ञायक आत्मा आबालवृद्ध सबको सदा स्वयं ही अनुभवमें आ रहा है तथापि अनादि अज्ञानके कारण शरीरादि पर पदार्थोंके साथ एकत्व के विपरीत-अभिनिवेशसे जो मूढ़ है, अज्ञानी है, उसे 'यह जो अनुभूति है वही मैं हूँ' ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। अज्ञानी की दृष्टि ही बाह्यमें–निमित्त तथा पर्याय के ऊपर—है;–'मेरा कषाय मन्द हुआ', 'मुझे ज्ञानका विकास हुआ' किन्तु भाई! सुन तो सही; विकास भी खण्ड-खण्ड ज्ञान है, तू वहाँ कहाँ रुक गया? अंतरमें आनन्दका सागर भगवान ज्ञायक है वहाँ दृष्टि स्थापित कर न! बाहर कहाँ रुक गया?

राजाने प्रसन्न होकर किसी आदमीसे कहा कि—मेरे भंडारमें करोड़ो-अरबों स्वर्ण मुद्राएँ हैं, उनमेंसे सायंकालसे पूर्व जितनी गठरियाँ बाँधकर ले जा सके उतनी ले जाना वह आदमी स्वर्ण मुद्राएँ लेने निकला; परन्तु मार्गमें वेश्या का नाच देखने और रागरंग आदि में पड़ गया। वहाँ पहुँचनेसे पहले ही रात होगई और भंडार बन्द होगया; उसीप्रकार यहाँ अज्ञानी जीव 'मेरी पर्यायका विकास हुआ है', 'राग मन्द हो गया है'—इसप्रकार पर्यायका लक्ष करके अटक गया है, द्रव्य स्वभाव पर दृष्टि नहीं करता।

प्रश्न :—क्या मार्गमें ही रुक गया है?

उत्तर :—विभावमें अथवा पर्यायमें रुक जाना वह मार्ग ही नहीं है। भाई! पर्यायमें क्यों रुक गया है? पर्यायरहित निष्क्रियतत्त्व—ध्रुव तत्त्व—पर दृष्टि दे न! पर्याय तो ऊपर-ऊपर तैरती है, भीतर द्रव्य स्वभावमें प्रवेश नहीं करती। पर्याय पर नहीं किन्तु द्रव्यस्वभाव पर जोर देना। पाँच भावोंमें एकमात्र परम पारिणामिक भाव द्रव्यरूप है और औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिक—यह चार भाव पर्यायरूप हैं। पर्यायकी अवधि तो एकसमयकी है; उसमें तू किसलिये रुकता है? अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ भगवान आत्मा विद्यमान है उसे तू देख न! अपनी रुचिको उसमें लगा दे न! मार्ग तो ऐसा है।

'परिणाम तो होते ही रहेंगे। परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए–ऐसा जोर किसलिये देता है?'

अहा! मेरी ज्ञानकी पर्यायमें विकास हुआ, श्रद्धाकी पर्याय अच्छी हुई, चारित्र की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायमें कषायकी मन्दता हुई—इसप्रकार रुचिका जोर पर्यायमें किसलिये देता है? अंतरमें परिपूर्ण ज्ञायक परमात्मा विराजमान है उसकी रुचि ले न! अंतरमें ज्ञायक परमात्माकी दृष्टि होना उसीको अंतरात्मा कहा जाता है। रागकी मन्दताका लक्ष तो छोड़ दे, परन्तु ज्ञानकी पर्यायमें विशेष विकास हुआ उसका भी लक्ष—महिमा छोड़ दे।

'पर्यायमें–पलटते अंशमें–द्रव्यका परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है?'

वस्तुके पलटते अंशको पर्याय अर्थात् उत्पाद-व्यय कहते हैं, टिकते अंशको द्रव्य अर्थात् ध्रौव्य कहते हैं। ज्ञानकी जो पर्याय विकसित हुई वह एक समयके पलटते अंशमें ध्रुव स्वभाव का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़े ही आता है? अर्थात् ध्रौव्यका पूर्ण नित्य बल एक समयकी पर्यायमें नहीं आ जाता। 'मैं परिपूर्ण द्रव्य हूँ' ऐसी श्रद्धा और ज्ञान पर्यायमें हो, परन्तु वह ध्रुव नित्य सामर्थ्य पर्यायरूप नहीं हो जाता। पर्यायमें विकास अल्प हो या विशेष हो, ध्रौव्य सामर्थ्य तो सदा एकरूप परिपूर्ण ही है। निगोदकी पर्यायमें ध्रुव सामर्थ्य तो न्यूनाधिक हुए बिना सदा नियत एकरूप ही रहता है।

'उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्यका अवलम्बन कर न!

एक समयकी पर्यायमें द्रव्यका परिपूर्ण सामर्थ्य नहीं आता। इसलिये तू पर्याय का लक्ष छोड़कर परिपूर्ण ध्रुव सामर्थ्ययुक्त निजात्मद्रव्यस्वभावका अवलम्बन ले न! जैसे कोई ऊपरसे उतरकर गहरे भोंयरे में जाय और निधान प्राप्त करे, उसीप्रकार तू भी ऊपरवर्ती पर्यायका लक्ष छोड़कर अंतरमें गहरे निष्क्रिय तलमें—ध्रुव ज्ञायक स्वभावमें—जा न!

अहा! यह, बेनके वचनामृत! भाषा सरल है परन्तु भाव अति उच्च हैं-गहरे हैं। यह 'वचनामृत' पर व्याख्यान चल रहे हैं, उससे किसीको आश्चर्य होगा; परन्तु भाई! बेनके इन वचनोंमें गंभीर सिद्धान्त ही भरे हैं; समयसारमें जो कहा है उसीका यह सार है; बेनके अनुभवमें से आयी हुई यह वाणी है इसमें अध्यात्मके अनुभवप्रधान सिद्धान्तोंका दोहन है। उस पर व्याख्यान हों इसमें आश्चर्य जैसा क्या है? मोक्षमार्गप्रकाशक, अनुभवप्रकाश, चिद्विलास आदि पुस्तकें गृहस्थोंने बनायी हैं उन्हें क्या हम व्याख्यानमें नहीं पढ़ते?

पर्यायमें द्रव्यका ध्रुव सामर्थ्य नहीं आता, तो फिर तू पर्यायका आलम्बन. किसलिये लेता है? त्रैकालिक ध्रुव दलका—परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य धारक ज्ञायक द्रव्यस्वभावका—अवलम्बन लें न; उसीका आश्रय कर न!

'ज्ञानानन्द सागरकी तरंगोंको न देखकर उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर।'

जिस प्रकार समुद्रमें तरंगे उठती हैं उसीप्रकार ज्ञानानन्द सागर भगवान आत्मामें पर्यायतरंगे उठती हैं। उन तरंगोंको न देखकर अंतरमें ज्ञायक ध्रुव दल पर दृष्टि लगा।

36.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरमें ज्ञानकीजो पर्याय हो वह भी आश्रय करनेकी वस्तु नहीं है, जाननेकी वस्तु है। श्रद्धाका जोर तो अपरिणामी ध्रुव पूर्णानन्द ज्ञायकभाव पर लगा न! भीतर जा भगवान विराजता है उससे भेट कर न! पर्यायका प्रेम छोड़ दे न!

'तरंगे तो उछलती ही रहेंगी, तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है?'

पर्याय तो उछलती ही रहेगी, तू उसकी भावना—सन्मुखता किसलिये करता है? व्यवहारसे लाभ हो यह बात तो कहीं रह गई, परन्तु व्यवहारको जाननेवाली जो ज्ञानकी पर्याय है उसका भी अवलम्बन किसलिये लेता है? अहा! कठिन मार्ग! यह बात समझमें नहीं आती इसलिये एकान्त-निश्चय लगती है। धर्म निश्चयसे भी होता है और व्यवहारसे भी होता है—इसप्रकार अज्ञानी अनेकान्त मानता है; परन्तु वह कहाँ अनेकान्त हुआ? वह तो एकान्त हुआ। सप्तभंगी में 'स्व से है और परसे नहीं है' ऐसे दो भंग हैं; इसीप्रकार 'निश्चयसे धर्म होता है और व्यवहारसे नहीं'—यह सच्चा अनेकान्त है। अनेकान्तकी स्वीकृतिमें व्यवहार और पर्यायका ज्ञान आता है, परन्तु उसका अवलम्बन किसलिये लेता है? उस पर जोर क्यों देता है? उसका आश्रय किसलिये करता है?

'अनंत गुणोंके भेद परसे भी दृष्टि हटा ले।'

यदि तुझे सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रथम सोपान—करना हो तो संयोग, निमित्त, विभाव तथा अपूर्ण पर्याय तो ठीक, परन्तु अनंत गुणोंके भेदपर से भी दृष्टि उठा ले। मैं गुणी और ज्ञान, आनन्द, वीर्य, चारित्रादि मेरे गुण—इसप्रकार गुण-गुणी भेद भी विकल्पका कारण है। इसलिये उसके ऊपर से भी दृष्टि हटा ले। भगवान आत्मामें एक 'अनंतधर्मत्व' नामकी शक्ति है। अनंत धर्म होनेपर भी आत्मा अनंतधर्मात्मक अखण्ड एक अभेद वस्तु है। इसलिये यहाँ कहा है कि अनंत धर्मोंके—अनंत गुणोंके—भेद पर यदि दृष्टि अटक जायगी तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा, मिथ्यात्व युक्त विकल्प उठते रहेंगे।

सम्यक् अर्थात् सत्य। सत्य ऐसे पूर्ण अभेद निज ज्ञायकतत्त्व पर दृष्टि करनेसे, उसका अवलम्बन लेने से सम्यग्दर्शन होगा; बाकी गुण-गुणी के भेदसे भी नहीं होगा। ज्ञायक आत्मा अबद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावस्वरूप कहा है; उनमें आत्माको 'अविशेष'—गुणके भेद रहित अभेद भी कहा है। गुण-गुणी के भेदरहित अभेद–अविशेष–सामान्य ध्रुव आत्माका दृष्टिमें आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। इसलिये गुण-गुणीके भेद पर से भी दृष्टि हटा ले।

'अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व—अपरिणामी अभेद एक दल—उसमें दृष्टि दे।'

अनंत गुणवाला कहना वह भी भेद हो गया। 'गुणवाला'–ऐसा नहीं किन्तु गुणमय। अभेद एक त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक निजतत्त्व–जो कि अपरिणामी है, अभेद है, अखण्ड एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दल है—उसे दृष्टि में ले। अंतरमें उसका आश्रय कर, तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा, भवभ्रमणका अंत आयगा।

'पूर्ण नित्य अभेदका जोर ला';

'मैं ज्ञानानन्द स्वभाव से परिपूर्ण, नित्य और अभेद आत्मा हूँ'—ऐसा अंतरसे दृष्टिका जोर ला। अहा! बेनकी भाषा सरल है, परन्तु भाई! भाव बहुत गंभीर हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी—भवका अंत करनेकी—मूलविधि यह है; बाकी सब ठीक; कषाय मन्द किया हो तो स्वर्ग मिलता है, परन्तु भवका अंत नहीं होता। यह मैं वर्तमानमें स्वभावसे परिपूर्ण नित्य अभेद ज्ञायक परमात्मा हूँ—ऐसा अंतरमें पुरुषार्थका जोर ला।

'तू ज्ञाता द्रष्टा हो जायगा।'

स्वभावसे तू जैसा ज्ञाता द्रष्टा है वैसा ही तू पर्यायमें व्यक्त ज्ञाता द्रष्टा—परका तथा विभावका अकर्ताभोक्ता हो जायगा। अहा! मात्र तत्त्वका मक्खन है। विशेष ज्ञान भी न हो तथापि—अल्प ज्ञानमें भी—अभेदपर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन हो जाता है। 'मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ' इसप्रकार अभेद स्वभाव पर दृष्टि होनेसे सम्यग्दृष्टि, शुभाशुभ राग होने पर भी अंतरमें ज्ञाता-द्रष्टा है। मैं परकी क्रिया अथवा राग करूँ—ऐसी कर्तृत्वबुद्धि ज्ञाता-द्रष्टापने में नहीं होती। अहा! ऐसी बात है भाई! स्वभाव का आलंबन ले तो तू ज्ञाता-द्रष्टा हो जायगा।

*

द्रव्यजीवन और भावजीवनके आधार, अपूर्व सर्वस्व उपकारी, परमकृपालु, अद्भुत गुरुदेव सुखशान्तिमें बिराज रहे हैं। शारीरिक प्रकृति ठीक है।

अब तो विभावके सब विकल्पोंसे छूटकर वीतरागपर्यायरूप परिणमन करेंगे तब धन्य होंगे। हजारों मुनियोंके वृन्द जिस कालमें विचरते होंगे उस प्रसंगको धन्य है! वैसे कालमें मुनिपना लेकर घड़ीमें अप्रमत्त, घड़ीमें प्रमत्त—ऐसी दशाको साधकर वीतरागपर्यायरूप परिणमेंगे तब धन्य होंगे! अभी भी जैसे बने वैसे पुरुषार्थ बढ़ाकर निर्मल पर्यायको विशेष प्रगट करना वही श्रेयरूप है।

—पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८०

ता. ३०-८-७८

वचनामृत–२०२

दृढ़ प्रतीति करके, सूक्ष्म उपयोगवाला होकर, द्रव्यमें गहरे उतर जा, द्रव्यके पातालमें जा। वहाँ से तुझे शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होगा। खूब धीर-गंभीर होकर द्रव्यके तलका स्पर्श कर॥२०२॥

'दृढ़ प्रतीति करके, सूक्ष्म उपयोगवाला होकर, द्रव्यमें गहरे उतर जा, द्रव्यके पातालमें जा।'

सहज ज्ञान, सहज आनन्दादि अनंत गुणमय निज आत्माके, रागादिसे भिन्न त्रैकालिक अखण्ड ध्रुव स्वरूपका गुरुगमसे अंतरमें बराबर निर्णय करके, सूक्ष्म उपयोगवाला होकर, ज्ञायक स्वभावमें गहरे अवगाहन कर, द्रव्य स्वभावके पाताल में पहुँच जा। वहाँ तुझे कोई अद्‌भुत अतीन्द्रिय आत्मानुभूति होगी। जबतक आत्मा यथार्थरूप से प्रतीतिमें न आये तब तक उपयोग स्थूल है; आत्मा प्रतीतिमें आये वह उपयोग सूक्ष्म है। ग्यारह अंगका पाठी हो परन्तु अंतरमें आत्मा का यथार्थ स्वरूप सानुभव प्रतीतिमें न आये तो उसका भी उपयोग स्थूल है। स्थूल ऐसे व्रतादि के मन्द कषायमें वह अटक गया है, सूक्ष्म ऐसे ज्ञानस्वभाव की उसे प्रतीति नहीं हुई है।

'सूक्ष्म उपयोगवाला होकर....' क्या कहा? कि–अंतर स्वरूपसन्मुख होनेके लिये ज्ञानके परिणामको, ज्ञानके उपयोगको अत्यंत धीर कर, सूक्ष्म कर, क्योंकि सूक्ष्म उपयोग से ही आत्मा ज्ञात होता है; बाह्य क्रियाकाण्डवाला, पूजा-भक्तिके रागवाला, व्रतादिके पुण्यवाला अथवा अन्य अनेक स्थूल उपयोगवाला होकर ज्ञानानन्दमूर्ति निजात्माकी प्रतीति नहीं होती। ज्ञानके अंतर्व्यापार को इतना सूक्ष्म कर ताकि स्थूल ऐसे शुभराग से भिन्न सूक्ष्म आत्मा बराबर पकड़में आ जाय। यह ज्ञायक आत्मा इन्द्रियोंसे, निमित्तसे या रागकी मन्दता से तो पकड़में नहीं आता, परन्तु अंतरमें ज्ञानका जो स्थूल उपयोग है उससे भी पकड़में नहीं आता। प्रथम तत्त्वका दृढ़ निर्णय करके, स्थूल उपयोगको छोड़कर, सूक्ष्म उपयोगवाला

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होकर, भीतर भगवान आत्माको पकड़े तो सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रारम्भ—हो। ऐसे तो लाख क्रियाकाण्ड करे, व्रत-तप करके सूख जाय—आचार्यदेव कहते हैं : क्लेश करते हो तो करो—उसमें कहीं सम्यग्दर्शन नहीं है; भवके अन्तका वह उपाय नहीं है।

यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की बात है, चारित्रकी बात तो फिर। सम्यग्दर्शन होने से आत्माका जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप प्रतीतिमें—अनुभूतिमें—आया, उसीमें विशेष लीनता होना सो चारित्र है। सम्यग्दर्शन होने से ऐसी प्रतीति होगई है कि—भले चारित्र नहीं हुआ, परन्तु उपयोग सूक्ष्म करके जो अखण्ड ज्ञायक प्रभु अनुभवमें आया है उसीमें विशेष रमणता होने पर रागका नाश एवं चारित्र दशा होगी।

ज्ञानपर्यायको सूक्ष्म करके, 'वस्तु स्वरूप क्या है? कैसा है?' वह जानकर उसकी प्रतीति करना; क्योंकि जाने बिना प्रतीति तो गधे के सींगों की प्रतीति समान अशक्य है। वस्तुका ख्याल ही न हो तो प्रतीति कहाँ से हो सकती है? इसलिये पहले पहिचानकर दृढ़ प्रतीति करना कि–ज्ञायक वस्तु पूर्ण, अभेद और एकरूप है। उसे ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेय बनाकर, ध्यानकी पर्यायमें ध्येय बनाकर, उसकी अचल प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है। अहा! ऐसी बात है भाई! भवके अंतका यह एक ही उपाय है। 'एक होय त्रणकालमां, परमारथनो पंथ।' अज्ञानियोंको इसमें एकान्त लगता है; परन्तु भाई! यही सच्चा अनेकान्त है। क्रियासे और शुभराग से भी धर्म होता है वह सम्यक् अनेकान्त नहीं है, मिथ्या अनेकान्त है। आत्मासे—वीतराग भाव से—भी धर्म होता है और रागसे भी धर्म होता है—इसप्रकार दोका मिश्रण करना वह सम्यक् अनेकान्त नहीं है। वध्यघातकरूप परस्पर विरोधी भावोंका मिश्रण कैसे हो सकता है? दो का मेल कैसे होगा? समयसारकी ७२वीं गाथामें कहा है : पुण्य-पापके भाव अशुचि हैं, ज्ञानस्वभावसे विपरीत—जड़ हैं और दुःखके कारण हैं; भगवान ज्ञायक आत्मा परम शुचि, शुद्ध ज्ञानस्वरूप और दुःख का अकारण—सुखस्वरूप है। ऐसे सहज ज्ञानस्वरूप आत्माका पक्का निर्णय करके ज्ञानविचारको सूक्ष्म करके भीतर ज्ञायकस्वभावमें गहरे उतर जा, तो तुझे अपूर्व अतीन्द्रिय आनंददशाकी प्राप्ति होगी। अहा! अन्यत्र कहीं नहीं है। जैन सम्प्रदायमें पड़े हैं उन्हें भी वस्तुस्वरूप की खबर नहीं है।

'द्रव्यमें गहरे उतर जा, द्रव्यके पातालमें जा।' क्या कहते हैं? कि–द्रव्यवस्तु है, गहरा-गहरा गंभीर-गंभीर तत्त्व है, ज्ञानादि अनंत-अनंत गुणोंके पिण्डरूप अभेद एक पदार्थ है; उसमें दृष्टि लगाकर भीतर प्रविष्ट हो जा। 'प्रविष्ट हो जा' का अर्थ ऐसा नहीं है कि पर्याय द्रव्यमें एकमेक हो जाती है—पर्याय द्रव्य बन जाती है; परन्तु पर्यायकी जाति, द्रव्यका आश्रय करनेसे, द्रव्य जैसी निर्मल हो जाती है; उसे पर्याय द्रव्यमें गहरे उतरी—अभेद हुई—ऐसा कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसमें शक्तियोंकी संख्याका कोई पार नहीं है ऐसे अपार अखण्ड, एकरूप, अभेद द्रव्यकी गहराईमें उतर जा, उसके पातालमें जा। तालाबमें सीढ़ियों से भीतर उतरते हैं उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग की सीढ़ी लेकर भीतर ज्ञायक द्रव्यस्वभावमें गहरे उतर जा, ज्ञायकके तलमें जा। बाह्यमें जो लक्ष है—रुचि है उसे छोड़कर ज्ञानकी पर्यायमें सूक्ष्मता प्रगट करके ज्ञायक स्वभावमें गहरे उतर जा, उसके अंतर पाताल में जा, तो तुझे अतीन्द्रिय शान्ति एवं आनन्दकी प्राप्ति होगी। अहा! ऐसा मार्ग है, इसके बिना सब व्यर्थ है। सहज ज्ञायकतत्त्व के अनुभव बिना बाह्यत्याग लेकर मानना कि 'मैं त्यागी हूँ'—यह सब भ्रमणा है।

अरेरे! ऐसा दुर्लभ मनुष्य भव चला जा रहा है, सिर पर मौतकी नौबत बज रही है। मृत्युकाल आनेपर क्षणमें शरीर छूट जायगा। उस समय मरणकी वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचाओ'....ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। लेकिन क्या कोई तुझे बचा सकेगा? तू भले ही धनके ढेर लगा दे, वैद्य–डॉक्टर सब प्रयत्न कर देखें, आसपास खड़े सगे-सम्बन्धियोंकी ओर तू दीनता सहित टुकुर-टुकुर देख रहा हो, तथापि कोई तुझे शरणभूत हो सकता है? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति—अनुभूति की होगी, आत्मामें से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभी से वह प्रयत्न कर।

यहाँ कहते हैं : द्रव्यके पातालमें जा। अंतरमें द्रव्यका जो मूल ध्रुव ज्ञायक स्वभाव है वह पाताल है, और जो पर्याय हैं वह क्षणिक ऊपरी वस्तु है। वस्तुमें पर्याय ऊपर ऊपर तैरती है, ध्रुव स्वभावमें प्रवेश नहीं करती। रागको जाननेके कालमें ज्ञानकी पर्याय रागमें प्रविष्ट नहीं होती और ज्ञानकी पर्यायमें राग प्रवेश नहीं करता। अंतरमें ध्रुव ज्ञायक स्वभाव का पाताल, तल, भोंयरा, गहरी गुफा पड़ी है वहाँ इस पर्यायको ले जा, पर्यायमें उस ध्रुव स्वभाव का आश्रय कर, उसका अवलम्बन ले।

'वहाँ से तुझे शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होगा।'

इस वर्तमान ज्ञानकी पर्यायको सूक्ष्म करके ज्ञायकके गहरे पातालमें ले जा, उसका लक्ष कर, तो वहाँसे तुझे आनन्द और शान्ति प्राप्त होगी। चारित्रगुणकी निर्मल पर्यायको 'शान्ति' तथा आनन्द गुणकी निर्मल पर्यायको 'आनन्द' कहा है। पूर्ण द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देनेसे पर्यायमें अतीन्द्रिय शान्ति और आनन्द आयेगा। शान्ति और आनन्द दोनों भिन्न–भिन्न गुणोंकी निर्मल पर्यायें हैं। वे दोनों त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे प्रगटती हैं। सुख और शान्तिका मात्र यह एक ही उपाय है। ऐसा मार्ग है भाई! लोगों को कब सुननेको मिलता है?

श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थमें कहा है : जो जीव आजीविकाके हेतु से, बड़प्पनके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लिये अथवा कोई विषय कषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारकर कपटसे जैनी होता है वह तो पापी ही है; कारण कि—अति तीव्र कषाय होनेपर ऐसी बुद्धि होती है उसका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तो संसार नाश के हेतु सेवन किया जाता है, परन्तु उसके द्वारा ही जो संसार प्रयोजन साधना चाहता है वह बड़ा अन्याय करता है, इसलिये वह तो मिथ्यादृष्टि ही है।

दुनियामें मेरा ज्ञान प्रसिद्ध होओ, दुनिया मेरी प्रशंसा करे और मैं जो कहता हूँ उससे दुनिया संतुष्ट हो—इसप्रकार जिसे अंतरमें अभिमानका प्रयोजन हो उसका धारणारूप ज्ञान, भले सच्चा हो तथापि, वास्तवमें अज्ञान है—मिथ्याज्ञान है। अंतरमें शान्ति एवं आनन्दका सागर भरा है उसमें भाषाका कोई काम नहीं है। भाषा बहुत अंलकारिक हो तो अंतरमें वस्तु हाथ आजाय—ऐसा नहीं है। भीतर स्वभाव की दृष्टि करे, उसका लक्ष करे, उसका आश्रय करे, उसके सन्मुख जाय, तब अतीन्द्रिय शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। अहा! निमित्त और व्यवहारके रसिकों को ऐसी बात पागल जैसी लगेगी; परन्तु प्रभु! क्या कहें? मार्ग ही ऐसा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञभगवान भी इसी प्रकार कहते हैं और बेनके वचनामृतमें भी यहाँ यही बात कही है।

'खूब धीर-गंभीर होकर द्रव्यके तलका स्पर्श कर।'

अत्यन्त धीर एवं गंभीर होकर द्रव्यस्वभावकी थाह ले। ध्येयके प्रति बुद्धिको प्रेरित करे वह धीर है। जो अपनी धी को—बुद्धिको—अंतर ज्ञायकस्वभावमें प्रेरित करे उसे धीर कहते हैं। खूब धीर तथा गंभीर होकर ज्ञायकद्रव्यके तलका स्पर्श कर—अनुभव कर। अहा! यह तो तत्त्वका अकेला—निर्भेल मक्खन है। द्रव्यके ध्रुव तल को पकड़, उसका स्पर्श कर, उसके तलमें जा, उसका अनुभव कर। अहा! ऐसी बात है। आया कुछ समझमें?

*

वचनामृत—२०३

यह सर्वत्र—बाहर—स्थूल उपयोग हो रहा है, उसे सब जगह से उठाकर, अत्यन्त धीर होकर, द्रव्यको पकड़। वर्ण नहीं, गंध नहीं, रस नहीं, द्रव्येन्द्रिय भी नहीं और भावेन्द्रिय भी द्रव्यका स्वरूप नहीं है। यद्यपि भावेन्द्रिय है तो जीवकी ही पर्याय, परन्तु वह खण्ड-खण्ड रूप है, क्षायोपशमिकज्ञान है और द्रव्य तो अखण्ड एवं पूर्ण है, इसलिये भावेन्द्रियके लक्षसे भी वह पकड़में नहीं आता। इन सबसे उसपार द्रव्य है। उसे सूक्ष्म उपयोग करके पकड़॥२०३॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'यह सर्वत्र—बाहर—स्थूल उपयोग हो रहा है, उसे सब जगह से उठाकर, अत्यन्त धीर होकर, द्रव्यको पकड़।'

शरीर, वाणी आदि पर द्रव्योंको, निमित्तोंको, शुभाशुभ रागको, विकसित हुई ज्ञानकी पर्यायको तथा गुण-गुणीके भेदको—ऐसे सबको जाननेका यह जो खण्ड-खण्ड उपयोग हो रहा है वह स्थूल उपयोग है। बाह्यमें—संयोगमें, वियोगमें, विषयोंमें, निमित्तमें, रागमें, और अपूर्ण पर्यायमें—भटकने वाले स्थूल उपयोगको सर्वत्रसे उठा ले, भीतर रुचिको सर्वत्रसे उठा ले और खूब ही धीर होकर निज ज्ञायक द्रव्यको पकड़। अहाहा! भाषा तो सादी है प्रभु! माल तो जो है सो यह है। अंतरमें पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभु विराजता है उसमें गहरे उतर जा और अत्यन्त धीर, वीर तथा गंभीर होकर द्रव्यस्वभावको पकड़, दृष्टिमें उसका आश्रय लेकर अनुभव कर। धीर अर्थात् ध्रुव ध्येय के प्रति धीको—बुद्धिको मोड़कर, वीर अर्थात् ध्रुव ध्येय के आश्रयका विशेषरूपसे पराक्रम प्रगट करके, और गंभीर अर्थात् बाहरकी समस्त उत्सुकता का निवारण करके—ध्रुव ज्ञायकस्वभावके अवलम्बन द्वारा प्रौढ़-स्थिर बनकर—निज शुद्धात्माको पकड़, उसका अतीन्द्रिय अनुभव कर।

ध्रुव ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेका काम जो पर्याय करती है उस पर्यायके ऊपरसे भी लक्ष उठा ले। भाषा तो देखो! सर्वत्रसे लक्ष उठा ले उसमें व्यवहार-रत्नत्रयके विकल्प भी आ गये, और जो अंतरमें जानेका कार्य करती है वह एक समयकी पर्याय भी आगई। वहाँ सर्वत्रसे लक्ष उठाकर ध्रुव ज्ञायकको पकड़। अध्रुवसे—पलटती पर्यायसे—ध्रुवको पकड़। अनित्यसे नित्यको पकड़, नित्यसे नित्य पकड़में नहीं आता। उसकी जो अनित्य पर्याय है उसे ऐसी धीर और गंभीर बना कि जिससे द्रव्यस्वभावको पकड़ ले। वस्तुस्वरूप ऊपर दृष्टिको ले जा; उसके बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। भाई! मार्ग तो ऐसा है। इसके बिना लाख व्रत-तप करे, भक्ति, पूजा या यात्रा करे, करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करके बड़े-बड़े मन्दिर बनवायें, तथापि उसके द्वारा कहीं आत्मा पकड़में नहीं आता। यदि पैसेसे धर्म होता हो तो बेचारे गरीबोंको रोना पड़ेगा। धर्म बाह्य क्रियाकाण्ड या पैसे के आधीन नहीं है; भीतर पातालमें—द्रव्यस्वभावमें—भगवान विराजता है उसे पकड़ तो सम्यग्दर्शन—धर्मकी प्रथम सीढ़ी—प्राप्त होगी।

'वर्ण नहीं, गंध नहीं, रस नहीं, द्रव्येन्द्रिय भी नहीं और भावेन्द्रिय भी द्रव्यका स्वरूप नहीं है।'

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और द्रव्येन्द्रिय तो पुद्गलकी पर्याय है, आत्मा नहीं है; और भावेन्द्रिय क्षायोपशमिक ज्ञानकी पर्याय है, वह कहीं द्रव्यका त्रैकालिक ध्रुव स्वरूप नहीं है।

'यद्यपि भावेन्द्रिय है तो जीवकी ही पर्याय, परन्तु वह खण्ड-खण्डरूप है, क्षायोपशमिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान है और द्रव्य तो अखण्ड एवं पूर्ण है, इसलिये भावेन्द्रियके लक्षसे भी वह पकड़में नहीं आता।'

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव अपने खण्ड-खण्ड ज्ञानको—भावेन्द्रियज्ञानको—नहीं चाहता, उसका आश्रय नहीं लेता।

प्रश्नः—तो फिर वह किसका आश्रय लेता है?

उत्तरः—जो सकलनिरावरण - अखण्ड - एक - प्रत्यक्ष प्रतिभासमय-शुद्ध-अविनश्वर-पारिणामिक-परमभाव लक्षण निजपरमात्म द्रव्य है उसीका ज्ञानी आश्रय लेता है। यह बात समयसार की ३२०वीं गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीकामें आता है। अहा! ऐसी बातें महँगी पड़े इसलिये लोगोंने दूसरा मार्ग निकाला है कि—प्रतिमा ले लो, साधु हो जाओ; परन्तु भाई! निज आत्माकी प्रतीतिके बिना साधु कैसा? अंतरमें आत्माके आश्रय बिना इस बाह्य त्यागका तुझे अभिमान हो जायगा कि—हम त्यागी हैं, हम बड़े हैं। भाई! जहाँ अंतरमें त्यागका अभिमान है वहाँ वह त्यागी कैसा? काहेका त्यागी है वह? वह तो वास्तवमें धर्मका त्यागी है—धर्म उससे दूर है। अरे, भाई! यह पण्डिताई की वस्तु नहीं है।

प्रभु! एक समयकी पर्याय से भी उदास अपने त्रैकालिक आनन्दकन्द ज्ञायकको पकड़। भावेन्द्रिय—क्षायोपशमिक ज्ञान—तो खण्ड-खण्डरूप ज्ञानपर्याय है, और आत्मा तो पूर्ण निरावरण, अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासस्वरूप परम पदार्थ है। वह भावेन्द्रियके लक्षसे भी पकड़में नहीं आता। पकड़ने वाली पर्याय स्वयं क्षायोपशमिक भावसे है, परन्तु उसके लक्षसे प्रभु आत्मा पकड़ने में नहीं आता। वस्तु स्वयं अपनी क्षायोपशमिक ज्ञानकी पर्याय द्वारा अपने ज्ञायक स्वभावका आश्रय करे तो द्रव्य पकड़में आये। अहा! ऐसा मार्ग है परमात्माका। महाविदेहमें भगवानके पास तो यह सत्यमार्ग चलता है। सत्यको कहीं संख्याकी आवश्यकता नहीं है कि—बहुत सारे लोग मानें तभी सत्य कहलायेगा। वस्तु जिस प्रकार सत्य है उसे उसी प्रकार माने तो सत्य कहलाता है। अखण्ड ध्रुव वस्तु भावेन्द्रियके लक्षसे भी पकड़में नहीं आती।

'इन सबसे उस पार द्रव्य है। उसे सूक्ष्म उपयोग करके पकड़।'

त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक द्रव्य इन सबसे-देव-शास्त्र-गुरुसे, अन्य निमित्तोंसे, शुभाशुभ राग से, व्यवहार रत्नत्रयके परिणामसे, भावेन्द्रियरूप अपूर्ण ज्ञानसे, अरे! ध्रुवतत्त्वका आलम्बन लेनेवाली एक समयकी निर्मल पर्याय आदि सबसे उस पार है। अहा! बोल बहुत अच्छा आ गया है। बेनके वचनामृत भी बराबर अनुरूप आ गये हैं।

उन सबसे उस पार जो निजात्म द्रव्य है उसे धीरजसे उपयोग सूक्ष्म करके बराबर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पकड़। जब वह पकड़में आता है तब वह सूक्ष्म उपयोगसे ही पकड़में आता है; और यदि पकड़में नहीं आता तो समझना कि तबतक उपयोग स्थूल है। आया कुछ समझमें? द्रव्यस्वभावको उपयोग सूक्ष्म करके पकड़। द्रव्यस्वभाव पकड़में आने पर तुझे सम्यग्दर्शन अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होगा।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोग बनना वह तो संसारकी स्थिति ही है। उसे बदलनेमें आत्माका समर्थपना नहीं है; परन्तु इस संसारसमुद्रमेंसे आत्माको निकाल कर उंचा ले आना वह अपनी स्वतंत्रताकी बात है।

सगेसनेही रूपसे जीवोंका एकत्रित होना और छुट्टा पड़ना वह जड़चैतन्यके सम्बन्धको लेकर हुआ ही करता है। यद्यपि रागके कारण बारम्बार स्मरण हो आये वह स्वाभाविक है, परन्तु इस अनादि परिभ्रमणरूप संसारमें हजारों सगेस्नेहियोंका वियोग हुआ है, हजारोंका राग कुदरतने भुलाया है। पुनः जीव जहाँ जन्मता है वहाँ अपनापना मान लेता है। परन्तु वे सगेस्नेही भी छूट गयें हैं और फिर अन्य किये हैं। इस प्रकारकी परम्परा इस संसारचक्रमें चला ही करती है।

वहाँ, परद्रव्यमें शरण और विश्राम माना जाता है वह यथार्थ नहीं है। परद्रव्यका सम्बन्ध तोड़नेके लिये, पूर्ण वीतराग सत्स्वरूप प्राप्त करनेके लिये, सत् कैसे मिले उस तरफकी जो रुचि करता है तथा जो सत्पुरुषका शरण अंतरंगसे स्वीकारता है वह आत्मविश्रामको पाता है।

बने हुये प्रसंगसे जैसे बने वैसे वृत्तिको उठाकर, उसे आत्महितकी जिज्ञासापूर्वक वाँचन-विचार वगैरहमें जोड़ना वह इच्छने योग्य है।

—पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८१

ता. ३१–८–७८

वचनामृत–२०४

आत्मा तो अनंत शक्तियोंका पिण्ड है। आत्मामें दृष्टि स्थापित करनेपर अंतरसे ही बहुत विभूति प्रगट होती है। उपयोग को सूक्ष्म करके अंतरमें जानेसे बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं। अंतरमें तो आनन्दका सागर है। ज्ञानसागर, सुखसागर—यह सब भीतर आत्मामें ही है। जैसे सागरमें चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती, उसीप्रकार अनंत–अनंत काल तक केवलज्ञान बहता रहे तब भी द्रव्य तो ज्योंका त्यों ही रहता है।।२०४।।

'आत्मा तो अनंत शक्तियोंका पिण्ड है। आत्मामें दृष्टि स्थापित करनेपर अंतरसे ही बहुत विभूति प्रगट होती है।'

एक दम अंतरतत्त्वकी दृष्टिकी बात है। जिसे कल्याण करना है उसे 'कल्याणका उपाय क्या है?' वह तो जानना पड़ेगा न! आत्माका धर्म करना है तो आत्मा क्या वस्तु है? आत्मा अनंत शक्तियोंका पिण्ड—अनंत गुणों का समूह—है। शरीरादि संयोगसे, शुभाशुभ रागसे तथा एक समय की पर्याय से भी दृष्टि हटाकर ज्ञान–आनन्दादि अनंत गुणमय आत्मामें दृष्टि स्थापित करनेसे, अभिप्रायमें त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक द्रव्यस्वभावका आश्रय करनेसे, अंतरमें से निर्मल ज्ञान, आनन्द, शान्ति, प्रभुता आदि अनंत विभूतियाँ पर्यायमें प्रगट होती हैं। त्रैकालिक ध्रुव शक्तिके अवलम्बनसे पर्यायमें अनंत गुणोंकी निर्मल पर्याय प्रगट होना उसे यहाँ 'विभूति प्रगट हुई' ऐसा कहा जाता है।

'उपयोगको सूक्ष्म करके अंतरमें जानेसे बहुत–सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं।'

ज्ञानके, ज्ञेयको जाननेरूप परिणमनको—व्यापारको—उपयोग कहते हैं। जो उपयोग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाह्यमें—निमित्त, राग तथा पर्यायमें—जाता है वह उपयोग स्थूल है और जो उपयोग अंतरमें त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकका अवलम्बन लेकर प्रवर्तता है उसे शुद्धोपयोग, सूक्ष्म उपयोग, निर्मल आराधना का भाव आदि अनेक नामोंसे कहा जाता है। यह मूलधनकी बात है। भाई! यह जीव अनादिसे चौरासीलाखयोनिके—जन्म-मरणके—दुःखोंमें पड़ा है; अंतरमें चैतन्य प्रभुके ज्ञान और आदर के बिना राग और पुण्यके आदर और सत्कारमें दुःखी हो रहा है।

आत्मामें अनंत गुण हैं, तो उसमें कोई दुःख या विभाव नामका गुण होगा—ऐसा नहीं है; वह तो उसकी एक समय की विकृत अवस्था है। वह होती है किस प्रकार? कि—पर्यायमें निमित्ताधीन दृष्टि—आश्रय—अवलम्बन करनेसे विकार होता है। स्वभावकी सम्पदाको भूलकर, द्रव्य एवं गुण स्वभावसे निर्मल होने पर भी, पर्यायमें जो राग और पुण्य होते हैं वे निमित्ताधीन होनेसे होते हैं। आत्मामें विकार करनेका कोई गुण हो तो विकार कभी दूर नहीं होगा, स्वभाव हो जायगा।

अनंतानंत शक्तियोंके समुदायको आत्मा कहते हैं। समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके परिशिष्टमें आत्माकी ४७ शक्तियोंका वर्णन श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने किया है। उसमें कोई शक्ति विकारकी रचना करे—ऐसा नहीं लिया है; क्योंकि विकार करनेका कोई गुण आत्मामें नहीं है। निमित्ताधीन होनेकी पर्यायमें योग्यता है इसलिये पर्याय विकृत होती है; परन्तु विकृति करनेका कोई गुण हो ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है।

प्रश्न :—वैभाविक शक्ति है न?

उत्तर :—विभावकी रचना करे ऐसा उसका अर्थ नहीं है। विभाव अर्थात् जो अन्य चार द्रव्योंमें नहीं है, मात्र जीव और पुद्‌गलमें है, ऐसे विशेष भावको विभाव कहते हैं। विकार रूप परिणमित हो इसलिये वैभाविक शक्ति है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वैभाविकशक्ति यदि निमित्ताधीन परिणमित हो तो रागादि विकृत दशा होती है और यदि स्वभावाधीन परिणमित हो तो अविकृत शुद्ध दशा होती है। सिद्धमें भी वैभाविक शक्ति तो है। शक्ति कहाँ जायगी? ज्ञान, दर्शन, सुखादिकी भाँति वैभाविक शक्ति नामका भी गुण है। निमित्ताधीन स्वयं होता है इसलिये विकार उत्पन्न होता है, वैभाविक शक्ति है इसलिये विकार उत्पन्न होता है—ऐसा नहीं है।

भाई! तत्त्वकी दृष्टि अति सूक्ष्म है। यह भगवान आत्मा भले उस विकृत पर्यायरूप परिणमे तथापि, वस्तु तो सदा अविकृत त्रैकालिक आनन्दका अभेद पिण्ड है। अंतरमें आनेसे स्वभावभूत ऋद्धि–और सिद्धियाँ प्रगट होती हैं। बाह्य ऋद्धि–सिद्धियोंकी यहाँ बात नहीं है। अपने आत्मामें जो आनन्दादि अनंत स्वभाव सम्पदा पड़ी है उसकी, पर्यायमें ऋद्धि-सिद्धि प्रगट होगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकप्रभुके पवित्र स्वभावकी ओर पर्यायको—रुचिको, उपयोगको ले जा। जिससे तेरी पर्यायमें ज्ञानानन्द स्वरूप ऋद्धि-सिद्धि प्रगट होगी। अहा! वस्तु ऐसी है भाई! पुस्तक तो ऐसी प्रकाशित हो गई है! मक्खन है मक्खन! आया कुछ समझमें? उपयोगको सूक्ष्म करके अंतरमें जानेसे—त्रैकालिक निज शुद्धात्मद्रव्यका आश्रय करनेसे—अनेक स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं।

'अंतरमें तो आनन्दका सागर है। ज्ञानसागर, सुखसागर—यह सब भीतर आत्मामें ही है।'

भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनंदका सागर है। अनंत अनंत ज्ञानका सागर, अनंत-अनंत सुखका सागर—ऐसे अनंत गुणोंका महासागर प्रभु अंतर आत्मामें ही है। उस ध्रुव आत्मस्वभाव का सीधा आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। भाई! यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी अन्तिमसे अन्तिम रीति है। अन्य लाख बातें करे—कषाय मन्द करो, परिषह सहन करो, तब फिर सम्यक्त्व होगा—वह सब व्यर्थ है, रुँधा हुआ कषाय है।

प्रश्न :—जो यह सब उपसर्ग और परिषह सहन करते हैं वे सम्यक्त्वी नहीं हैं?

उत्तर :—भाई! उपसर्ग और परिषह सहन करना किसे कहा जाता है? जहाँ अभी आत्मा क्या वस्तु है, उसका सहज शुद्धस्वरूप क्या है—उसकी खबर भी नहीं है, वहाँ उपसर्ग सहन करना तथा परिषहजय कहाँ से होगा? आ पड़ी चाहे जैसी प्रतिकूलताके प्रसंगमें ज्ञानानन्द ध्रुवस्वभावके आश्रयके बलसे अंतरमें ज्ञाता-द्रष्टा रूप परिणमन हो, सहज वीतरागता उत्पन्न हो, उसे उपसर्गका सहना और परिषहका जीतना कहा जाता है। वीतरागका मार्ग सूक्ष्म है भाई! यहाँ कहते हैं कि—सहज ज्ञान सहज आनन्दादि सब भीतर निजआत्मामें ही है।

'जैसे सागरमें चाहे जैसी जोरदार लहरें उठती रहें तथापि उसमें न्यूनता–अधिकता नहीं होती, उसीप्रकार अनंत–अनंत केवलज्ञान बहता रहे तब भी द्रव्य तो ज्योंका त्यों ही रहता है।'

जैसे, समुद्रमें ज्वार आये तब चाहे जितनी वेगवान लहरें उछलें और भाटा हो तब लहरें समा जायँ तथापि समुद्रपनेमें किंचित् वृद्धि–हानि नहीं होती; उसीप्रकार द्रव्यस्वभावके पूर्ण आश्रयसे केवलज्ञान प्रगट होने पर वह पूर्ण निर्मल दशा सादि अनंत बहती रहे–परिणमित होती रहे तथापि द्रव्य स्वभावमें कदापि न्यूनाधिकता नहीं होती, वह तो सदा ज्योंका त्यों ही रहता है।

पं. कैलाशचन्द्रजीने लिखा है : सोनगढ वाले निमित्तको नहीं मानते—ऐसा नहीं है; निमित्त है, परन्तु निमित्तसे परमें–नैमित्तिकमें—कुछ कार्य हो ऐसा नहीं मानते। क्या

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्त—नैमित्तिकको अनुकूल परवस्तु—नहीं है? परन्तु निमित्त किसकी पर्याय करता है? निमित्त (अनुकूलतारूप) अपनी पर्याय करेगा या परकी—नैमित्तिककी—पर्याय करेगा? बात तो ऐसी ही है। यहाँ तो, अपने यहाँ पहलेसे ही यह बात चलती है।

केवलज्ञान दशा सादि अनंत परिणमती रहती है। एक समय पूर्णज्ञान, दूसरे समय ऐसा ही पूर्ण, तीसरे, चौथे, पाँचवें—इसप्रकार सादि अनंतकाल पूर्णरूपसे बहता ही रहता है, तथापि अंतरमें द्रव्यस्वभावमें कभी न्यूनाधिकता नहीं होती। अहा! अमृतका नियतसागर भगवान आत्मा! अनंतकाल तक अनंत चतुष्टयकी अमृतधारा पर्यायमें पूर्णरूपसे बहनेपर भी अनंत स्वभावसागरमें कहीं न्यूनाधिकता नहीं होती; और अनादिसे विकृत दशा है उस समय भी ज्ञायक भगवान तो अंतरमें पूर्णानन्द का नाथ ही है। वह ज्ञायक द्रव्य पूर्ण दशामें कुछ बढ़ नहीं गया है। और विकारी दशाके समय कुछ कम हो गया है—ऐसा नहीं है।

'अप्पा सो परमप्पा'—निज ज्ञायक आत्मा ही पूर्णानन्दका नाथ परमात्मा है। उसकी पर्यायमें भले अनादिकालसे विकृति रही तथापि उसके द्रव्यस्वभावमें कोई कमी नहीं आयी है; और आगामी अनंतकाल तक पूर्ण अविकृत दशा प्रगट होती रहे तथापि उसमें कोई वृद्धि नहीं होती। ऐसा, स्वभावसे भरपूर आत्मा है उसे दृष्टिमें लेना चाहिये। जीवका सर्व प्रथम कर्तव्य तो यही है।

अनंतानंत ज्ञान और आनन्दादि स्वभावोंसे भरपूर ऐसे निज आत्मद्रव्य पर दृष्टि करानेके लिये यहाँ द्रव्यस्वभावका माहात्म्य बतलाया है कि—प्रभु! तेरा ध्रुव द्रव्य ऐसा है, तू भगवान स्वरूप है भाई! भगवानमें और तेरे द्रव्यस्वभावमें किंचित् भी हीनाधिकता नहीं है। भगवान पर्यायमें पूर्ण हुए हैं और तू स्वभावमें पूर्ण है, उस पूर्ण स्वभावका आश्रय करके अंतर-स्वोन्मुखता का पुरुषार्थ कर तो तू भी पर्यायमें पूर्ण भगवान हो जायगा।

*

वचनामृत—२०५

चैतन्यकी अगाधता, अपूर्वता और अनंतता बतलानेवाले गुरुके वचनों द्वारा शुद्धात्मदेव को बराबर जाना जा सकता है। चैतन्यकी महिमापूर्वक संसारकी महिमा छूटे तभी चैतन्यदेव समीप आता है।

हे शुद्धात्मदेव! तेरी शरणमें आनेसे ही पंचपरावर्तन रूपी रोग शान्त होता है। जिसे चैतन्यदेवकी महिमा आयी उसे संसारकी महिमा छूट ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाती है। अहो! मेरे चैतन्यदेवमें तो परम विश्रान्ति है, बाहर निकलने पर तो अशान्तिका ही अनुभव होता है।'

मैं निर्विकल्प तत्त्व ही हूँ। ज्ञानानन्दसे भरा हुआ जो निर्विकल्प तत्त्व, बस वही मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये॥२०५॥

चैतन्यकी अगाधता, अपूर्वता और अनंतता बतलानेवाले गुरुके वचनों द्वारा शुद्धात्मदेवको बराबर जाना जा सकता है।'

अहा! बेनके वचनामृतमें मक्खन आया है मक्खन अकेला। चैतन्यके गुणोंकी अगाधता-अपार गंभीरता, अपूर्वता-पूर्वकालमें कभी सुनी नहीं है ऐसी अंतरमें अपूर्वता और संख्यासे अनंतता बतलानेवाली गुरुकी वाणी द्वारा भगवान निजशुद्धात्मदेव जैसा है वैसा बराबर जाना जा सकता है।

वि. सं. १९६५में हम दुकानका माल लेने बड़ौदा गये थे, तब सती अनुसूयाका नाटक देखा था। सती अनुसूया अविवाहित स्वर्गमें जाती थी, परन्तु वहाँ से इन्कार आया। क्यों? 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति।'—पुत्र न हो उसे उच्च (स्वर्गकी) गति नहीं मिलती। 'तो क्या करूँ?' 'नीचे गिर और वहाँ जो हो उससे विवाह कर।' नीचे एक अंधा ब्राह्मण था, उसके साथ उसने विवाह कर लिया और उससे उसे एक पुत्र हुआ। पुत्रको पालनेमें झुलाते हुए वह लोरी गाती थी कि—बेटा! 'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, उदासीनोऽसि, निर्विकल्पोऽसि'। अहा! नाटकमें भी ऐसी बातें! आजकल तो धर्मकी प्ररूपणाके स्थानोंमें भी ऐसा सुननेको नहीं मिलता। मुझे पहले से ही वैराग्यका रस था, नाटकके वैराग्यप्रेरक दृष्यों की मेरे हृदयमें खूब छाप पड़ती थी।

सती अनुसूया लोरी गाकर अपने पुत्रसे कहती थी; बेटा! तू शुद्ध है, बुद्ध अर्थात् ज्ञानका पिण्ड है, राग और परसे उदासीन है और निर्विकल्प ज्ञानज्योति है। अपने यहाँ श्री समयसारकी श्री जयसेनाचार्यदेवकी टीकामें बंध-अधिकार तथा सर्व विशुद्धज्ञान-अधिकार में—ऐसे दो स्थानों पर तथा श्री 'परमात्मप्रकाश' की टीकामें भी विशेष भावनाके लिये आता है कि—मैं सहज शुद्ध ज्ञान एवं आनन्द जिसका एक स्वभाव है ऐसा हूँ; मैं निर्विकल्प हूँ; मैं उदासीन हूँ; मैं निज निरंजन शुद्ध आत्माके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठान रूप निश्चयरत्नत्रयात्मक जो निर्विकल्पसमाधि उससे उत्पन्न वीतराग-सहजानन्दरूप सुखकी अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण (–स्वरूप) है ऐसे स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा स्वसंवेद्य (अपनेसे वेदनमें आने योग्य)–गम्य (ज्ञात होने योग्य)–प्राप्य (प्राप्त होने योग्य)—ऐसा भरितावस्थ (–भरी हुई अवस्थावाला, परिपूर्णस्वरूप) हूँ; मैं राग-द्वेष-मोह, क्रोध-मान-माया-लोभ, पाँच इन्द्रियोंका विषय-व्यापार, वचन-कायाका व्यापार,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावकर्म-द्रव्यकर्म नोकर्म, ख्याति-लाभ-पूजाकी तथा दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगोंकी आकांक्षारूप निदान, माया तथा मिथ्यारूप तीन शल्य इत्यादि सर्व विभावपरिणाम रहित शून्य हूँ। तीनलोकमें तीनोंकाल शुद्ध निश्चयनयसे मैं ऐसा हूँ तथा सर्व जीव ऐसे हैं—इसप्रकार मन-वचन-कायासे तथा कृत-कारित-अनुमोदना से निरंतर भावना कर्तव्य है।

अहा! उस समय 'तू शुद्ध है, बुद्ध है, उदासीन है, निर्विकल्प है'—ऐसी बातें नाटकमें भी आती थी; आजकल तो धर्मस्थानोंमें भी व्रत करो, तप करो, मन्दिर बनवाओ, तुम्हारा कल्याण होगा—ऐसी बाहरकी—शुभरागकी तथा क्रियाकाण्ड की—बातें चलती हैं यद्यपि शास्त्रमें ऐसा आता अवश्य है कि—एक छोटी जौ जितनी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराये तो उसे इतना पुण्य बँधता है कि जिसकी महिमा सरस्वती भी नहीं गा सकती। परन्तु वह किसकी बात है? जो सम्यक्त्वी है, आत्मानुभवी है, अंतरमें पुण्य-पापके विभावसे भिन्न आत्माके आनन्दका स्वाद लेनेवाला है वह जीव श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा, भले ही छोटी हो, स्थापित करे तो उसे बहुत उच्च पुण्य बँधेगा। अंतरमें जिसे पुण्यमें हेयबुद्धि हुई है और शुभाशुभ रहित ऐसा निज शुद्ध ज्ञायक आत्मा ही एकमात्र उपादेय है ऐसी रुचि तथा अनुभूति हुई है, उसे हेयबुद्धिसे जो पुण्यपरिणाम आते हैं उसकी बात है। जिसे पुण्यमें उपादेयबुद्धि—सुखबुद्धि है ऐसे मिथ्यादृष्टिकी बात नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि–सत्समागम द्वारा पुण्य-पापसे भिन्न निज शुद्धात्मदेव को अंतर में बराबर जाने तो चैतन्य ज्ञायकप्रभुकी अगाधता, अपूर्वता और अनंतता भासित हो और उसका अनुभव हो।

'चैतन्यकी महिमा पूर्वक संसारकी महिमा छूटे तभी चैतन्यदेव समीप आता है।'

शुभरागका, विकल्पका, एक समयकी पर्यायका, अरे! गुणभेदका भी अंतरमें से महिमा छूट जाय, अंतरमें अनंत आनन्दका नाथ विराजता है उसकी महिमा लगे, तभी समस्त रागके विकल्पसे—फिर भले तीर्थंकर नामकर्म बँधे ऐसा विकल्प हो—उस पार ऐसा निज चैतन्यदेव दृष्टिमें आता है, अनुभवमें आता है। समझमें आता है कुछ?

अंतरमें ज्ञायकदेवकी महिमा आये तब सारे संसार का रस छूट जाता है, और तभी भगवान आत्मा समीप आता है। भाई! यह तो भागवत कथा है भागवत कथा! निज ज्ञायक भगवानको बतलानेवाली है और वीतराग सर्वज्ञ भगवानकी कही हुई है इसलिये यह भागवत कथा है। अनंत, अगाध शक्तियोंके धारक ऐसे निज अभेद चैतन्यस्वरूपका अंतरमें रस जागृत हो उसे संसारका रस छूट जाता है—विषयकी वासनामें से सुखबुद्धि उठ जाती है। अंतरमें जहाँ अतीन्द्रिय आनन्दके नाथ की—आनन्दस्वरूप निज ज्ञायक प्रभुकी—महिमा आयी, दृष्टिमें उसका स्वीकार एवं सत्कार हुआ वहाँ शुभभाव की भी महिमा उड़ जाती है—ज्ञानी को व्रतादि के शुभ परिणाममें भी राग और दुःख लगता है, उसमें से सुखकी बुद्धि उड़ जाती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षमार्गप्रकाशक में तथा समयसारनाटकमें भी कहा है कि—जिसे छठवें गुणस्थानमें भावलिंग—आत्माके अनुभवकी उग्रता–प्रचुरता—प्रगट हुई है उसे जो व्रतादि २८ मूलगुणका विकल्प उठता है वह प्रमाद दशा, पराधीनता और जगपंथ है, शिवपंथ नहीं है।

घटमें है प्रमाद जब ताईं, पराधीन प्रानी तब ताईं।
जब प्रमादकी प्रभुता नासै, तब प्रधान अनुभौ परगासै॥

जब तक हृदयमें प्रमाद है तब तक जीवकी परिणति पराधीन है; जब स्वभावके उग्र अवलम्बनसे प्रमादका जोर नष्ट होता है तब शुद्धात्माके अनुभवका प्रचण्ड उदय होता है।

ता कारन जगपंथ इत, उत सिवमारग जोर।
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर॥

–इसलिये व्रतादिके रागरूप प्रमाद भी संसारका पंथ है, और शुद्धात्माका प्रचुर अनुभव मोक्षका पंथ है; प्रमादी जीवकी गति संसारकी ओर है और अप्रमादी जीवकी गति मोक्षकी ओर है।

अहा! छठवें गुणस्थानमें व्रतादिका शुभराग है वह भी प्रमाद और संसार है। आजकल तो शुभभावसे धर्म होगा ऐसा मानकर प्रसन्न हो उठते हैं। अरे, प्रभु! यह तू क्या करता है? व्रत-समितिका विकल्प भी राग है, तेरी जाति नहीं है, संसारकी जाति है; तू तो स्वभावसे मुक्त स्वरूपहै न, प्रभु! व्रतादिके शुभ विकल्प रहित आत्मानुभवस्वरूप अप्रमाद दशा ही एक मोक्ष की ओर झुकती है, पूर्ण परमानन्द दशाका कारण है। यह तो छठवें-सातवें गुणस्थानमें वीतराग आराधनामें झूलते भावलिंगी मुनिराजकी बात है। परन्तु जो ऐसा मानता है कि शुभ क्रिया करते-करते धर्म हो जायगा उसको मोक्षमार्ग कैसा? वह तो अभी मिथ्यात्वदशामें ही पड़ा हुआ है।

प्रश्न :—पहले अशुभ छोड़कर शुभमें आये, फिर शुभको भी छोड़कर शुद्धमें आये—ऐसा क्रम है न?

उत्तर :–भाई! समाधिशतकमें यह बात ली है, वह किसके लिये? मिथ्यात्वभाव सबसे बड़ा पाप है; वह छूटे बिना परमार्थसे अशुभ कभी छूटता ही नहीं। वहाँ तो, जिसे मिथ्यात्वका महापाप छूट गया है, शुभाशुभरागसे भिन्न निज ज्ञायकस्वभावका अनुभव हुआ है, परन्तु अस्थिरताका राग नहीं छूटा है ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानीके लिये कहा है कि–

अव्रतको परित्याग कर व्रतमें रहे सुनिष्ठ;
व्रतको भी फिर परिहरे लही परम पद निज॥

जिसे समस्त प्रकारके रागसे भिन्न निज शुद्धात्माकी प्रतीति हुई है वह जीव, जबतक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धात्माके अवलम्बनका मन्द पुरुषार्थ होता है तब तक, अव्रतके परिणामको त्यागकर व्रतके परिणाममें रहता है; और जब स्वयं शुद्धात्माके अवलम्बन का अंतरमें उग्र पुरुषार्थ करता है तब आत्माके परम वीतराग पदको प्राप्त करके व्रतके परिणाम भी छोड़ देता है। 'इष्टोपदेश' में श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं;

मित्र राह देखत खड़े, इक छाया अेक धूप;
व्रत पालन से देवपद, अव्रत दुर्गति कूप।

एक धूपमें और दूसरा छाया में—इसप्रकार दो मित्र तीसरेकी वाट देखकर खड़े हों, उनमें जो धूपमें खड़ा है वह ताप के कष्टपूर्वक प्रतीक्षा करता है और जो छायामें खड़ा है वह शातापूर्वक प्रतीक्षा करता है; उसीप्रकार जिसे आत्माका अनुभव प्रगट हुआ है ऐसा एक जीव अव्रतके तापमें रहकर और दूसरा जीव आत्मशुद्धि सहित व्रतकी छायामें रहकर परमात्मपदकी प्रतीक्षा करता है, उन दोनोंमें अंतर है। वहाँ वह दोनों आत्मज्ञानियोंकी बात है; परन्तु जो रागको धर्म मानता है ऐसे मिथ्यादृष्टि की बात नहीं है। मिथ्यादृष्टि को तो अभी मिथ्यात्वका महान पाप पड़ा हुआ है, उसे शुभ द्वारा अशुभ टालना कहाँ रहा? आता है कुछ समझमें?

यहाँ कहते हैं कि—रागके प्रेममें भगवान दूर हो जाता है और रागकी महिमा टूटनेसे भगवान चैतन्यदेव समीप आता है। अहा! भाषा तो सादी गुजराती है!

'हे शुद्धात्मदेव! तेरी शरणमें आनेसे ही यह पंचपरावर्तनरूपी रोग शान्त होता है।'

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव–यह जीवको परिभ्रमण करनेके पाँच परावर्तन हैं। प्रभु! तेरी—ज्ञायकदेवकी—शरणमें आनेसे उस पंचपरावर्तनके दुःखका अंत आता है। पंचपरावर्तनमें भव और भाव दोनों आगये। भावमें शुभ और अशुभ दोनों आ गये। वे दोनों कर्मचक्र हैं। प्रभु! अंतरमें तेरी ऐसी वस्तु है कि उसकी शरणमें जाने से राग का प्रेम और महिमा छूट जायगी। प्रभु! अपने स्वभावमें जा, तो तेरे परिभ्रमणका अंत आ जायगा। अपने स्वभावकी शरणमें जानेसे शुभाशुभ भावपरावर्तनका अंत आ जायगा।

'जिसे चैतन्यदेवकी महिमा आयी उसे संसारकी महिमा छूट ही जाती है।'

पुत्र योग्य हो, आमदनी अच्छी हो, बाहरी बड़प्पन मिला हो, तो उसमें मिथ्यादृष्टि को महिमा लगती है। भाई! यह सब लौकिक और मूर्खतापूर्ण बातें हैं। जिसे अंतरमें चैतन्यस्वभावकी महिमा भासे उसे बाहरकी महिमा और रस छूट जाता है।

'अहो! मेरे चैतन्य देवमें तो परम विश्रान्ति है, बाहर निकलने पर तो अशान्ति का ही अनुभव होता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! निज ज्ञायक आत्मा स्वयं ही विश्रान्तिगृह—आरामका पवित्र स्थान है। जीव संसारकी थकान उतारकर अंतरमें विश्राम करता है, अंतरमें आनन्दके नाथमें स्थिति करके विश्रांति लेता है, निज विश्रान्तिगृहमेंसे बाहर निकलकर शुभभावमें आना वह भी अशान्ति—दुःख—ही लगता है।

'मैं निर्विकल्प तत्त्व ही हूँ। ज्ञानानन्दसे भरा हुआ जो निर्विकल्प तत्त्व, बस वही मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये।'

स्त्री, पुत्र, परिवार, बड़े मकान या कोई भी विकल्प—हमें यह कुछ नहीं चाहिये, हमें तो अपने आनन्दके नाथ—निर्विकल्प ज्ञानानन्दसे भरपूर आत्मा—की आवश्यकता है, अन्य कुछ नहीं चाहिये—ऐसी भावना सम्यग्दृष्टिको निरंतर वर्तती है।

बेन विदेहसे आयी हैं। उन्हें तो असंख्य अरब वर्षका जातिस्मरण ज्ञान है। असंख्य अरब वर्षकी बात, कल की बात आज दिखायी दे इसप्रकार दिखती है। आत्मजातिका ज्ञान होना वह यथार्थ जातिस्मरण है—अनंत अनंत गुणोंका नाथ उसका ज्ञान अंतरमें होना वह (परमार्थ) जातिस्मरण है।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८२

ता. १-६-७८

वचनामृत–२०६

ज्ञानीने चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण किया है। अभेदमें ही दृष्टि है : 'मैं तो ज्ञानानन्दमय एक वस्तु हूँ'। उसे विश्रान्तिका महल मिल गया है, जिसमें अनंत आनन्द भरा है। शान्तिका स्थान, आनन्दका स्थान—ऐसा पवित्र उज्ज्वल आत्मा है। वहाँ—ज्ञायकमें—रहकर ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टि तो अभेद पर ही है। ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टिका जोर इतना है कि अपनेको अपनी ओर खींचता है॥२०६॥

'ज्ञानीने चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण किया है।'

क्या कहते हैं? धर्मात्मा ज्ञानी कहलाता है। उस ज्ञानीने क्या किया है? उसने अपने ज्ञायक भावके साथ एकत्व—निज चैतन्य तत्त्वके सहज अस्तित्वका ग्रहण—किया है। ग्रहण करना अर्थात् त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावमें एकत्वबुद्धि करना। जिसे धर्मी होना है उसे अपनी वर्तमान पर्याय द्वारा अपने चिदानन्दमय ध्रुव अस्तित्वको पकड़ना चाहिये। राग और पर्यायकी जो अनादिसे पकड़ है वह मिथ्यादृष्टि है। जब आनन्दके सागर, ज्ञानके सागर ऐसे अपने स्वभाव—चैतन्य ज्ञायक प्रभु—पर दृष्टि लगाकर उसमें एकाकार हो तब सम्यग्दर्शनरूप धर्मका प्रथम सोपान प्रगट होता है।

द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथामें कहा है : दुविउं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'। निश्चय और व्यवहार—आरोपित—यह दोनों मोक्षमार्ग ध्यानमें प्राप्त होते हैं। अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावमें ध्यान लगानेसे, त्रैकालिक ध्रुव स्वभावको ध्यानका विषय बनानेसे चैतन्यके ध्रुव अस्तित्वका जो ग्रहण हुआ वह मोक्षमार्ग है। वह, कहीं शास्त्रज्ञान से या व्रतादिके शुभ विकल्पसे प्राप्त नहीं होता। यहाँ तो निज चैतन्यके अस्तित्वसामान्यको ग्रहण करनेकी बात है; फिर भले बोलना आये या न आये, समझाना आये या न आये—वह कोई वस्तु नहीं है। भाई! यह मार्ग कोई अलग है! स्वयं भगवान तथापि जन्म-मरण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करके जीव हैरान हो गया है। 'परमात्मप्रकाश' में कहा है : जिसने राग और पर्यायका आदर किया है उसको भगवान आत्माका अनादर है; उसे ज्ञायक आत्मा हेय है। धर्मी जीवकी तो त्रैकालिक अभेद निज ज्ञायक पर दृष्टि है, क्योंकि उसने पर्यायमें उसका आश्रय ग्रहण किया है।

द्रव्यस्वभावका दृष्टिमें आश्रय हुआ है इसलिये ज्ञानीको 'रागसे मैं सदा भिन्न हूँ' ऐसे भेदज्ञानकी धारा नित्य निरंतर चलती ही रहती है। उसे घड़ी-घड़ी नया-नया भेदज्ञान नहीं करना पड़ता। अहा! मार्ग अति सूक्ष्म है भाई! बहुत लिखना-पढ़ना आये, बोलना आये अथवा शुभराग के अनेक विकल्प करे तो अंतर सन्मुखताका ध्यान हो—ऐसी यह वस्तु नहीं है। अब मुख्य मुद्देकी बात कहते हैं :–

"अभेदमें ही दृष्टि है : मैं तो ज्ञानानन्दमय एक वस्तु हूँ'।"

ज्ञानीको, 'मैं तो अखण्ड ज्ञानानन्दमय एक परिपूर्ण वस्तु हूँ' इसप्रकार अभेद त्रैकालिक निज ज्ञायकतत्त्वमें ही दृष्टि लगी है; पर्यायमें भले रागमय भाव आये, तथापि अंतरमें श्रद्धाका जोर ध्रुव ज्ञायक पर ही होता है; ध्रुव ध्येय परसे दृष्टि किंचित् नहीं हटती, च्युत नहीं होती। 'मैं तो अभेद ज्ञानानन्दमय हूँ'—वहाँ ज्ञान और आनन्दमय हूँ' ऐसा भी नहीं; वह तो भेद हो गया। धर्मीकी दृष्टि तो सदा भीतर अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय अभेद ज्ञायक पर ही होती है।

'उसे विश्रान्तिका महल मिल गया है, जिसमें अनंत आनन्द भरा है।'

अहा! ज्ञानीको अनंत अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर निज ज्ञायक-विश्राम-धाम मिल गया है। विश्राम-धाम अर्थात् विश्रान्तिका महल। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।' जो, रागादि विभावसे रहित शुद्ध है, सहज ज्ञानमय है, निज असंख्यप्रदेशी चैतन्यघन है और स्वयं प्रकाशमान, सुखका भण्डार है, ऐसा जो निज ज्ञायक वही विश्रांति का महल है। जिसने ऐसे ज्ञायकतत्त्वका अंतरदृष्टिमें स्वीकार किया उसे सुखभण्डार ऐसा विश्रान्तिका महल मिल गया। अनादिकालसे जो अज्ञान और पुण्य-पापके भावमें भटकता था, उसे जहाँ अंतर ज्ञायककी दृष्टि हुई वहाँ विश्राम लेने का स्थान मिल गया। अहा! सुखधाम तो अंतरमें भगवान आत्मा है, बाहर के यह बँगले स्त्री-पुत्र, मोटर-गाड़ी आदि सुखका स्थान नहीं है, वे तो दुःखका निमित्त हैं। निमित्त कहीं दुःखका धाम नहीं हैं, परन्तु निमित्तके लक्षसे जीव स्वयं जो रागादिभाव करता है वह दुःखका धाम है। वास्तवमें तो आत्मा अंतरमें आनन्द का विश्रामधाम है। आया कुछ समझमें?

अहा! यह तो बड़ी सुन्दर पुस्तक प्रकाशित हो गई! लोग पढ़ते हैं और प्रसन्न होनेके पत्र भी आते हैं। यहाँ कहते हैं कि—देव-गुरु आदि परके या रागके लक्षसे तो नहीं किन्तु एक समयवर्ती निज पर्यायके अथवा गुणभेदके लक्षसे भी अभेद चैतन्यधामकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्ति नहीं होती। पर्याय तो अंश है, व्यक्त है, और त्रैकालिक ज्ञायक आत्मा तो अंशी है, अव्यक्त है। समयसार की ४९ वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि—छह द्रव्य-स्वरूप ज्ञेय—लोक, रागादि कषायका समूह और क्षणवर्ती पर्याय—यह सब व्यक्त है और ज्ञायक—भगवान आत्मा—उन सबसे भिन्न होने से 'अव्यक्त' है।

भाई! तुझे खबर नहीं है कि अंतरमें अनंत-अनंत ईश्वरतासे भरपूर महाप्रभु भगवान आत्मा विराजता है। उसकी अनंत शक्तियोंमें एक प्रभुत्व नामक शक्ति है। ज्ञानीको अखण्ड प्रतापवंत स्वतंत्रतासे शोभायमान ऐसा प्रभुत्वमय विश्रान्तिका महल मिल गया है, जिसमें अकेला भरपूर आनन्द भरा है। दुःख वह विकृत दशा है और उस विकृत दशाकी सीमा है, मर्यादा है, इसलिये वह दूर हो सकती है। तीनलोकका नाथ जो निज ज्ञायक भगवान आत्मा उसे सीमा—मर्यादा नहीं है। उस असीम स्वभावमें विश्राम लेनेसे जीव वहाँ से कभी हटता नहीं है, वहाँ कभी थकता नहीं है।

बेनके बोलमें आता है कि—बाहरके सर्व कार्योंमें सीमा—मर्यादा होती है। अमर्यादित तो अंतर्ज्ञानी एवं आनन्द है। वहाँ सीमा-मर्यादा नहीं है। अंतरमें—स्वभावमें मर्यादा नहीं होती। जीवको अनादिकालसे जो बाह्य वृत्ति है उसकी यदि मर्यादा न हो तब तो जीव कभी वहांसे हटेगा ही नहीं, बाह्यमें ही सदा रुका रहेगा। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्तिसे भरा है।

पर्यायमें जो पराश्रित सुख–दुःख का वेदन है वह कर्मफलचेतना—विकारी परिणाम—है। जीव को शुभाशुभ भावके कर्तृत्वरूप कर्मचेतना और सुख–दुःखके भोक्तृत्वरूप कर्मफलचेतना के परिणाम अनादिसे हैं। वास्तवमें तो वह एक समयका विकारी भाव है। उसकी मर्यादा है। 'अनुभवप्रकाश' में पं. दीपचन्दजीने कहा है कि–'तेरी शुद्धताकी तो क्या बात! परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी है' क्योंकि अनंत तीर्थंकरोंके पास गया, वाणी सुनी, समवसरण देखे, तथापि तूने अपनी अशुद्धताका नाश नहीं किया। वहाँ जाकर भी भीतर अभिप्रायमें ऐसा जोर—आग्रह रखा कि–'मैं तो दया-दानादि पुण्यका कर्ता हूँ, रागयुक्त हूँ'; अंतरमें शुद्धताकी महत्ता आनी चाहिये वह नहीं आयी, अंतरमें पूर्णानन्दसे भरपूर विश्रान्तिका महल है उसकी महत्ता भासित नहीं हुई।

'शान्तिका स्थान, आनन्दका स्थान–ऐसा पवित्र उज्ज्वल आत्मा है।'

पुण्य-पापकी अशुचिसे रहित, परमशुचि, परम पवित्र तथा परम उज्ज्वल ऐसा निज शुद्धआत्मा ही अंतरमें शान्तिका धाम है, आनन्दका महल है। अहा! वह महापवित्र ज्ञायक प्रभु' वाणीमें किस प्रकार आये? वाणी जड़ और भगवान आत्मा चेतन; वाणी चेतनसे विरुद्ध स्वभाववाली है। उसमें चेतनकी व्याख्या कितनी आयगी? मात्र संकेत आयेंगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु! तेरी पवित्र और उज्वल वस्तुमें दया-दानादि औदयिक भावकी गंध भी नहीं है। परन्तु अंतरमें आनन्दमूर्ति ज्ञायक आत्माकी प्रतीति हुए बिना, दृष्टि हुए बिना यह बात नहीं बैठेगी।

'वहाँ—ज्ञायकमें—रहकर ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टि तो अभेद पर ही है।'

शान्तिस्थान, आनन्दस्थान ऐसे निज ज्ञायक ध्रुव तत्त्वमें रहकर ज्ञानी ज्ञान सब करता है—शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों का, उनके स्वभाव-विभावपनेका, उनके सुख-दुःखरूप वेदनका, उनके साधक-बाधकपने का ज्ञान करता है--परन्तु, उस समय भी उसकी दृष्टि तो अंतरमें अभेद द्रव्यपर ही है। दृष्टि अभेद द्रव्यपर होने पर भी वह अपना, रागका और पर्याय का ज्ञान करता है, संयोगी वस्तुपर लक्ष जाय उसका भी ज्ञान करता है। ज्ञानमें तो सब आता है, परन्तु रुचिमें उसका अवलम्बन नहीं होता—उसपर अभिप्रायका जोर नहीं होता; जोर तो सदैव अखण्ड शुद्ध द्रव्यपर ही होता है।

पूर्णानन्द अभेद ज्ञायकमें दृष्टि स्थापित करके ज्ञानी सबका—शुभभाव हो, देव-शास्त्र-गुरु तथा जिन प्रतिमादि मिलें उनका—अपनेमें रहकर ज्ञान करता है। ज्ञानका स्व-परप्रकाशक स्वभाव होनेसे, परको भी जाननेकी उसकी शक्ति है। ज्ञानमें जानता सब है, परन्तु दृष्टिका विषय ज्ञायक ध्रुव आत्मा तो अभेद एकाकार है। दृष्टि होने पर साथ जो ज्ञान हुआ वह अपने त्रैकालिक द्रव्यस्वभावको, पर्यायको तथा परको भी जानता है।

प्रश्नः—जिसे अभेद ज्ञायककी दृष्टि तथा अनुभव हुआ है, उसकी पर्यायमें कोई व्यवहार है या नहीं? या अकेला निश्चय ही है?

उत्तरः—साधक जीवको दृष्टिके आश्रयभूत भूतार्थ ज्ञायक आत्मा का निश्चय हुआ है, अनुभव हुआ है, तथापि पर्यायमें अभी अशुद्धता और अल्पता है। समयसारकी १२वीं गाथामें कहा है कि–'ववहारदेसिदा पुण'–अपरम भावे स्थितने व्यवहारनो उपदेश छे। उसकी टीका करते हुए अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है : '....अशुद्धद्रव्यादेशितयोपदर्शितप्रतिविशिष्टैक भावानेकभावो व्यवहारनयो विचित्रवर्णमालिकास्थानीयत्वात्परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्।....' साधकदशामें अभेद ज्ञायक के आश्रयसे प्रगट हुई अंशतः शुद्धता और उसके साथ भूमिकाके अनुरूप वर्तता हुआ अशुद्धताका अंश—वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आश्रयके लिये तो एक शुद्ध परम ज्ञायकभाव ही प्रयोजनवान है; पर्यायके भेदरूप व्यवहार मात्र जाना हुआ प्रयोजनवान है, आश्रयके लिये प्रयोजनवान नहीं है। साधकभूमिकामें वर्तती अल्पशुद्धि और उसके अनुरूप वर्तता हुआ राग उस काल—उस भूमिकामें—जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझमें आता है कुछ? अहा! मार्ग भिन्न है भाई!

क्या कहा? दृष्टि तो अभेद ज्ञायक पर ही है; उसके साथ जो ज्ञान हुआ वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता सब है। जानने में क्या दोष? उस समय भी दृष्टि तो अभेद द्रव्यपर ही है। अहाहा! यहाँ तो सार-सारकी बात है।

'ज्ञान सब करता है परन्तु दृष्टिका जोर इतना है कि अपने को अपनी ओर खींचता है।'

भूमिकानुसार रागादि भाव आते हैं, ज्ञान सबको जानता भी है, परन्तु अंतरमें दृष्टिका इतना जोर है कि अपने परिणामप्रवाहको अपने ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी ओर खींचता है। अहाहा! अंतरकी ऐसी बातें हैं।

*

वचनामृत—२०७

हे जीव! अनंतकालमें शुद्धोपयोग नहीं किया इसलिये तेरी कर्मराशि क्षय नहीं हुई। तू ज्ञायकमें स्थिर हो जा तो एक श्वासोच्छ्वासमें तेरे कर्मोंका क्षय हो जायगा। तू भले ही एक है परन्तु तेरी शक्ति अनंत है। तू एक और कर्म अनंत; परन्तु अनंत शक्तिवान तू एक ही सबका सामना करनेके लिये पर्याप्त है। तू सोता है इसलिये सब आते हैं, तू जाग जाये तो सब अपने आप भाग जायँगे।।२०७।।

'हे जीव! अनंतकालमें शुद्धोपयोग नहीं किया इसलिये तेरी कर्मराशि क्षय नहीं हुई।'

शुद्धोपयोग है वह, आत्माकी निर्मल पर्याय है; शुभाशुभ उपयोग भी आत्माकी ही मलिन पर्याय है।

हे जीव! अनंतकालमें तूने कभी शुद्धोपयोग नहीं किया। शुभ-अशुभ भाव तो अनंत बार किये। अरे! निगोद और एकेन्द्रियमें भी क्षण-क्षण संक्लेश और विशुद्धिके परिणाम होते हैं; इसलिये संक्लेश और विशुद्धिके तथा शुभ और अशुभके परिणाम वह कोई नवीन वस्तु नहीं है, अपूर्व वस्तु नहीं है।

प्रश्न :—निगोदमें देव-शास्त्र-गुरु तथा दया-दान-व्रत आदिका योग नहीं है, तो वहाँ परिणामोंमें विशुद्धता किस प्रकार होती है?

उत्तर :—भाई! निगोदमें भी आत्मा है न? उसे भी परिणामों में किंचित् संक्लेशकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मंदता होती है; उसके फलमें वह मनुष्य भी होता है। आत्मा अपने स्वरूप का आश्रय छोड़कर पराश्रयरुप परिणमे तो उसको संक्लेश-विशुद्धिरूप कर्मधारा चलती है। ज्ञानीने रागसे भिन्न अपने ज्ञानस्वरूप को ग्रहण किया है इसलिये उसे अस्थिरता के कारण पर्यायमें अल्प रागादि होने पर भी अंतरमें निरंतर भेदज्ञानकी निर्मल धारा-धर्मधारा-चलती है।

अज्ञानी जीवने अनादिकालसे, 'मैं स्वभावसे सदा शुद्ध हूँ' ऐसा उपयोग कभी किया नहीं है इसलिये उसकी कर्मराशि क्षय नहीं हुई। क्या कहते हैं? शुद्धोपयोग अपने शुद्ध ज्ञायक आत्माके अवलम्बन से होता है। वह शुद्ध-उपयोग हे जीव! तूने कभी प्रगट नहीं किया। शुद्धोपयोग है तो आत्माकी शुभाशुभ मलिनता रहित निर्मल पर्याय; परन्तु वह होती है त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकका आश्रय करनेसे। उससे कर्मराशि क्षय हो जाती है।

श्री मोक्षमार्गप्रकाशकमें प्रश्न उठाकर कहा है कि :—शुभभावसे पापकी निर्जरा और पुण्यका बंध तथा शुद्धभाव से दोनोंकी निर्जरा होती है ऐसा क्यों नहीं कहते? वहाँ उसका उत्तर देते हुए ऐसा कहा है कि—मोक्षमार्गमें स्थितिका घटना तो सर्व प्रकृतियोंमें होता है, वहाँ पुण्य-पापकी विशेषता है ही नहीं; तथा पुण्य प्रकृतियोंमें अनुभागका घटना शुद्धोपयोगसे भी नहीं होता, परन्तु ऊपर—ऊपर की पुण्यप्रकृतियोंके अनुभागका तीव्र बंध—उदय होता है; तथा पापप्रकृतियोंके परमाणु पलटकर शुभप्रकृतिरूप हों ऐसा संक्रमण शुभ और शुद्ध दोनों भाव होने पर होता है। इसलिये तू कहता है ऐसा नियम संभवित नहीं है। ......शुद्धभावसे भी पुण्यका रस बढ़े ऐसा ही कोई स्वभाव है! अहा! ऐसी बात है। यहाँ तो थोड़ा सार-सार कहते हैं : हे जीव! तूने शुद्धोपयोग नहीं किया इसलिये कर्मराशि क्षय नहीं हुई।

'तू ज्ञायकमें स्थिर हो जा तो एक श्वासोच्छ्वासमें तेरे कर्मोंका क्षय हो जायगा।'

अपनी प्रभुता भरी भगवत्शक्तिमें तू स्थिर हो जा, अपनी चैतन्य चमत्कारमय महिमामें जम जा, तो एक श्वासोच्छ्वास जितने समयमें तेरे कर्मोंका क्षय हो जायगा। प्रवचनसार में कहा है :—

अज्ञानी जे कर्मो खपावे लक्ष कोटि भवो वडे,
ते कर्म ज्ञानी त्रिगुप्त बस उच्छ्वासमात्रथी क्षय करे।

अपने ज्ञायक ध्रुव स्वभावमें ऐसा लीन हो जा कि वहाँसे बाहर निकलना हो ही नहीं—विकल्प आये ही नहीं; ऐसा होने से तेरा कर्मपुंज एक क्षणमें नष्ट हो जायगा। छहढालामें भी कहा है :

कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे,
ज्ञानीके छिनमें त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'तू भले ही एक है परन्तु तेरी शक्ति अनंत है।'

तू एक है और कर्मपरमाणु अनंत हैं। विभावपर्यायमें एक परमाणु निमित्त नहीं होता, परन्तु अनंत परमाणुओंकी बनी हुई कर्मरूप पर्याय उसमें निमित्त होती है। इतना तो तुझमें बल है। क्या कहा?

अशुद्धता की पर्याय अपने विपरीत पुरुषार्थके बलसे स्वयं करता है, तब सामने निमित्तरूपसे एक परमाणु नहीं होता, किन्तु अनंत कर्मपरमाणु होते हैं। एक डाकूके सामने दो सौ सिपाही रखना पड़ते हैं, वह डाकू का जोर सूचित करता है या सिपाही का? उसीप्रकार जीवके एक विभावपरिणामके सामने निमित्तरूप से अनंत कर्मपरमाणु हैं वह जीवका जोर सूचित करता है या कर्मपरमाणुका? निमित्तके जोरकी बात नहीं है। कर्मका जोर आत्मा पर किंचित् भी नहीं है।

निमित्तसे विकार होता है ऐसा है ही नहीं; निमित्तसे हो तो वह स्वयं उपादान हो जाय, परन्तु ऐसा तो नहीं होता स्वयं भले एक है, परन्तु अपनी शक्ति अनंत है। अनंत शक्तिशाली निज ज्ञायक प्रभुकी दृष्टि तथा उसमें स्थिरता करनेसे पर्यायमें रही हुई अशुद्धताका तथा उसमें निमित्तरूप जो अनंत कर्मपरमाणु थे उनका भी नाश हो जाता है; कर्मकी पर्याय अकर्मरूप हो जाती है।

प्रभु! तुझमें अनंतबल है। विकृत दशामें सामने निमित्त अनंत कर्मपरमाणु हैं, परन्तु उनका नाश करनेकी तुझमें अनंत शक्ति है। अशुद्धता टलती है तब कर्म भी स्वयं अपनी योग्यता से अकर्मरूप हो जाते हैं। निर्जरा होती है न? उसके तीन प्रकार हैं : (१) अशुद्धताका एकदेशनाश (२) निमित्तरूप कर्मका एकदेश क्षय और (३) शुद्धिकी एकदेश वृद्धि होना। उनमें दो जीवमें हैं और एक कर्मकी अवस्था है। अंतरमें शुद्धिकी वृद्धि होना वह मूल निर्जरा है। उसे प्रगट करनेकी शक्ति अपनेमें है। परमार्थसे कर्मका नाश आत्मा नहीं कर सकता, और अशुद्धताका नाश भी नहीं कर सकता, परन्तु त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकका अंतरमें आश्रय करने पर अशुद्धता उत्पन्न ही नहीं होती; उसने विभावका नाश किया ऐसा कहा जाता है। अंतरमें स्वभावके आश्रय से शुद्धता प्रगट की, तो असद्भूत-व्यवहारनय से अशुद्धता नष्ट की—ऐसा कहा जाता है।

'तू एक और कर्म अनंत; परन्तु अनंत शक्तिवान तू एक ही सबका सामना करनेके लिये पर्याप्त है।'

अनंतानंत गुणोंका स्वामी जो निज ज्ञायक आत्मा, उसमें एक वीर्य नामका गुण है। स्वरूपकी रचनाके सामर्थ्यस्वरूप स्वभाव वह वीर्यगुण है। क्या कहते हैं? उस गुणका गुण अर्थात् स्वभाव यह है कि पर्यायमें अनंत शुद्धिकी रचना करे। शुभाशुभकी रचना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करे वह स्वभाववीर्य नहीं है, वह तो नपुंसकता है। प्रभु! तुझमें इतनी शक्ति है कि जहाँ स्वभावमें उपयोग आया वहाँ तू स्वयं एक अनंत शक्तिवान ही पर्याप्त है; अनंत कर्मोंका तथा अशुद्धताका नाश करनेके लिये तू एक ही पर्याप्त है।

'तू सोता है इसलिये सब आते हैं, तू जाग जाये तो सब अपने आप भाग जायँगे।'

ज्ञानी व्यवहारमें सो गये हैं, निश्चयमें जागते हैं, और अज्ञानी व्यवहारमें जागते हैं और निश्चयमें सो गये हैं—अज्ञानीको निश्चयस्वभावके प्रति अत्यन्त दुर्लक्ष है। ज्ञानी स्वभावमें जागृत हैं और रागमें सो गये हैं। समाधितंत्रमें कहा है :

सूतो जे व्यवहारमां, ते जागे निजमांय;
जाग्रत जे व्यवहारमां, सुषुप्त आत्मामांय।।७८।।

जो व्यवहारमें उपेक्षावान है वह आत्माके कार्यमें उत्सुक है और जो व्यवहारमें उत्सुक है वह आत्माके कार्यमें उपेक्षावान है—लापरवाह है। मोक्षपाहुडमें में भी आता है न?

योगी सूता व्यवहारमां ते जागता निजकार्यमां;
जे जागता व्यवहारमां ते सुप्त आतमकार्यमां।।३१।।

ज्ञानीको पर्यायमें राग आता है परन्तु उसे स्वयं ज्ञाता रहकर जानते हैं; वह तो ज्ञानकी पर्यायका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। यहाँ कहते हैं कि—तू सोता है तो सब आते हैं, तू जाग जा तो वे सब अपने आप भाग जायँगे। अहा! बेनके वचनामृतकी भाषा तो गुजराती है, इनका हिन्दी अनुवाद भी हो गया है; अभी तो अन्य भाषाओंमें भी होगा।

जहाँ सिंहकी गर्जना होती है वहाँ हिरन और बकरे पूंछ उठाकर भाग जाते हैं, काँपने लगते हैं; उसीप्रकार भगवान ज्ञायक आत्मा अंतरमें ज्ञान एवं आनंदकी जागृतिमें आ जाय तो अशुद्धता और कर्म भाग जाते हैं। भाई! यह मात्र बातें नहीं, परन्तु वस्तुका स्वरूप है।

*

बेन तो बेन ही हैं। उनके जैसा दूसरा कोई नहीं है। यहाँ हमें कहाँ कुछ छुपाकर रखना है! बेन तो अजोड़ हैं; अकेली ही हैं। हमारे यहाँ कुछ गुप्त—व्यक्तिगत है ही नहीं। *—पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८३

ता. २–६–७८

वचनामृत–२०८

बाह्य दृष्टिसे कहीं अंतर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आत्मा बाहर नहीं है; आत्मा तो अंतरमें ही है। इसलिये तू अन्यत्र कहीं मत जाना, परिणामको कहीं भटकने मत देना; उन्हें एक आत्मामें ही बारम्बार लगा; बारम्बार वहीं जाना, उसीको ग्रहण करना। आत्माकी ही शरणमें जाना। बड़ेके आश्रयसे ही सब प्रगट होता है। अगाध शक्तिवान चैतन्य-चक्रवर्तीको ग्रहण कर। उस एक को ही ग्रहण कर। उपयोग बाहर जाये परन्तु चैतन्यका अवलम्बन उसे अंतरमें ही लाता है। बारम्बार...बारम्बार ऐसा करते...करते (स्वरूपमें लीनता जमते....जमते) क्षपकश्रेणी प्रगट होकर पूर्ण हो जाता है। जो वस्तु है उसी पर अपनी दृष्टिकी डोर बाँध, पर्यायके अवलम्बनसे कुछ नहीं होगा।२०८।

'बाह्य दृष्टिसे कहीं अंतर्दृष्टि प्रगट नहीं होती।'

क्या कहते हैं? कि–बाह्य दृष्टि से—निमित्ताधीन दृष्टिसे, रागाधीन दृष्टिसे तथा पर्यायाधीन दृष्टिसे—अंतरमें ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि प्रगट नहीं होती। पुण्य-पाप एवं दया-दानादिके भाव जो अपना स्वरूप नहीं हैं उन्हें अपना मानने वाले जीव बहिरात्मा हैं। जिसकी दृष्टि राग और पर्यायपर है ऐसे बहिर्दृष्टि जीवको, उस दृष्टिके द्वारा अंतर्दृष्टि नहीं हो सकेगी। जीव जब अंतर्दृष्टि करे, तब उसे अंतर ध्यानमें सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति प्रगट होती है।

'आत्मा बाहर नहीं है; आत्मा तो अंतरमें ही है।'

भगवान आत्मा बाहर कहीं नहीं है, पर्यायके समीप अंतरमें ध्रुव ज्ञायकरूपसे विद्यमान है। जबतक पर्याय पर दृष्टि है तब तक अंतरमें त्रैकालिक ध्रुववस्तु पर दृष्टि नहीं जायगी। दृष्टि स्वयं श्रद्धागुणकी पर्याय है। पर्यायके ही समीप अंतरमें ध्रुव पाताल—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तल है। उस ध्रुव तल पर दृष्टि लगाने से दृष्टि सम्यक् होती है। दृष्टिके आश्रयभूत त्रैकालिक ज्ञायक आत्मा कहीं बाहर नहीं है। अंतरमें जो ध्रुव ज्ञायक भाव है वह एक समयकी निर्मल पर्यायमें नहीं आता, तब फिर रागमें तो कहाँ से आयगा? आत्मा यदि बाहर–शरीरादि बाह्य पदार्थोंमें तथा पुण्य-पापके बाह्यभावोंमें—नहीं है तो बाह्य दृष्टिसे अंतरात्मदृष्टि किस प्रकार प्राप्त होगी? आत्मा रागादि भावोंमें तथा पर्यायमें कहाँ है कि जिससे बाह्यदृष्टिसे अंतर्दृष्टि होगी? रागकी पर्यायसे भी आत्मा कथंचित् भिन्न है और वर्तमान पर्याय जितना भी वह नहीं है, वह तो अंतरमें त्रिकाल शुद्ध अखण्ड एक ज्ञायकभाव है। अहा! ऐसी बात है। नहीं समझते इसलिये निश्चयाभासी कहते हैं। किसीको ऐसा स्पष्ट वस्तुस्वरूप न बैठे तो क्या किया जाय प्रभु? कहा है न!–

जामें जितनी बुद्धि है उतनी देय बताय।
वाको बुरो न मानिये, और कहाँ से लाय॥

पर्याय और रागसे तो ज्ञायक आत्मा अंतरमें भिन्न है। अहा! आठ वर्षका बालक भी यह बात समझे तो केवलज्ञान प्राप्त कर ले! जहाँ अपने ज्ञायकस्वभाव का अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्द झरते अद्भुत रसका स्वाद लिया, वहाँ वह अपनी माता से कहता है:

अज्जेव धम्मं पडवज्जयामो, जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो।
अणागयं णेव य अत्थि किंची, सद्धा खमंणे विणइत्तु रागं॥

माता! मुझे संयमधर्म अंगीकार करनेकी अनुमति दो। मैं अपने आनन्दके विशेष वेदन के लिये वनमें जाता हूँ। जिसने अंतर्मुखदृष्टि द्वारा अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लिया है, स्वानुभूति प्रगट की है उस स्वानुभूतिजनित आनन्द के विशेष स्वाद के लिये अंतरके वैराग्यभीने भावपूर्वक अपनी मातासे कहता है : हे माता! हमारी रुचि अंतरमें आनन्दनिधान आत्मा के सिवा अन्यत्र नहीं लगती; अंतरमें दृष्टिके विषयभूत जो ज्ञायक स्वभावी ध्रुव आत्मा है उस परसे हमारी रुचि बिलकुल नहीं हटती। उस रुचिके जोरसे विशेष आनन्द प्राप्त करने हेतु हम वनमें जा रहे हैं। हे जनेता! पुत्र मोहवश तुझे रोना हो तो एक बार रो ले; परन्तु हम शपथ लेते हैं कि अब पुनः दूसरी माताको नहीं रुलायँगे—पुनः अवतार नहीं लेंगे, इसी भव में भवातीत होकर पूर्ण परमात्मदशाको प्राप्त करेंगे।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा बाह्यमें—निमित्तमें, रागमें और पर्यायमें—नहीं है तो तुझे बाहर कहाँसे मिलेगा? तू बाहर खोजता है, परन्तु वह तो अंतरमें है; तू अंतरमें जा; जहाँ भगवान है वहाँ जा।

प्रश्न :—भगवान तो मन्दिरमें होते हैं न?

उत्तर :—तेरा भगवान वहाँ कहाँ है? वह तो यहाँ देह–देवालयमें है। भगवान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक आत्मा यदि अपनी एकसमयवर्ती पर्यायमें भी नहीं है तो दया, दान, व्रत या तप में कहाँ से आया? निमित्तमें तो होगा ही कहाँ से? निमित्तसे अत्यन्त भिन्न और विभावसे रहित ऐसा निजशुद्ध ज्ञायक आत्मा अंतरमें है—देह-देवालयामें अपना ज्ञायक प्रभु भीतर भिन्न विराजमान है।

'इसलिये तू अन्यत्र कहीं मत जाना, परिणामको कहीं भटकने मत देना; उन्हें एक आत्मामें ही बारम्बार लगा; बारम्बार वहीं जाना, उसीको ग्रहण करना।'

बाह्यदृष्टि होनेसे जीव आत्माको खोजनेके लिये बाहर प्रयत्न करता है, परन्तु आत्मा अन्यत्र कहीं नहीं है। भगवानके दर्शन करने के भाव आयें, परन्तु भगवानमें तेरा आत्मा नहीं है; वह भी तुझसे पर हैं। अंतरमें एक समय की पर्याय के समीप जो ध्रुव ज्ञायक तत्त्व है वही तेरा आत्मा है। यदि तुझे अपने आत्मप्रभुको प्राप्त करना हो तो तुझे मात्र अंतर्मुख होना है; कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है परिणामों को कहीं—अशुभ या शुभमें—भटकने मत देना। अपने परिणामों को बारम्बार अंतर आत्मामें लीन कर। वहाँ अंतरमें पूर्णानन्द भगवान आत्मा विराजमान है। बारम्बार वहाँ अंतरमें जा। अज्ञानी राग और पुण्यमें अपना अस्तित्व मानता है, इसलिये वह आत्माको बाहर खोजता है, बाहर भटकता है। दया-दानादि बाह्य भावोंसे आत्माकी प्राप्ति होगी ऐसा माननेवाला बहिरात्मा है, मिथ्यादृष्टि है। भाई! बाह्य दृष्टि छोड़कर अंतरमें ज्ञायकको पकड़, उसीको ग्रहण कर; परिणामों को उस ओर ले जा।

'आत्माकी ही शरणमें जाना।'

अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका पिण्ड ऐसे निज भगवान आत्माकी शरणमें जा। देव-गुरु आदि पर द्रव्य, उनकी ओरका शुभ राग अथवा एक समयकी पर्याय भी तुझे शरण नहीं है। इसलिये त्रिकाल शरणभूत ऐसे निज ज्ञायक स्वभावका आश्रय ले, उसकी शरणमें जा, तो तुझे कोई अद्‌भुत निराकुल अतीन्द्रिय आनन्दकी प्राप्ति होगी।

'बड़ेके आश्रयसे ही सब प्रगट होता है।'

चक्रवर्ती सम्राट आदि महान पुरुषोंके आश्रयसे जिस प्रकार अपने पुण्यके योगसे, सुख-समृद्धि आदि सब मिलते हैं, उसी प्रकार पूर्णानन्द स्वरूप निज अखण्ड चैतन्य चक्रवर्तीके—बड़े के—आश्रयसे ही, अपने अंतर्मुख पुरुषार्थसे, अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द, वीर्य, स्वच्छता आदि सब प्रगट होता है।

'अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्तीको ग्रहण कर।'

श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ तथा अरहनाथ भगवान तीर्थंकर, चक्रवर्ती और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कामदेव—इनतीनों पदवीके धारक थे। उन्होंने चक्रवर्ती पद के पुण्ययोग्यसे पृथ्वीके छहखण्ड को साधा था, यह तो उपचरित असद्भुत व्यवहारनयका कथन है। वास्तवमें तो छहखण्डको नहीं परन्तु अंतरमें अखण्ड ज्ञायक को उन्होंने साधा था।

प्रश्न :—छह खण्डको साधनेकी बात तो शास्त्रमें आती है न?

उत्तर :—भाई, छह खण्ड तो बाह्य पृथ्वीके टुकड़े हैं। उन्हें जीतने की बात तो दूर रही, परन्तु अंतरमें छह द्रव्योंको जाननेवाली ज्ञानके विकास रूप पर्याय है वह भी बाह्य है। ज्ञानीको खण्ड पर्यायका आश्रय नहीं होता, अखण्ड द्रव्यस्वभावका आश्रय होता है। आया कुछ समझमें? भाई! यह तो जन्म-मरणका अंत लानेवाली वस्तु है; यह कहीं बाहरसे नहीं मिलती। क्या वह बाह्यमें है? दया-दानके विकल्पोंमें, या देव-शास्त्र-गुरुमें अथवा मन्दिरमें आत्मा है, कि जो वहाँ से मिल जायगा?

प्रश्न :—आपके प्रभावसे तो अनेक मन्दिर बने हैं न?

उत्तर :—यहाँ के (हमारे) उपदेशसे मन्दिर बने हैं वह तो एक व्यवहारके कथनकी रीति है। पचास मन्दिरोंका निर्माण हुआ है; अफ्रीकामें (नैरोबीमें) १५ लाख शिलिंगका दिगम्बर जैन मन्दिर बन रहा है। वे सब अपने-अपने कारण बने हैं—बन रहे हैं, जीव उनका कर्ता नहीं है पुद्गल स्कन्धोंकी वैसी रचना स्वयं पुद्गलसे होती है, जीव उसका कर्ता है—ऐसा मानना वह अज्ञान है।

परसे—मंदिर, शास्त्रादिसे—आत्माका ज्ञान तीन काल में नहीं होता। अरे! समवसरणमें भगवानके पास गया, वहाँ उनके सन्मुख होने पर भी आत्माका ज्ञान नहीं होता। बाह्यमें कहाँ है आत्मा? मन्दिरमें या प्रतिमामें आत्मा है? रागमें...अरे! एकसमयकी पर्यायमें सम्पूर्ण आत्मा है? अहा! अलौकिक बात है भाई!

महाराष्ट्रमें एक दिगम्बर मुनि हैं; वे यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) पढ़ते हैं और बहुत प्रसन्न होते हैं। वे यहाँ से वचनामृत मँगवाते हैं और वहाँ के श्रावकों को भेंट देते हैं। वे दिगम्बर साधु हैं परन्तु उन्हें यहाँ का प्रेम है; पुस्तक पढ़कर उनके मनमें ऐसा हो गया है कि अहा! यह तो कोई महान वस्तु है!

प्रश्न :—आप मुनिको मानते हैं?

उत्तर :—भाई! सुन तो सही, मुनिके तो हम दासानुदास हैं। परन्तु उसमें सच्चा मुनिपना होना चाहिये न? अहा! मुनिदशा अर्थात् क्या? भाई! मुनि तो परमेश्वरपदके—केवलज्ञान भूमिकाके—निकट आ गये होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप जिसे धारावाही परिणमन प्रगट हुआ हो उसे मुनि कहते हैं भाई! वह दशा जिसे प्रगट हुई है वह तो अहा! धन्य अवतार! धन्य जीवन! ऐसे मुनिको कौन नहीं मानेगा? यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहते हैं कि—ऐसे अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्तीको ग्रहण कर, उसका अंतरमें उग्र आश्रय कर, तो सच्चा मुनिपना प्रगट होगा।

'उस एकको ही ग्रहण कर।'

देव-शास्त्र-गुरु भी तेरे लिये पर हैं; उनके आश्रयसे लक्षसे भी आत्मा प्राप्त नहीं होता; इसलिये उनका लक्ष छोड़ दे। अंतरमें ज्ञानानन्दका पिण्ड प्रभु आत्मा विराजमान है उसका लक्ष कर, उस एक को ही ग्रहण कर। अपने परिणामको वहाँ भीतर ले जा, उससे तुझे पर्यायमें ज्ञानानन्दकी प्राप्ति होगी।

'उपयोग बाहर जाये परन्तु चैतन्यका अवलम्बन उसे अंतरमें ही लाता है।'

पूर्णानन्द प्रभुमें दृष्टि पड़ी और अंतरमें स्वरूप स्थिरता हो गई, पश्चात् परिणाम बाहर जाये, तो चैतन्यका अवलम्बन उसे अंतरमें खींचता है, अंतरमें ही लाता है।

'बारम्बार... बारम्बार ऐसा करते....करते (स्वरूपमें लीनता जमते...जमते) क्षपक श्रेणी प्रगट होकर पूर्ण हो जाता है।'

परिणाम बाहर जाते हैं, परन्तु 'मैं तो अंतरमें पूर्णानन्द ज्ञायक हूँ' इसप्रकार चैतन्यके आलम्बनके बल द्वारा उपयोगको बारम्बार अंतरमें लानेका अभ्यास करते...करते—स्वरूपमें उग्र लीनता जमते...जमते—शुद्धिकी धारामें खूब वृद्धि होकर साधकको पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो जाती है। अहा! यहाँ तो क्षपकश्रेणी अर्थात् साधनाकी एकदम अन्तिम स्थितिकी बात की है। जीवको प्रथम भीतर परिणाममें अपने शुद्ध आत्माको पकड़नेसे स्वानुभूतियुक्त सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् उस शुद्ध आत्माका उग्र आश्रय लेने पर चारित्र होता है, पश्चात् उससे भी उग्र आश्रय करनेसे श्रेणी—वीतरागतारूप निर्मल पर्यायकी धारा, स्वभाव-सन्मुखता रूप एकाग्रता की निर्मल धारा—प्रगट होकर पूर्णता प्रगट हो जाती है।

अहा! ऐसा मार्ग है। जिससे ज्ञानानन्दकी पूर्णतास्वरूप परमात्मदशा प्राप्त होती है उस निज शुद्धात्म द्रव्यके आश्रयरूप उपायकी जीवको खबर नहीं है और अन्य उपाय से परमानन्द दशा प्राप्त होगी इस प्रकार व्यर्थ संतोष कर लेता है। अरेरे! ८४ लाख योनिमें भटकते-भटकते बड़ी कठिनाई से मनुष्यभव प्राप्त हुआ, तीर्थंकर भगवानकी वाणी सुननेको मिली, परन्तु वाणीका मर्म नहीं समझा। मृत्युकालमें भगवानका नाम स्मरण करे तो भी वह राग है, उससे सच्ची आत्मशान्ति प्रगट नहीं होती।

प्रश्न :–बच्चोंको याद करे उससे तो अच्छा है न?

उत्तर :–धूलमें भी अच्छा नहीं है। बच्चों को याद करनेका भाव पाप है और भगवानको याद करने का भाव पुण्य है; दोनों रागभाव हैं, उनमें सच्ची आत्मशान्ति नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। स्त्री, पुत्रादि सब स्वार्थके सगे हैं। स्वयं पाप करके करोड़ रुपये इकट्ठे किये हों और मरते समय पाँच लाख रुपये धर्मादामें देने के भाव हुए हों; बोलनेमें जिह्वा काँपती हो, बड़ी मुश्किलसे पाँच लाख...पाँच लाख—ऐसा आधा-अधूरा बोलते हुए लड़के बीचमें बोल उठते हैं—'पिता जी! इस समय पैसे को याद मत करो, भगवानका नाम लो।' स्त्री-पुत्रादि सब स्वार्थके सगे हैं, ठगोंकी टोली है। नियमसारमें कहा है : स्वयं किये कर्मके फलानुबंधको स्वयं भोगने के लिये तू अकेला जन्ममें तथा मृत्युमें प्रवेश करता है, स्त्री-पुत्र-मित्रादिक अन्य कोई सुख-दुःखके प्रकारोंमें कदापि सहायभूत नहीं होते; अपनी आजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थके लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगोंकी टोली तुझे मिली है। यहाँ कहते हैं : परिणामको अंतरमें—भगवान आत्मामें—बारम्बार उन्मुख करनेसे पूर्णानन्द दशा प्रगट हो जाती है।

'जो वस्तु है उसीपर अपनी दृष्टि की डोर बाँध, पर्यायके अवलम्बनसे कुछ नहीं होगा।'

निज पूर्णानन्द प्रभु पर दृष्टि की डोर स्थिर कर दे, पर्यायके लक्ष से कुछ कल्याण नहीं होगा। देखी भाषा? दया-दानादि रागसे तो नहीं; परन्तु एस समयकी पर्यायके आश्रयसे भी तेरा कल्याण नहीं होगा। अहाहा! ऐसी है यह पुस्तक! लोग पढ़ेंगे, विचारेंगें तो धीरे-धीरे—महीने-दो महीने में, चार-छह महीनेमें–खबर पड़ेगी। अध्यात्मका मक्खन है मक्खन।

पर्यायके अवलम्बनसे कुछ नहीं होगा। कुछ नहीं होगा? होगा—संसार। अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकका—पूर्णानन्दके नाथका—आश्रय नहीं करनेसे और मात्र पर्यायका आश्रय लेनेसे कल्याण—सम्यग्दर्शन—तीनकालमें नहीं होगा। इसलिये अंतरमें त्रैकालिक भगवान आत्मा पर ही दृष्टि की डोर स्थिर कर दे, जिससे तेरा कल्याण—सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूति आदि—हो।

*

वचनामृत–२०९

जैसे राजा अपने महलमें दूर-दूर अतःपुरमें रहता है वैसे ही चैतन्य राजा दूर-दूर चैतन्यके महलमें ही निवास करता है; वहाँ जा।।२०९।।

चक्रवर्ती राजाको देवों द्वारा निर्मित रत्नमणियोंके पाँच विशाल महल होते हैं। राजा अपने महलमें—भीतर दूर-दूर अंतःपुरमें—रहता है, वहाँ उसकी ९६ हजार रानियाँ अलग-अलग रहती हैं।–उसीप्रकार चैतन्य राजा अंतरके चैतन्यमहलमें दूर-दूर निवास करता है। वह

५०.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागमें तो नहीं परन्तु एक समय की पर्यायमें भी परिपूर्ण नहीं आता। भगवान ज्ञायक राजा पर्यायसे दूर गहरे-गहरे द्रव्यस्वभावमें निवास करता है। जिस प्रकार राजा भीतर महलमें दूर-दूर है, उसीप्रकार भगवान आत्मा पर्यायभेदसे दूर-दूर अंतरके चैतन्यमहलमें रहता है। क्षणवर्ती पर्यायमें उसका निवास नहीं है, पर्यायसे दूर भीतर ध्रुवस्वभावमें उसका निवास है। अहा! ऐसी भाषा है, ऐसी बातें हैं। लोग भले ही चाहे जो कहें भाई! परन्तु यः तेरे हितकी बात है।

अंतरमें शुभाशुभ भाव तथा अन्य पर्यायके ऊपरसे परिणामको हटाकर उसे भीतर स्वभावके महलमें जहाँ भगवान आत्मा विराजमान है वहाँ लगा दे। राग तो अंधा है उसमें भगवान नहीं है, परन्तु पर्याय जो निज वस्तुका ही एक अंश है, उसमें भी परिपूर्ण भगवान नहीं है। त्रैकालिक ज्ञायकमें—जागृत स्वभावमें—भगवान आत्मा है, उसमें निवास कर; वहाँ जा। अहा! भाषा कितनी सादी! आया कुछ समझमें?

लोग पद्मावती देवी, क्षेत्रपाल आदिकी मान्यता करते हैं, परन्तु वह मान्यता तो गृहीत मिथ्यात्व है भाई! लोगोंको खबर नहीं है कि सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है। सम्यग्दर्शन तथा उसके धारक सम्यग्दृष्टि की महिमा कोई अद्‌भुत है! छहढालामें कहा है : 'चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।' भगवान ज्ञायक आत्मा सम्यग्दर्शनमें आया अर्थात् सम्यग्दर्शनका विषय हुआ वहाँ, भले संयम जरा भी न हो तथापि इन्द्र उसका आदर करते हैं।—ऐसा सम्यग्दर्शनका अद्‌भुत माहात्म्य है। भगवान आत्मा द्रव्य है; द्रव्य कहीं पर्यायमें नहीं आ जाता, परन्तु वह पर्यायका आश्रय बनता है। उसके—ध्रुव द्रव्यस्वभावके—आश्रयसे ही सम्यक्त्व आदि सर्व निर्मलता प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन पूर्वक जो सम्यग्ज्ञान हुआ उसमें सर्व—समस्त जिनशासन—जाननेमें आ गया। यहाँ कहते हैं कि—अंतरमें चैतन्यके ध्रुव महलमें ज्ञायक आत्मा विराजता है; वहाँ जा,—उसका अनुभव कर।

अहाहा! यह ऐसी वस्तु लोगोंके सद्‌भाग्यसे बाहर आ गयी। इसमें आत्माकी पुकार की है। बहिनकी तसवीर है ऊपर—बहुत अच्छी; शान्त—शान्त!!

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–८४

ता. ३–६–७८

वचनामृत–२१०

तू स्वयं मार्ग जानता नहीं है और जाननेवाले को साथ नहीं रखेगा, तो तू एक डग भी कैसे भरेगा? तू स्वयं तो अंधा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुतका अवलम्बन नहीं रखेगा, तो अंतरमें जो साधकका मार्ग है वह तुझे कैसे सूझेगा? सम्यक्त्व कैसे होगा? साधकपना कैसे आयगा? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा?

अनंतकालका अनजाना मार्ग गुरुवाणी एवं आगमके बिना ज्ञात नहीं होता। सच्चा निर्णय तो स्वयं ही करना है परन्तु वह गुरुवाणी एवं आगमके अवलम्बनसे होता है। सच्चे निर्णयके बिना—सच्चे ज्ञानके बिना—सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये तू श्रुतके अवलम्बनको, श्रुतके चिंतवनको साथ ही रखना।

श्रवणयोग हो तो तत्कालबोधक गुरुवाणीमें और स्वाध्याययोग हो तो नित्यबोधक ऐसे आगममें प्रवर्तन रखना। इनके अतिरिक्त कालमें भी गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्माके विचार और मंथन रखना।।२१०।।

'तू स्वयं मार्ग जानता नहीं है और जाननेवालेको साथ नहीं रखेगा, तो तू एक डग भी कैसे भरेगा?'

जिसे अपने आत्माका कल्याण करना है परन्तु स्वयं मार्ग नहीं जानता है ऐसे जिज्ञासु जीवको, मार्ग बतलानेवाले ऐसे वीतराग देव–शास्त्र–गुरुका अवलम्बन बीचमें नियमसे आता है। अपने भीतर आत्मा क्या वस्तु है, उसका सच्चा स्वरूप क्या है, उसकी प्राप्ति

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किस प्रकार होती है—इत्यादि कुछ भी खबर नहीं है, और जिसे खबर है—अनुभव है—ऐसे देव–गुरु तथा जिनमें पूर्वापर अविरुद्धरूपसे न्याय एवं युक्तिसे मार्ग बतलाया है ऐसे सत्शास्त्रोंको साथ नहीं रखेगा, तो तू भीतर आत्मामें एक डग भी किस प्रकार भरेगा? स्वयं जानता नहीं है जाननेवाले अनुभवीका समागम नहीं करता तो, अंतरका मार्ग सुने-समझे बिना तू अंतरमें प्रयत्न कैसे कर सकेगा? भले ही देव-शास्त्र-गुरु दे नहीं देते, परन्तु जिज्ञासुको मार्ग समझनेमें वे निमित्त हैं या नहीं? आत्मा शरीर लक्ष्मी आदि परसे बिलकुल भिन्न, शुभाशुभ विभावोंसे कथंचित् रहित है, वह एक समयकी पर्याय जितना भी नहीं है परन्तु परिपूर्ण अखण्ड ज्ञायक तत्त्व है—ऐसा देव-शास्त्र-गुरु बतलाते हैं या नहीं? निज ज्ञायक आत्माको तू स्वयं नहीं जानता और जो जानते हैं उनकी संगति नहीं करता, तो अंतर आत्मामें एक डग भी नहीं भर सकेगा।

'तू स्वयं तो अंधा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुतका अवलम्बन नहीं रखेगा, तो अंतरमें जो साधकका मार्ग है वह तुझे कैसे सूझेगा? सम्यक्त्व कैसे होगा? साधकपना कैसे आयगा? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा?

तू स्वयं अंधा अर्थात् आत्मतत्त्वसे अनजान है; और यदि स्वानुभवी गुरुकी वाणी तथा आगमका अवलम्बन नहीं रखेगा, तो तुझे अंतरमें जानेका मार्ग कैसे सूझेगा? समयसारकी चौथी गाथाकी टीकामें कहा है : निर्मल भेदज्ञानरूप प्रकाशसे जो स्पष्ट भिन्न अनुभवमें आता है ऐसा यह भिन्न आत्माका एकत्व ही—जो कि सदा प्रगटरूपसे अंतरंगमें प्रकाशमान है तथापि कषायसमूहके साथ एकरूप जैसा किया जानेसे अत्यन्त तिरोभावको प्राप्त है (–आवृत हो रहा है) वह—स्वयं आत्माको नहीं जानता होनेसे और अन्य आत्माको जाननेवालोंकी संगति—सेवा नहीं की होनेसे, नहीं पहले कभी सुननेमें आया, नहीं पहले कभी परिचयमें आया और नहीं पहले कभी अनुभवमें आया। इसलिये भिन्न आत्माका एकत्व सुलभ नहीं है। परद्रव्यों और परभावोंसे भिन्न एक चैतन्यचमत्कारस्वरूप निज ज्ञायककी प्रतीति अपनेको अपनेसे कभी हुई नहीं है और जिन्हें उसका ज्ञान वर्तता है ऐसे देव-गुरुका तथा उसका स्वरूप बतलानेवाले ऐसे आगमोंका अवलम्बन नहीं रखेगा तो, तुझे अंतरमें साधनाका मार्ग कदापि नहीं सूझेगा, सम्यग्दर्शन मुनिपना या केवलज्ञानादि कुछ भी प्रगट नहीं होगा।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयसारकी पाँचवीं गाथामें कहते हैं कि—इस एकत्व-विभक्त आत्माको मैं अपने निजवैभवसे कहूँगा। उनका निजवैभव काहेसे प्रगट हुआ है?–कि शब्दब्रह्म–आगम–की उपासना, तर्कबद्ध युक्तियोंका अवलम्बन, देव-गुरुका शुद्धात्मप्रमुख उपदेश और निरंतर प्रचुर आनन्दामृतरस झरता स्वानुभव—इन चार कारणोंसे निजवैभव प्रगट हुआ है। अहाहा! भगवानने कहा है इसलिये कहूँगा—ऐसा नहीं; परन्तु भगवानने जैसा कहा है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वैसा, परन्तु अपने स्वानुभव वैभवसे कहूँगा। देखो, यह शैली! यहाँ कहते हैं कि–तू स्वयं तो अंधा है, और यदि गुरुवाणी तथा श्रुतका अवलम्बन नहीं रखेगा। तो तुझे साधनाका मार्ग कैसे सूझेगा? साधकपना कैसे आयेगा? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा?

'अनंतकालका अनजाना मार्ग गुरुवाणी एवं आगमके बिना ज्ञात नहीं होता।'

अनादिकालसे शुद्धात्माका जो मार्ग कभी जाना नहीं है वह, स्वानुभवी गुरुकी वाणी तथा आगमके अंतर्मुख अभ्याससे जाना जाता है। गुरु अथवा शास्त्र ज्ञान दे नहीं देते, परन्तु ज्ञान होनेमें निमित्त हैं। भले वे निमित्तमात्र हैं परन्तु वे बताते हैं स्वलक्ष करना।

'सच्चा निर्णय तो स्वयं ही करना है परन्तु वह गुरुवाणी एवं आगमके अवलम्बनसे होता है।'

देव-शास्त्र-गुरु तो मार्ग बतलाकर अलग रहते हैं। वे बतलाते हैं कि–'यह मार्ग है।' परन्तु मार्गमें जाना (–चलना) तो अपनेको है; सच्चा निर्णय स्वयं अपने अंतर्मुख पुरुषार्थसे करना है। उस सच्चे निर्णयमें गुरुवाणी और आगमका अभ्यास निमित्त होता है।

'सच्चे निर्णयके बिना—सच्चे ज्ञानके बिना—सच्चा ध्यान नहीं हो सकता।'

लोग कहते हैं न कि–ध्यान किसका करना? ॐ ॐ करें? पंचपरमेष्ठीका करें? और आजकल तो एक हवा चली है कि ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। लेकिन किसका ध्यान करें? वस्तुस्वरूप क्या है? सर्वज्ञदेवने कहा वह आत्मा कैसा है? अविकारी पर्याय क्या है? उसमें निमित्त क्या वस्तु है? प्रथम उसके यथार्थ ज्ञानके बिना स्वरूपके ऊपर दृष्टि नहीं जाती। रागसे कुछ लाभ होगा, निमित्तसे लाभ होगा—ऐसी ज्ञानमें विपरीतता हो वहाँ स्वरूपके ऊपर दृष्टि नहीं जाती; वह ज्ञान अंतरमें नहीं जा सकता। वस्तुस्वरूपकी खबरके बिना ध्यानकी बातें करते हैं; लेकिन किसका ध्यान?

सच्चे निर्णयके बिना, सच्चा सत् भगवान—निर्विकल्प परमात्मस्वरूप—उसका अनुभवमें निर्णय किये बिना, उसका ज्ञान किये बिना, निर्विकल्प अभेदवस्तु—एकरूप वस्तु—क्या है उसके ज्ञान बिना ध्यान सच्चा नहीं हो सकता। कल्पनासे माने कि मैं एकाग्र होता हूँ, परन्तु अखण्ड, परिपूर्ण ऐसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप निज आत्माका सच्चा ज्ञान तथा निर्णय किये बिना अंतरमें ध्यान नहीं हो सकता।

प्रश्न :—'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि' ऐसा द्रव्य-संग्रहकी ४७वीं गाथामें आता है न?

उत्तर :—अंतरमें ज्ञायक–चेतन पदार्थ–कैसा है उसका वास्तविक ज्ञान यथार्थ आगम और गुरुसे हुआ है ऐसे जीवको ध्यानमें द्विविध मोक्षहेतु–मोक्षका मार्ग प्राप्त होता है ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वहाँ कहा है। परन्तु वस्तु स्वरूपका यथार्थ ज्ञान ही नहीं हुआ हो तो वह अंतरमें जाकर ध्यान कैसे कर सकेगा? ज्ञानमें यथार्थ—वास्तविक तत्त्व क्या, द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या, विकार क्या—ऐसे व्यावहारिक ज्ञानके वास्तविक निर्णय बिना अंतरमें जा नहीं सकेगा। अंतरमें ध्यान किसे होता है?—यह बात यहाँ चलती है। भीतर दृष्टिमें ज्ञायकस्वरूपका सच्चा निर्णय हुआ हो वह अंतरमें ध्यान कर सकता है। बाकी राग-द्वेष और पुण्य–पापका ध्यान वह तो आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान है। आया समझमें? सूक्ष्म बात है भाई! सम्यग्दृष्टि ही यथार्थ ध्यानकर सकता है, क्योंकि उसे अखण्ड वस्तु क्या है वह दृष्टिमें–श्रद्धामें आ गई है, और ज्ञानकी पर्यायमें भी 'यह मैं परिपूर्ण द्रव्य हूँ' ऐसा ज्ञान हो चुका है।

रात्रि चर्चामें प्रश्न हुआ था न, किः—जिसप्रकार लोकालोकको जानना व्यवहार है, उसीप्रकार अपने सुख, वीर्य आदि अन्य गुणोंको जानना भी व्यवहार है?

उत्तरः—लोकालोक तो परपदार्थ हैं, परको तन्मय हुए बिना जानना, वह व्यवहार है; आत्मा स्वद्रव्यको—अपने गुण—पर्यायको-तन्मय रूपसे रहकर जाने वह निश्चय है। परपदार्थकी भाँति द्रव्यसे पर्याय भिन्न है–पृथक् है ऐसा नहीं है अपने स्वरूपका ज्ञान—अपने द्रव्य-गुण-पर्यायका, सुख, वीर्यादि अपने अन्य गुणोंका ज्ञान—वह निश्चय है। नियमसारमें निश्चयसे ज्ञानका स्व-परप्रकाशकपना बतलाते हुए कहा है : आत्मा अपने ज्ञानका ज्ञान करे तथा अपने अन्य गुणोंका, पर्यायोंका ज्ञान करे वह निश्चय है। दूसरे गुणोंका ज्ञान करे वह व्यवहार है ऐसा नहीं है। अपने सर्व गुण-पर्योयोंके साथ तन्मय रहकर जानता है इसलिये निश्चय। पर ज्ञेयोंके साथ तन्मय नहीं होता इसलिये परका जानना व्यवहार है। सूक्ष्म बात है भाई!

अहा! भगवान आत्मा अंतरमें निर्विकल्प वस्तु है, जिसके अभेद स्वरूपमें पर्यायका भेद नहीं है। अभेदमें भेद नहीं होनेसे पर्यायको कथंचित् भिन्न कहा है, इसलिये पर्यायका ज्ञान व्यवहार है ऐसा नहीं है। अपने गुणों तथा पर्यायोंमें तन्मय रहकर जानता है इसलिये निश्चय है। परका जानपना, तन्मय होकर नहीं होता इसलिये, व्यवहार है।

निर्विकल्प वस्तु अंतरमें है,—परमात्मस्वरूप। अप्पा सो परमप्पा। आत्मा वह परमात्मा ही है। इस आत्मामें और सर्वज्ञके आत्मामें कोई अंतर नहीं है; मात्र यहाँ पर्याय प्रगट नहीं है और वहाँ उनकी पर्याय प्रगट है; बाकी वस्तु तो एक समान ही है। यदि अंतरमें वस्तुका ऐसा निर्णय नहीं हुआ और वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ तो वस्तु दृष्टिमें नहीं आयी है। वस्तु दृष्टिमें आये बिना ध्यान किसका करना? भाई! ध्यान वह कोई और ही वस्तु है! सम्यग्दर्शन ध्यानमें प्राप्त होता है। द्रव्य संग्रहकी ४७वीं गाथामें सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र भीतर ध्यानमें प्राप्त होता है—ऐसा कहा है। कोई बाह्यमें—विकल्पनें, पढ़ता है और सुनता है

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें—सम्यग्दर्शन हो जाय ऐसा है ही नहीं। सब ध्यानमें ही प्रगट होता है।

अभी-अभी एक प्रश्न आया था कि–चलते-चलते अनुभूति हो सकती है या नहीं?

उत्तर :–चलते–चलते? अहो! मुनिकी दशा कोई और ही है। उन्हें तो चलते हुए और बोलते हुए भी सातवाँ गुणस्थान आ जाता है। कुछ क्षणों तक तो अंतरमें एकदम स्थिर हो जाते हैं। इसप्रकार सम्यग्दर्शन—अनुभूति चलनेकी क्रियामें प्रगट हो जाय ऐसा नहीं हो सकता; वहाँ तो विकल्प है चलनेका। भीतर ध्यानमें लीन हों तब सम्यग्दर्शन होता है।

प्रथम ध्यानमें सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। अंतरमें प्रभु निर्विकल्प परमात्मस्वरूप आत्मा है, उसका यथार्थ निर्णय पूर्वक अनुभव ध्यानमें होता है। बड़ी कठिन बात है। बाहरकी सब बातें भूल जाना–लक्ष पर्यायमें नहीं, रागमें भी नहीं; और अपनी पर्यायको अंतरोन्मुख करके ध्यानमें आ जाना। ऐसे ध्यानमें सम्यग्दर्शन होता है। पर्याय भले एक समयकी हो, उपयोग भले असंख्य समयका हो, परन्तु वह जात्यन्तर एक समयमें हो जाता है—सम्यग्दर्शन एक समयमें हो जाता है। जो दृष्टि राग एवं पर्याय पर है उसे स्वभावपर ले जाना, वह एक समयमें होता है। पूर्णानन्द प्रभु—निर्विकल्प चैतन्य प्रभु–उसके ध्यानमें सम्यग्दर्शन होता है।

मुनिकी दशा निराली है! उसका क्या कहना! आत्माके अंतरमें अनंत-अनंत-अनन्त गुण हैं, उसमें दृष्टि चली गई और लीनता बढ़ गई ऐसा प्रचुर स्वसंवेदनभाव वह मुनिका चिह्न है। राग, विकल्प और पंचमहाव्रत वह कहीं मुनिपना नहीं है। कहते हैं न! कि–"साधु 'बनना' सरल है, परन्तु साधु 'होना' कठिन है।" कपड़े उतारकर नग्न हो गया, क्रियाकाण्ड और व्रत ले लिये, बाहरसे साधु 'बन' गया, परन्तु वास्तवमें साधु 'होना'–साधुभावरूप परिणमना कठिन है। अरे भाई! साधु होना यानी क्या? अरे! इस कालमें जहाँ सम्यग्दर्शन वस्तु दुर्लभ हो गई, वहाँ साधुपना तो भाई! कोई अलौकिक वस्तु है! मुनिराजको अतीन्द्रिय आनन्दमें रमते हुए बाहरका विकल्प आये तो वह बोझ लगता है। पंचमहाव्रतका विकल्प आये, शिष्यको पढ़ानेका विकल्प आये या प्रवचनका विकल्प उठे तब भी बोझ लगता है। अहा! प्रभु! निर्विकल्प आनन्दके समक्ष विकल्प तो बोझ लगता है। अरे! सम्यग्दृष्टिको भी, क्षायिक सम्यक्त्व हो तथापि, स्त्रीका—विषय-वासनाका—विकल्प आता है परन्तु वह बोझ–दुःख लगता है। वे विकल्प नहीं टूटते जानकर, दुःख लगते हैं।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका पिण्ड-पुंज है। उसमें एकाग्र होनेसे सम्यग्दर्शन होता है, तब उसमेंसे आनन्द, शान्ति और स्वच्छतादिका अनुभव आता है। भले ज्ञान है परोक्ष, परन्तु अपनेको—आत्माको—जाननेमें स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो गया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें नयचक्रका आधार देकर पं. टोडरमलजीने कहा है कि—तत्त्वान्वेषणके समय पहले शुद्धात्माको युक्ति—नय प्रमाण द्वारा जाने पश्चात् आराधनाके समय उसमें नय-प्रमाणके भेद नहीं है क्योंकि वहाँ आत्माका प्रत्यक्ष अनुभव है। अंतर ज्ञानकी पर्यायमें—अनुभव ज्ञानमें—'यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप है, पूर्ण शांतस्वरूप, पूर्ण वीतराग स्वरूप है'—ऐसा स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया है।

जिससे जन्म-मरणका—भवका अंत आ जाय, अहा! वह काम बड़ा कठिन! चौरासीके अवतार कर-करके अनंतकाल व्यतीत हो गया, परन्तु कहीं जीवको सुख नहीं है—सुख नहीं है। सुखका सागर तो भगवान आत्मा है, वहाँ तो गया नहीं है, उसका अनुभव किया नहीं है और बाह्यमें सुखके लिये जहाँ-तहाँ मिथ्याप्रयत्न करता है—स्त्रीमें, रूपये-पैसेमें, प्रतिष्ठामें-धूलमें। अहा! जिसने अंतरमें आनन्दके नाथ प्रभु आत्माको नहीं जाना वह ध्यान किसका करेगा? आज कल तो हवा चली है कि ध्यान करो, ध्यान करो। ध्यानके शिबिर लगाते हैं। परन्तु भाई! अभी वस्तुके स्वरूपकी ही खबर नहीं है, सर्वज्ञ परमेश्वरने परमागममें जो आत्मा कहा वह कैसा है और ज्ञानी अनुभवी गुरु आत्मा किसे कहते हैं—वह तो खबर नहीं है और कहते हैं कि ध्यान लगाओ दो-चार घन्टे, परन्तु काहेका ध्यान लगायें?

ध्यानके शिबिर लगाते हैं, उनमें कहते हैं कि—'शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ।' तथा 'भोगानन्दमें ब्रह्मानन्द' कहते हैं! अरे प्रभु! यह क्या करता है तू? विषयके आनन्दमें ब्रह्मका—आत्माका—आनन्द अरेरे! विषयकी वासना तो दुःख है, उसमें आत्माका आनन्द कहाँसे आया? 'खूब रोओ—खूब रोओ और फिर शून्य हो जाओ; खूब हँसो, और फिर शून्य हो जाओ' ऐसा झूठा मार्ग चलाया है। यह कोई ध्यान नहीं, यह तो भ्रम है।

अहा! मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंका यह स्वसंवेदनरूप ध्यान कोई और ही है। वचनातीत है। उस दशामें, अनंत गुणोंसे भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकारकी चमत्कारिक पर्याय रूप तरंगोंमें तथा आश्चर्यकारी आनन्द तरंगोंमें हिलोरे लेता है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूपसे अतीन्द्रिय आनन्दादि अलौकिक ऋद्धिका अत्यंत स्पष्ट वेदन है।

यहाँ कहते हैं कि आत्माके सच्चे निर्णय बिना सच्चा ध्यान कभी नहीं हो सकता।

'इसलिये तू श्रुतके अवलम्बनको, श्रुतके चिंतवनको साथ ही रखना।'

श्रुतके अवलम्बनसे—भगवान सर्वज्ञदेवकी कही हुई जो वाणी और तदनुसार वीतरागी दिगम्बर संतोंने जो परमागमोंकी रचना की वही सच्चे शास्त्र हैं उनके अवलम्बनसे—आत्माका सच्चा निर्णय करना। वास्तविक परमागमका अवलम्बन तथा चिंतवन साथमें रखना। उसमें फेर होगा तब तक ध्यान सच्चा नहीं हो सकेगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! यह तो भवके अंतकी बातें हैं प्रभु! अंतरमें निर्विकल्प भगवान आत्मामें भव और भवके भावका अभाव है। ऐसे निज द्रव्यस्वभावका निर्णय करके उसका ध्यान करना—अंतरमें एकाग्रता करना—वह भवके अंतका, मोक्षकी पर्यायको निकट लाये ऐसा ध्यान है।

सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र जो कहें उसका श्रवण, मनन एवं लक्ष होना चाहिये, क्योंकि उसके बिना वस्तुस्थिति लक्षमें नहीं आयगी। शास्त्र एवं गुरुवाणीका—चारों अनुयोगका—सार वीतरागता है। वीतरागता कैसे प्रगट होती है? कि—त्रिकाल वीतरागस्वरूप जो यह भगवान आत्मा अंतरमें है उसके आश्रयसे पर्यायमें वीतरागता प्रगट होती है। गुरु कहते हैं कि मेरे आश्रयसे भी तुझे वीतरागता प्रगट नहीं होती, अंतरमें अपने स्वभावके आश्रयसे प्रगटती है।

प्रश्न :—गुरु ऐसा कहेंगे कि तू मेरा शिष्य नहीं है?

उत्तर :–शिष्य-विष्य किसका? शिष्य कैसा और गुरु कैसे? स्वयं अपना गुरु और स्वयं अपना देव; 'सर्वज्ञ देव परमगुरु'—सर्वज्ञस्वभाव और सर्वज्ञदेव परमगुरु हैं। अपना सर्वज्ञस्वभाव, 'ज्ञ' स्वभाव, पूर्ण स्वभाव—जैसा भगवानका स्वभाव—वह सर्वज्ञदेव है। अल्पज्ञता जिसके स्वभावमें नहीं है, राग तो नहीं परन्तु पुण्य-दया-दानका विकल्प भी नहीं। पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्माके सच्चे निर्णय और ज्ञान बिना—वह वस्तु लक्षमें आयी ही नहीं है तो उसका—ध्यान कैसे करना? वस्तु लक्षमें आयी नहीं है, ज्ञानमें उसका ख्याल भी नहीं आया है उसे कदापि ध्यान नहीं हो सकता।

'श्रवणयोग हो तो तत्कालबोधक गुरुवाणीमें और स्वाध्याययोग हो तो नित्यबोधक ऐसे आगममें प्रवर्तन रखना।'

प्रवचनसारके तीसरे अधिकारमें आता है : गुरुवाणी तत्कालबोधक है और आगमवाणी नित्यबोधक है। गुरुकी वाणी तो अमुक समय मिलती है इसलिये तत्कालबोधक और आगमका स्वाध्याय तो चाहे जब करे इसलिये वह नित्यबोधक है। आत्माका स्वरूप समझनेके लिये, उसके सच्चे निर्णयके लिये, तत्कालबोधक गुरुवाणी और नित्यबोधक आगममें प्रवर्तन रखना।

'इनके अतिरिक्त कालमें भी गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्माके विचार और मंथन रखना।'

मैं ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, परिपूर्ण परमात्मा हूँ—ऐसे विचार, मंथन और घोलन अन्य कालमें भी, करते रहना।

प्रश्न :—सम्यग्दर्शन होनेके बाद भी यह लागू होता है?

४१.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—हाँ, सम्यग्दर्शनके बिना ध्यान, मंथन यथार्थ कहाँ होते हैं? किसका मंथन करेगा? दही है तो मंथन करके मक्खन निकालते हैं; पानीमेंसे मक्खन निकलेगा? इसलिये अपना स्वरूप—शुद्ध, आनन्दकन्द—दृष्टि और ज्ञानमें आया है उसका रटन और मंथन रखना—ऐसा ज्ञानीको भी बराबर लागू होता है।

करना तो अपनेको ही है। जीव स्वयं करे तब गुरुवाणी तथा आगम निमित्त कहे जाते हैं। 'दिशा बतलाकर शास्त्र अलग रहते हैं।' गुरुवाणी तथा शास्त्र दिशा बतलाते हैं, किन्तु रहते अलग हैं। जब तक गुरुतत्त्वका लक्ष है तब तक अंतरमें नहीं जा सकेगा।

प्रश्न :—गुरु मानना या नहीं?

उत्तर :—वह तो व्यवहारसे गुरु कहा जाता है। निश्चयसे तू ही देवाधिदेव तथा तू ही परमगुरु है। अपनी पर्यायमें तू अपनेसे समझा इसलिये तू अपना गुरु है। गुरुने समझाया ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है, वास्तवमें तो तूने अपनेको समझाया है। मैं तो पूर्णानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्यपिण्ड हूँ—इसप्रकार तूने अपनेको समझाया इसलिये तू ही अपना गुरु है। अहा! बड़ी कठिन बात है।

आजकल सम्यग्दर्शन और उसके विषयमें बहुत फेरफार हो गया है। मन्दिर बनाओ, गजरथ चलाओ, लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करो इसलिये धर्म धुरंधरकी पदवी मिलेगी। अरे प्रभु! वहाँ कहाँ धर्म है? वह क्रिया तो परसे हुई है, कषायकी मन्दताका भाव हो तो वहाँ परलक्षी शुभभाव है, पुण्य है। पुण्य है वह धर्म नहीं है। धर्म नहीं है इसलिये शुभभाव बिलकुल आता ही नहीं है—ऐसा नहीं है, आता है। स्वरूपमें स्थिरता न हो सके तब अशुभसे बचनेके लिये ज्ञानीको भी शुभ भाव आता है; परन्तु वह हेय तथा दुःखरूप लगता है।

प्रश्न :—हेय और दुःखरूप है तो लाये क्यों?

उत्तर :—हेय और दुःखरूप जाननेपर भी निचली भूमिकामें वह आये बिना नहीं रहता। आया कुछ समझमें? जिसे अपने परमात्मस्वरूपकी प्रतीति एवं ज्ञान हुआ उसे अशुभ राग आये वह तो महा दुःख लगता ही है, परन्तु शुभभाव आये वह भी बोझ और दुःखरूप लगता है।

इसप्रकार श्रवणयोग तथा स्वाध्याययोगके सिवा अतिरिक्त कालमें भी गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्माके विचार एवं मंथन रखना।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२११

वस्तुके स्वरूपको सब पहलुओंसे ज्ञानमें जानकर अभेदज्ञान प्रगट कर। अंतरमें समाये सो समाये; अनन्त-अनन्त काल तक अनन्त-अनन्त समाधिसुखमें लीन हुए। 'रे ज्ञानगुणसे रहित बहुजन पद नहीं यह पा सके'। इसलिये तू उस ज्ञानपदको प्राप्त कर। उस अपूर्व पदकी खबर बिना कल्पित ध्यान करे, परन्तु चैतन्यदेवका स्वरूप क्या है, ऐसे रत्नराशि समान उसके अनंत गुणोंका स्वामी कैसा है—वह जाने बिना ध्यान कैसा? जिसका ध्यान करना है उस वस्तुको पहिचाने बिना, उसे ग्रहण किये बिना, ध्यान किसके आश्रयसे होगा? एकाग्रता कहाँ होगी?॥२११॥

'वस्तुके स्वरूपको सब पहलुओंसे ज्ञानमें जानकर अभेदज्ञान प्रगट कर।'

वस्तुका स्वरूप चारों ओरसे जैसा है वैसा—द्रव्य, गुण, पर्याय तथा विकार और स्वभाव आदि सब पक्षोंसे—ज्ञानमें जानकर अभेदज्ञान प्रगट कर। जानना तो सब—द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव, विभाव, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार आदि सब—परन्तु आश्रय तो अंतरमें त्रैकालिक एक अभेदज्ञानका करना। नियमसारके आवश्यक अधिकारमें कहा है कि भगवान अरिहंत देवके श्रीमुखसे निकले हुए मूल और उत्तर पदार्थोंका प्रतिपादन करनेमें समर्थ ऐसा जो कोई मुनि कभी छह द्रव्योंमें अपना चित्त लगाता है, कभी उनके मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन गुणोंमें मन लगाता है, परन्तु त्रिकाल निरावरण, नित्यानन्द ऐसे निजकारण समयसारके स्वरूपमें लीन सहज ज्ञानादि शुद्ध गुण पर्यायोंके आधारभूत निज आत्मतत्त्वमें कभी चित्त नहीं लगाता, उस तपोधनको भी उस कारण ही पर विकल्पोंके वश होता होनेके कारण ही—अन्यवश कहा गया है। यह द्रव्य है, यह गुण है और यह पर्याय है—ऐसे तीन भेद आये, परन्तु भीतर अभेदज्ञान है वह उसके लक्षमें नहीं आया। वस्तुस्वरूप ऐसा है भाई! बड़ा कठिन मार्ग! समझो या न समझो परन्तु मार्ग तो यही है, अनंत ज्ञानी तथा अनंत आगम वस्तु स्वरूप ऐसा ही कहते हैं।

यह सारी बात अंतरसे नहीं सूझती, इसलिये 'इससे होता है, उससे होता है'–इसप्रकार अज्ञानी बेचारे बाह्यसे धर्मका होना मानते हैं। क्या करें? वस्तुके स्वरूपको सर्व प्रकारसे ज्ञानमें जानकर अभेदज्ञानका लक्ष तो हुआ नहीं है। तू अखण्डानन्द पूर्ण प्रभु है, वहाँ दृष्टि लगाकर अभेदज्ञान प्रगट कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

'अंतरमें समाये सो समाये; अनंत-अनंत कालतक अनंत-अनंत समाधि सुखमें लीन हुए।'

'श्रीमद्'में ऐसा वचन है—समझे वे समा गये। समझे कि मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ—वे समा गये। अंतरमें गये; अनंतानंत काल तक निर्विकल्प भगवानमें—अनंत अनंत समाधिसुखमें—लीन हुए। मुनीद्र अनंत समाधि-आनन्दमें डूब गये। भीतर निर्विकल्प वस्तु एवं आनन्दमें लीन हुए सो हुए, कभी बाहर निकले ही नहीं।

'रे ज्ञानगुणसे रहित बहुजन पद नहीं यह पा सके।'

यह समयसारकी २०५वीं गाथाका हरिगीत है। सम्यग्ज्ञान अर्थात् आत्माका अनुभव–ऐसे ज्ञानगुण बिना बहुतसे लोग, भले ही वे दया-दान, व्रत-तप, भक्ति-पूजा तथा शास्त्रस्वाध्याय आदि लाख-करोड़-अरब वर्ष तक करें, परन्तु उनसे इस पदको—अभेदज्ञानको—प्राप्त नहीं कर सकते। शास्त्रज्ञान वह अभेदज्ञानपद नहीं है, वह तो शब्दज्ञान हुआ; उसमें उसे अभिमान हो जाय कि मुझे बहुत ज्ञान है, लोग भी मुझे ज्ञानी कहते हैं, तो भ्रमणामें पड़ गया। अंतरमें अखण्डानन्द स्वरूप अभेद आत्मामें एकाकार होकर ज्ञान प्रगट कर। बाकी अन्य किसी रीतिसे किसी भी आत्माको ज्ञान प्रगट नहीं होगा। शास्त्रकी–वाणीकी पूजा करना भी विकल्प है। जिसप्रकार भगवानकी–मूर्तिकी पूजा विकल्प है उसीप्रकार शास्त्रकी पूजा भी विकल्प है; दोनों एक ही प्रकार हैं। वहाँ ढोलक, मंजीरे बजाकर जय हो, जय हो की धुन लगाते हैं, परन्तु उसमें क्या है? वह तो राग है।

प्रश्न:—ढोलक बजाना या नहीं?

उत्तर:–बजा कौन सकता है? राग आये और क्रिया होना हो तो होती है। वीतराग प्रतिमाकी भक्ति-पूजाका विरोध करना योग्य नहीं है। वीतराग प्रतिमाकी पूजा तो अनादिसे होती आ रही है, वह कोई नई नहीं है। ज्ञानीको वीतराग प्रतिमाकी पूजाके भाव आते हैं; परन्तु है वह व्यवहार, शुभ राग; वह पुण्यबंधका कारण है, धर्म नहीं है।

प्रश्न:–धर्म नहीं है तो फिर आता क्यों है?

उत्तर:–नीचे रागकी भूमिका है। अशुभ रागसे बचनेके लिये ज्ञानीको भी वीतराग जिनप्रतिमाकी पूजा-भक्तिके भाव आते हैं। हम तो निश्चयवाले हैं। हमें प्रतिमाकी पूजाका भाव नहीं आयेगा ऐसा माने तो वह बराबर नहीं है—वस्तुस्वरूप ऐसा है ही नहीं। पं. बनारसीदासजी कहते हैं कि–जिसके हृदयमें सम्यग्दर्शन द्वारा मिथ्यात्वजनित निद्राकी असावधानी नष्ट हो गई है, जिसके अंतरमें जैनमतकी पद्धति प्रगट हुई है, जिसने मिथ्याभिमानका त्याग किया है, जिसे छह द्रव्योंकी पहिचान हुई है, जिसने अरिहंत–देवकथित आगमका उपदेश श्रवण किया है, जिसके हृदय भंडारमें जैन मुनियोंके वचन प्रवेश कर गये हैं

और जिसके संसारका किनारा निकट आगया है वही जिन प्रतिमाको जिनराज सदृश मानता है। ज्ञानीको भी भक्ति आदिका शुभ राग आता है; वह सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है; परन्तु है वह शुभभाव, धर्म नहीं है।

भक्तिका राग, पूजाका राग तथा दया आदिका राग आता है, परन्तु जीव यदि उसका कर्ता हो जाय कि 'मैं उसका कर्ता हूं' तब तो मिथ्यादृष्टि हो जाय। जड़की पर्यायका कर्ता तो त्रिकालमें है ही नहीं। 'समाधिशतक'में पूज्यपादस्वामी तो यहाँ तक कहते हैं कि उपदेशका विकल्प आता है वह भी प्रभु! उन्माद है। अहा! मेरा नाथ—अंतर आनन्दका नाथ! उसमें उपदेश देनेके विकल्प उठते हैं वह उन्माद है!

प्रश्न :—वह तो चारित्रका उन्माद है न?

उत्तर :—वहाँ चारित्रके ही उन्मादकी बात है। वहाँ दर्शनका उन्माद कहाँ है? वे तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हैं, मुनि हैं। उनके तो तीन कषायका अभाव होकर अंतरमें भावलिंग–प्रचुर स्वसंवेदन—प्रगट हुआ है। वे मुनि ऐसा कहते हैं कि—अरे! उपदेश देनेका विकल्प आया वह चारित्रमोहका उन्माद है।

भाई! वीतराग मार्ग कोई अलौकिक है। अंतरमें समाये सो समाये—अनन्तानन्त काल तक समाधि सुखमें लीन हो गये।

'इसलिये तू उस ज्ञानपदको प्राप्त कर।'

शास्त्रका ज्ञान वह ज्ञान नहीं है, परन्तु ज्ञानपद प्राप्त करना वह ज्ञान है। उस अपूर्व पदकी–ज्ञानघन भगवान आत्माकी–खबर बिना कल्पित ध्यान करे, आँखे मींचकर 'ॐ अर्हं' आदि ध्यान करना वह विकल्प है। अंतरमें आनन्दस्वरूप भगवान आत्मामें एकाग्र होनेसे रागरहित—वीतराग—पर्याय हो उसका ध्यान है।

भाई! मार्ग कोई अलग है। विकल्पके व्यवहारसे प्राप्त हो ऐसी वह वस्तु नहीं है। विकल्प, शुभ राग वह दुःख है, उससे आनन्दकी प्राप्ति होती है? व्यवहार जितना है वह तो शुभराग है, दुःख है, और भगवान आत्माका निश्चय हो वह तो आनन्द है। शुभरागसे—दुःखसे आनन्दकी प्राप्ति होती है? भाई! बहुत गड़बड़ कर दी! यह कोई पण्डिताईकी वस्तु नहीं है, यह तो अंतरकी दृष्टि और अनुभवकी वस्तु है।

'उस अपूर्व पदकी खबर बिना कल्पित ध्यान करे, परन्तु चैतन्यदेवका स्वरूप क्या है, ऐसे रत्नराशि समान उसके अनन्त गुणोंका स्वामी कैसा है–वह जाने बिना ध्यान कैसा?'

कल्पित ध्यान करे, परन्तु चैतन्यदेव—अंतरमें देवाधिदेव भगवान आत्मा—का स्वरूप क्या है? अनंत चैतन्यके रत्न भरे हैं उसमें। अहा! ऐसे अनंत गुणरत्नोंका स्वामी कैसा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है? अन्तिम स्वयंभूरमणसमुद्रके तलमें रत्न भरे हैं, रेत नहीं; उसीप्रकार चैतन्यसमुद्रमें अनन्तानन्त रत्न भरे हैं। भगवान! उस अनंत गुणरत्नोंसे भरपूर भगवान आत्माकी प्रतीति निर्विकल्प अनुभूति हो तब होती है; रागकी या विकल्पकी शक्ति नहीं है कि उसकी प्रतीति कर सके, क्योंकि उस प्रतीतिमें अनंत चैतन्यरत्नकी प्रतीति आती है। अहा! उस प्रतीतिकी शक्ति कितनी कि जिसने अनंत-अनंत चैतन्यरत्नराशिको—त्रैकालिक ज्ञायक भगवान आत्माको—विश्वासमें ले लिया?

भाई! यह कोई अलौकिक बातें हैं। भाषासे किसी भी प्रकार कहो उसका पार नहीं आ सकता—ऐसी वस्तु है। यह भगवान आत्मा अनंतानंत गुणरत्नोंसे भरपूर स्वयंभूरमण महासमुद्र है कि जिन गुणरत्नोंकी कोई सीमा नहीं है। उन गुणोंका स्वामी कैसा है वह जाने बिना ध्यान कैसा? यह बात सर्वज्ञके आगममें ही कही है, अन्यत्र यह बात है ही नहीं। वह भी दिगम्बर जैनके जो परमागम हैं उन्हींमें कही है; जैन नाम धारण करने वाले सम्प्रदाय हैं उनमें भी यह बात नहीं है।

'जिसका ध्यान करना है उस वस्तुको पहिचाने बिना, उसे ग्रहण किये बिना, ध्यान किसके आश्रयसे होगा? एकाग्रता कहाँ होगी?

अंतरमें जिसकी महत्ताका पार नहीं है उस निज चैतन्यदेवके—सर्वज्ञदेव, सर्वदर्शीदेव, पूर्णानन्ददेव आदि अनंतानंत दिव्यशक्तियोंसे भरपूर निज भगवान आत्माके—ज्ञान बिना उसका ध्यान किसप्रकार कर सकेगा? जिसमें एकाग्र होना है उस वस्तुको पहिचाने बिना, उसे ग्रहण किये बिना अर्थात् लक्षमें लिये बिना ध्यान–एकाग्रता किसके आश्रयसे होगी? वस्तुकी ही खबर नहीं है तो आश्रय किसका करेगा? एकाग्रता कहाँ होगी? वस्तुस्वरूपका सच्चा ज्ञान तथा सच्ची प्रतीति होनेके बाद ही उसमें एकाग्रता विशेष होगी। वास्तविक ज्ञान और वास्तविक प्रतीति होनेके पश्चात् ही सच्चा ध्यान होगा। उससे पूर्व ध्यान नहीं होगा।

*

(बेनश्रीको आता देखकर कहा–) बेनके लिये जगह करो, 'धर्मकी शोभा' चली आ रही है। बेन न तो स्त्री हैं, न पुरुष हैं, वे तो स्वरूपमें हैं। भगवती स्वरूप एक चम्पाबेन ही हैं, उनकी दशा अलौकिक है। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज करती हैं। *–पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८५

ता. ४-६-७८

वचनामृत–२१२

एक सत्-लक्षण आत्मा—उसीका परिचय रखना। 'जैसा जिसको परिचय वैसी उसकी परिणति'। तू लोकाग्रमें विचरनेवाला लौकिक जनोंका संग करेगा तो वह तेरी परिणति पलट जानेका कारण बनेगा। जैसे जंगलमें सिंह निर्भयरूपसे विचरता है उसीप्रकार तू लोकसे निरपेक्षरूप अपने पराक्रमसे—पुरुषार्थसे—अंतरमें विचरना॥२१२॥

'एक सत्-लक्षण आत्मा—उसीका परिचय रखना।'

क्या कहते हैं? आत्मामें एक 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व नामकी त्रैकालिक शक्ति है। उत्पाद अर्थात् जीवादि वस्तुओंका नवीन अवस्थारूपसे उत्पन्न होना, व्यय अर्थात् पूर्वकी अवस्थासे नष्ट होना और ध्रौव्य अर्थात् वस्तुरूपसे नित्यस्थायी रहना। इन तीनोंकी एकता 'सत्' है। तत्त्वार्थसूत्रमें 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्'—ऐसी सत्की व्याख्या कही है। 'सद्द्रव्यलक्षणम्'—'सत्' वह द्रव्यका स्वरूप है। आत्मामें एक अस्तित्वमात्रमयी 'परिणामशक्ति' है। उसके कारण द्रव्यके स्वभावभूत ध्रौव्य-व्यय-उत्पादसे आलिंगित, सदृश और विसदृश जिसका रूप है ऐसे एक अस्तित्वस्वरूप परिणाम होता रहता है। सदृश अर्थात् ध्रौव्य और विसदृश अर्थात् उत्पाद-व्यय—वह जिसका स्वरूप है ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिवान निज आत्माका—एक सत्-लक्षण निज ज्ञायकतत्त्वका—सदा लक्ष रखना, उसीका निरंतर परिचय रखना।

'एक सत्-लक्षण आत्मा'—अहा! बड़ी संक्षिप्त भाषा! एक देशवासी साधुका पत्र आया है कि—यह 'बहिनश्रीके वचनामृत'की ५० हिन्दी, ५० गुजराती और ५० मराठी इस प्रकार १५० पुस्तकें भेजो। अरे! कोई भी मध्यस्थ जीव, फिर भले वह वेदान्ती हो या कोई अन्य हो, यह 'वचनामृत' पुस्तक पढ़े तो उसे अंतरमें ऐसा हो जाय कि—अहा! यह क्या वस्तु है? भाई! यह तो वस्तुका स्वरूप है, कोई अपने घरकी मति-कल्पना नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। आत्मा 'द्रव्य' है इसलिये वह भी 'सत्' लक्षणवाला है। उसका अंतरमें परिचय रखना, रागका, पर्यायका या व्यवहारका नहीं। अहा! बात बहुत सूक्ष्म है।

समयसारकी टीकामें—चौथे कलशमें—'जिनवचसि रमन्ते' कहा है। जो जिन वचनमें रमता है वह शीघ्र परम ज्ञायक ज्योतिरूप निज समयसारको अनुभवता है। जिनवचनमें क्या कहा है? त्रिकाल जिनस्वरूपी ज्ञायक प्रभु, कि जिसमें उदयभावका संग नहीं है और व्यवहार या विकल्पकी गंध नहीं है उस जिनवचनमें उपादेयरूप कहा है। सर्व शास्त्रोंमें त्रिकाल सत्-लक्षणवाले निज आत्माका—वीतरागस्वरूप निज ज्ञायक भावका लक्ष्य करना कहा है। उस वीतराग स्वरूप ज्ञायक आत्माका ही परिचय रखना; क्योंकि प्रभुकी आज्ञा वीतरागता प्रगट करनेकी है। वीतरागस्वभावका अंशतः आश्रय होने पर पर्यायमें अंशतः वीतरागता प्रगट होगी और वह वीतराग पर्याय, स्वभावका पूर्ण आश्रय होने पर, पूर्ण वीतरागताका कारण होगी।

क्या कहा? वीतराग पूर्णानन्दमूर्ति जिनस्वरूपी जो निज ज्ञायक भगवान उसका परिचय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप वीतराग पर्याय उत्पन्न होगी। वह वीतराग पर्याय त्रैकालिक ज्ञायक भगवानके आलम्बनसे उत्पन्न होती है और वह वीतराग निर्मल पर्याय पूर्ण वीतरागता एवं सर्वज्ञताका कारण है।

प्रश्न :—व्यवहार कुछ भी कारण नहीं है?

उत्तर :—वीतरागताकी अपूर्ण निर्मल पर्यायको पूर्ण वीतराग पर्यायका कारण कहना वह व्यवहार। निश्चयसे तो सत्-लक्षणवाले निज ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावके पूर्ण आश्रयसे ही पूर्ण निर्मलता प्रगट होती है। शुभराग तो कारण नहीं किन्तु अपूर्ण शुद्धिको कारण कहना वह भी व्यवहार है; निश्चय कारण तो त्रैकालिक ध्रुवस्वभावका पूर्ण आश्रय है। इसलिये दूसरा सब छोड़कर एक सत्-लक्षण त्रैकालिक ज्ञायकका ही परिचय रखना।

अहा! यह तो अगमनिगमकी बातें हैं प्रभु! यह कोई बाहरी पण्डिताईकी वस्तु नहीं है। अरे! वह बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञान भी क्या है? वह भी खण्ड-खण्ड ज्ञान है और वह मात्र ज्ञेयनिमग्न होनेसे बंधका कारण है। क्या कहना है?—धारणासे किया गया शास्त्रज्ञान वह मात्र शब्दज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं है। प्रभु! तेरा स्वभाव वीतरागी ज्ञानसे भरपूर है; उसका परिचय कर। कब तक? पर्यायमें पूर्ण वीतराग सर्वज्ञदशा हो तब तक।

अहा! पुस्तककी कोई शैली है! बिलकुल सादी भाषा। कहते हैं कि—वीतरागस्वरूपी निजज्ञायकभगवानके परिचयमें वीतरागभावसे रहना वही मोक्षका मार्ग है। पाँच पांडव शत्रुंजय पर्वत पर आत्मध्यानमें लीन थे; उस समय दुर्योधनके भानजेने वैरभावसे क्रोधित होकर उन्हें लोहेके गहने पहिनाये। तीन बड़े भाई तो अपने आत्माके परिचयमें—अंतरके अतीन्द्रिय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्दमें—उग्ररूपसे लीन हो गये और मुक्तिको प्राप्त हुए। दो छोटे भाई अपने स्वरूपके परिचयमें तो हैं, परन्तु उन्हें किंचित् 'बड़ेभाइयोंका क्या होगा!' ऐसा अस्थिरताका शुभ विकल्प आ गया और परिणामतः दो भव बढ़ गये। भाई! अपने स्वरूपका परिचय छोड़कर विकल्पमें आना वह भव है, संसारं है। इसलिये यहाँ कहते हैं—एक सत्-लक्षण निज आत्माका ही परिचय रखना। जरा कठिन लगता है, किन्तु कल्याणका मार्ग तो एक ही है।

'जैसा जिसको परिचय वैसी उसकी परिणति।'

यह आत्मा स्वभावसे वीतराग जिनस्वरूप ज्ञायक भगवान है; उसका जिसे अंतरकी रुचिपूर्वक परिचय होगा, उसकी परिणति वैसी ही वीतराग जिनस्वरूप हो जायगी। वीतराग प्रभुका यह मार्ग अलौकिक है भाई! लोगोंने तो आजकल मार्गके नाम पर बहुत गड़बड़ी कर दी है—वीतरागी सन्तों द्वारा कहे गये इस वस्तुस्वरूपको तो 'एकान्त है' ऐसा मानते हैं और स्वयं रागकी क्रियामें धर्म मान बैठे हैं। क्या किया जाय? भाई! वीतरागका मार्ग समझनेके लिये अंतरकी दृष्टि चाहिये।

वह समझनेके लिये यहाँ यह भाषा देखी? देखो–'जैसा जिसको परिचय वैसी उसकी परिणति'। लौकिक विषयका परिचय करेगा तो रागादि विकारकी पर्याय उत्पन्न होगी। अरे! अकेला वीतराग देव-शास्त्र-गुरुका परिचय करेगा तब भी शुभराग उत्पन्न होगा; अंतरमें निज ज्ञायक प्रभुकी दृष्टि तथा परिचय किये बिना कभी वीतरागता उत्पन्न नहीं होगी। प्रभु! भगवानका मार्ग ऐसा है कि–जैसा जिसको परिचय वैसी उसकी परिणति। अब, तीसरे वाक्यमें कहते हैं कि–

'तू लोकाग्रमें विचरनेवाला लौकिक जनोंका संग करेगा तो वह तेरी परिणति पलट जानेका कारण बनेगा।'

सिद्ध भगवान तो लोकाग्रमें विराजते हैं, और तू भी, तेरी जाति सिद्ध समान होनेसे, लोकाग्रमें—लोकसे अग्र अर्थात् भिन्न, जगतसे निराला—विचरनेवाला है। 'समाधिशतक'में श्री पूज्यपाद आचार्यदेवने कहा है कि–हमें अपने चैतन्यलोकसे बाहर आकर, उपदेश देनेका जो विकल्प आता है वह भी चारित्रमोहका उन्माद है :

बीजा उपदेशे मने, हुं उपदेशुं अन्य;
ऐ सौ मुज उन्मत्तता, हुं तो छुं अविकल्प॥१९॥

अरेरे! उपदेशका जो राग आया वह भी परदेश है; हम वहाँ कहाँ जा पहुँचे? हमें तो अपने स्वरूप-स्वदेशमें त्वरासे जाना है; हमें शीघ्र पूर्ण वीतराग दशा प्राप्त करना है। आत्मावलोकन ग्रन्थमें कहा है : गुरु किसे कहते हैं?—जीवका निजस्वरूप वीतराग है।

४२.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग....वीतराग....ऐसे वीतरागपदको जो बारम्बार (मुहुंमुहु गणदि वीयरायं) कहता है वही सदा गुरुपद पर शोभता है। चरणानुयोगमें भले शुभरागकी प्रधानतासे व्याख्या की; परन्तु वहाँ भी साथमें रही हुई—स्वभावके आश्रयसे परिणमित हुई—वीतरागता ही बतलाना है। वहाँ स्व-परप्रकाशक वीतरागविज्ञान स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट हुआ है; शुभ राग है इसलिये व्यवहारको जाननेवाला ज्ञान प्रगट हुआ है—ऐसा नहीं है; क्योंकि, उस रागको—व्यवहारको—जाननेवाले ज्ञानमें एक सत्-लक्षण निज आत्मा है; उसका परिचय किया तो उसे अपनी पर्यायमें वीतरागता उत्पन्न हुई है, राग और व्यवहारके परिचयसे नहीं।

'तू लोकाग्रमें विचरनेवाला'—उसका क्या अर्थ?—सिद्ध लोकके अग्रभागमें विराजते हैं, तुझे भी उन जैसा सिद्ध होना है न? तू भी रागादि लौकिक भावोंसे भिन्न रहनेवाला है न? प्रभु! तेरा देश, शुभाशुभ लौकिक भावोंसे उस पार ऐसा, वीतराग स्वभाव है। शुभराग भी परदेश है; वहाँ आत्माका ज्ञान, शान्ति, समाधि आदि परिवार नहीं है। आत्माका समस्त परिवार वीतराग स्वभावमें है, वही आत्माका देश है।

लोकोत्तर दशामें विचरनेवाले प्रभु! यदि तू लौकिक जनोंका संग करेगा—रागके रसिक, विषयोंके प्रेमी, ऐसे जगतके जीवोंका परिचय करेगा—तो तेरी परिणति पलट जायगी। उनसे नहीं किन्तु तू स्वयं उनका परिचय करेगा तो तेरी परिणति पलट जायगी। अहाहा! ऐसा मार्ग है। लोग यह शास्त्र पढ़ेंगें; उन्हें लगेगा कि—यह तो तत्त्वकी यथार्थ वस्तु है; यह कोई पक्ष नहीं है। यह बोलनेकी क्रिया भी जड़की है, उसका भी परिचय मत कर, और रागके रसिक जो लौकिक जन, जिन्हें पुण्य और पुण्यके फल शरीर, लक्ष्मी आदि पर प्रेम है उनका भी परिचय न कर। उनका रसपूर्वक परिचय करेगा तो तेरी दशाका पतन होगा।

भाई! सबेरेसे शाम तक दिन भर व्यापार-धंधेमें, स्त्री और बाल बच्चोंमें लगा रहता है। कभी थोड़ा समय श्रवण या पठनके लिये निकालें तो वहाँ किंचित् शुभभावमें संतुष्ट हो जाता है; परन्तु वह तो एरनकी चोरी और सुईके दान जैसा है। अरे भाई! तेरा मार्ग कोई अलग है! तू तो लोकाग्रमें—लोकोत्तर स्वभावमें—निवास करनेवाला नाथ है न प्रभु! लोकाग्रमें सिद्ध रहते हैं, उन्हें किसीका परिचय है? तू लोकसे भिन्न ज्ञायक भगवान यदि लौकिक संग करेगा तो वह तेरे पतनका कारण होगा। अहा! ऐसा स्वरूप है प्रभु!

'जैसे जंगलमें सिंह निर्भयरूपसे विचरता है उसीप्रकार तू लोकसे निरपेक्षरूप अपने पराक्रमसे—पुरुषार्थसे अंतरमें विचरना।'

सिंह क्या किन्हीं हिरनों और श्रृगालोंका परिचय करता होगा? जंगलमें जिसप्रकार सिंह निर्भयरूपसे विचरता है, उसीप्रकार तू भी अपने स्वरूपमें, लोकसे बिलकुल पृथक् होकर विचरना। अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायक ध्रुवस्वभाव समस्त लौकिक भावसे भिन्न ही है। शरीरका,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर्मका, उदयका अथवा रागका भी जिसे परिचय नहीं है ऐसी वीतरागी वस्तु अंतरमें विद्यमान है। अहा! सर्वज्ञ वीतराग परमात्माकी वाणी वीतरागता उत्पन्न करनेकी शिक्षा देती है। भगवान क्या कहते हैं?—तेरी वस्तु वीतराग स्वरूप है; उसका परिचय कर, तो तुझे अंतरमें वीतरागपर्याय उत्पन्न होगी।

जंगलका राजा केसरी सिंह निर्भय होकर विचरता है, उसे किसीका परिचय है? उसी प्रकार तू तीनलोकका ज्ञाता—तीनलोकका परिचय करनेवाला नहीं—चैतन्यराजा है। श्रुतज्ञानमें भी तू तीन लोकका ज्ञाता है प्रभु! सिंह जिसप्रकार जंगलमें निर्भयरूपसे विचरता है उसीप्रकार तू भी लोकसे निरपेक्ष होकर विचरण कर।

कोई राजा या करोड़पति वंदन करे तो संतुष्ट और गरीब वंदन करे तो उसकी उपेक्षा; कोई दस-वीस लाख रुपये लगानेकी बात करे तो खुश–खुश हो जाता है; प्रभु! तुझे उसकी क्या पड़ी है? उसका परिचय न कर भाई! उसके रागमें तेरा पतन होगा, अपने वीतराग स्वरूपको तू चूक जायगा।

प्रभु! अंतरमें तेरी वीतरागी बैठक है; रागसे भिन्न उदासीन तेरा आसन भीतर बिछा है। तेरा मार्ग तो अंतरमें है। तू लोकसे—लोक राजा हो या गरीब हो, दानी हो या याचक हो—निरपेक्ष हो जा। तुझे उसकी क्या अपेक्षा है? उसकी अपेक्षा करेगा तो राग उत्पन्न होगा। भीतर तीनलोकका नाथ भगवान ज्ञायक देव विराजता है उसकी अपेक्षा कर न! परकी अपेक्षा छोड़ दे, निरपेक्ष हो जा। तू लोकमें निरपेक्षरूपसे अपने अंतर्मुख पराक्रमसे—स्वसन्मुख पुरुषार्थसे—अपने निज स्वरूपमें उतरना। वहाँ आनन्दकन्द प्रभु है, जिनस्वरूपी भगवान है, वही तेरा स्वदेश है; इसलिये वहीं तू विचरना।

देखो यह भाषा! यह किसे नहीं रुचेगी? अहा! अनेक स्थानों पर यह पुस्तकें पहुँच गई हैं, कई लोगोंको भेट दी हैं, कई लोग खरीद रहे हैं। भगवान! यह तो तेरे स्वरूपकी बातें हैं। इस एक बोलमें ही (२१२ वें [illegible]में) कितना समाया हुआ है। भाई! लोग मानें, सन्मान करें, प्रशंसा करें, परन्तु यदि तू उसका प्रेमसे परिचय करेगा तो मर जायगा, तेरा पतन हो जायगा। इसलिये तू अपने अंतर्मुख पराक्रमसे, स्वभावसन्मुख पुरुषार्थसे, अंतरमें वीतरागभावकी ओर निरपेक्षरूपसे विचरना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२१३

लोगोंका भय त्यागकर, शिथिलता छोड़कर, स्वयं दृढ़ पुरुषार्थ करना चाहिये। 'लोग क्या कहेंगे' ऐसा देखनेसे चैतन्यलोकमें नहीं पहुँचा जा सकता। साधकको एक शुद्ध आत्माका ही सम्बन्ध होता है। निर्भयरूपसे उग्र पुरुषार्थ करना, बस! वही लोकाग्रमें जानेवाला साधक विचारता है।।२१३।।

'लोगोंका भय त्यागकर, शिथिलता छोड़कर, स्वयं दृढ़ पुरुषार्थ करना चाहिये।'

दुनिया मुझे क्या मानेगी? यह व्यक्ति बिलकुल पुरुषार्थहीन है, कुछ बोलना भी नहीं जानता, चुपचाप बैठा रहता है, अंतर ही अंतरमें लीन रहता है—इसप्रकार लोग चाहे जो कहें, उसकी तुझे क्या पड़ी है? लोग मेरी प्रशंसा करें, मेरी प्रसिद्धि हो—ऐसी बुद्धिवाला जीव तो बहिरात्मा—मिथ्यादृष्टि है। इसलिये लोगोंका भय त्याग दे, शिथिलता छोड़ दे और अंतर्मुख होकर स्वभावका दृढ़ पुरुषार्थ कर।

प्रभु! तू तो जिनस्वरूपी वीतराग स्वभावकी मूर्ति है न? सबेरे कहा था न!—

घट-घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मति-मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न।।

प्रत्येक प्राणीके अंतरमें जिनस्वरूपी वीतरागमूर्ति भगवान ज्ञायक आत्मा विराजता है। जिसने अंतरमें जिनस्वरूपी भगवान आत्माका अवलम्बन लिया वह जैन है। 'जैन' कोई फिरका या सम्प्रदाय नहीं है; जो जिनत्वशक्तिका आधार ले—त्रैकालिक ध्रुवस्वभावका आश्रय ले—वह जैन। परन्तु जिसने, 'मैं जानता हूँ, मुझे बहुत आता है, मुझे माननेवाले बहुत हैं, मेरी बहुत प्रसिद्धि है'—इसप्रकार मति-मदिरा अर्थात् योग्यताके अभिमानकी मदिरा पी है वह अपने जिनस्वरूपी भगवान आत्माको नहीं समझ सकता, जैनत्वको प्राप्त नहीं कर सकता। प्रभु! तुझे बाह्य प्रसिद्धिका क्या काम है? प्रसिद्धि तो अंतरमें अपने स्वरूपकी करना है। उसके लिये शिथिलता छोड़कर अंतर्मुख दृढ़ पुरुषार्थ करना है। गुण-गुणीके भेदरूप विकल्पमें आना वह भी शिथिलता और बंधका कारण है। तू तो अनंत पराक्रमका स्वामी प्रभु है; तुझमें 'प्रभुत्व' नामका एक गुण है। अखण्ड जिसका प्रताप है ऐसी स्वतंत्रतासे शोभायमानपना जिसका स्वरूप है वह 'प्रभुत्व' गुण है। स्वतंत्रता और स्वाधीनता ही आत्माकी शोभा है। पराश्रित भावसे—शुभरागसे—लाभ होता है ऐसा वस्तुस्वरूपमें है ही नहीं। आता है कुछ समझमें? यही मार्ग है।

जिनाज्ञाका—चारों अनुयोगका—तात्पर्य वीतरागभाव है। बारह अंगका अभ्यास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकल्प रूप है, वह कोई अद्भुत वस्तु नहीं है; परन्तु उसमें कही हुई भगवान आत्माकी अनुभूति ही अद्भुत है। वह अनुभूति अर्थात् वीतरागी पर्याय निजद्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट होती है। इसलिये, बारह अंग और चारों अनुयोग ऐसा कहते हैं कि—जिनस्वरूपी त्रैकालिक निज ज्ञायक प्रभुका आश्रय ले और लोकका, निमित्तका तथा व्यवहारका आश्रय छोड़ दे। ऐसी अंतरकी बात समझना कठिन लगती है इसलिये लोग कहते हैं कि यह तो निश्चयाभास है, एकान्त है! भाई! यह एकान्त ही है, परन्तु सम्यक्।' द्रव्य एवं पर्याय—दोनोंका यथार्थ ज्ञान करना वह प्रमाण अर्थात् अनेकान्त है। उसमें राग, विभाव और पर्यायको—व्यवहारको—गौण करके, त्रैकालिक शुद्ध स्वभावरूप निश्चयका यथार्थ आश्रय करना सो सम्यक् एकान्त है। श्रीमद्ने भी कहा है कि—अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है। इसलिये अंतरमें दृढ़ पुरुषार्थ करके राग और विकल्पसे भिन्न ऐसे निज वीतराग ज्ञायक प्रभुका आश्रय ले।

'लोग क्या कहेंगे' ऐसा देखनेसे चैतन्यलोकमें नहीं पहुँचा जा सकता।'

लोग मुझे मानते हैं, अथवा लोग मुझे नहीं मानते, उसे मानते हैं—ऐसा सब देखने जायगा तो तू भीतर चैतन्यलोकमें नहीं पहुँच सकेगा। लोग मानें या न मानें उसके साथ तुझे क्या सम्बन्ध? लोग सभामें आयें—न आयें यह उनकी इच्छा। 'लोग क्या कहेंगे' ऐसा देखने बैठेगा तो तू भीतर स्वरूप-स्वदेशमें नहीं जा सकेगा। नित्य चिन्मय अस्तित्व-स्वभावसे भरपूर ज्ञायकलोकमें जानेके लिये यह सब बाहरी पंचायत छोड़ दे; उसके लक्षसे भीतर ज्ञानानन्द स्वरूपमें प्रवेश नहीं कर पायेगा।

'साधकको एक शुद्ध आत्माका ही सम्बन्ध होता है।'

साधक जीवको एक निज शुद्ध ज्ञायक आत्माके सिवा अन्य किन्हीं लौकिक वस्तुओंके साथ अंतरसे रस पूर्वक सम्बन्ध नहीं होता; स्त्री-पुत्र या कुटुम्ब-परिवारके साथ तो नहीं परन्तु जो साधर्मी जीव उनका भी संग नहीं; अरे! रागका भी सम्बन्ध नहीं। यदि उनका संग या सम्बन्ध करने जायगा तो विकल्प उठेंगे। अहा! ऐसा वस्तुका स्वरूप है; जगतसे बिलकुल निराली बात है।

अज्ञानीको बाहरका सम्बन्ध रुच गया है और भीतर शुद्ध आत्माका सम्बन्ध रह गया है,. उससे वह वंचित है। अनादिकालसे वह परलक्षमें तथा पुण्य पापके संगमें पड़ा है, परन्तु पर एवं रागके सम्बन्ध रहित अंतरमें यह कौनसी वस्तु है उसकी उसने कभी रुचि नहीं की है। ज्ञानी साधक जीवको तो मात्र एक निज शुद्ध वीतराग ध्रुवतत्त्वका ही सम्बन्ध होता है, राग या निमित्तके साथ सम्बन्ध नहीं होता।

'निर्भयरूपसे उग्र पुरुषार्थ करना, बस! वही लोकाग्रमें जानेवाला साधक विचारता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दुनियाकी परवाह छोड़ दे। उसे अधिक ज्ञान है और मुझे अल्प ज्ञान है, लोग मेरी गिनती नहीं करेंगे—यह सब बातें छोड़ दे; क्या अभी तुझे दुनियामें गिनती कराना है? लोकोत्तर मार्ग पर चलनेवाला साधक जीव तो अंतरमें निरंतर निर्भयरूपसे, निःस्पृहरूपसे शुद्धात्म साधनाके पुरुषार्थका ही विचार करता है। साधकको मोक्ष साध्य है, और मोक्षका साधन मात्र वीतराग पर्याय है; वीतराग पर्याय त्रैकालिक वीतराग स्वभावके आश्रयसे प्रगट होती है। इसप्रकार स्वभाव मार्ग और मार्गका फल—तीनों वीतराग स्वरूप हैं।

दुनिया पुकार करती है कि कुछ व्यवहार तो चाहिये न? जीवोंकी रक्षाके लिये अहिंसादि व्यवहार धर्म कहा है न? अरे भगवान! किसकी रक्षा? अहिंसादिके शुभ विकल्प आते हैं, परन्तु वह तो बंधका कारण है। व्यवहार धर्मका अर्थ इतना है कि–वीतराग स्वभावमें पूर्णरूपसे नहीं रह सकता, इसलिये ज्ञानीको भी भूमिकानुसार दया, दानादिके शुभभाव आते हैं उन्हें उपचारसे अर्थात् व्यवहार नयसे धर्म कहा जाता है। वास्तवमें तो उसे अंतरमें स्वभावके आश्रयसे जितना वीतरागभाव परिणमित हुआ है वही धर्म है, शुभराग कहीं धर्म नहीं है। अशुभभाव तो अधर्म है ही, परन्तु शुभभाव भी, मधुर भाषामें कहें तो पुण्य है और कठोर भाषामें कहें तो—वीतरागभाव स्वरूप शुद्धताका घातक होनेसे—अधर्म है। ऐसा है वीतराग मार्ग प्रभु!

'मोक्षमार्ग प्रकाशक'में ऐसा आता है कि–उपदेश देनेवाला, लोग संतुष्ट हों तो प्रसन्न होता है, श्रोताओंकी संख्या अधिक हो, वहाँ उनके मुँहकी ओर देखता है कि–मेरी बातसे कौन प्रभावित हो रहा है? अरे प्रभु! यह तुझे क्या हुआ है? कहाँ जाना है भगवान? लोकाग्रमें जानेवाले साधक जीव तो यह सब झंझट छोड़कर निर्भयरूपसे अंतरमें उग्र पुरुषार्थ करनेका विचार करते हैं। अंतरमें चैतन्य रत्नाकर प्रभु विराजता है, सम्यग्दृष्टि जीवको मात्र उसीका सम्बन्ध होना चाहिये। चारित्र दशामें भी त्रैकालिक शुद्धतत्त्वका ही आश्रय है। साधकको जहाँ शुभरागका भी सम्बन्ध नहीं है वहाँ निमित्त या लौकिक संग—उसका सम्बन्ध—कहाँसे होगा? सहदेव और नकुल जैसे महा मुनिराजको भी एक जरासा विकल्प आ जानेसे मुनिदशा अटक गई और दो भव बढ़ गये। शुभराग भी जगपंथ—संसार पंथ—है, शिवमार्ग नहीं है। अरेरे! जीव कहीं न कहीं अटक जाता है। शुभरागको मुक्तिका कारण मानना वह मिथ्यात्वरूपी शल्य है। जीवको अटकनेके मार्ग अनेक हैं, छूटनेका मार्ग एक है—वीतराग भाव। इसलिये लोकोत्तर मार्ग पर चलनेवाला साधक निर्भयरूपसे अंतर्मुख उग्र पुरुषार्थका ही विचार करता है, अन्य सब छोड़ देता है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—२१४

सद्गुरुके उपदेशरूप निमित्तमें (निमित्तपनेकी) पूर्ण शक्ति है, परन्तु तू तैयार न हो तो ?—तू आत्मदर्शन प्रगट न करे तो ? अनन्त-अनन्तकालमें अनेक संयोग प्राप्त हुए परन्तु तूने अंतरमें डुबकी नहीं लगायी। तू अकेला ही है; सुख दुःख भोगनेवाला, स्वर्ग या नरकमें गमन करने वाला केवल तू अकेला ही है।

मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे॥

—तू अकेला ही मोक्ष जानेवाला है, इसलिये तू आत्मदर्शन प्रगट कर।

गुरुकी वाणी सुनकर विचार कर, प्रतीतिकर और स्थिर हो; तो तुझे अनंत ज्ञान एवं सुखका धाम ऐसे निज आत्माके दर्शन होंगे॥२१४॥

'सद्गुरुके उपदेशरूप निमित्तमें (निमित्तपनेकी) पूर्ण शक्ति है, परन्तु तू तैयार न हो तो ?—तू आत्मदर्शन प्रगट न करे तो ?'

केवली भगवन्तोंने तथा ज्ञानी धर्मात्मा संतोंने वीतरागताका उपदेश दिया है; परन्तु वह उपदेश तो निमित्तमात्र है। श्रोता स्वयं अपने उपादानसे अंतर्मुख होकर वीतरागभाव प्रगट न करे तो निमित्त क्या करेगा ? वीतराग देव-शास्त्र-गुरु—इन तीनोंमें वीतरागताके निमित्तपनेकी पूर्ण शक्ति है, परन्तु प्रभु! तू स्वयं अंतरसे तैयार न हो। स्वसन्मुख होनेका पुरुषार्थ न करे, अंतरमें पूर्णानन्दके नाथकी दृष्टि न करे तो वीतरागता रूपी कार्य कहाँसे होगा ? भगवानके समवसरणमें एकबार नहीं किन्तु अनंतबार वाणी सुनी, परन्तु उससे क्या ?

सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधनबार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

बाह्यके—व्यवहारके—साधन अनंतबार किये, परन्तु अंतर्मुख दृष्टि कभी नहीं की। अंतरमें वीतरागदृष्टि बिना शुद्धात्मदर्शन कभी प्रगट नहीं होता।

'अनन्त-अनन्त कालमें अनेक संयोग प्राप्त हुए परन्तु तूने अंतरमें डुबकी नहीं लगायी!'

समवसरणमें गया, तीर्थंकरदेव एवं निर्ग्रन्थ गुरु मिले, उनकी वाणी सुननेका सुयोग प्राप्त हुआ, परन्तु तूने भीतर स्वरूपमें डुबकी नहीं लगायी। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागमार्ग ध्यानमें प्रगट होता है। किस प्रकार? 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।' निज शुद्धात्मद्रव्यस्वभावका ध्यान करनेसे, अंतरमें निर्विकल्प एकाग्रता करनेसे, अंतरमें ज्ञायक स्वरूपमें डुबकी लगानेसे, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप वीतराग मोक्षमार्ग प्रगट होता है। जीवने कभी अंतरमें डुबकी नहीं लगायी है। अंतरमें ध्रुवधामको ध्येय बनाकर स्वभावमें डुबकी लगाये तो सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध दशा—वीतराग भाव—प्रगट हो।

'तू अकेला ही है; सुख-दुःख भोगनेवाला, स्वर्ग या नरकमें गमन करनेवाला केवल तू अकेला ही है।'

सुख या दुःख भोगनेमें प्रभु! तू अकेला ही है; और पुण्य-पांपके परिणाम करके स्वर्गमें या नरकमें जानेवाला तू अकेला ही है। परिणाम करनेमें भी तू स्वयं अकेला ही है, इसलिये उसका फल भोगनेमें भी तू अकेला ही है; उसमें कोई सहभागी नहीं होता।

'मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे,
पाता अकेला ही मरण, अरु मुक्ति एकाकी करे।'

—तू अकेला ही मोक्ष जानेवाला है, इसलिये तू आत्मदर्शन प्रगट कर।'

जन्म-मरण या मुक्तिदशा जीव अकेला ही पाता है, उसमें उसे अन्य कोई सहायक नहीं होता। आत्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसारमें भटकता है और स्वयं संसारसे मुक्त होता है।

नियमसारकी टीकामें कहा है : स्वयं किये हुए कर्मके फलानुबंधको भोगनेके लिये तू अकेला जन्ममें तथा मृत्युमें प्रवेश करता है। स्त्री-पुत्र-मित्रादिक अन्य कोई सुख-दुःखके प्रकारोंमें बिलकुल सहायभूत नहीं होता। मात्र अपने स्वार्थके लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक ठगोंकी टोली तुझे मिली है।

जीव अकेला प्रबल दुष्कृतसे जन्म एवं मृत्युको प्राप्त होता है; जीव अकेला तीव्र मोहके कारण स्वसुखसे विमुख होता हुआ शुभ और अशुभकर्मके फलरूप सुख और दुःखको बारम्बार भोगता है; जीव अकेला गुरुके द्वारा ऐसे अवर्णनीय परम चैतन्यतत्त्वको प्राप्त करके उसमें स्थित रहता है।

पूर्ण परमानन्ददशाको अर्थात् मुक्तिदशाको प्राप्त करनेवाला—मोक्ष जानेवाला—तू अकेला ही है, उसमें कोई साथी-संगी नहीं है; इसलिये तू अकेला स्वयं आत्मदर्शन प्रगट कर।

'गुरुकी वाणी सुनकर विचारकर, प्रतीतिकर और स्थिर हो; तो तुझे अनंतज्ञान एवं सुखका धाम ऐसे निज आत्माके दर्शन होंगे।'

गुरुकी वाणी बराबर लक्षपूर्वक सुनकर उसका गहरा विचार कर, उनका बतलाया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्त्व—आत्माका यथार्थ स्वरूप—अंतरमें बराबर निर्णय करके उसकी सम्यक्प्रतीति कर और उसमें स्थिर हो, तो तुझे अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दका कन्द ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्वके दर्शन होंगे, उसका तुझे अतीन्द्रिय अनुभव होगा। ऐसी बात है प्रभु! समझमें न आये इसलिये कठिन लगती है; परन्तु कल्याण करना हो तो इसे समझना ही पड़ेगा।

स्वरूपपरिणतिमें यथाशक्ति स्वरूपस्थिति हुआ करती है। प्रशस्त योगमें वांचन-विचार यथाशक्ति, जिस प्रकार वीर्यपरिणति उठती है उस प्रकार, हुआ करते हैं। ज्ञानपरिणतिमें कुछ कुछ नया नया समझमें आता है परन्तु वह सब पत्रमें किस प्रकार लिखा जाये? साधारण लिखना हो तो लिखा जाये, परन्तु लिखनेके तरफ लक्ष नहीं आता।

ज्ञानपर्याय सम्पूर्ण प्रगट होकर, पुरुषार्थ द्वारा अकेली स्व-आश्रयरूप और एकदम सहज परिणमन करेगी तब धन्य होगी।

ज्ञायककी ज्ञातारूप 'अडोल' परिणति बढ़ते बढ़ते सर्वांश सूक्ष्म अडोलता प्राप्त होगी वह दिन धन्य होगा।

अहा! धन्य है उस सम्पूर्ण अडोल परिणतिको कि जहाँ परकी असर, सूक्ष्म भी, सर्व प्रकारसे सहज छूटकर, अकेला साक्षीस्वभाव, वीतरागस्वभाव, अचिन्त्य और अद्भूत ऐसा आत्मद्रव्य अपने स्वभावोंको—तरंगोको वेद रहा है, उसमें परिणम रहा है, किसी अद्भुततामें खेल रहा है!

—पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

४३.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८६

ता. ५-६-७८

वचनामृत–२१५

मुमुक्षु जीव शुभमें लगता है, परन्तु अपनी शोधकवृत्ति बह न जाय—अपने सत्स्वरूपकी शोध चलती रहे इस प्रकार लगता है। शुद्धताका ध्येय छोड़कर शुभका आग्रह नहीं रखता।

तथा वह 'मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ' करके पर्यायकी अशुद्धताको भूल जाय—स्वच्छन्द हो जाय ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदयको भीगा हुआ रखता है॥२१५॥

'मुमुक्षु जीव शुभमें लगता है, परन्तु अपनी शोधकवृत्ति बह न जाय—अपने सत्स्वरूपकी शोध चलती रहे इसप्रकार लगता है।'

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञपरमात्मा श्री जिनेन्द्रदेवने प्रत्यक्ष देखे हुए इस पूर्ण ज्ञानानन्दघन स्वरूप निज भगवान आत्माकी दृष्टि करना सो सम्यग्दर्शन है। वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी, जीवादि नवतत्त्वकी और स्व-परकी श्रद्धाके विकल्प तथा दया, दान, व्रत एवं भक्तिके भाव शुभ परिणाम हैं, वे धर्म या धर्मका कारण नहीं हैं। अंतरमें त्रैकालिक ध्रुवस्वभावको ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन होने पर जो अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है वह धर्मका प्रथम सोपान है।

मुमुक्षु जीवको शुभ भाव आता है, परन्तु उसमें उसका लक्ष, कर्तव्यपनेके अभिप्रायका जोर नहीं है। 'शुभभाव करने योग्य है' ऐसा जोर अभिप्रायमें आ जाय तो अपनी शोधक वृत्ति ही टल जाय। शुद्ध पूर्ण ज्ञानानन्दमय ध्रुवस्तुकी शोधनवृत्ति बह न जाय, अंतरमें अपने स्वरूपकी खोज चलती रहे इसप्रकार सत्समागम, श्रवण, पठन, भक्ति आदिके शुभभावमें लगते हैं। जिज्ञासु जीवको सम्यग्दर्शन होनेसे पूर्व शुभभाव आते हैं, परन्तु शुद्धस्वभावकी शोधकवृत्ति, चाहे जिस प्रसंगमें हो, अंतरमें निरंतर चलती ही रहती है। अहा! यह बात कैसे वैठे?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कठिन काम है भाई! अभी तो सांसारिक कार्योंसे अवकाश नहीं लेता, और दो-चार लाख रुपये मिल जायँ तो बस! हो गया—हम पैसेवाले! अरे प्रभु! यह क्या हो गया है तुझे? जहाँ शुभराग भी तेरी वस्तु नहीं है वहाँ पैसा तेरा कहाँसे हो गया?

त्रैकालिक ज्ञानानन्दके नाथका अनुभव—अतीन्द्रिय रसास्वाद—सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे पूर्व भी मुमुक्षु जीवको अंतरोन्मुखता होती है। उस काल शुभभाव आनेपर भी मुमुक्षुको शुद्धात्मस्वभावकी शोधकवृत्ति हट न जाय—अपने ज्ञायक स्वभावकी खोज चलती रहे—इसप्रकार उसमें लगता है।

सम्यग्दर्शन तो धर्मकी पहली सीढ़ी है; चारित्र तो आगेकी कोई अलग वस्तु है। मुमुक्षु अर्थात् मोक्षके अभिलाषी, मोक्षकी उत्कंठा वाले जीव। उनको दया, दान, भक्ति, प्रभुका नामस्मरण आदि समस्त शुभभाव आते हैं! परन्तु वे धर्म या धर्मका कारण नहीं हैं, राग होनेसे बंधका कारण हैं। मिथ्यात्व जानेके पश्चात् ज्ञानीको भी अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव आते हैं! परन्तु उस समय भी भेदज्ञानकी निर्मल धारा सतत चलती होनेसे उसकी सधी हुई शुद्ध परिणति बह नहीं जाती। अज्ञानी को तो मिथ्यात्व ही बड़ेसे बड़ा अशुभ पड़ा है तो उसका शुभभाव किससे बचायगा? मिथ्यात्वके महान पापके आगे उसके शुभभावकी क्या गिनती? अहा! बात सूक्ष्म है भाई वर्तमानमें तो धर्मके नामपर बहुत गड़बड़ी चल रही है।

अपना एक लड़का खो गया हो तो कितनी खोज करता है? वह कहाँ गया होगा? उसको क्या हुआ होगा?—ऐसे अनेक प्रकारकी चिन्ता करता है; उसीप्रकार रागके प्रेममें स्वयं भगवान आत्माको भूल गया है, परन्तु जब अंतरमें मुमुक्षुपना होता है तब भीतर शुद्धात्माकी शोधवृत्ति हट न जाय इसप्रकार शुभभावमें लगता है—शुभ भावमें तल्लीन नहीं हो जाता। अहाहा! ऐसी बात है। अनजान लोगोंको तो ऐसा लगेगा कि—यह कैसा धर्म है? भाई! जैनधर्म कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, वह तो वस्तुका स्वरूप है। जिनस्वरूप भगवान आत्माकी रुचिवान मुमुक्षु शुभरागके कालमें भी जिनस्वरूपकी शोधकवृत्ति बह न जाय—इस प्रकार शुभभावमें लगता है।

'शुद्धताका ध्येय छोड़कर शुभका आग्रह नहीं रखता।'

शुभभाव आये तो मुझे लाभ होगा और शुभभावसे मुझे सम्यग्दर्शन एवं आत्मानुभव होगा—ऐसा आग्रह मुमुक्षु नहीं रखता अंतरमें शुद्धताका—ज्ञानधाराका—ध्येय छोड़कर, लक्ष चूककर शुभका प्रेम नहीं रखता।

'तथा वह 'मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ' करके पर्यायकी अशुद्धताको भूल जाय—स्वच्छन्द हो जाय ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदयको भीगा हुआ रखता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुमुक्षु जीव जिसप्रकार शुद्धताका ध्येय छोड़कर शुभका आग्रह नहीं रखता, उसीप्रकार वह 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा मानकर पर्यायमें जो अशुद्धता है उसे भूल नहीं जाता, स्वच्छन्दी नहीं हो जाता। स्वच्छन्दी अर्थात् 'विकारी पर्याय मुझमें सर्वथा है ही नहीं' ऐसा मानकर विकारका सेवन करे—मोहावेशमें वर्तन करे वह। समयसारमें एक जगह 'स्वच्छन्द'का अर्थ स्वतंत्रता किया है। वह अर्थ यहाँ नहीं है। यहाँ तो जो, 'आत्मा तो सदा शुद्ध ही है, बंध-मोक्ष मात्र कल्पना है' ऐसा मानकर, पर्यायमें प्रत्यक्ष अशुद्धता है उसका स्वीकार न करे और चाहे जैसे मोहावेशमें वर्ते, चाहे जैसे पापभावमें वर्ते, उसे स्वच्छन्दी कहा है। शास्त्रमें ज्ञानीका भोग निर्जराका हेतु कहा है। वहाँ अज्ञानी ऐसा समझे कि मेरा भोग भी निर्जराका हेतु है; परन्तु ऐसा नहीं है। विषय वासनाका तथा भोगका भाव मात्र पापभाव है।

यहाँ तो कहते हैं कि—मुमुक्षुको सत्समागम आदिका शुभभाव आता है, परन्तु साथ ही साथ अंतरमें शुद्धताका ध्येय—शोधवृत्ति—चलता रहता है। जो शुद्धताको ध्येयरूप नहीं करता और पर्यायमें चाहे जितनी अशुद्धता हो उससे मुझे क्या ?—इसप्रकार स्वच्छन्दरूपसे वर्तता है वह शुष्कज्ञानी है। मुमुक्षु जीव शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदयको भीगा हुआ रखता है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं : 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञानमें कोई'। कोई जीव रागकी क्रियामें जड़ जैसे हो रहे हैं और कोई जीव अकेले ज्ञानके विकासकी बात करते हैं अंतर परिणामोंमें स्वच्छन्दका सेवन करते हैं। स्वच्छन्दका सेवन करनेवाले निश्चयाभासी हैं। चाहे जैसे पापके भाव आयें उनकी कोई परवाह नहीं वे स्वच्छन्दी हैं, स्वतंत्र नहीं। जिसे पापका भय नहीं है, परसे तथा रागसे उदासीनता नहीं आयी है वह जीव रूखा है—शुष्कज्ञानी है। भाई! पापका सेवन करके नरकमें जायगा, तिर्यंचमें जन्म लेगा। प्रकृतिके नियमसे विरुद्ध करेगा तो प्रकृति भी तुझे नहीं छोड़ेगी। इसलिये हृदयको भीगा हुआ रखना, शुष्कज्ञानी नहीं हो जाना। अहा! बड़ा कठिन काम है भाई!

*

वचनामृत—२१६

जो वास्तवमें संसारसे थक गया है उसीको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वस्तुकी महिमा बराबर ख्यालमें आ जाने पर वह संसारसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ नहीं चाहिये, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये, ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य सो ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टि एक भी भेदको स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि 'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'। उसे—द्रव्यदृष्टिवान जीवको—खबर है कि अनंतकालमें अनंत जीवोंने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनन्त विभूति प्रगट की है। द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्यमें जो-जो हो वह प्रगट होता ही है, तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इसप्रकार दृष्टि पर्यायमें चिपकती नहीं है। वह तो प्रारम्भसे पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्यपर ही जमी रहती है। किसी भी प्रकार की आशा बिना बिलकुल निःस्पृह भावसे ही दृष्टि प्रगट होती है॥२१६॥

भाई! यह तो सर्वज्ञ परमात्माका कहा हुआ जो वीतराग पंथ है उसकी बात है; यह कोई मनोरंजनके लिये राजा-रानीकी कथा-कहानी नहीं है। अपना आत्मा स्वभावसे भगवत्स्वरूप है; उसे प्राप्त करनेकी क्या रीति है उसकी यह बात है। 'शक्ति अपेक्षासे स्वयं भगवत्स्वरूप है' ऐसा भाषामें और ज्ञानके विकासरूपसे ख्यालमें आया, परन्तु उसका जिसप्रकार अस्तित्व है वैसी प्रतीति अंतरमें कहाँ हुई है? जिसे प्रतीतिमें और ज्ञानमें 'राग और पर्याय जितना ही मैं हूँ' ऐसा भासता है उसे अपना त्रैकालिक भगवत्स्वरूप यथार्थरूपसे नहीं भासता। अपना स्वरूप प्रगट होने पर भी उसे अप्रगट हो गया है। केवलज्ञानीके पथ पर चलनेवाले ऐसे दिगम्बर संतोंने, सर्वज्ञकी वाणी अनुसार अपने अंतरमें जो अनुभव हुआ उसके आधारसे, जगतके लिये घोषितकी हुई यह बात है। वे कहते हैं कि—तेरी वस्तु—तेरा द्रव्य—प्रगट होने पर भी तेरा लक्ष—रुचि पर द्रव्य, राग और पर्याय पर होनेसे, स्वद्रव्यकी रुचि नहीं होनेसे, तेरा स्वद्रव्य तुझे ज्ञात नहीं होता—माननेमें नहीं आता, और इसलिये तू संसारमें परिभ्रमण करके दुःखी हो रहा है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि—

'जो वास्तवमें संसारसे थक गया है उसीको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।'

आजकल तो धर्मके नामपर बहुत गड़बड़ी हो गई है। परकी दया पालो, व्रत करो, बस, हो गया धर्म। भाई! बाह्यक्रिया और शुभरागसे धर्म मानना वह तो मिथ्यात्वशल्य है। भाषामें कहते हैं कि—मिच्छत्तसल्लं परिवज्रामि' परन्तु अभी मिथ्यात्व क्या है और उससे रहितपना क्या है—उसकी खबर नहीं होती! पाठ बोल जाय उससे क्या? यहाँ तो कहते हैं कि संसारके परिभ्रमणसे जो वास्तवमें थक गया है उसीको स्वसन्मुख रुचिसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। अरेरे! चौरासी लाख योनिमें अवतार करके अनंतकाल बीत गया तथापि जीव थकता नहीं है। अरे! एक श्वासमें अठारह बार जन्म-मरण हों ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निगोदके भव तथा तिर्यंचके भव कैसे होंगे? उसे राग और भवका कितना प्रेम होगा? स्त्रियाँ एक दिनमें अलग-अलग साड़ियाँ बदलती रहती हैं, उसीप्रकार अज्ञानी जीव अनादिसे भवको बदलता रहता है। भाई! अब यदि तुझे भवकी थकान लगी हो तो रुचिको बाहरसे समेटकर अन्तरोन्मुख कर, तुझे अवश्य सम्यग्दर्शन—सच्चा आत्मदर्शन—प्रगट होगा।

पूर्णानन्दका नाथ भगवान ज्ञायक अंतरमें विराजता है वहाँ तेरी दृष्टि ले जा न, उसका अनुभव कर न, तो तेरी संसारकी थकान उतर जायगी, भवका अंत आ जायगा। उसके बिना चाहे जितने दया, दान, भक्ति, व्रत, उपवासादि करे—वह सब संसार है।

'वस्तुकी महिमा बराबर ख्यालमें आ जाने पर वह संसारसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ नहीं चाहिये एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये' ऐसी दृढ़ता करके बस, 'द्रव्य सो ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।'

यह भगवान आत्मा गहरे-गहरे ध्रुवतलमें कितनी शक्ति रखता है?–कि अपरिमित अनंत। ज्ञान, आनन्दादि अनंत-अनंत गुणोंका भण्डार ऐसे उस निज ज्ञायक भगवानकी सच्ची महिमा पर्यायमें जिसे बराबर ख्यालमें आती है वह विभावसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे अपने पूर्णानन्दस्वरूप अपने नाथके सिवा और कुछ नहीं चाहिये' इसप्रकार अंतरमें पक्की दृढ़ता करके 'मात्र ज्ञायक द्रव्य ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है। अरे! दुनिया प्रशंसा करे या निन्दा करे,–वह तो जगतकी वस्तु है; उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? आत्मस्वभावकी अद्‌भुत महिमा बराबर समझमें आने पर मुमुक्षु जीव अंतरमें संसारसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे अपना एक आत्मद्रव्य ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं चाहिये–पूर्णानन्दस्वरूप जो त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव वह एक ही चाहिये है' ऐसी अंतरदृढ़ता करके बस, 'ज्ञायक द्रव्यस्वभाव वही मैं हूँ, शरीरादि परवस्तु या रागादि पर भाव वह मैं नहीं हूँ; दया, दान, व्रत, तपका विकल्प अथवा एक समयकी अधूरी-पूरी पर्याय मेरा त्रैकालिक स्वरूप नहीं है, अरे! ज्ञानादि गुणभेदरूप भी मैं नहीं हूँ, अनंत गुणोंका सागर एक शुद्ध अभेद भगवान वही मैं हूँ' ऐसे भावरूपसे वह परिणम जाता है–सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप निर्मल भावसे परिणम जाता है। एक शुद्ध द्रव्यस्वभाव वही मैं हूँ, वही मुझे चाहिये—ऐसी दृढ़ता करके उस भावरूप स्वयं परिणम जाता है और अन्य सब निकाल देता है। चाहे तो शुभ राग हो या क्षायोपशमिक ज्ञान हो, वह सब त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका आश्रय लेकर निकाल देता है। जीव जब पर्याय द्वारा पर्यायका आश्रय छोड़ देता है और अकेले त्रैकालिक स्वभावका आश्रय करता है तब उसे सम्यग्दर्शन होता है।

आजकल तो उपदेशक भी ऐसा कहते हैं कि–दान करो, भक्ति करो, भगवानका जाप करो, धर्म हो जायगा–कल्याण हो जायगा। अरे भाई! शुभ विकल्पमें आत्मा कहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है? वह तो अनात्मा–राग है। विकल्पसे पार ऐसी ज्ञायक वस्तु पर दृष्टि दे तो राग और पर्यायबुद्धि छूट जाय।

मुमुक्षु जीव स्वभावकी दृष्टि होने पर अन्य सब छोड़ देता है; शास्त्रकी पूजा करनेसे कल्याण हो जायगा–यह दृष्टि भी छूट जाती है। भगवानकी वाणी पूज्य है, परन्तु वह व्यवहारसे पूज्य कही है। जिनेन्द्रभगवानकी प्रतिमा तो शास्त्रसे भी कथंचित् विशेष है; वीतराग शांतरस दर्शक जिनबिम्बकी पूजादिका भाव शुभ है; उसे भी दृष्टिमेंसे निकाल देता है।

'दृष्टि एक भी भेदको स्वीकार नहीं करती।'

क्या कहते हैं? कि–सम्यक् दृष्टि है वह निमित्तका, रागका, पर्यायका अथवा गुण-गुणीके भेदका भी स्वीकार नहीं करती; दृष्टि तो पूर्णानन्दस्वरूप अभेद ज्ञायकका ही स्वीकार करती है।

'शाश्वत द्रव्यपर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि 'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं।'

शाश्वत जिन शुद्धात्मद्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि, त्रैकालिक निज द्रव्यसामान्य पर जमी हुई दृष्टि ऐसा देखने नहीं बैठती कि सम्यग्दर्शन, आत्मानुभूति, स्वरूपरमणता या केवलज्ञान हुआ या नहीं; क्योंकि सम्यग्दर्शन, आत्मानुभूति आदि एक समयकी निर्मल पर्याय है। द्रव्यदृष्टि निर्मल पर्यायका भी आलम्बन नहीं लेती; वह तो सदा मात्र एक त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध ज्ञायकभावके आलम्बन भावसे परिणमती है। अहा! ऐसी बात है प्रभु! कठिन लगे इसलिये लोग सोनगढ़के नामसे विरोध करते हैं। अरे प्रभु! यह तो तेरे स्वरूपकी प्राप्तिकी बात है; तू किसका विरोध करता है भाई?

प्रश्न :—लोग कहते हैं न कि सोनगढ़ व्यवहारका लोप कर देता है?

उत्तर :–भाई! भूमिकानुसार व्यवहार आता अवश्य है, परन्तु वह परमार्थ या परमार्थका वास्तविक कारण नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि दृष्टि तो गुण-गुणीके भेदरूप व्यवहारका भी स्वीकार नहीं करती। बाह्य क्रियाकी बात तो कहीं रह गई, दया-दान, व्रत-तपादि शुभभावकी बातभी एक ओर रखो परन्तु 'मैं गुणी हूँ और ज्ञान, आनन्दादि मेरे गुण हैं' ऐसा भेदव्यवहार भी दृष्टिका विषय नहीं है। ऐसी बात है प्रभु! दृष्टिके ध्येयमें तो मात्र अभेद ध्रुव ज्ञायकद्रव्य ही दिखता है। दिखता है अर्थात् श्रद्धामें आता है, प्रतीतिमें आता है।

प्रश्न :–पंचास्तिकायसंग्रहकी टीकामें भिन्न-साध्यसाधनभावरूप व्यवहारकी बात कही है न?

उत्तर :–वहाँ किस अपेक्षासे कहा है भाई? वह तो साधक जीवको वर्तती शुद्धिके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साथ भूमिकानुसार कैसे विकल्प आते हैं उसका ज्ञान करानेके लिये उपचारसे उसे साधन कहा है, परन्तु उससे निश्चय अर्थात् शुद्धि होती है—ऐसा नहीं है। अरेरे! लोग शास्त्रके कथनमेंसे भी अपनी दृष्टिको रुचें ऐसे अर्थ निकालते हैं। परन्तु वस्तुकी तत्त्वदृष्टिका पोषण कैसे हो उसकी उन्हें खबर नहीं है।

द्रव्यदृष्टि गुण-गुणीके भेदरूप व्यवहारका भी स्वीकार नहीं करती। अहाहा! सोगानी का 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' है उसकी अपेक्षा भी यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) अलौकिक है सम्यग्दृष्टि जीव दृष्टिके विषयमें किसी भी भेदका स्वीकार नहीं करता। देव-शास्त्र-गुरु निमित्तरूपसे हैं, परन्तु वे तो पर हैं; राग भी विभाव होनेसे अपना स्वभाव नहीं है; अरे! निश्चय से तो स्वयं पर्याय जितना भी नहीं है, क्योंकि पर्याय भी द्रव्यका एक समयका भेद है न? दृष्टि राग और पर्यायका स्वीकार नहीं करती, तथापि पर्याय-अपेक्षासे आत्मामें अशुद्धता है, पर्याय है—यह बात साधक जीवके लक्षमें होना चाहिये। समयसारकी १४वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि–बद्धस्पृष्टादि भाव, पर्यायनयसे आत्माका अनुभव करने पर, भूतार्थ हैं, परन्तु शुद्धनयसे आत्माका अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं। क्या पर्याय-अपेक्षासे आत्मामें अशुद्धता है ही नहीं? अशुद्धता ही न हो तो दूर किसे करें? पर्यायमें अशुद्धता हो तो द्रव्यस्वभावका—ध्रुव आत्माका—आश्रय लेनेसे वह दूर होती है; नहीं हो तो दूर क्या हो?

निर्विकल्प सम्यग्दर्शनकी पर्याय भी दृष्टिका विषय नहीं है। तो जिनप्रतिमा, मन्दिर, शास्त्र या गुरु उसका विषय कहाँसे होंगे? द्रव्यस्वभावमें स्थिर हुई दृष्टि ऐसा देखने नहीं बैठती कि मुझे सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं; क्योंकि वह तो पर्याय है। पर्याय पर भी ज्ञानीकी दृष्टि नहीं होती। अहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, और केवलज्ञान तो हुआ भी नहीं है; तथापि–

'उसे–द्रव्यदृष्टिवान जीवको–खबर है कि अनंतकालमें अनंत जीवोंने इसप्रकार द्रव्यपर दृष्टि जमाकर अनंत विभूति प्रगट की है।'

साधक जीवको खबर है कि अंतरमें जो ज्ञान, आनंद आदि अनंत-अनंत सम्पदा भरी है वह अनंत ज्ञानियोंने अंतर्मुख द्रव्यदृष्टि करके पर्यायमें प्रगट की है। अहा! आत्माकी वह शाश्वत अतीन्द्रिय विभूति! यह पैसा आदि बाह्य विभूति तो, स्मशानमें जलती हड्डियोंमें फोस्फरसकी आतिशबाजी जैसी क्षणिक है। दुनियाँ पागल है, उसे तो 'पैसा मेरा परमेश्वर औरमें पैसेका दास' ऐसा हो रहा है। यहाँ तो कहते हैं कि—सम्यग्दर्शनरूप विभूति प्रगट हुई उसे भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती; दृष्टिका जोर तो त्रिकाल ध्रुव ज्ञायक पर ही है। अहा! ऐसी बातें हैं।

'द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्यमें जो-जो हो वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इसप्रकार दृष्टि पर्यायमें चिपकती नहीं है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत्‌मेंसे सत् आता है। द्रव्य जो अखण्ड अभेदवस्तु है उसकी दृष्टि, प्रतीति और अनुभव करनेसे द्रव्यमें जो-जो विभूति है वह—सम्यग्दर्शन, निर्मलज्ञान, अकषायशान्ति, अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द आदि सब—प्रगट होती है। अहा! जिसे जन्म-मरणके दुःखों से रहित होना हो उसके लिये यह बात है। बाकी जो बाह्यमें तृप्त-तृप्त हो रहे हैं उनका क्या हो सकता है? बाहरके जड़ वैभवकी बात तो कहीं रह गई, परन्तु श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव प्रवचनसारकी टीकामें कहते हैं कि—हमें तो ज्ञानके विशेष विकासकी—बाह्य ज्ञातृत्वके वैभवकी—भी आवश्यकता नहीं है, हमें तो अंतरमें जहाँ ज्ञायक भगवान है वहाँ जाना है, वहाँ स्थिर होना है; बस, यह एक ही भावना है, 'अलम....अलम'—विशेष क्षायोपशमिक ज्ञानसे भी बस होओ, बस होओ।

साधककी दृष्टि अभेद पूर्णानन्द प्रभु पर पड़ी है। वह वहाँसे जरा भी नहीं हटती; पर्यायमें नहीं अटकती। अहा! यह बात कठिन लगेगी; क्योंकि यह कभी सुनकर यथार्थरूपसे ग्रहण नहीं की है। मध्यस्थ भावसे सुने तो वस्तु बराबर यही है–ऐसा ख्यालमें आये। अनादिकालसे द्रव्यपर दृष्टि नहीं दी; दृष्टि क्या और द्रव्यपर देना अर्थात् क्या?—यह कुछ भी खबर नहीं है; इसलिये कठिन लगता है। यहाँ तो कहते हैं दृष्टि प्रगट हुई होने पर भी 'मुझे सम्यग्दर्शन तो हुआ' इसप्रकार दृष्टि पर्यायपर जोर नहीं देती, पर्यायमें चिपक नहीं जाती।

'वह तो प्रारम्भसे पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्यपर ही जमी रहती है।'

द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक ज्ञायक स्वरूप जो निजवस्तु, ज्ञानानन्दादि अनंत-अनंत सम्पदाका घर—अनंत-अनंत स्वभाव वैभवसे भरपूर चैतन्यमहल, उसके ऊपर ही दृष्टि, अन्य सब निकालकर, प्रारम्भसे लेकर पूर्णता तक लगी रहती है।

'किसी भी प्रकारकी आशा बिना बिलकुल निस्पृहभावसे ही दृष्टि प्रगट होती है।'

लोग मुझे जानें कि—'इसे सम्यग्दर्शन हुआ है; यह सब आशाएँ छोड़ दे भाई! क्या तुझे ढिंढोरा पीटना है? 'मैंने यह प्राप्त किया' ऐसा दृष्टिके विषयवालेको नहीं होता। दुनियाँ मुझे जाने-माने, मैंने सम्यग्दर्शनादि धर्म प्राप्त किये हैं—ऐसा लोग जाने ऐसी किसी भी प्रकारकी आशारहित बिलकुल निरीह भावसे—निस्पृहभावसे दृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

४४.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—२१७

द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटिके नहीं हैं; द्रव्यकी कोटि उच्च ही है, पर्यायकी कोटि निम्न ही है। द्रव्यदृष्टिवानको अंतरमें इतना अधिक रस-कस युक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्यायमें नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूतिमें—पर्यायमें—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभवमें आया! 'ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तंभ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है।।२१७।।

'द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटिके नहीं हैं, द्रव्यकी कोटि उच्च ही है, पर्यायकी कोटि निम्न ही है।'

द्रव्य अर्थात् जीव, पुद्गलादि वस्तुएँ। भगवान आत्मामें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—सब होने पर भी ध्रौव्य एवं उत्पाद-व्यय अर्थात् द्रव्य एवं पर्याय दोनों समान मूल्यके नहीं हैं। वस्तु नवीन अवस्थारूप उत्पन्न हो वह उत्पाद, पुरानी अवस्थासे नाशको प्राप्त हो वह व्यय तथा वस्तुरूपसे—मूलस्वभावरूपसे—नित्य स्थायी रहे वह ध्रौव्य। वस्तुके अेकरूप स्थायी रहनेवाले अंशको धौव्य अर्थात् द्रव्य और भिन्न-भिन्न पर्यायोंरूप पलटते अंशको उत्पाद-व्यय अर्थात् पर्याय कहते हैं। पूर्णानन्दका पिण्ड भगवान आत्मामें एकरूप स्थायी रहनेवाला अंश और अनेकरूप पलटता अंश–दोनों अंश होने पर भी एक समान कक्षाके नहीं हैं। स्थायी अंशकी—ध्रौव्यकी—कक्षा सदा उच्च ही है और पलटते अंशकी—उत्पाद–व्ययकी—कक्षा सदा निम्न ही है।

आत्मा सम्यग्दर्शन पर्याय रूपसे उत्पन्न हुआ, मिथ्यादर्शन पर्यायरूपसे नष्ट हुआ और श्रद्धागुणरूपसे नित्य स्थायी रहा; वहाँ उत्पाद-विनाशरूप परिवर्तित होनेवाला भाव अर्थात् पर्याय और स्थायी रहनेवाला भाव अर्थात् द्रव्य, वे दोनों समान कोटिके नहीं हैं; द्रव्यकी कोटि ध्रुवशक्तिरूप होनेसे सदा उच्च ही है और पर्यायकी कोटि क्षणिक व्यक्तिरूप होनेसे सदा निम्न ही है। जिनके अंतरमें प्रचुर स्वसंवेदन वर्त रहा है ऐसे भावलिंगी मुनिराजको जो चारित्रपर्याय प्रगट हुई है, अचारित्रपर्यायका व्यय हुआ है और चारित्रगुण सदाशक्तिरूपसे एकरूप विद्यमान है, वहाँ भी उनकी भावलिंगरूप निर्मल पर्याय तथा त्रैकालिक द्रव्य—दोनों समान कोटिके नहीं हैं।

द्रव्य तो पूर्णानन्दका नाथ ध्रुव—स्थायी रहनेवाला अंश है और पर्याय तो—भले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान अथवा सिद्धकी पर्याय हो—प्रतिसमय बदलता अंश है। त्रैकालिक और बदलता यह दोनों अंश एक कोटिके नहीं हैं। पर्याय तो एकसमय पर्यंतकी तरंग है और द्रव्य तो अनंत पर्यायतरंगोंका सर्जन करनेवाला त्रैकालिक महासागर है, वे दोनों समानकोटिके कैसे होंगे? केवलज्ञानादि अनंत पूर्ण पर्यायोंके सर्जनहारका—द्रव्यका शुद्धात्म—मूल्य सदा उच्च ही है और क्षण स्थायी केवलज्ञानादि का मूल्य निम्न है—कम है।

द्रव्यस्वभावकी अचिन्त्य महिमा छोड़कर एकसमयकी पर्यायकी महिमा आ जाय, पर्याय का मूल्य द्रव्य जितना मान बैठे तो उसकी पर्यायमूढ दृष्टि कभी दूर नहीं होगी। द्रव्यदृष्टि वही सम्यग्दर्शन है और पर्यायदृष्टि वह मिथ्यादर्शन है। स्वामी कार्तिकेयने 'अनुप्रेक्षा' में कहा है कि–कहाँ मेरी भावश्रुतरूप अल्प पर्याय और कहाँ सर्वज्ञकी पूर्ण पर्याय! मैं तो पर्याय-अपेक्षासे तृणतुल्य पामर हूँ और सर्वज्ञ तो पूर्ण हो गये हैं। वे दोनों बातें पर्यायकी हैं। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटिके नहीं हैं ऐसा बतलाना है। पर्यायकी कोटि निम्न ही है और द्रव्यकी कोटि सदा उच्च ही है। आत्माके कल्याण हेतु द्रव्यका आश्रय सदा उपादेय है, और पर्यायका आश्रय सदा हेय है—छोड़ने योग्य है।

'द्रव्यदृष्टिवानको अंतरमें इतना अधिक रस-कसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्यायमें नहीं चिपकती।'

क्या कहते हैं? कि–ज्ञानी धर्मात्माकी दृष्टि निमित्त पर नहीं है, राग पर नहीं है, अरे! पर्याय या गुणभेदपर भी नहीं है। उसे तो अंतरमें अपना त्रैकालिक ध्रुव शुद्धात्मद्रव्य इतने अधिक रस-कसवाला—ज्ञान, आनन्दादि अनंत शक्तियोंसे भरपूर अभेद सत्त्ववाला—दिखता है कि उसकी दृष्टि पर्यायमें या भेदमें नहीं चिपकती; अभिप्रायमें शुद्धात्म द्रव्यके आश्रयका ग्रहण कभी चूकता नहीं है और पर्याय या गुणभेद पर अभिप्रायका भार जाता नहीं है। ज्ञानीकी दृष्टि सदा सामान्य अर्थात् त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव पर ही रहती है। निज शुद्धात्मद्रव्यकी दृष्टि वही सम्यग्दर्शन है। द्रव्यकी दृष्टिके बिना लाख या करोड़ व्रत-तप-भक्ति आदि करे अथवा शास्त्रोंका खुब अध्ययन करे, करोड़ो श्लोक कंठस्थ कर ले, परन्तु वह कहीं सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका मार्ग नहीं है। जीव अनादिसे बाह्यज्ञान और क्रियामें रुक जाता है और मान बैठता है कि–'मैंने बहुत किया'। भाई! तूने धूल भी कुछ नहीं किया। अंतरमें द्रव्यस्वभाव भरपूर है, परन्तु बाह्य लक्षसे अंतर्मुख लक्ष नहीं हो सकता। बाहरकी दृष्टिसे अंतरकी दृष्टि नहीं हो सकती। अंतर्दृष्टिका विषय तो अंतरमें अभेद ध्रुव ज्ञायक आत्मा है। अहा! कठिन बात है भाई!

'भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूतिमें—पर्यायमें—चिपक नहीं जाती।'

अनुभूति आत्माकी निर्मल दशा है, पर्याय है। देहादि परसे और शुभाशुभ रागसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप निज ध्रुव द्रव्यस्वभावकी दृष्टि होने पर स्वानुभूति निर्मल दशा होती है, परन्तु साधक जीवकी दृष्टि उस स्वानुभूतिरूप पर्यायमें चिपक नहीं जाती, वह तो साधनाके प्रारम्भसे पूर्णता तक, पर्याय तथा गुणभेद सबको निकालकर, अभेद पूर्ण द्रव्यस्वभाव पर ही लगी रहती है।

'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभवमें आया!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तंभपर—द्रव्य स्वभावपर—जमी सो जमी ही रहती है।'

'अहा! ऐसा अद्भुत पूर्णानन्दमय द्रव्यस्वभाव मेरे लक्षमें अर्थात् अनुभवमें आया!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु उस समय दृष्टि तो शाश्वत ध्रुव द्रव्यस्वभाव अर्थात् त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक भाव पर ही है। सम्यक्त्वीकी दृष्टि सदा ध्रुव ज्ञायकस्तंभ पर जमी सो जमी ही रहती है। भले भूमिकानुसार पर्यायमें विकल्प आयें, परन्तु दृष्टि तो सदा सामान्य स्वभाव पर जमी ही रहती है।

ज्ञानीकी दृष्टि अंतरमें द्रव्यस्वभाव पर जम गई है-स्थिर हो गई है। दृष्टि स्थिर स्वभावके आश्रयसे स्थिर हो गई है। ध्रुवमें ध्रुव हो गई है। दृष्टि ध्रुव हो गई है अर्थात् ध्रुव स्वभावका आश्रय ग्रहणकर्तारूपसे स्थिर हो गई है। ध्रुवमें एकाग्र हो गई है। ध्रुवका आश्रय ग्रहण करनेवाली दृष्टिरूप पर्याय कहीं त्रैकालिक ध्रुवरूप नहीं हो जाती।

वि. सं. २०३३

चम्पाबेन यानी क्या?! उनका अनुभव, उनका ज्ञान, समता अलौकिक हैं। स्त्रीका शरीर आ गया है; परन्तु अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दकी मौजमें पड़ी हैं; उसमेंसे वाणी निकली है।—यह उनकी वाणीका प्रमाणपना है।

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८७

ता. ६-६-७८

वचनामृत–२१८

कोई एकान्तमें निवास करनेवाला—एकान्त प्रिय—मनुष्य हो, उसे जबरन् बाह्य कार्यमें लगना पड़े तो वह ऊपरी दृष्टिसे लगता हुआ दिखता अवश्य है, परन्तु कौन जानता है कि वह बाह्यमें आया है या नहीं!! अथवा कोई अति दुर्बल मनुष्य हो और उसके सिर पर कोई कार्यका बोझ रख दे तो उसे कितना कठिन लगता है? उसीप्रकार ज्ञानीको ज्ञानधारा वर्तनेके कारण बाह्य कार्योंमें लगना बोझरूप लगता है।।२१८।।

'कोई एकान्तमें निवास करनेवाला—एकान्त प्रिय–मनुष्य हो, उसे जबरन् बाह्यकार्यमें लगना पड़े तो वह ऊपरी दृष्टिसे लगता हुआ दिखता अवश्य है, परन्तु कौन जानता है कि वह बाह्यमें आया है या नहीं!!'

बाहरी प्रवृत्तिमें लगनेका जिसे किंचित् भी रस नहीं है, संसारके, देशके या कुटुम्ब–परिवारके बाह्य कार्योंकी रुचि जिसे अंतरसे छूट गई है, ऐसे एकान्त प्रिय—निवृत्ति प्रेमी—मनुष्यको, परिस्थितिवश किन्हीं बाह्य कार्योंमें लगना पड़े, गृहोपयोगी वस्तुओंकी खरीदी अथवा पुत्र-पुत्रीके विवाहादि सांसारिक कार्योंमें लगना पड़े, तो वह ऊपर-ऊपरसे—विरक्तभावसे लगा हुआ दिखता अवश्य है परन्तु अंतरमें उनके प्रति अत्यन्त नीरसभाव—विरक्तभाव होनेसे वास्तवमें वह उनमें लगा नहीं है, अंतरमें अत्यन्त उदास है; उनमें उसे कहीं प्रेम या रस नहीं है।

'अथवा कोई अति दुर्बल मनुष्य हो और उसके सिर पर कोई कार्यका बोझ रख दे तो उसे कितना कठिन लगता है?'

पहले एकान्तमें निवास करनेवाले—एकान्तप्रिय—मनुष्यकी बात ली; अब कहते हैं कि–कोई बुद्धिबलमें अति निर्बल हो और उसके सिर पर कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यका भार डाल दिया जाय तो उसे कितना कठिन लगेगा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसीप्रकार ज्ञानीको ज्ञानधारा वर्तनेके कारण बाह्य कार्योंमें लगना बोझरूप लगता है।'

शरीरसे एवं रागादि विभावसे भिन्न ऐसे निज शुद्ध ज्ञायक आत्माका जिसे भेदज्ञान हुआ है ऐसे ज्ञानीको 'मैं ज्ञानमात्र हूँ, परका या विभावका कर्ता, भोक्ता या स्वामी नहीं हूँ' ऐसी ज्ञानधारा—ज्ञातृत्वके अनुभवरूप निर्मल धारा—परिणतिमें सतत वर्तती होनेसे उसे बाहरके—शुभाशुभ व्यवहारके—कार्योंमें लगना भाररूप लगता है। साधकका ऐसा स्वरूप है। आता है कुछ समझमें? अंतरमें निष्कर्म शुद्ध ज्ञायक तत्त्वके प्रेमीको–

✷ शुभाशुभ कर्ममें प्रवर्तना दुःखदायक लगता है,

✷ अणुव्रत–महाव्रतकी बाह्यप्रवृत्ति उपाधिरूप लगती है,

✷ उपदेश, तत्त्वचर्चा आदि कार्य उन्मत्तकी चेष्टासमान लगते हैं,

✷ २८ मूलगुणके पालनकी शुभवृत्ति भाररूप लगती है;

–उसे तो उस सर्व प्रवृत्ति तथा विकल्पोंसे उस पार अंतरमें जो ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा—आनन्दामृतका महासागर—विराजता है उस पर दृष्टि होनेसे वहीं—निष्कर्म शुद्ध ज्ञानानुभूतिमें ही—निवास करना अच्छा लगता है, बाहर विकल्पमें आना बोझ लगता है। ऐसा मार्ग है भाई!

मार्ग बड़ा कठिन....? भाई! मार्ग कठिन नहीं है किन्तु अंतरका अभ्यास न होनेसे कठिन लगता है। दृष्टिको अंतरमें रुचिपूर्वक नित्य स्थिर ज्ञायकतत्त्वमें लगानेका कभी अभ्यास नहीं किया है और अनादिसे बाहरके अभ्यासमें लगा हुआ है। शास्त्रोंका बाह्य अभ्यास भी बहुत किया, मुनिपनेके बाह्य आचरण पाले, नग्नता धारण की—इसप्रकार बाहरका बाहर ही रुका रहा; परन्तु उससे क्या हुआ? अंतरमें ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि हुए बिना वह सब व्यर्थ है।

ज्ञानीको अंतरपरिणतिमें ज्ञानधारा वर्तती होनेसे, बाहर—विकल्पमें आना भाररूप लगता है। शास्त्रके बहिर्लक्षी अध्ययन तथा रागरूप शुभाचरणसे भिन्न ज्ञाता स्वरूप अपने आत्माका सतत स्वानुभवपूर्वक ज्ञान होना सो ज्ञानधारा है। धर्मीको वह ज्ञानधारा निरंतर बहती है और बाह्य कार्यमें लगना बोझरूप लगता है। उसे देव-शास्त्र-गुरुके प्रति अनन्य भक्तिभाव आता है, उसमें उत्साह भी दिखायी देता है, तथापि वह शुभभाव अंतरंगसे भाररूप लगता है।

अध्यात्मकी यह बात लोगोंने सुनी नहीं है इसलिये 'एकान्त' लगता है, परन्तु भाई! यही सच्चा मार्ग है। स्वभावके आश्रयसे धर्म होता है और रागसे धर्म नहीं होता–यही सच्चा 'अनेकान्त' है। लाखों व्रत-तप-दान-भक्ति आदिके शुभभाव करे या शास्त्रोंके करोड़ो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्लोक कंठस्थ कर ले, दुनियाको समझाना आये वह कोई आत्मज्ञान या धर्म नहीं है। त्रिलोकनाथ जिनेश्वर देव तो ऐसा कहते हैं कि—अनंतबार मुनिव्रत पाले, श्रुतका खूब अभ्यास किया, परन्तु निज आत्माके ज्ञान—अनुभव बिना आत्मिक सुखका अंश भी प्राप्त नहीं हुआ। बाह्य कारणोंसे अंतर आत्मज्ञान तीनकाल में नहीं होता। इसलिये ज्ञानीको जगतके बाह्य कार्योंमें उत्साह नहीं रहता, अरे! विकल्पमें आना भी बोझरूप लगता है।

मुनिराज तो भीतर अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज करते हैं; वे कर्मप्रक्रम अर्थात् शिष्योंको पढ़ाना, पाठशाला चलाना या लेख लिखना आदि किसी भी बाह्य कार्यका बोझ सिर पर नहीं रखते। भगवानके समवसरणमें जाकर वाणी सुननेका, धर्मोपदेश देनेका और व्रतादि तथा श्रुतचिंतनका विकल्प आता है परन्तु दृष्टिके आश्रयभूत शुद्ध चैतन्य विज्ञानधनके रसास्वादनके समक्ष वह सब बोझरूप लगता है। अहा! ऐसी अद्‌भुत बात है। वणिकोंको जैनधर्म मिला, परन्तु वे तो व्यापारमें उलझ गये। व्यापार यानी उद्योग। अंतरमें आत्माको समझनेका उद्योग कभी नहीं किया और बाहरके उद्योगमें—हीरे-जवाहिरातके धंधेमें—लगकर निज चैतन्यको भूल गये। बाहरका व्यापार-धन्धेका उद्योग वह पाप है और शुभरागमें आये तो वह उद्योग भी पुण्य है। पुण्य-पापके उद्योग रहित भगवान आत्माके ज्ञान एवं अनुभवका उद्योग जीवने कभी किया नहीं है।

प्रभु! तेरे हितके मार्गकी रीति कोई अलग ही है। परिपूर्ण ज्ञानस्वभावके आश्रयसे क्रीड़ा करते हुए ज्ञानीको अंतरके आनन्दामृतके स्वादके सामने इन्द्रके इन्द्रासन—इन्द्रियोंके विषय—सड़ी हुई बिल्लियों तथा कुत्तो जैसे लगते हैं। इन्द्र सम्यग्दृष्टि है, एकावतारी है, उसे विषयवासनाका विकल्प आता है, परन्तु वह दुःखरूप लगता है, बोझरूप लगता है।

प्रश्न :—दुःखरूप और बोझरूप लगता है तो करता क्यों है?

उत्तर :—ज्ञानीको अंतरमें कर्तृत्वकी बुद्धि नहीं है, परन्तु निचली भूमिकामें—जब तक वीतराग न हो तब तक—पुरुषार्थकी निर्बलतासे ऐसे भाव आते हैं।

प्रश्न :—गृहके कार्य भी बोझरूप लगते हैं?

उत्तर :—गृहके कार्य—परके कार्य—जीव कहाँ कर सकता है? परन्तु गृहकार्यकी ऐसी व्यवस्था करूँ, वस्तुकी सुरक्षा ऐसी होना चाहिये, बालबच्चोंको अच्छी शिक्षा देना है आदि रागभाव आता है वह सब बोझ ही है, परन्तु जिसे अंतरमें 'मैं तो ज्ञायक, ज्ञायक, विभावसे रहित ध्रुव ज्ञायक हूँ' ऐसी दृष्टि हुई है, अंतरमें भेदज्ञानकी निर्मल धारा पर्यायमें सतत चलती है, उसे व्रतादिके शुभभाव आयें वे भी भाररूप लगते हैं। अहाहा! कठिन लगेगा, किन्तु मार्ग तो यही है भाई! ज्ञायकके मार्ग पर पहुँचे बिना जन्म-मरणका अंत नहीं आयगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! मुनिराजको उपदेशका विकल्प भी उन्मत्तता लगता है। अरे! क्या है यह? क्या विकल्पसे भाषा निकलती है? और भाषा निकलनेसे क्या श्रोताओंको लाभ होगा? वाणी निकले उससे क्या उन्हें ज्ञान होगा? यह तुझे क्या उन्माद हुआ है?—'परको मैं मोक्ष करा दूँ'! वीतराग दशा हुए बिना उन्हें मुक्ति नहीं होती; तू उन्हें क्या मोक्ष करायगा? अहा! मुनिराजको तो मात्र अस्थिरता जनित विकल्प है, वह भी उन्मत्तता लगती है! बहुत सूक्ष्म है भाई! ज्ञानीको ज्ञानधारा निरंतर वर्तती होनेसे बाह्य कार्योंमें लगना बोझरूप लगता है।

*

वचनामृत–२१६

चाहे जैसे कठिन समयमें अपने ज्ञान-ध्यानका समय निकाल लेना चाहिये। यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है। इसे व्यर्थ नहीं गंवाना॥२१६॥

'चाहे जैसे कठिन समयमें अपने ज्ञान-ध्यानका समय निकाल लेना चाहिये।'

चाहे जैसी विकट परिस्थिति हो, चाहे जो प्रसंग हो, रोगका अथवा कोई पारिवारिक उलझन हो ऐसे समयमें भी धर्मी जीव अपने ज्ञान एवं ध्यानका समय निकाल लेता है। कैसे भी कठिन समयमें अंतरंग ज्ञायक स्वरूपके ज्ञान एवं ध्यानका समय निकाल ही लेना चाहिये।

'यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है।'

भाई! यह मनुष्यभव अमूल्य है। इसका एक–एक क्षण कौस्तुभमणिकी अपेक्षा महा मूल्यवान है। अपना हित करने हेतु यह मनुष्य जन्म है। यह भव, भवका अभाव करनेके लिये है। शरीरमें रोग आये, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाय, मुश्किलसे अक्षर दिखायी दें, बहुत ध्यानसे सुने तब कानोंसे सुना जाय—उससे पूर्व ही तू अपने आत्माका कार्य कर ले भाई! 'भावप्राभृतमें कहा है न!–

रे! आक्रमे न जरा, गदाग्नि दहे न तनकुटि ज्यां लगी,
बल इन्द्रियोनुं नव घटे, करी ले तुं निजहित त्यां लगी।

जबतक वृद्धावस्था घेर न ले, रोगरूपी अग्नि कायारूपी झोंपड़ीको जला न दे, इन्द्रियाँ शिथिल न हो जायँ, उससे पूर्व ही भाई! तू अपना हित कर ले। चाहे जैसे विकट प्रसंगमें तू अपना कार्य कर ले, वादे करेगा तो फिर कुछ नहीं होगा। इसलिये चाहे जिस प्रकार अपने ज्ञान-ध्यानका समय निकाल ले। आया समझमें? बाह्य संयोगोंमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई बड़ा फेरफार हो जाय—व्यापारमें भारी नुकसान हो, बीमा कम्पनी फेल हो जाय, कमाऊँ पुत्र मर जाय, पुत्री विधवा हो जाय, साहूकार अपना ऋण माँगे और उगाही (लेनदारी) डूब जाय—मानो चारों ओरसें आफत—दुःख आ पड़ा हो; अरे प्रभु! तू कहाँ अटक गया? ऐसे समयमें भी तू अपने ज्ञान-ध्यानका समय निकाल लेना। ऐसा मनुष्य भव फिर नहीं मिलेगा। श्रीमद् १७वें वर्षमें कहते हैं :—

बहु पुण्य केरा पुंजथी, शुभदेह मानवनो मल्यो;
तोये अरे! भवचक्रनो आंटो नहीं अेके टल्यो।

अरे! एक आंटा (फेरा) कम हो तो भवभ्रमणका अंत आ जाय। 'सुख प्राप्त करतां सुख टले छे, लेश अे लक्षे लहो।' प्रभु! बाह्य सुखकी अभिलाषामें तेरे आत्मिक सुखका नाश होता है—ऐसा समझकर तू अपने ज्ञान—ध्यानका समय निकाल ले, अपना हित करनेका समय निकाल ले।

दुकान अच्छी चले, लड़के बराबर काम करे; अपनेको संतोष हो जाय, तब फिर निवृत्ति लेंगे ऐसा कहे वह तो जहाँका तहाँ है; भावमें निवृत्त कहाँ हुआ है? भाई! किसी भी समय यह शरीर छूट जायगा और तू चला जायगा कहीं चौरासी लाख योनिमें! अहा! आँधीमें उड़ता हुआ तिनका कहाँ जाकर गिरेगा? उसी प्रकार प्रभु! यह आँख मिंचनेके बाद न जाने कहाँ डेरा होगा—उसकी कुछ खबर है? इसलिये अपने हितके लिये, अपने कल्याणके लिये चाहे जैसी कठिन परिस्थितिमें भी समय निकाल ले, दुनियाँके लिये मत रुकना; यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है।

'इसे व्यर्थ नहीं गँवाना।'

अपने ज्ञान-ध्यानके लिये अंतर्मुख होनेका समय निकाल लेना, बाह्य कार्योमेंसे छूटकर अंतरमें जानेका प्रयत्न करनेके लिये समय निकाल लेना चाहिये। ऐसा समय बार-बार नहीं मिलेगा प्रभु! यह किया और वह किया, मन्दिर बनवाये और पुस्तकें छपवाई। बस, इसीमें रुक गया, परन्तु इसमें तुझे क्या मिला? २६ लाखका परमागम मन्दिर बना उसमें तुझे क्या? भाई! वह विकल्प आया, परन्तु परका कोई कुछ नहीं कर सकता। उस विकल्पसे भी तू निवृत्ति ले ले यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है, उसे व्यर्थ मत जाने दे शीघ्र आत्माका कल्याण कर ले।

४५.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२२०

ज्ञायक परिणतिका दृढ़ अभ्यास करो। शुभभावके कर्तृत्वमें भी समस्त लोकका कर्तृत्व समाया हुआ है॥२२०॥

'ज्ञायक परिणतिका दृढ़ अभ्यास करो।'

'मैं नित्यानन्दस्वरूप मात्र ज्ञायक हूँ'—ऐसी जो ज्ञान श्रद्धानस्वरूप निर्मल परिणति, उसका दृढ़ अभ्यास कर। भाषा ऐसी है कि 'ज्ञायकपरिणति'; वहाँ ज्ञायक कोई पर्याय नहीं है, ज्ञायक तो त्रैकालिक शक्तिभूत ध्रुवस्वभाव है। उसकी दृष्टि, ज्ञान एवं रमणता होना—'यह मैं ज्ञायक भगवान हूँ' इसप्रकार त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल पर्याय होना—वह 'ज्ञायकपरिणति' है। दया, दान और व्रतादिके परिणाम वह कोई 'ज्ञायकपरिणति' नहीं है। ऐसी बातें कठिन लगती हैं, किन्तु भाई! यह तेरे हितकी बात है। तू हितका मार्ग अन्य प्रकारसे मान बैठा है, परन्तु उससे कहीं तेरा हित नहीं होगा। तुझे ऐसा लगे कि—अरे! यह तो किसीको गिनते ही नहीं, परन्तु भाई! तू अपनेको बाह्यमें गिनवाना चाहता है या अंतरमें ज्ञायककी दृष्टि करके भगवान होना है? भाई! भगवान होनेके लिये ज्ञायकपरिणतिका दृढ़ अभ्यास कर।

अहा! यह (बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक! भिन्न-भिन्न रीतिसे पन्द्रह प्रकारसे यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। यह वचनामृत, पूर्ण पुस्तकके रूपमें; छोटी-छोटी पुस्तिकाओंमें ताड़पत्र पर, कपड़ेके पटों पर, चाँदीके पत्रों पर - इसप्रकार पन्द्रह प्रकारसे प्रकाशित हुई है। इतना अधिक हुआ वह कितने लोगोंसे सहन नहीं होता है, परन्तु भाई! यह तो सत्यका प्रकाशन है। भाई! तेरा भगवान भीतर विराजता है उसकी ख्याति—प्रसिद्धि कर न; राग और पुण्यकी प्रसिद्धिमें रुककर तूने अनादिसे अपना अहित किया है, तो अब अपने हितके लिये भीतर भगवान ज्ञायकको पहिचानकर ज्ञायकपरिणतिका दृढ़ अभ्यास कर न!

'शुभभावके कर्तृत्वमें भी समस्त लोकका कर्तृत्व समाया हुआ है।'

आत्माका स्वभाव ज्ञान है। ज्ञान द्वारा वह लोकालोकका—सर्व पदार्थोंका—मात्र ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं है। परन्तु शुभराग ज्ञात होनेसे 'यह दया–दानादिका राग सो मैं हूँ, मैं उसका कर्ता हूँ' इसप्रकार उसका कर्तृत्व माना तो उस अभिप्रायमें समस्त लोकका कर्तृत्व समाया हुआ है। मैं मात्र ज्ञाता तत्त्व हूँ—यह भूल गया और 'यह मैंने किया, मैने किया' ऐसे अभिप्रायमें समस्त लोकका कर्ता हो गया। जैनतरमें भी कहा हैं कि–'हुं करुं, हुं करुं, ए ज अज्ञानता, शकट नो भार ज्यम श्वान ताणे।' गाड़ीके नीचे चलता हुआ कुत्ता ऐसा मानता है कि यह गाड़ी मुझसे चल रही है; उसीप्रकार दूकानके गल्ले पर बैठे और माने कि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह सारी व्यवस्था मुझसे चल रही है तो वह उस गाड़ीके नीचे चलनेवाले कुत्ते जैसा है।

भगवान आत्मा तो ज्ञाता द्रष्टास्वरूप है; वह ज्ञानस्वरूप आत्मा रागका कर्ता होगा? या रागका ज्ञाता रहेगा? अरे! जिसने कर्तृत्वका स्वीकार किया उसने समस्त लोकके कर्तृत्वका स्वीकार किया है। कहा है न :–

करै करम सोई करतारा।
जो जानै सो जाननहारा॥
जो करता नहि जानै सोई।
जानै सो करता नहि होई॥

ज्ञातृत्व ही आत्माका स्वरूप होनेसे, उसमें रागका कर्तृत्व नहीं आता। क्योंकि उसके अपने अनंत गुणोंमें 'रागको करना' ऐसा कोई गुण नहीं है। रागके एक कणका भी कर्तृत्व जो मानता है वह समस्त लोकका कर्ता होता है। क्या कहा? व्रतादि शुभभावका भी जो कर्ता होता है वह समस्त विश्वका कर्ता होता है; क्योंकि, जिसप्रकार ज्ञाता एकको जाने वह सबको जानता है ऐसा उसका स्वभाव है, उसीप्रकार अकर्तास्वभावसे—ज्ञाता स्वभावसे—भ्रष्ट जीव अपनेको एक अणुमात्र रागका भी कर्ता—राग मेरा कर्तव्य है ऐसा—माने तो उसमें समस्त लोकका कर्तृत्व आ जाता है। आया कुछ समझमें?

अहा! मार्ग बड़ा कठिन है। अरे! यह तो जन्म-मरणका अंत लानेकी बात है। बेनकी भाषा में कितने संक्षिप्त शब्द आये हैं!—'शुभभावके कर्तृत्वमें भी समस्त लोकका कर्तृत्व समाया हुआ है।' ऐसी बात कानोंमें पड़ना भी मुश्किल है। भाई! अंतरमें दृष्टिका विषय पूर्ण ज्ञायक भगवान विद्यमान है, उसे छोड़कर तू रागमें और बाह्य प्रवृत्तिमें घुस गया है; परन्तु तुझे खबर नहीं है कि—रागके कर्तृत्वमें सारी दुनियाका कर्तृत्व—चौदह ब्रह्माण्डमें परमाणु आदि जितने पदार्थ हैं उन सबका कर्तृत्व—समाया हुआ है, और वही सर्व दुःखोंका मूल है।

*

वचनामृत–२२१

सर्वस्वरूपसे उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है। अंतर्मुहूर्तको नहीं किन्तु शाश्वत अंतरमें रह जाना वही निज स्वभाव है, वही कर्तव्य है॥२२१॥

'सर्वस्वरूपसे उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है।'

'शरीरादि परद्रव्योंसे भिन्न तथा रागादि विभावरहित जो त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकभाव वही मैं हूँ' ऐसी श्रद्धा, ज्ञान एवं अनुभूतिरूप निर्मल दशा वह शुद्धोपयोग है। वही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वस्वरूपसे उपादेय है। यों तो आश्रय करनेकी अपेक्षासे—आलम्बन लेनेकी अपेक्षासे—वह सदा शुद्ध त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव ही सर्व स्वरूपसे उपादेय है, परन्तु कर्तव्य–अपेक्षासे—शुभ और अशुभभाव उपादेय नहीं हैं, इसलिये—त्रैकालिक शुद्धके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाला शुद्धोपयोग भी सर्वस्वरूपसे उपादेय है ऐसा कहा जाता है। आया कुछ समझमें?

अरे! यह गहन संसार! उसमें जन्म-मरण करनेवाले कितने ही जीव तो, अनंतकाल बीत गया तथापि, नित्य निगोदमेंसे बाहर नहीं निकले। अरे! उसमेंसे निकलकर त्रसपर्याय प्राप्त करना भी चिन्तामणी रत्नकी प्राप्तिके समान दुर्लभ है : 'दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रस तणी।' भाई! यह मनुष्यपना किसलिये प्राप्तहुआ है? क्या स्त्री, बालबच्चों और रुपये पैसोंके लिये?—नहीं, आत्माका हित करनेके लिये। हित करनेके लिये सर्वस्वरूपसे उपादेय तो शुद्धोपयोग है। अवलम्बनकी अपेक्षासे वास्तवमें तो त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक ध्रुव वस्तु उपादेय है; परन्तु उपयोग त्रैकालिक ध्रुवस्वभावके आश्रयसे शुद्ध होता है; इसलिये पर्यायमें प्रगट हुए शुद्धोपयोगको भी, अवलम्बनकी अपेक्षासे नहीं किन्तु साधनाकी अपेक्षासे, उपादेय कहा जाता है।

'अंतर्मुहूर्तको नहीं किन्तु शाश्वत अंतरमें रह जाना वही निज स्वभाव है, वही कर्त्तव्य है।'

क्या कहा? कि—आत्मा—ज्ञायकवस्तु—शुद्ध चैतन्यघन है और उसके अवलम्बनसे प्रगट होता उपयोग वह शुद्धोपयोग है। उसमें अंतर्मुहूर्त नहीं, किन्तु नित्य स्थिरता करना—शाश्वत अंतरमें रह जाना—वही निज स्वभाव है, वही कर्त्तव्य है और धर्मीको उसीकी भावना होती है। धर्मीको भूमिकानुसार शुभराग आता है, परन्तु वह भाररूप लगता है। अरे! आजकल तो व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, कषाय मन्द करो, उससे धर्म होगा, सुख होगा' ऐसी प्ररूपणा चलती है; परन्तु भाई! धर्म तो वीतरागभाव है और यह तो शुभराग है। राग भाव धर्म या धर्मका कारण कैसे हो सकता है?

प्रश्न :—व्रतादिके शुभभाव व्यवहारसे, तो धर्म हैं न?

उत्तर :—नहीं। जिसके शुभभावको व्यवहारसे धर्म कहा जाता है? कि जिसे अंतरमें शुद्ध आत्माके श्रद्धान-ज्ञान-रमणतास्वरूप निश्चय धर्म प्रगट हुआ है, उसे अस्थिरताके कारण जो देव-गुरु आदिकी श्रद्धाका अथवा व्रतादिके आचरणका शुभराग आता है उसमें व्यवहारसे धर्मका आरोप किया जाता है। वास्तवमें वह शुभराग धर्म नहीं है किन्तु अंतरमें प्रगट हुए स्वद्रव्याश्रित शुद्धिरूप धर्मके साथ वर्तता होनेसे, उसे धर्म कहना व्यवहार है। वास्तवमें तो वीतरागभाव कर्तव्य है, शुभ राग नहीं।

प्रश्न :—तो फिर हमें क्या करना चाहिये?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—अंतरमें भगवान ज्ञायक स्वभावमें, उसमें श्रद्धान-ज्ञान-रमणतास्वरूप शुद्धोपयोग लगाकर एकाग्ररूपसे नित्य जम जाना। अशक्तिके कारण यदि राग आये तो उसका ज्ञाता रहना, कर्ता नहीं होना। अस्थिरताके कारण शुद्धोपयोगमेंसे बाहर आये तब शुभभाव होते हैं, परन्तु उन्हें कर्तव्य नहीं मानना, उनका मात्र ज्ञाता-द्रष्टा रहना। ज्ञातास्वभावरूप परिणमित हो जाना, शुद्धोपयोगरूपसे नित्य रह जाना, बस, वह एक ही कर्तव्य है।

*

वचनामृत—२२२

मुनि बारम्बार आत्माके उपयोगकी आत्मामें ही प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी दशा निराली, परके प्रतिबंधसे रहित, केवल ज्ञायकमें प्रतिबद्ध, मात्र निज गुणोंमें ही रमणशील, निरालम्बी होती है। मुनिराज मोक्षपंथमें प्रयाण आरम्भ किया उसे पूर्ण करते हैं।।२२२।।

'मुनि बारम्बार आत्माके उपयोगकी आत्मामें ही प्रतिष्ठा करते हैं।'

मुनिपना किसे कहते हैं? शुद्ध चैतन्यघनस्वरूप निजआत्मवस्तुका सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान एवं स्वरूप रमणतापूर्वक आश्रय करके जहाँ तीन कषायका अभाव हुआ है, जहाँ अतीन्द्रिय आनन्दके प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप भावलिंग प्रगट हुआ है और जहाँ शुद्धोपयोगरूपसे अंतरमें शाश्वत रह जानेकी तीव्र भावना है,—ऐसे परमेष्ठिपदको—परमेश्वरपदको—सच्चा मुनिपना कहा जाता है। अहा! ऐसा होता है मुनिपना! आया कुछ समझमें?

मुनि आत्माके उपयोगको बारम्बार आत्मामें लगाते हैं। अरे! छठवें गुणस्थानमें व्रतादिका विकल्प उठे वह भी प्रमाद और जगपंथ है, वीतरागता नहीं है। मुनि तो उपयोगको बारम्बार अंतरमें ले जाते हैं।

'धन्य मुनिदशा!' वह, बेनकी इस पुस्तकमेंसे मुनिदशाके बोल लेकर छपाई हुई पुस्तिका है। उसमें बड़ी सरस बात आयी है। मुनिकी दशा बिलकुल निराली है भाई! मुनिदशा उसे कहते हैं जहाँ अंतरमें, ज्ञायक प्रभुके अवलम्बनसे तीन कषायका अभाव हुआ होनेसे, अतीन्द्रिय आनन्दकी लहरें उठती हैं। मुनि अपना उपयोग बारम्बार अंतरमें ले जाते हैं, छठवें गुणस्थानमें आयें तब महाव्रत, समिति, आहार, विहार तथा उपदेश आदिका विकल्प आता है, परन्तु वह प्रमाद है, जगपंथ है। उसे छोड़कर मुनि बारम्बार उपयोगको भीतर स्वभावमें स्थिर करते हैं। आनन्द.... आनन्द...आनन्द, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द भरपूर भरा पड़ा है ऐसा जो पूर्णानन्द भगवान आत्मा अंतरमें विराजता है उसमें उपयोगको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बारम्बार ले जाय उसका नाम मुनिपना है। अहाहा! कठिन काम है भाई!

प्रश्न :—आप मुनिको मानते हैं?

उत्तर :—भाई! आत्मज्ञानयुक्त सच्चे भावमुनिपनेको कौन नहीं मानेगा? वे तो पंचपरमेष्ठीमेंके साधु परमेष्ठी हैं, उनके तो हम दासानुदास हैं। कुछ लोग कहते हैं कि आप मुनिको नहीं मानते; परन्तु भाई! तुम्हें मनवानेका क्या काम है? अंतरमें सच्चा मुनिपना हो और दूसरे उसे न मानें तो क्या मुनिपना चला जाता है? और यदि अन्तरमें सच्चा मुनिपना न हो, और दूसरे मुनिपना मानें तो क्या सच्चा मुनिपना आ जाता है? मुनिपना मनवाने आदिके विकल्प तो कहीं दूर रह गये, परन्तु मुनिको तो व्रतादिके शुभ विकल्प आयें वह भी कर्तव्य नहीं है।

'उनकी दशा निराली, परके प्रतिबंधसे रहित, केवल ज्ञायकमें प्रतिबद्ध, मात्र निज गुणोंमें ही रमणशील निरालम्बी होती है।'

इतनी पाठशालाओंमें एक घण्टे तक तो पढ़ाना ही होगा, पाठशाला अथवा मन्दिरके लिये इतने रुपयोंका चन्दा तो कर ही देना पड़ेगा, व्याख्यान भी देना होगा। पत्रोंमें लेख छपवाना पड़ेंगे—अरे! यह सब मुनिका काम नहीं है। मुनिकी दशा ही कोई लोकोत्तर होती है, कार्यके भाररहित, मात्र निज ज्ञायक तत्त्वमें ही लीन, अपने ज्ञान, आनन्दादि गुणोंमें ही रमणशील तथा निरावलम्बन स्वभाववाली होती है।

'मुनिराज मोक्षपंथमें प्रयाण आरम्भ किया उसे पूर्ण करते हैं।'

मुनिराजने अंतरके आनन्दमें प्रयाण प्रारम्भ किया उसे पूर्ण करते हैं। अंतर आनन्दमें उग्र प्रयाण करना उसका नाम मुनिपना और शुद्धोपयोग है।

ता. २६-११-७७

बेनके वचनामृत वह तो केवलज्ञानकी बारहखड़ी है। दो-चार बार नहीं किन्तु दस बार पढ़ेगा तब समझमें आयगी। —*पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–८८

ता. ८-६-७८

वचनामृत–२२३

शुद्धात्मामें स्थिर होना वही कार्य है, वही सर्वस्व है। स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है, शुभ भाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है॥२२३॥

'शुद्धात्मामें स्थिर होना वही कार्य है, वही सर्वस्व है।'

क्या कहते हैं? कि चैतन्यस्वरूप निज शुद्ध आत्मामें दृष्टि जमाकर स्थिर होना वही करना है। अंतरमें ऐसी अभिलाषा होना चाहिये कि निजचैतन्यके सिवा कहीं रुचे नहीं, अच्छा न लगे। आनन्दघनजीने कहा है न!–

देखण दे रे सखि, मुने देखण दे,
चन्द्रप्रभु मुखचन्द, सखी मुने देखण दे;
उपशम रसनो कन्द सखि मुने देखण दे,
सेवे सुर-नर-इन्द्र, सखी मुने देखण दे....

साधक आत्मा अपनी शुद्ध परिणतिरूप सखीसे श्री चन्द्रप्रभ भगवानकी स्तुतिके बहाने कहता है : हे सखी! मुझे चन्द्रप्रभका अर्थात् शीतलताके पुंजस्वरूप ज्ञायक आत्माका मुखचन्द अर्थात् चन्द्र समान शीतल स्वरूप—उपशमरसका कन्द—देखने दे न! मुझे उसके सिवा कुछ नहीं चाहिये। 'काम एक आत्मार्थका, अन्य नहीं मन रोग।' आत्मार्थीको अंतरचैतन्यके–ज्ञायक प्रभुके—दर्शनकी ही अभिलाषा रहती है, उसके सिवा अन्य कोई वस्तु उसे नहीं रुचती, अच्छी नहीं लगती।

साधक जीव कहता है : हे ज्ञायक प्रभु! मुझे अपना दर्शन दो न, अपना अंतरका वैभव मुझे देखने दो न! अरेरे प्रभु! एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रियपनेमें मैंने कहीं तुम्हें नहीं देखा, अरे! बाह्य मुनिपना अनंत बार लिया, परन्तु वहाँ भी तेरे दर्शन नहीं हुए नाथ! अब तो एक बार चैतन्यप्रभुके दर्शन करने दो। संसारका सारा जंजाल छोड़कर धर्मी जीवको चेतनका अनुभव करनेकी लगन लगी है; दुनिया सन्मान करे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

या न करे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। 'यह धर्मात्मा है' ऐसा लोग मानें, उसका कोई मूल्य नहीं है। चैतन्य भगवान पर दृष्टि देनेसे वह प्राप्त होता है, इसलिये हे शुद्ध परिणति रूपी सखी! मुझे स्वभावकी ओर दृष्टि करने दे। भले ही शरीरका प्राण चला जाये। परन्तु मेरा चैतन्य भावप्राण मेरी दृष्टिमें आ जाये। धर्मीको सदा ऐसी भावना होती है।

शुद्ध आत्मामें स्थिर हो जाना ही करने योग्य है। शुभ राग एवं बाह्य क्रिया भूमिकानुसार हो, परन्तु उससे मुझे क्या लाभ? मैं तो शुद्ध चिदानन्द प्रभु हूँ; रागमें तो नहीं किन्तु पर्यायमें रुकना वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। प्रभु! रागसे और पुण्य तथा पापसे भेंट तो अनंतबार हुई, परन्तु वह तो परिभ्रमणका कारण हुआ, इसलिये उसका लक्ष छोड़कर अंतरमें पूर्णानन्द प्रभुसे भेट कर। उससे भेट करके अंतरमें स्थिर हो जाना वही करने योग्य है। अहा! यह मार्ग कोई अलौकिक है भाई! अंतरमें यह ज्ञायक आत्मा चैतन्य-रत्नाकार—ज्ञान, आनन्दादि गुणोंका समुद्र—है, उसमें गहरे अवगाहन करके स्थिर हो जाना वही कार्य है। परका कार्य तो आत्मा कर ही नहीं सकता, किन्तु दया, दानादि कार्य भी मेरा स्वरूप नहीं है; मेरा कार्य तो अपने निजघरमें—शुद्ध आत्मामें—निवास करना वह है। अनादि मिथ्या बुद्धिके कारण पुण्य-पापमें निवास किया, परन्तु वह मेरा सच्चा कार्य नहीं है।

सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो उसकी यह बात है। मुख्य बात तो यह है कि—आत्मामें एक 'जीवत्व' नामकी शक्ति है। सुख, सत्ता, चैतन्य और अवबोध—इन त्रैकालिक ध्रुव भावप्राणों द्वारा जिसका जीवन–अस्तित्व है ऐसे निज ज्ञायकसे भेट करना। सर्वज्ञ परमेश्वरने जो सर्वज्ञस्वभावी वस्तु कही है उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिर होना वही 'शुद्धात्मामें स्थिरता' है। और यही सबको करना है। इसमें लोगोंको 'एकान्त' लगता है, और कहते हैं कि–कुछ बाहरका साधन चाहिये न? व्यवहारको भगवानने साधन कहा है न? भाई! भक्ति आदिमें राग मन्द करते हैं, परन्तु वह तो राग है न प्रभु! रागके आलम्बनसे अंतरमें शुद्धात्मामें स्थिरता नहीं हो सकती। वीतरागमूर्ति चैतन्यघन प्रभुकी भेट तो शुद्धोपयोगसे होती है। इसलिये सर्वस्व रूपसे उपादेय—कर्तव्य मात्र शुद्धोपयोग है। मुनिराज बारम्बार आत्माके उपयोगकी आत्मामें ही प्रतिष्ठा करते हैं। अंतर्मुहूर्त नहीं परन्तु शाश्वत अंतरमें रह जाना वही निजस्वभाव—शुद्धोपयोग है और वही कर्तव्य है।

कर्म, शरीर, स्त्री, परिवार आदि पर वस्तुएँ तेरी हैं ही नहीं, परन्तु जो तेरी पर्याय में हैं उन पुण्य-पापके भावोंको भी छोड़कर, अंतरमें चैतन्यमूर्ति स्वयंभू ज्ञायक प्रभुमें दृष्टि करके उसमें स्थिर हो जा। लोगोंको यह बात कठिन लगती है इसलिये कहते हैं कि–बाह्य साधन तो चाहिये न? अरे! कुछ तो ऐसे भी समन्वयवादी निकले हैं जो ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानते हैं कि सभी धर्मोंमें एक ही बात कही है। अरे भाई! जिन्होंने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा नहीं माना और जहाँ सर्वज्ञताकी प्रगट पर्यायवाला आत्मा नहीं है, वहाँ वे सर्वज्ञस्वभावी आत्माकी सच्ची बात कैसे कर सकते हैं? जिनके मतमें आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है उनका सर्वज्ञ स्वभावी आत्मामें स्थिर होना वह कार्य है।

अहा! यह बात जीवको कभी सुननेके लिये नहीं मिली। 'श्रुत परिचित अनुभूत सर्वने कामभोग बंधननी कथा; परथी जुदा एकत्वनी उपलब्धि केवल सुलभ ना।' शुभरागकी क्रिया तो अनंतबार श्रवणमें, परिचयमें और अनुभवमें आयी है, परन्तु रागसे भिन्न निजचैतन्यके एकत्वकी—आनन्दके नाथकी—प्राप्ति कभी नहीं हुई, क्योंकि सर्वज्ञस्वभावी निज एकत्व अंतरके प्रेम पूर्वक कभी सुना नहीं, कभी उसका परिचय नहीं किया और वह कभी अनुभव में नहीं आया।

एक समयकी ज्ञानकी पर्यायमें तीन काल एवं तीनलोक अत्यन्त स्पष्ट रूपसे जिनके ज्ञानमें आ गये हैं उन वीतराग सर्वज्ञ परमात्माकी वाणी कोई और ही है, अद्भुत है! उनकी वाणीमें ऐसा आया कि–प्रभु! तू शुद्धात्मा है न! हमने पर्यायमें जैसा प्रगट किया ऐसी वस्तु ही तू है; तू हमारी जात-पाँतका है। हमारा स्वभाव पर्यायमें प्रगट हुआ है, और तुझमें स्वभाव प्रगट करनेकी पूर्ण शक्ति भरी पड़ी है। अहा! जहाँ नवतत्त्वका निर्णय करना कहा है वहाँ भी 'भूयत्थेणाभिगदा' कहकर नवतत्त्वमें स्थित अपने चिदानन्दमय एकत्वका अंतरमें निर्णय आना उसे सम्यक्त्व कहा है। उस परमानन्दमय ज्ञायक प्रभुमें स्थिरता ही कार्य है; उसकी ऐसी लगन लगे कि जिससे उसमें स्थिरता हो जाय।

तथा कहते हैं–'वही सर्वस्व है।' भगवान पूर्णानन्द प्रभुमें दृष्टि लगाकर उसमें स्थिर होना ही सर्वस्व है। अहा! बारह अंगमें भी 'अनुभूति' करना ही कहा है। 'ततो ज्ञानात्मतत्त्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।'–इसलिये ज्ञानस्वरूप परिणमित होने अर्थात् अनुभूतिके करनेका ही आगममें आदेश है। अरे उस अनुभूतिके समक्ष उपदेशकी भाषा, विकल्प या शास्त्रका बहिर्लक्षी ज्ञान भी क्या वस्तु है? मुझे तो अंतरसे ऐसा आया था कि–शास्त्रज्ञान वह पर है, वह स्वानुभूति नहीं है। यदि वह पर न हो तो उस परलक्षी ज्ञानमें भी आत्माका अतीन्द्रिय आनन्द आना चाहिये। पराश्रित ज्ञान—पराश्रितभाव तो दुःखरूप है। यहां कहते हैं कि—परावलम्बन छोड़कर निज ज्ञायकतत्त्वमें—शुद्धात्मामें—स्थिरता ही कर्तव्य है और वही सर्वस्व है।

'स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है, शुभभाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है।'

भीतर चैतन्यपिण्डमें दृष्टि करके स्थिर हो जाना–अंतर शुद्धात्मामें जम जाना–वही कर्तव्य है, वही सर्वस्व है। करना तो यही है, उसके बिना संसारका अंत नहीं है।

४६.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव बाहरसे—पैसा प्रतिष्ठा और कीर्ति आदिसे—सुख मानता है परन्तु उसमें खाक भी सुख नहीं है। अरे, शास्त्रका ज्ञान करके मानना कि 'हम सुखी हैं'—वह भी मिथ्यात्वभाव है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि–शास्त्राभ्यास आदिके शुभभाव आयें परन्तु वह सर्वस्व नहीं है। उस शुभभावसे भी उस पार ऐसे निज शुद्धात्मामें दृष्टि लगाकर स्थिर होना ही सर्वस्व है।

प्रभु! अनादिसे शुभभावमें अटक गया है। शास्त्रज्ञान और मुनिपनेके योग्य शुभभाव आयें परन्तु वह सर्वस्व नहीं है। बाह्य मुनिपना तो अनंतबार लिया, परन्तु अंतरसे मुनिपना एकबार भी नहीं आया। अंतरसे मुनिपना कब आता है? कि–शुद्धात्माकी दृष्टि करके अंतरमें स्थिरता करे तब सच्चा मुनिपना आता है। मुनिपना ले लेना वह अलग बात है और अंतरसे मुनिपना आना वह अलग है। दया, दान, पूजा, भक्ति तथा शास्त्रश्रवण—पठनके शुभभाव आयें परन्तु वह सर्वस्व नहीं है, वह स्वकी—आत्माकी वस्तु नहीं है, परभाव है।

आजके उपदेशक कहते हैं कि–''महावीरका धर्म 'अनेकान्त' है। व्यवहारसे भी धर्म होता है और निश्चयसे भी धर्म होता है, निमित्तसे भी धर्म होता है और उपादानसे भी धर्म होता है उसका नाम अनेकान्त है।'' भाई! भगवानने तो वस्तुमें वस्तुपनेकी उत्पादक अस्ति-नास्ति आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोंका प्रकाशना उसे 'अनेकांत' कहा है। स्वरूपसे अर्थात् शुद्ध स्वभाव रूपसे—निश्चयरूपसे अस्ति और पररूपसे—रागादि व्यवहार रूपसे नास्ति—उसका नाम अनेकान्त है, व्यवहाररूपसे–शुभरागरूपसे नास्ति होनेसे उससे धर्म नहीं होता वह तो सम्यक् एकान्त है। भाई! शुभभाव आता है परन्तु उसे छोड़कर अंतरमें पूर्णानन्दके नाथ पर दृष्टि डाल न! दृष्टि बाहर धूम रही है उसे अंतरोन्मुख करके भीतर जो निधान भरे हैं उन्हें देख न! वही सर्वस्व है। दुनिया माने या न माने 'सत्'को संख्याकी आवश्यकता नहीं है। 'सत्' तो यही है। शुभभाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है।

वचनामृत–२२४

अंतरात्मा तो दिन और रात अंतरंगमें आत्मा, आत्मा और आत्मा—ऐसा करते-करते, अंतरात्मभावरूप परिणमते-परिणमते, परमात्मा हो जाता है।२२४।

जिसने रागसे भिन्न होकर अंतरमें भगवान आत्माका भेदज्ञान किया है ऐसा अंतरात्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिन और रात अंतरमें आत्मा, आत्मा और आत्मा—'मैं एक शुद्ध ज्ञायक परमब्रह्म परमात्मा हूँ' ऐसा अंतरंगमें रटन करते-करते, अंतरात्मभावसे परिणमते-परिणमते, पर्याय अपेक्षासे परमात्मा हो जाता है। दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत और तपादि शुभरागरूप परिणमना वह तो बाह्य भाव है, अंतरात्म भाव नहीं है। मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ, शुद्धज्ञायक हूँ और शुद्ध ज्ञायक हूँ—इसप्रकार अंतरात्मभावसे रटन करते-करते साधक जीव पूर्ण परमात्मा हो जाता है। रटन शब्दसे भाषा या विकल्प नहीं लेना! रटन अर्थात् अंतरमें शुद्ध भावका घोटन। व्रतादिका या पूजा–भक्तिका शुभराग हो वह कोई अंतरात्मभाव नहीं है। जिसकी दृष्टि अंतरमें त्रिकाल ध्रुव ज्ञायक द्रव्यपर पड़ी है वह स्वभावसन्मुख हुआ अंतरात्मा शुद्धात्मस्वभावरूप परिणमते-परिणमते पर्यायमें साक्षात् परमात्मा हो जाता है।

अंतरात्मा जो कि शक्तिरूपसे परमात्मस्वरूप है, उसका अंतरंग अंतरात्मभावरूप होनेसे–एक परमात्मस्वरूपकी भावना अर्थात् शुद्धोपयोग करते–करते पर्यायमें पूर्ण परमात्मा हो जाता है; परमात्मा होनेके लिये अन्य कोई साधन है ही नहीं। मनुष्यपना, वज्रऋषभनाराचसंहनन आदि बाह्य साधन हों तो परमात्मा हो सकता है–ऐसा है ही नहीं। निमित्तरूपसे वे भले हों, परन्तु उसमें आत्माको क्या? यहाँ तो कहते हैं कि–शुद्धात्मस्वरूप निज ज्ञायक परमात्माका उपयोगमें रटन करते–करते, अंतरमें एकाग्रता करते–करते, अंतरमें शुद्धात्मभावरूप परिणमते–परिणमते साधक धर्मात्मा साक्षात् परमात्मा हो जाता है। अहा! यह बात दुनियासे बिलकुल निराली है, अलौकिक है।

*

वचनामृत–२२५

अहा! अमोघ—रामबाण समान—गुरुवचन! यदि जीव तैयार हो तो विभाव टूट जाता है, स्वभाव प्रगट हो जाता है। अवसर चूकने जैसा नहीं है।।२२५।।

'अहा! अमोघ—रामबाण समान—गुरुवचन!'

सर्वज्ञ भगवानके, वीतरागी संतोंके और स्वानुभूतिपरिणत गुरुके अहो! रामबाण समान अमोघ वचन! चैतन्य भगवान जब अपनी, शुद्ध परिणतिमें आता है तब आत्मकल्याण होता है। 'आता है'का अर्थ कहीं द्रव्य पर्यायरूप हो जाता है—ऐसा नहीं है। 'जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिओ' अर्थात् 'जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें स्थित' ऐसा कहा है वहाँ द्रव्य पर्यायरूप हो गया—ऐसा नहीं कहना है; परन्तु जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपसे–शुद्ध परिणमनरूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमता है–ऐसा कहना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धिमें स्थित वह स्वसमय है और पुण्य तथा पापमें, रागमें और दया-दानके विकल्पमें स्थित है वह, पुद्गल प्रदेशोंमें स्थित होनेसे, परसमय मिथ्यादृष्टि, अनात्मा है।

रामका बाण अमोघ, अचूक और अफर होता है; वह सदा सफल रहता था, कभी निष्फल नहीं जाता था; उसी प्रकार 'प्रभु! आनन्दका नाथ ज्ञायक आत्मा जो कि भीतर विराजमान है उसकी दृष्टि कर, उसमें स्थिरता कर; उसमें अंतरात्मभावरूप परिणमन करनेसे तुझे परमात्मदशा प्रगट होगी'—ऐसे गुरुके वचन रामबाण समान अचूक हैं, उन्हें यथार्थरूपसे ग्रहण करनेपर अफर आत्मप्राप्ति होती है। रामका बाण कभी लक्ष्य नहीं चूकता उसीप्रकार केवलीके, संतोंके अथवा ज्ञानियोंके वचनभी अफर होते हैं, लक्ष्यका बोध होनेमें अचूक निमित्त होते हैं। भाई! लोग संतुष्ट हों, लोक मुझे पसन्द करें' ऐसा लोकप्रियताका लालच और लालसाकी दृष्टि छोड़ दे; उससे तुझे कोई लाभ नहीं होगा, प्रभु!

'यदि जीव तैयार हो तो विभाव टूट जाता है, स्वभाव प्रगट हो जाता है।'

गुरुवचन रागादि विभाव तोड़ना तथा ज्ञानादि स्वभाव प्रगट करना कहते हैं। कर्म, शरीर, स्त्री-पुत्र या व्यापार-धन्धा आदि परपदार्थका करना या छोड़ना–यह बात यहाँ नहीं ली है, क्योंकि आत्मा पर द्रव्यका कार्य कर या छोड़ नहीं सकता। 'ज्ञायक स्वरूपकी दृष्टि और रमणता कर' यह गुरुका वचन है।

जीवकी अंतरसे तत्परता हो तो गुरुके रामबाण समान अमोघ-अचूक-सफल वचनोंके निमित्तसे आत्मा समझमें आता है, विभाव टूट जाता है और अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वभावपरिणति प्रगट होती है। ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि करनेसे, उसका अनुभव करनेसे विभाव टल जाता है—ऐसा गुरु कहते हैं। अनादिसे विभावके साथ एकता मानी है; भगवान कहते हैं कि–ज्ञायक और रागादि विभावके बीच संधि है, एकता है ही नहीं। अपने एकत्व विभक्त स्वभावकी दृष्टि के अभावके कारण रागादिके साथ एकत्व मान रखा है, परन्तु वस्तुका स्वरूप ऐसा है ही नहीं। अहा! वीतरागी संतोंकी रामबाण जैसी अमोघवाणी कि जिसे यथार्थरूपसे समझने पर अचूक वीतरागीपना प्रगट होता है। जीव स्वयं तैयार हो—भीतर ज्ञायक स्वभावमें जाय—तो विभावके साथ एकता टूट जाती है। पर्यायमें निर्मलस्वभाव प्रगट हो जाता है।

श्री पद्मनन्दि आचार्यदेव जिनेन्द्रदेवकी स्तुतिमें अलंकारिक उपमा देते हुए कहते हैं:–हे प्रभु! हे नाथ! आकाशमें यह शरदऋतुके बादल इधर-उधर खण्ड-खण्ड दिखते हैं वह क्या हैं? वे काहेसे खण्ड-खण्ड हुए हैं? प्रभु! मुझे तो ऐसा लगता है कि–आपकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाल्यावस्थामें सौधर्म इन्द्रने आपको अपनी गोदमें लेकर अत्यन्त भक्तिसे जब ताण्डव-नृत्य किया था तब उसके विशाल हाथ–पैरोंके प्रचुर आघातसे वर्षाऋतुमें जो अखण्ड थे वे बादल मानों खण्ड-खण्ड हो गये हों! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि–हे ज्ञायक प्रभु! जिसने अंतरमें तेरे दर्शन किये, तुझ पर दृष्टि स्थिर की, उसके कर्मरूपी बादल जो अज्ञान दशामें अखण्ड थे वे टूटकर खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, विभाव टूट जाता है और स्वभाव प्रगट हो जाता है। अहा! अध्यात्मकी यह बातें सूक्ष्म लगें, परन्तु यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्माके श्रीमुखसे निकली हुई दिव्यध्वनिका सार है।

अंतरसे वीतरागता प्रगट कर—यह वीतरागी संतोंके—गुरुके—रामबाण जैसे वचन हैं। वीतरागता कैसे प्रगट होती है? वीतरागमूर्ति त्रैकालिक ज्ञायक प्रभुका अंतरमें आश्रय करनेसे वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, विभावके साथ एकता टूट जाती है और स्वभाव प्रगट होता है। अंतरमें अकषायस्वभावी भगवान आत्माका आश्रय लेकर जो दृष्टि हुई उससे राग टूट जाता है और स्वभाव प्रगट होता है; शक्तिरूपसे जो पूर्ण ज्ञानस्वभाव था वह पर्यायमें अंशतः व्यक्तरूपसे प्रगट हो गया। अहा! भाषा सरल है, भाव कुछ कठिन हैं; परन्तु मार्ग तो यही है। सरल कहो या कठिन कहो, वस्तु तो यही है। दुनिया चाहे जिस प्रकार माने और मनवाये, उससे कहीं मार्ग हाथ नहीं आयगा।

'अवसर चूकने जैसा नहीं है।

अहा! ऐसा दुर्लभ मनुष्य भव मिला, जैनकुलमें जन्म हुआ, वीतरागकी वाणी सुननेको मिली, प्रभु! तेरे लिये सब अवसर आ गया है; वह चूकने जैसा नहीं है। अरेरे! यह निगोदके भव, छोटे-छोटे कीड़ो पतंगोंके भव! उन्हें कहाँ खबर है कि हम कौन हैं? पतंगे बाहरके प्रकाश पर झपटते हैं परन्तु अंतरमें जो चैतन्यप्रकाश है उसकी उन्हें कहाँ खबर है? अरेरे! वे कब पंचेन्द्रिय होंगे? कब मनुष्य होंगे? कब उनका जैनकुलमें जन्म होगा और कब त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेवकी वाणी सुननेको मिलेगी? कब तत्त्व समझेंगे और राग तोड़ेगे? प्रभु! यह अमूल्य अवसर चूकने जैसा नहीं है। श्री मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है : 'सब अवसर आ चुका है।'–यह अवसर चूकने योग्य नहीं है, अब सर्व प्रकारसे अवसर आ चुका है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। इसलिये श्रीगुरु दयालु होकर मोक्षमार्गका उपदेश देते हैं उसमें भव्यजीवोंने प्रवृत्ति करना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२२६

अपना अगाध गम्भीर ज्ञायक स्वभाव पूर्ण रीतिसे देखने पर समस्त लोकालोक भूत–भविष्यकी पर्यायों सहित समयमात्रमें ज्ञात हो जाता है। अधिक जाननेकी आकांक्षासे बस होओ, स्वरूपनिश्चल ही रहना योग्य है।।२२६।।

'अपना अगाध गम्भीर ज्ञायक स्वभाव पूर्ण रीतिसे देखने पर समस्त लोकालोक भूत-भविष्यकी पर्यायों सहित समयमात्रमें ज्ञात हो जाता है।'

वीतराग सर्वज्ञ भगवानका अगाध गम्भीर ज्ञायक स्वभाव तो उनके पास रहा, यहां तो, जिसकी गहराईका पार नहीं है ऐसे अपने अगाध गम्भीर ज्ञायक स्वभावकी बात है। गिरिगुफामें गहरे-गहरे जाने पर उसकी गहराईकी हद आ जाती है; यहाँ ज्ञायक स्वभाव तो, जिसका पार न आये, इन्द्रियज्ञानमें जिसका पता न लगे, ऐसे अनंतानंत गुणोंका भँडार है। शरीर प्रमाण मर्यादित क्षेत्रमें रहा होने पर भी जिसके गुण, धर्म, शक्तियाँ अमर्यादित अनंत हैं—अपार हैं ऐसे अपने गहन गम्भीर ज्ञायकस्वभावको पूर्णतया देखनेसे समस्त लोकालोक—विश्वकी समस्त वस्तुएँ उनके द्रव्य, अनंत अपार गुण और तीनोंकालकी पर्यायों सहित—एक समय में ज्ञात हो जाते हैं।

यहाँ, 'ज्ञायकस्वभाव पूर्ण रीतिसे देखनेपर' इस कथनमें 'द्रष्टत्व' अन्तिम पूर्ण सर्वज्ञदशा का लिया है। सम्यग्दर्शनमें ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि करनेसे उसके अगाध अपार पूर्ण स्वभावकी प्रतीति तो आ गई है, परन्तु वहाँ ज्ञानके विकासकी परिणति अल्प है। अनंतानंत गुणसमृद्धिसे भरपूर ऐसे निज ज्ञायक स्वभावका अंतर्मुख सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान सहित पूर्ण आश्रय करनेसे, उसे स्वसन्मुखके पूर्ण सामर्थसे पूर्णतः देखने पर, अंतरमें चैतन्यकी ऐसी अद्भुत एवं अपूर्व पूर्ण निर्मल पर्याय प्रगट होगी कि जो समस्त लोकालोकको तीनोंकालकी पर्यायोंसहित एक समयमें एक साथ जान लेती है।

अहा! वस्तुकी—द्रव्यकी—अनंतताकी महिमा अति गहन है। जैसे उसके गुण अनन्तानन्त हैं वैसे ही उसकी पर्यायें भी अनन्तानन्त हैं। भूतकालका कभी प्रारम्भ है? भविष्यकालका कभी अंत है? उसीप्रकार द्रव्यकी पर्यायें भी अनादि-अनंत हैं। उन सर्व पर्यायोंका प्रत्यक्ष–अत्यन्त स्पष्ट—ज्ञान वर्तमान एक समयमें हो जाय ऐसी महिमायुक्त गहन गम्भीर तेरी वस्तु है प्रभु उस ज्ञायक प्रभुको अपूर्ण रीतिसे सम्यक्रूपसे देखने पर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानादि होते हैं; उसे पूर्ण रीतिसे देखनेपर, उसका अंतरमें पूर्ण आश्रय करनेसे ज्ञानादि गुणोंकी पर्यायमें पूर्ण निर्मल विकास प्रगट हो जाता है, जिसमें समस्त जगत उसके समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों सहित एक समयमें ज्ञात होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! 'अनादि-अनंत'की गहराईकी क्या बात करना? अनादिमें प्रथम या प्रारम्भ होते ही नहीं। पर्यायका प्रारम्भ हो तो वह अनादि काहेकी? द्रव्यकी पहली पर्याय कौनसी? प्रथम सिद्धजीव कौन? पहला निगोदका जीव कौन? भाई! अनादिमें 'पहला' है ही कहाँ? ऐसा अद्‌भुत तत्त्व! पूर्ण ज्ञायक द्रव्यकी अंतरमें प्रतीति करनेसे सम्यग्दर्शन, उसका विशेष आश्रय लेनेसे—उसे पूर्णतः देखनेसे—भूत-भविष्यकी पर्यायों सहित समस्त लोकालोकको एक समयमात्रमें युगपद जाननेवाला केवलज्ञान प्रगट होता है। वह ज्ञायकस्वभावी निज आत्माको पूर्णतः देखनेसे प्रगट होता है, किसी शुभराग, व्यवहार या बाह्य क्रियाकाण्डसे प्रगट नहीं होता।

'अधिक जाननेकी आकांक्षासे बस होओ, स्वरूप निश्चल ही रहना योग्य है।'

अहा! साधक जीव कहता है : हमें बाह्य ज्ञातृत्वके विशेष विकासकी रुचि नहीं है; अरे! शास्त्रके ज्ञातृत्वके विकासकी अभिलाषासे भी बस होओ, बस होओ, हमें तो अपने त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी एकाग्रतामें निश्चल रहना है। ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि तो प्रगट हुई है परन्तु उसके उग्र अवलम्बन द्वारा स्वरूपमें अत्यन्त स्थिर हो जानेकी हमारी भावना है। क्षयोपशमजनित ज्ञानके विकासकी आकांक्षासे बस होओ, स्वरूप निश्चल ही रहना योग्य है।

प्रवचनसारकी टीकामें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने भी यह बात कही है : भगवान समस्त पदार्थोंको जानते हैं इसलिये कहीं वे 'केवली' नहीं कहलाते, परन्तु केवल अर्थात् शुद्ध आत्माको जानते-अनुभवते होनेसे वे 'केवली' कहलाते हैं। केवल (–शुद्ध) आत्माको जानने–अनुभवनेवाले श्रुतज्ञानी भी 'श्रुतकेवली' कहलाते हैं। केवली और श्रुतकेवलीमें अन्तर इतना है कि–केवली जिसमें चैतन्यके समस्त विशेष एकसाथ परिणमते हैं ऐसे केवलज्ञान द्वारा केवल आत्माको अनुभवते हैं और श्रुतकेवली जिसमें चैतन्यके कुछेक विशेष क्रमशः परिणमते हैं ऐसे श्रुतज्ञान द्वारा केवल आत्माको अनुभवते हैं; अर्थात् केवली सूर्यसमान केवलज्ञान द्वारा आत्माको देखते—अनुभवते हैं और श्रुतकेवली दीपक समान श्रुतज्ञान द्वारा आत्माको देखते–अनुभवते हैं। इसप्रकार केवलीमें और श्रुतकेवलीमें स्वरूपस्थिरताकी तारतम्यतारूप भेद ही मुख्य है, अधिक–अल्प पदार्थ जाननेरूप भेद अत्यंत गौण है। इसलिये अधिक जाननेकी इच्छारूप क्षोभको छोड़कर स्वरूपमें ही निश्चल रहना योग्य है। यही केवलज्ञान प्राप्तिका उपाय है।

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में भी आया है कि, प्रश्न :–'आजकल आप कौन-सा शास्त्र पढ़ रहे हैं? उत्तर :–शास्त्र पढ़नेकी आदत विशेष नहीं रही और मुझे क्षयोपशम भी नहीं बढ़ाना है।' 'मोक्षमार्गप्रकाशकमें भी कहा है : तथा शास्त्राभ्यासमें कोई तो व्याकरण,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

न्याय, काव्यादि शास्त्रोंका खूब अभ्यास करता है, परन्तु वह लोकमें पंडिताई प्रगट करनेका कारण है, उसमें कोई आत्महितका निरूपण तो नहीं है। जो जीव नाना प्रकारकी युक्तिपूर्वक शब्दोंके अर्थ करनेके लिये व्याकरणका अवगाहन करता है, वाद-विवाद द्वारा महंत होनेके लिये न्याय अवगाहता है तथा चतुराई प्रगट करनेके लिये काव्य अवगाहता है—इत्यादि लौकिक प्रयोजन पूर्वक उसका अभ्यास करता है वह धर्मात्मा नहीं है, परन्तु उसका बने उतना थोड़ा-बहुत अभ्यास करके आत्महितके अर्थ जो तत्त्वादिकका निर्णय करता है वही धर्मात्मा पण्डित समझना।

यहाँ तो कहते हैं कि—अपने ज्ञायक स्वभावमें दृष्टि स्थिर करके स्वरूपमें जम जाना वही करने योग्य है। ज्ञातृत्वका विशेष विकास हो या न हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? अधिक जाननेकी आकांक्षारूप क्षोभसे बस होओ। स्वरूप निश्चल ही रहना योग्य है। आहाहा! अंतरमें पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञायकका निर्विकल्प अनुभव करके स्थिर हो जाना ही कर्तव्य है प्रभु! बाकी विशेष पठन हो या न हो, दूसरोंको समझाना आये या न आये—वह कोई महत्वकी वस्तु नहीं है।

*

जामनगर, अप्रैल : ७६

बेनको असंख्य अरब वर्षका ज्ञान है, ९ भवका ज्ञान है। (—४ भूतके, ४ भविष्यके)। बेन तो भगवानके पाससे आयी हैं। अनुभवमेंसे यह बात आयी है। उदय भावसे तो मृत हैं, आनन्दसे जीवित हैं। परमात्माके पाससे आयी हैं। साक्षात् परमात्मा तीनलोकके नाथ विराजते हैं सीमंधर भगवान, वहाँ हम साथ थे! क्या कहें प्रभु! सीमंधर परमात्माके पास अनेकों बार जाते थे। उन भगवानकी यह वाणी है। बेन तो आनन्द सागर में....

—पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–८६

ता. ६-६-७८

वचनामृत–२२७

शुद्धनयके विषयभूत आत्माकी स्वानुभूति सुखरूप है। आत्मा स्वयमेव मंगलरूप है, आनन्दरूप है; इसलिये आत्माकी अनुभूति भी मंगलरूप एवं आनन्दरूप है ॥२२७॥

अधिकार सूक्ष्म है भगवान! अनादि अज्ञानके कारण जीव इन्द्रिय ज्ञान, शास्त्रज्ञान, दया-दान-व्रत-तपादि विभावभावमें एकत्वबुद्धि करके उसके फलरूप ८४ लाख योनिमें परिभ्रमण कर रहा है। जैनेतरमें भी कहा है कि–ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्हो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' अंतरमें अपने ध्रुव चैतन्य प्रभुकी प्रतीति बिना भक्ति, पूजा, नामस्मरणादि क्रियाकाण्डका ही शुभराग होता है वह सब बंधका कारण है, संसारका कारण है। सूक्ष्म बात है प्रभु! जन्म-मरण रहित होनेकी वस्तु कोई और है, वह यहाँ बेन कहती हैं।

यहां एक बेन–चम्पाबेन हैं। जिन्हें असंख्य अरब वर्षका जातिस्मरणज्ञान है। उनके आश्रयमें ६४ बाल ब्रह्मचारी पुत्रियाँ हैं। बेनके उपदेशमें जो आया था उसमेंसे ब्रह्मचारी पुत्रियोंने लिख लिया। जिससे यह प्रकाशन हो सका। तीन महीनेसे उस पर (बहिनश्रीके वचनामृत पर) व्याख्यान चलते हैं। इस २२७वें बोलमें क्या कहते हैं वह सुनो।

'शुद्धनयके विषयभूत आत्माकी स्वानुभूति सुखरूप है।'

भाषा बहुत सादी है। जो अंतरमें सच्चिदानन्द प्रभु ऐसे निज आत्माको कर्म एवं शरीरादि परसे भिन्न, सदा अस्खलित एकरूप, ज्ञानादि स्वभावोंसे भरपूर, अभेद और रागादि विभावसे रहित देखता है—अनुभवता है उस ज्ञानको शुद्धनय कहा जाता है। अरेरे! इस निज शुद्ध आत्माको देखनेका कार्य कभी नहीं किया; बाकी शास्त्रज्ञान अनंतबार किया, लोगोंको भी समझाया, परन्तु वह परलक्षी ज्ञान अज्ञान है, रागका हेतु है। यहाँ तो आत्माके ज्ञानकी बात है। आत्मा क्या वस्तु है? आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। संयोग, विभाव और वर्तमान दशासे भिन्न त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक शुद्ध आत्माकी,

जोकि शुद्धनयका विषय है उसकी, अंतरमें ध्यानके ध्येयरूप पूर्णानन्द प्रभुकी, अतीन्द्रिय स्वानुभूति सुखरूप है।

विषय सूक्ष्म है प्रभु! जीवने सब किया, परन्तु आत्मज्ञान कभी नहीं किया; और इसलिये परिभ्रमण नहीं मिटा। चौरासी लाख योनिमें जन्म-मरण कर-करके भाई! कचूमर निकल गया! अरे! कीड़े, कौए, कुत्ते और नरकादिके वे दुःखमय भव! नरकभी एक योनि है भाई! मध्यलोकके नीचे सात पाताल हैं। वहाँ नरकके जीव रहते हैं। पूर्वमें बहुत पाप किये, उनके फलरूपसे नारकी नरकमें भयंकर कष्टमय यातनाएँ सहन करते हैं। जैसे यहाँ मनुष्य और तिर्यंच हैं, स्वर्गमें देव हैं, वैसे ही नीचे नरकमें नारकी हैं। वे हमें आँखोसे नहीं दिखते, परन्तु न्यायसे बराबर सिद्ध हो सकता है। कोई आदमी किसी दूसरे की हत्या करे तो उसे फलरूप फाँसी की सजा मिलती है, परन्तु उसने लाखों–करोड़ों लोगोंकी हत्या कर दी हो तो उसका फल क्या? क्या उसे लाखोंबार फाँसी देंगे? एक आदमीको मारने और लाखों लोगोंको मारनेके भावका फल एक समान होगा? क्या प्रकृति अन्यायवाली है? उसे जो लाखों लोगोंको मारनेका तीव्र पाप भाव था, लाखों लोगोंको भयंकर दुःख देनेका अतिरौद्र भाव था, उसके फल जितना दुःख जहाँ हो वहाँ जन्म होता है; उस स्थानको नरकयोनि कहते हैं। प्रभु! आत्माके ज्ञान बिना, चिदानन्द प्रभुके अनुभव बिना, तूने भी ऐसे अवतार अनंतबार किये हैं।

अहा, यह वचनामृत! यह तो बेनके (बहिनश्री चंपाबेनके) अनुभवमेंसे निकले हुए वचन हैं। प्रभु! तू कौन है? तेरी प्रभुता कहाँ है? कितनी है? वह तुझे खबर नहीं है। तुझमें तो अनन्त-अनंत-अनंत गुण हैं। गुणवैभवका कहीं अंत नहीं है, 'यह अन्तिम—आखिरी गुण है' ऐसा उसमें नहीं है, अरे! क्षेत्रका भी कहीं अंत है? चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजनमें है, उसके बाद अलोकाकाश—मात्र खाली आकाश—अनंत योजनमें है। आकाश तो लोक और अलोकमें सर्वत्र है। यह जो नीले रंगका दिखता है वह आकाश नहीं है, नीला रंग दिखता है वह तो रूपी पुद्गल है। आकाश तो अरूपी क्षेत्र है उस क्षेत्रका अंत कहाँ, कि जिसके बाद क्षेत्र नहीं है? लौजिकसे कुछ विचार तो करना पड़ेगा न! एकबार तो नास्तिकको भी विचार करना पड़ेगा कि अहा! यह कैसी बात है? इस क्षेत्रका अंत कहाँ, कि जिसके बाद क्षेत्र समाप्त हो गया? अरे, जहाँ क्षेत्रका भी अंत नहीं है वहाँ भावकी अनंतताका तो क्या कहना! उस अमाप क्षेत्रको जानने वाला भगवान आत्मा—क्षेत्रज्ञ शरीरप्रमाण असंख्य प्रदेशोंमें होने पर भी उसका 'ज्ञ' सामर्थ्य अमाप अमाप है। अहा! यह बात कैसे बैठे?

प्रभु क्या कहें! तुझमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, वीर्य तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व आदि अनंत-अनंत गुण हैं। जिनका कोई अंत नहीं है ऐसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपार-अपार गुण तुझमें भरे हैं। ऐसा अनंत गुणात्मक अभेद आत्मा शुद्धनयका विषय है। शुद्धनय अर्थात् अपने ज्ञानकी जिस निर्मल पर्यायमें शुद्ध आत्मा विषयभूत—ध्येयभूत होता है वह। दया, दान, व्रत, भक्ति आदिका शुभ विकल्प वह तो राग है। उस रागसे शुद्ध आत्मा ध्येयभूत नहीं होता। समझमें आता है कुछ?

जिस ज्ञानकी पर्याय ज्ञानस्वभावी निज आत्माको चूककर केवल परका विषय करती है वह ज्ञान ज्ञेयनिमग्न होनेसे अज्ञान है, दुःखरूप है; ज्ञानकी जो दशा स्वको विषय बनाये—शुद्धनयके विषयभूत त्रैकालिक निज प्रभुकी अनुभूति करे—वह ज्ञानमय स्वानुभूती सुखरूप है। अरे! रागके—पुण्य और पापके—अनुभव तो अनादिकालसे किये हैं। विषयका वेदन, स्त्रीके भोगादि तो आत्माको दुःखरूप हैं। स्त्रीके भोग कालमें जीव उसके शरीरको नहीं भोगता, शरीर तो मिट्टी है, जड़ है और भगवान आत्मा तो चेतन है, अरूपी है। अरूपी चेतन रूपी जड़को कैसे भोगेगा? अज्ञानी भोगता है अपने रागको और मानता है कि मैं स्त्रीके शरीरको—परको भोगता हूँ।

परमें सुख मानना वह तो मिथ्या भ्रम है, अज्ञान है। सुख तो भगवान आत्मामें है। कस्तूरी अपनी नाभिमें है उसकी जैसे, हिरनको खबर नहीं है, वैसे ही भगवान आत्मामें अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय प्रभुता आदि गुण भरपूर भरे हैं, परन्तु पामर प्राणियोंको—रागके प्रेमियोंको—उसकी खबर नहीं है; इसलिये उसकी अंतरसे महिमा नहीं आती। अहा! यहाँ बेनने तो एक पंक्तिमें कह दिया है कि—'शुद्धनयके विषयभूत आत्माकी स्वानुभूति सुखरूप है।' यह तो शास्त्रभाषा–अध्यात्मभाषा है, उसे तो पहले समझना पड़ेगा न प्रभु! यह वस्तु समझे बिना करोड़पति और अरबपति रंक, भिखारी और दुःखी हैं; अंतरमें अपनी लक्ष्मीकी प्रतीति नहीं है और बाहर की—धूल की—लक्ष्मीके प्रेममें पागल हो गये हैं।

व्याख्यानमें एक बार एक राजासे कहा था : 'दरबार! सुख आत्मामें हैं; परन्तु जो बाह्य विषयोंमें सुख प्राप्त करना चाहता है वह विषयका भिखारी है, महीनेमें पाँच लाख माँगे वह छोटा भिखारी और एक करोड़ माँगे वह बड़ा भिखारी। जिसे अंतरकी लक्ष्मीका मूल्य नहीं है वह बाह्यमें–पाँच–पचास करोड़ या अरबोंकी धूलमें सुखके लिये उछलकूद करता है।

अरे! सत्यवस्तु क्या है, कैसी है—वह उसने कभी देखी नहीं, श्रद्धा नहीं की और बाहरकी महिमा कर-करके जीवन गँवा दिया। आत्माका जो यथार्थ स्वभाव—शुद्धनयके विषयभूत आत्मा—उसकी जिसने अनुभूति नहीं की उसे जो काम-क्रोध, माया और लोभ तथा भक्ति आदिका राग है वह कषाय भाव है। कषायभाव करके जीवने आड़ाई की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, उसके फलमें आड़ा शरीर—तिर्यंचपना—मिला। मनुष्यका शरीर सीधा और गाय, भैंस, घोड़ा आदि पशुओंका शरीर आड़ा होता है। अपनी ज्ञायक वस्तुको भूलकर पर्यायमें बहुत आड़ाई की; राग, द्वेष तथा विषय सेवनके तीव्र परिणाम किये और उनसे ऐसे प्रारब्धका बंध हुआ कि जिसके फलमें आड़ा शरीर मिला। परिणाम आड़े किये, इसलिये शरीर भी आड़ा मिला। ऐसा तो अनंतबार किया है प्रभु! अरेरे! तुझे अपनी दया नहीं है और परकी दया पालन करने चला है!

प्रभु! तू कौन है? तू तो अंतरमें सच्चिदानन्द—अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ—है। शुद्धनयके विषयभूत उस सच्चिदानन्द प्रभुकी अनुभूति सुखरूप है। क्या कहते हैं? स्वभावसन्मुखतासे निज शुद्ध आत्माका जो अनुभव होता है, ज्ञान होता है वह अतीन्द्रिय सुखरूप है। अरे! जो अमृतस्वरूपसे भरपूर अमृतसागर भगवान आत्मा अंतरमें विद्यमान है वह, पुण्य-पापके भावोंका वेदन करे वह तो विषके प्याले पीता है। यहाँ तो कहते हैं कि–वह छोड़कर, भगवान पूर्णानन्द स्वरूप है उसपर दृष्टि लगाकर, उसे ध्येय बनाकर जो अनुभूति अर्थात् अनुभव हो उसमें आनन्द आता है। उस आनन्दमय दशाका नाम धर्म है, बाकी सब व्यर्थ है।

भगवानकी पूजा और भक्ति बहुत करता है, परन्तु भाई! अंतरमें अपने ज्ञायक नाथको, परमानन्दस्वरूप अपने ईश्वरको समझा नहीं है, संतुष्ट नहीं किया है और परको संतुष्ट करने जाता है उसमें तेरा कुछ होनेवाला नहीं है। समझमें आया कुछ? यह तो दुनियासे अलग बात है, सुखरूप है। इन्द्रियोंके विषय भले वह शास्त्रज्ञान हो, दुःखरूप हैं। नित्यानन्द प्रभु अंतरमें विराज रहा है, उसे ध्येय बनाकर वर्तमान दशामें जो अनुभव प्रगट हुआ वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। नाथ! अपनी वस्तुका अंतर अनुभव करने पर जो आनन्द आता है वह अन्यत्र कहीं नहीं है। इन्द्रका इन्द्रासन हो बड़ा राजपाट हो या सेठोंकी सेठाई हो वह सब धूल-धानी है। आत्माकी प्रतीति बिना वे सब दुःखी प्राणी हैं। आनन्दस्वरूप निज आत्माका अंतर्अनुभव करे वह सुखी है। 'सुखिया जगतमें संत, दूरी जन दुखिया रे!'—अंतरमें सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभुका अनुभव करें वे सन्त सुखी हैं।

'आत्मा स्वयमेव मंगलरूप है, आनन्दरूप है; इसलिये आत्माकी अनुभूति भी मंगलरूप एवं आनन्दरूप है।'

मंग अर्थात् पवित्रता और 'ल' अर्थात् लाये,—उसे मंगल कहा जाता है। भगवान आत्मा स्वयं मंगलस्वरूप है, क्योंकि उसमें भीतर पवित्रताकी शक्ति भरी पड़ी है, और उसके आश्रयसे पर्यायमें पवित्रता की प्राप्ति होती है। घरमें पुत्रका जन्म हुआ हो, नया मकान बनवाया हो आदि लौकिक प्रसंगोंको लोग मांगलिक कहते हैं। वे तो धूल भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मांगलिक नहीं हैं भाई! वे सब तो नाशवान संयोग हैं। मंगलका दूसरा अर्थ : 'मं' अर्थात् ममकार—अहंकार; 'गल' अर्थात् गाले–नष्ट करे; अपने स्वरूपको भूलकर वर्तमान पर्यायमें जो दया, दानादि भाव होते हैं उन्हें 'मम' अर्थात् 'मेरे हैं' ऐसा मानना वह भ्रम और अज्ञान है; उसे 'गल' अर्थात् गाले, नष्ट करे, वह आत्मा स्वयमेव मंगलरूप है। ज्ञानानन्दमूर्ति आत्मा स्वयमेव मंगलरूप है इसलिये उसके आश्रयसे परिणमित स्वानुभूति भी मंगलरूप तथा आनन्दरूप है। अहा, प्रभु! यह उपदेश कोई अन्य प्रकारका है। दुनिया कहाँ खड़ी है यह सब खबर है। यहाँ इस शरीरको तो ८९-९० वर्ष हुए हैं; ७२ वर्षसे तो शास्त्रोंका अध्ययन कर रहे हैं, ६६ वर्षसे दुकान छोड़ दी है। जन्म उमरालामें हुआ। दुकान पालेजमें थी, लेकिन वह सब धूलकी आमदनी थी। यहाँ तो अंतरमें चैतन्यकी दुकान लगायी है, उसमें स्वानुभूतिकी आमदनी होती है। अहा! यह तो जन्म-मरणका अंत आये ऐसी बात है।

जिसप्रकार अपनी नाभिमें कस्तूरी है उसकी हिरनको खबर नहीं है, उसीप्रकार यह ज्ञायक आत्मा अंतरमें मंगलरूप एवं आनन्दरूप है उसकी तुझे खबर नहीं है, इसलिये जहाँ-तहाँ—स्त्रीमें और पैसेमें—ढूँढ़ने जाता है; यह तेरी अज्ञानमयदशा है। प्रभु तेरा आत्मा मंगलरूप और आनन्दरूप है; इसलिये उसकी अनुभूति भी मंगलरूप और आनन्दरूप है। अहा! इतने शब्दोमें कितना भरा है! परन्तु 'आत्मा' क्या है–यह बात संसारी जीवोंके मस्तिष्कमें नहीं जमती। क्योंकि कभी सुनी नहीं है न! उसकी उन्मुखता और प्रेम बाहरी 'होहा'में है। अंतरमें मंगल एवं आनन्दस्वरूप त्रैकालिक आत्मा है, उसे पहिचानकर अनुभव करे तो पर्यायमें मंगल और आनन्द प्रगट हो। उसका नाम धर्म है। बाकी सब बातें निरर्थक हैं।

*

वचनामृत–२२८

आत्माके अस्तित्वको पहिचानकर स्वरूपमें स्थिर हो जा, बस!.... तेरा अस्तित्व आश्चर्यकारी अनंतगुण पर्यायसे भरा है; उसका सम्पूर्ण स्वरूप भगवानकी वाणीमें भी पूरा नहीं आ सकता। उसका अनुभव करके उसमें स्थिर हो जा॥२२८॥

'आत्माके अस्तित्वको पहिचानकर स्वरूपमें स्थिर हो जा, बस!

क्या कहते हैं? भगवान आत्माका जो सहज अस्तित्व, उपस्थिति, विद्यमानता, सत्ता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है उसे सत्य स्वरूपसे जानकर स्वरूपमें स्थिर हो जा; बस, यही करना है। वर्तमान पर्याय—विचार—बदलती है 'उसका' लक्ष छोड़ दे, अंतरमें नित्य स्थायी सत्ता—त्रैकालिक अस्तित्व—है उसकी ओर लक्ष दे। वस्तु स्वयं अनादि-अनंत अपनी सत्तामें रहनेवाली है; वह कभी परकी सत्तामें नहीं जाती और परकी सत्तासे अपनेमें कुछ नहीं होता।

भगवान! तेरे अस्तित्वकी महिमाका कोई पार नहीं है ऐसी तो तू अंतरमें अद्‌भुत वस्तु है। जैसे, यह शरीर 'है', तो उसका अस्तित्व है न? वाणी 'है' तो उसका अस्तित्व है न? 'है' तो वह जाननेमें आती है न? उसीप्रकार, आत्माका अपना अस्तित्व है या नहीं? उस नित्य अस्तित्वको—'है'को—जानना उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। अहाहा! यह बेनके वचन तो अंतर आनन्दके अनुभवमेंसे निकले हुए हैं। लोगोंको यह बैठना कठिन लगता है। आया कुछ समझमें?

आत्माके अस्तित्वको पहिचानकर–जानकर स्वरूपमें स्थिर हो जा। वहाँ 'जानकर' वह दशा है और त्रैकालिक अस्तित्व वह ध्रुव आत्मा है। 'जानना' वह उसकी दशा है। भाई! यह तो अध्यात्मका मार्ग है। 'चिड़ा लाया चावलका दाना और चिड़िया लायी मूँगकी दाल, फिर उसकी बनायी खिचड़ी–ऐसी कोई बच्चोंकी कहानी नहीं है। प्रभु! यह तो भवका अंत कैसे आये, अपनी परमानन्दरूप पूर्ण दशा कैसे प्रगट हो, उसकी—अध्यात्मकी—यह बात है।

प्रभु! अपने अस्तित्वको पहिचानकर, उसका ज्ञान करके, 'मैं आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप हूँ' ऐसा निर्णय करके भीतर स्वरूपमें स्थित हो जा, बस! अंतर स्वरूपरमणतामें केलि कर। लोकमें कहा जाता है कि—'निजपद रमे सो राम कहिये, रागमें रमे सो हराम कहिये'। जो निज ज्ञायकमें रमण करे उसे आत्माराम कहते हैं और जो पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ, विषय-कषायके तथा दया और दानादिके भावमें रमण करे उसे हराम कहते हैं। आत्मा अंतरमें आनन्दका नाथ है, प्रभु! उसे तूने कभी देखा नहीं है, कभी सुना नहीं है। अपने अस्तित्वको पहिचान कर स्वरूपमें स्थिर हो जाना—वह कार्य तूने कभी नहीं किया। इसलिये अपने अस्तित्वको अपनी उपस्थितिको पहिचानकर उसमें स्थिर हो। अहा! यह कैसी भाषा? भाषा तो सादी गुजराती है। बेनकी भाषा गुजराती है।

'....तेरा अस्तित्व आश्चर्यकारी अनंत गुणपर्यायसे भरा है;'

जिसप्रकार मिश्री मिठास और सफेदीसे भरपूर है, उसीप्रकार भगवान आत्मा आनन्द एवं ज्ञानादि आश्चर्यकारी अनंत गुणोंसे भरा हुआ है। अनंत-अनंत अद्‌भुत गुणरूप भेदोंसे भरे हुए ऐसे इस निजआत्मतत्त्वका जब तक ज्ञान न करे तबतक उसकी साधना एक रहित शून्योंके समान है। जैसे एक रहित लाखों शून्योंका कोई मूल्य नहीं उसी प्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक प्रभुके ज्ञान बिना कितना भी क्रियाकाण्ड करे, दया-दान, व्रत-तप तथा पूजा-भक्ति की धमाल करे वह सब निरर्थक है; अर्थात् भवका अंत लानेके लिये निरर्थक और संसार परिभ्रमणके लिये सार्थक है।

भाई! तेरी वस्तुमें–अस्तित्वमें क्या भरा पड़ा है उसकी तुझे खबर नहीं है। तेरा अस्तित्व अनंत शक्तियोंसे–अनंत गुणरूप भेदोंसे भरपूर है। लोगोंको यह बात बैठना कठिन लगती है। प्रभु! जहाँ अनंत गुणस्वरूप भगवान विराजता है उस चैतन्यगुफामें प्रवेश कर। भाई! यह मार्ग है। दुनियाने मार्गको बिगाड़ दिया है, उलटा कर दिया है। जिससे आत्मज्ञान हो और भवका अंत आये वह वस्तु कोई और ही है प्रभु! वह कोई विद्वत्ताका विषय नहीं है। लाखों–करोड़ोंमें भाषण देता है इसलिये उसका ज्ञान सच्चा है–ऐसा नहीं है यहाँ तो कहते हैं कि–तेरे अस्तित्वमें चमत्कारी अनंत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, उन्हें पहिचानकर अपने स्वरूपमें स्थिर हो जा।

'उसका सम्पूर्ण स्वरूप भगवानकी वाणीमें भी पूरा नहीं आ सकता।'

'ज्ञ' स्वभावी आत्माका अनुभव करके—उसमें लीन होकर—पर्यायमें पूर्ण दशा प्रगट होने पर 'सर्व'का—तीनकाल और तीन लोकका—'ज्ञ'पना अर्थात् ज्ञातापना हो उसे सर्वज्ञपना कहते हैं। उन सर्वज्ञको अरिहंत भगवान कहते हैं। जिन्होंने राग, द्वेष तथा अज्ञानरूपी 'अरि'—शत्रुका 'हंत' अर्थात् नाश किया है, वीतरागता एवं सर्वज्ञता प्रगट की है उन्हें अरिहंत कहते हैं। श्री अरिहंत भगवानकी वाणीमें भी आत्माका सच्चा स्वरूप पूरा नहीं आ सकता। कोई मूक व्यक्तिसे पूछे कि गुड़का स्वाद कैसा है? तो वह क्या उत्तर देगा? जिसने चखा है उसे खबर पड़ती है, परन्तु भाषामें पूर्णरूपसे कह नहीं सकता। श्रीमद् ने कहा है :

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहि ते पण श्री भगवान जो;
तेह स्वरूप ने अन्यवाणी तो शुं कहे?
अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो। अपूर्व०

घीका स्वाद तो बचपनसे लिया है; उसका स्वाद कैसा है?—बतलाओ। मिश्री जैसा है? गुड़ जैसा है? घीका स्वाद ख्यालमें है परन्तु उसकी किसी पदार्थके साथ तुलना करके नहीं कहा जा सकता, अरे! घी जैसे जड़-रूपी पदार्थकी किसीके साथ तुलना नहीं हो सकती, तो आत्माके अमूर्तिक आनन्दकी तुलना किसके साथ करे? आत्माकी प्रतीति होनेपर, भले वह गृहस्थदशामें हो, जो अतीन्द्रिय आनन्द आता है उसका वर्णन कौन कर सकता है? उसका सम्पूर्ण वर्णन भगवानकी वाणीमें भी नहीं आ सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसका अनुभव करके उसमें स्थिर हो जा।'

अहा! यह तो मक्खन जैसी बात है। जिसप्रकार मक्खन मट्ठेसे पृथक् हो जाता है, उसीप्रकार ज्ञायकके आनन्दरूप स्वादमेंसे राग टपक जाता है, पृथक् हो जाता है। पहले शुद्ध चिदानंद स्वरूप अपने आत्माको पहिचान, फिर पर तथा विभावसे विमुख होकर, स्वभावसन्मुख होकर, उसका अनुभव कर। स्वरूपमें विशेष अनुभवरूप स्थिरता होना वह चारित्र है। अणुव्रत, महाव्रत या ब्रह्मचर्यका पालन करे—वह बाह्यक्रिया कोई चारित्र नहीं है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसके स्वरूपमें विचरना–रमना सो ब्रह्मचर्य है; और 'स्वरूपे चरणं चारित्रम्।' –ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मामें चरना-लीन होना वह चारित्र है। अहा! ज्ञानी और अज्ञानीकी बातमें प्रत्येक शब्दमें फेर है।

आणंद कहे परमाणंदा, माणसे माणसे फेर;
एक तो लाखे नव मले, एक तांबियाना तेर।

इसप्रकार यहाँ भी कहते हैं–भाई! ज्ञानी और अज्ञानीके भाव भावमें–प्रत्येक भावमें–फेर है। ज्ञानी और अज्ञानीके भाव कभी एक–से नहीं मिलते। इस २२८वें बोलमें 'आत्माके अस्तित्वको पहिचानकर स्वरूपमें स्थिर हो जा' इसप्रकार सम्यग्ज्ञानकी प्रधानतासे बात की। अब २२९वें बोलमें मुनिकी बात करते हैं।

*

ता. २६–११–६५

यह चम्पाबेनका ज्ञान तो .....की अपेक्षा अनंत-अनंत सामर्थ्यवान है। उन्हें तो लौकिक परन्तु इन्हें तो अलौकिक ज्ञान है। आत्मज्ञानसहित जातिस्मरण है। इन्हें चार भवका ज्ञान है परन्तु गम्भीर इतनी हैं कि कभी बाहर नहीं आती। मुझसे भी अपनी बात नहीं करतीं, मेरा सब कह जाती हैं। बेन तो भगवती स्वरूप हैं, भगवतीमूर्ति हैं। बोलना तो उन्हें हराम है। बोलती ही कहाँ है? इसलिये लोगोंको महिमा नहीं आती। इनके जैसी दुनियामें कोई स्त्री नहीं है। स्त्रियोंके महान भाग्य हैं कि ऐसे कालमें–ऐसे मिथ्यात्वकी तीव्रताके कालमें इनका यहाँ जन्म हुआ! जो बहुमान करेंगे उनके महाभाग्य हैं। *–पूज्य गुरुदेव*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६०

ता. १०–६–७८

वचनामृत–२२६

मुनिको संयम, नियम और तप–सबमें आत्मा समीप होता है। अहा! तू तो आत्मा की साधना करने निकला है ... वहाँ यह लौकिक जनोंके परिचयका रस क्यों?

तुझे शुद्धि बढ़ाना हो, दुःखसे छूटनेकी भावना हो, तो अधिक गुणवाले या समान गुणवाले आत्माके संगमें रहना।

लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होनेका कारण होगा। विशेष गुणीका संग तेरे चैतन्यतत्त्वको निहारनेकी परिणतिमें विशेष वृद्धिका कारण होगा।

अचानक आ पड़े असत्संगमें तो स्वयं पुरुषार्थ रखकर अलग रहे, परन्तु स्वयं रसपूर्वक यदि असत्संग करेगा तो अपनी परिणति मन्द पड़ जायगी।

–यह तो स्वरूपमें झूलते हुए मुनियोंको (आचार्यदेवकी) सीख है। निश्चय-व्यवहार की संधि ही ऐसी है। इस प्रकार अपनी भूमिकानुसार सबको समझ लेना है।।२२६।।

'मुनिको संयम, नियम और तप–सबमें आत्मा समीप होता है।'

अहा! मुनि किसे कहते हैं? बाहरसे नग्न हो गये, स्त्री-बच्चोंको छोड़ दिया, वह तो धूल भी साधुपना नहीं है। 'साधयति इति साधुः।'–जो आत्मस्वरूप साधे वह साधु है। जहाँ अभी वस्तु स्वरूपकी खबर नहीं है वहाँ साधुपना आया कहाँसे?

यहाँ उत्कृष्ट—मुनिकी—बात ली है। मुनिको संयम, नियम और तपादिमें आत्मा समीप होता है, श्रद्धा-अपेक्षासे तो चतुर्थ गुणस्थानमें भी आत्मा समीप होता है, परन्तु यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिदशाकी बात कही है। नियमसारकी १२७ वीं गाथामें कहा है :

संयम नियम ने तप विषे आत्मा समीप छे जेहने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवली शासने।

जिस मुनिको संयममें, नियममें, तपमें और सत्चारित्रमें निज कारण परमात्मा सदा समीप अर्थात् निकट है, आत्मा सदा ऊर्ध्व रहता है—उस परद्रव्यपराङ्मुख परम वीतराग सम्यग्दृष्टि वीतराग-चारित्रवंतको सामायिकव्रत स्थायी है ऐसा केवलियोंके शासनमें कहा है।

संयम=सं+यम् सम्यक् प्रकारसे इन्द्रियों तथा वासनाओंका दमन। त्रैकालिक ज्ञायक भावको सम्यक् प्रकारसे जानकर स्वरूपमें विशेष स्थिर होना—आत्मानुभवमें विशेष लीन होना—उसका नाम संयम और नियमादि है। आत्माकी प्रतीति बिना बाह्य नियम तो जीवने अनंतबार किये, परन्तु उससे क्या? ऐसे कठिन नियम धारण किये कि—छह छह महीनेके उपवासके पारणे हेतु जब आहार लेने निकले तब भिक्षा देनेवाली स्त्रीका नाम मोती हो, उसने मोती भरी हुई साड़ी पहिनी हो, साड़ीके पल्लेमें मोती बँधा हो और मोतीचूरके लड्डू बनाए हों—ऐसा योग होगा तो आहार लूँगा अन्यथा देहान्त होने तक आहार नहीं लूँगा; परन्तु आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा यदि समीप नहीं वर्ते तो उसे संयम-नियम नहीं कहा जाता।

प्रश्न :—तप किसे कहते हैं?

उत्तर :—जिसे शुद्धात्माका श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव हुआ है उसे स्वरूपमें विशेष स्थिरता होने पर, इच्छाका निरोध करके आनन्दका जो उग्र स्वाद आये उसका नाम तप है। स्वरूपे प्रतपनं तपः। जैसे सोना गेरुसे दमकता है, शोभता है, उसीप्रकार भगवान आत्मा अंतर आनंद की दशामें उग्ररूपसे प्रतपन करता है, उग्र रूपसे शोभता है, उसका नाम तप है; शेष सब लंघन है। देशकी समस्याके लिये उपवास पर बैठ जाते हैं उसमें धूल भी संयम या तप नहीं है, वह तो रागकी तथा बंधकी क्रिया है। बंधनके फलमें तो गति मिलती है। यहाँ तो कहते हैं कि आनन्दका नाथ—निज शुद्धात्मा—जब समीप होता है तब संयम और नियम कहे जाते हैं। अहा! बात-बातमें फेर है। यह मार्ग ही अलग है भाई!

अनन्तकालथी आथड्यो, विनाभान भगवान;
सेव्या नहि गुरुसन्तने, मूक्युं नहि अभिमान।

आत्माकी प्रतीति बिना अनंतकालसे भटक रहा है। ज्ञानी धर्मात्मा क्या कहते हैं वह नहीं माना। पैर दबाना वह कोई सेवा नहीं है; उन्होंने जो तत्त्व कहा उसे अंतरसे स्वीकार करना वह सेवा है। अनादिसे सत्पुरुषको कभी अंतरसे नहीं माना और 'मैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता हूँ, मुझे आता है' ऐसे अभिमानमें जीवन बिता दिया प्रभु! जीवने अनंत भव किये। भवोंका आदि है? आदि हो तो कबसे भव प्रारम्भ हुए? आत्मा जैसे अनादि है वैसे ही उसके भव भी अनादि हैं। भाई! अपना भूतकाल देख : भव....भव....भव। अरे! उन भवोंका कोई अंत है या नहीं? भाई! उन भवोंका अन्त लानेवाली वस्तु जो भीतर विद्यमान है उसे समीप नहीं लाया; उस ज्ञायक भगवानसे दूर ही रह गया।

'अहा! तू तो आत्माकी साधना करने निकला है.... वहाँ यह लौकिक जनोंके परिचयका रस क्यों?'

आनन्दस्वरूपको साधे, शक्तिके आलम्बनसे व्यक्तता प्रगट करे, वह साधु है। जिसप्रकार लैंडी पीपरमें चौंसठ–पुटी चरपराहट भरी है, वह घोंटनेसे व्यक्त होती है; उसीप्रकार भगवान आत्मामें ज्ञान और आनन्दकी पूर्ण शक्ति भरी पड़ी है; उस ज्ञानानन्दस्वभावी आत्माको समीप लेकर, उसकी एकाग्रतासे, रागको दूर करके तुझे भगवान आत्माकी पूर्ण साधना करना है;....वहाँ यह लौकिक जनोंके परिचयका प्रेम क्यों? सभामें राजा आये या सेठ आये, तू उन्हें प्रसन्न करनेके लिये रुकता है!–यह सब किसलिये? दुनियाको संतोष हो, सभाजन कैसे प्रसन्न हों—यह सब तू क्यों करता है? क्या तुझे लोकरंजन करना है? यहाँ तो कहते हैं कि जिसे आत्माकी प्रतीति नहीं है, चैतन्यकी दृष्टि नहीं है, ऐसे लौकिक जनोंका परिचय करनेसे तुझे क्या लाभ होगा? उनका परिचय छोड़कर अपने स्वभावका परिचय कर।

'तुझे शुद्धि बढ़ाना हो, दुःखसे छूटनेकी भावना हो, तो अधिक गुणवाले या समान गुणवाले आत्माके संगमें रहना।'

इस बोलमें मुनिकी मुख्यतासे कथन है। जिन्हें संग और रागसे भिन्न निज ज्ञायक प्रभुकी दृष्टि और अनुभव हुआ हो, और पश्चात् स्वरूपमें विशेष रमणता होनेसे संयम, नियम तथा तपादि अनुष्ठानमें भगवान आत्मा सदा समीप वर्तता हो वे सच्चे मुनि हैं। ऐसे मुनिको श्री आचार्यदेव कहते हैं कि–पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा तेरे अनुभवमें आया है और चरित्र—स्वरूपकी विशेष रमणता—भी प्रगट हुई है, परन्तु उससे विशेष शुद्धि बढ़ाना हो, दुःखसे सम्पूर्णतया छूटनेकी भावना हो, तो जिनमें अपनेसे अधिक गुण हों अथवा समान गुण हों उनके संगमें रहना। यहाँ तो यह कहना हैं कि–संग करना पड़े तो किसका करना? यदि असंगतत्त्वमें—अपने ज्ञायकस्वरूपमें—सम्पूर्ण स्थिरता हो सके तब तो सर्वश्रेष्ठ है; परन्तु मुनि भी इसप्रकार सदा असंग नहीं रह सकते। अंतरमें ज्ञायक प्रभु दृष्टि एवं स्थिरतासे जागृत तो हुआ है, परन्तु स्थिरतामें अभी कचास-कमी है, इसलिये उपयोग स्वानुभवमेंसे बाहर तो आ जाता है—विकल्प तो आते हैं। ऐसे संतसे कहते हैं : अपनेसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अधिक गुणवाले अथवा समान गुणवाले साधक सन्तके समागममें रहना। प्रवचनसारकी चरणानुयोग सूचक चूलिकामें कहा है न!–

तेथी श्रमणने होय जो दुःखमुक्ति केरी भावना,
तो नित्य वसवुं समान अगर विशेष गुणीना संगमां ॥२७०॥

लौकिक जनके संगसे संयत भी असंयत होता है। इसलिये यदि श्रमण दुःखसे परिमुक्त होना चाहता हो तो वह समान गुणवाले अथवा अधिक गुणवाले श्रमणके संगमें नित्य वसे। जिस प्रकार शीतल घरके कोनेमें रखा हुआ पानी शीतल रहता है और बरफ के संगसे विशेष शीतल हो जाता है उसीप्रकार समानगुणवालेके संगसे श्रमणके गुणोंकी रक्षा होती है और अधिक गुणवालेके संगसे उसके गुणोंकी वृद्धि होती है।

'लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होनेका कारण होगा। विशेष गुणीका संग तेरे चैतन्यतत्त्वको निहारनेकी परिणतिमें विशेष वृद्धिका कारण होगा।'

यह उपदेश मुख्यरूपसे मुनिको लक्षमें रखकर है। जिन्होंने अभी व्यापार-धंधा नहीं छोड़ा है, सांसारिक पाप प्रवृत्तियोंमें पड़े हैं ऐसे राजाओं तथा सेठोंका संग तुझे हानि पहोंचायगा। अग्निके संगसे पानीकी भाँति, लौकिक संगसे तेरी साधना विकारी हो जायगी, असंयतपना आ जायगा। इसलिये, यदि शुद्धिकी वृद्धि करना हो तो अपनेसे शुद्धिमें अधिक हों अथवा समान गुणवाले हों उनका संग करना। राजा और सेठ आये हैं इसलिये उपदेश दूँ, उन्हें संतुष्ट रखूँ—ऐसे विकल्प तुझे हानि करेंगे विशेष गुणीका संग तुझे अपनी परिणतिमें विशेष वृद्धिका कारण होगा, और समान गुणीके संगमें तेरी साधना परिणति की रक्षा होगी इसलिये लौकिक जनका संग छोड़कर गुणीके संगमें निवास करना।

'अचानक आ पड़े असत्संगमें तो स्वयं पुरुषार्थ रखकर अलग रहे, परन्तु स्वयं रसपूर्वक यदि असत्संग करेगा तो अपनी परिणति मन्द पड़ जायगी।'

जिनकी दृष्टि विपरीत है और जो विषय कषायमें रत हैं ऐसे धर्म विमुख लौकिक जनोंके संगका कोई अप्रत्याशित प्रसंग आ जाय तो उस समय स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा सावधानी रखकर पृथक् रहे, परन्तु यदि स्वयं ही रसपूर्वक—उनके आदरपूर्वक—परिचय करे तो उसकी परिणति मंद हो जायगी, साधनासे विचलित हो जायगा।

'यह तो स्वरूपमें झूलते हुए मुनियोंको (आचार्यदेवकी) सीख है। निश्चय–व्यवहारकी संधि ही ऐसी है।'

अहा! यह तो स्वरूपमें झूलते हुए तथा वन-जंगलमें विचरते हुए मुनियोंकी बात है। स्वरूप रमणतारूप अंतरकी शुद्धि और भूमिकानुसार आनेवाले व्रतादिके विकल्प—यह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दोनों निश्चय और व्यवहारका सुमेल है। उन दोनोंकी संधि ही ऐसी है कि—मुनि अंतर स्वरूपमें जाये और बाहर आये—व्यवहारका विकल्प आये—तो अच्छे गुणीका—अधिक गुणवानका संग करे।

'इसप्रकार अपनी भूमिकानुसार सबको समझ लेना है।'

सम्यग्दर्शनके अभिलाषीको कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रका, सत्य-असत्यकी परीक्षा करके, संग छोड़ देना चाहिये। सच्चे देव, शास्त्र और गुरुका संग मिले–सत्समागम करे–तो अंतरमें परमपुरुषके समीप जाय। स्वयं स्वभाव सन्मुख दृष्टि की तो सत्समागम तथा उसका विकल्प निमित्त कहा जाता है। अंतरमें स्वभावका लक्ष न करे तो सच्चे देव, शास्त्र और गुरुके प्रति बहिर्लक्षी विकल्प तो बंधका कारण हैं। जैसे मुनियोंको आचार्यदेवका उपदेश है कि—लौकिक जनोंके परिचयका रस छोड़कर, विशेष गुणी अथवा समान गुणीके परिचयमें रहना, उसीप्रकार निचली भूमिका वालोंको भी अपनी भूमिकानुसार समझ लेना।

*

वचनामृत—२३०

आत्मा तो आश्चर्यकारी चैतन्यमूर्ति! प्रथम उसे चारों ओरसे पहिचान कर, पश्चात् नय-प्रमाणादिके पक्ष छोड़कर अंतरमें स्थिर हो जाना। तब अंतरसे ही मुक्त स्वरूप प्रगट होगा। स्वरूपमें स्थिर हुए ज्ञानी ही साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्दामृतका अनुभव करते हैं—'त एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति' ।।२३०।।

'आत्मा तो आश्चर्यकारी चैतन्यमूर्ति! प्रथम उसे चारों ओरसे पहिचानकर, पश्चात् नय-प्रमाणादिके पक्ष छोड़कर अंतरमें स्थिर हो जाना। तब अंतरसे ही मुक्त स्वरूप प्रगट होगा।'

जिसमें राग तो नहीं किन्तु अल्प ज्ञान भी जिसका स्वभाव नहीं है ऐसा यह भगवान आत्मा परम आश्चर्यकारी अद्भुताद्भुत चैतन्यमूर्ति है। वह सहज ज्ञान तथा सहज आनन्दादि अनंतानंत गुणोंसे भरपूर भरा है। सर्व क्षेत्रमें तथा सर्व कालमें वह आश्चर्यकारी जिनप्रतिमा अंतरमें सदा विराजमान है; उसकी समस्त पक्षोंसे पहिचान कर। पूर्णानन्दमय प्रभुकी चारों ओरसे–उपादान–निमित्तसे, निश्चय–व्यवहारसे, प्रमाण-नय-निक्षेपसे—पहले बराबर पहिचान करना चाहिये। निश्चयसे—द्रव्य अपेक्षासे—आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है और व्यवहारसे—पर्याय अपेक्षासे—वही आत्मा अशुद्ध तथा दुःखी है; आत्मा द्रव्यरूपसे ध्रुव वस्तु है और

४८.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वही आत्मा पर्यायरूपसे पलटती वस्तु है; इसप्रकार जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा समस्त पक्षोंसे बराबर पहिचाने। वस्तु स्वरूपको बराबर जाननेके बाद फिर नय-प्रमाणादि पक्ष छोड़कर अंतरमें आत्मानुभवमें स्थिर हो जाना। आत्मा निश्चयसे अबद्ध है और व्यवहारसे बद्ध है—उसका पहले सच्चा निर्णय करना चाहिये; परन्तु वे दोनों नयपक्ष विकल्प हैं, राग हैं, उनसे आत्मानुभव प्राप्त नहीं होता। उन प्रमाण-नय-निक्षेप आदिका पक्ष छोड़कर अंतरमें स्थिर हो जाना, अभेद आत्माको ध्येय बनाकर मस्त—स्वरूपमंथर—हो जाना। तो अंतरसे ही मुक्त स्वरूप प्रगट होगा।

चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा अंतरशक्तिसे तो सदा अबद्धस्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप है। यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरतापूर्वक उस ध्रुव मुक्तस्वरूपका अंतरमें ध्यान करनेसे पर्यायमें मुक्तदशा प्रगट होगी। जीवको संसारके पाप ध्यान करना तो आता है। जैसे संसारके आर्त और रौद्र ध्यानमें लग जाते हैं, उसीप्रकार ऐसा ध्यान—ऐसी एकाग्रता—त्रैकालिक ध्रुव स्वभावमें लगा। अहा! मार्ग तो ऐसा है। वह दया, दान, व्रत या भक्तिसे प्राप्त नहीं होगा, वह तो राग है। रागभावसे वीतरागता की प्राप्ति होती है?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका कन्द है। कंदमूल की एक राई जितने टुकड़ेमें अनंत जीव हैं, उसीप्रकार प्रत्येक आत्मामें ज्ञान-आनन्दादि अनंतानंत गुण हैं। भाई! तुझे अपनी अतीन्द्रिय गुणऋद्धिकी खबर नहीं है।

'सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा,
अंतरकी लच्छिसौं अजाची लच्छपती हैं।'

अहा! तीनलोकका नाथ ऐसा प्रभु तू, तेरे स्वभावकी समृद्धि कितनी? सिद्धकी संख्याकी अपेक्षा अनंतानंतगुने गुण भीतर आत्मामें भरे पड़े हैं। ऐसे निज आत्माका प्रथम प्रमाण-नय आदिसे सच्चा निर्णय कर, पश्चात् विकल्प छोड़कर स्वरूपमें स्थिर हो। महलमें जाना हो तो आँगन तक घोड़ागाड़ी काम आती है, परन्तु भीतर जानेमें वह काम नहीं आती। उसीप्रकार भगवान आत्मामें जानेके लिये प्रथम तत्सम्बन्धी विकल्प आते हैं, परन्तु भीतर प्रवेश करनेमें विकल्प काम नहीं आते।

सम्यग्दर्शन धर्मका प्रथम सोपान है। उससे पूर्व प्रमाण तथा नयसे आत्माका सच्चा निर्णय करना चाहिये। यद्यपि प्रमाण-नयके भेद वह भी विकल्प है, वृत्तिका उत्थान है, उससे तुझे क्या लाभ? अंतरमें भगवान आत्मासे भेट करना हो तो वह विकल्पका पक्ष छोड़ दे। प्रभु! तू अनंत शक्तियोंका भण्डार है, उसे एकबार अंतरमें दृष्टि डालकर देख तो सही। बाह्यमें दृष्टि करके जगतको जाननेमें रुक गया परन्तु अंतरमें ज्ञाता प्रभु कौन है उसे तूने नहीं जाना। एकबार लक्ष कर तो अंतरमेंसे मुक्त स्वरूप प्रगट होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'स्वरूपमें स्थिर हुए ज्ञानी ही साक्षात् अतीन्द्रिय आनंदामृतका अनुभव करते हैं—त एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति'।

यह भगवान ज्ञायक आत्मा स्वभावसे तो अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप है ही। अरे! यह कैसे बैठे? अरे! उड़दकी दाल यदि अच्छी न बनी हो तो क्रोधमें आकर घरवालीके ऊपर थाली फेंकता है,—ऐसे जीवको, अंतरमें ज्ञायक भगवान आनन्दामृतसे भरपूर है यह बात कैसे समझमें आयगी? प्रभु! यह तुझे क्या हुआ है! अपने कुलक्षण तो देख! तू कौन है? तेरा स्वरूप क्या है?—वह तो तू देखता नहीं है। पर वस्तुका आत्मा कुछ कर नहीं सकता, परन्तु 'मैं परका कर सकता हूं' ऐसा मानकर तू वहींका वहीं रुक गया है। तू अकर्तास्वभावी—अपने ध्रुवस्वभावको देखनेका अवकाश नहीं निकालता! भाई! अपनी बाह्य विद्वत्ताका अभिमान एकबार छोड़ दे और अंतरमें पूर्णानन्द भगवान पर अपनी दृष्टि लगा दे। तू स्वभावसे मुक्तस्वरूप तो है ही, परन्तु स्वरूपकी दृष्टि करनेसे पर्यायमें भी अंशतः मुक्तदशा प्रगट होगी। सम्यग्दर्शन होने पर जो मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबंधी कषायसे मुक्त हुआ उसे श्रद्धा-अपेक्षासे मोक्ष हुआ कहा जाता है।

इस चैतन्य सम्राट ज्ञायक प्रभुपर दृष्टि लगानेसे, उसमें स्थिरता करनेसे ज्ञानी साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्दामृतका आस्वादन करते हैं, वे ही साक्षात् अमृत पीते हैं। आत्मा व्यवहारसे बद्ध है और निश्चयसे अबद्ध है। 'व्रतादिके शुभभावसे जीव बँधा हुआ है' ऐसे व्यवहारका तो (समयसारमें) पहलेसे ही निषेध करते आये हैं, परन्तु निश्चयपक्षसे वस्तुदृष्टिसे 'अबद्ध हूँ, मुक्त हूँ, सामान्य हूँ, एकरूप हूँ' ऐसे विकल्पकी जो वृत्ति उठती है वह भी विकार है, दुःख है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ऐसे विकल्पसे पार निज ज्ञायकस्वरूपमें जाकर अतीन्द्रिय आनन्दामृतका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। ज्ञानीका यह स्वानुभव कोई अद्भुत है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूपसे अलौकिक ऋद्धिका अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेवके अद्भुत दर्शन होंगे।

यह तो अभी धर्मके प्रारम्भकी—सम्यग्दर्शनकी—बात है; चारित्रकी—मुनिपनेकी—बात अभी दूर है। भगवानको सर्वज्ञपर्याय और पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है वह कहाँसे आता है? बाह्य विषयोंमेंसे आता है?—जो अंतरमें शक्तिरूपसे भरपूर है वह पर्यायमें प्रगट होता है। अरे प्रभु! तुझे अपनी प्रभुताकी खबर नहीं है। बाहरका आश्रय छोड़कर भीतरका आश्रय ले तो तुझे अतीन्द्रिय आनन्दामृतके घूँट पीनेको मिलेंगे।

जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है उसे विषयका रस छोड़ना होगा। जिसे विषयका रस है उसे आत्माका रस नहीं लगेगा। जिसे अंतरात्माका रस लगा है वह अतीन्द्रिय आनन्दामृतका साक्षात् आस्वादन करता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्मका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रारम्भ है; और तो सब थोथा—निरर्थक है। भले ही सामायिक–प्रतिक्रमण करे, परन्तु जहाँ दृष्टि ही मिथ्या है वहाँ सामायिक–प्रतिक्रमण थे ही कब? यहाँ तो कहते हैं कि—प्रभु! अंतरमें प्रवेश कर न! वहाँ ज्ञायक भगवान विराजते हैं। तू बाहर ढूँढ़ता है, परन्तु बाहर तेरी वस्तु नहीं है। तेरी वस्तु—तेरा प्रभु—अंतरमें है, वहाँ खोज न! तुझे आनन्दामृतका अपूर्व स्वाद आयगा।

*

वचनामृत–२३१

आत्माके गुण गाते-गाते गुणी हो गया—भगवान हो गया; असंख्य प्रदेशोंमें अनंत गुणरत्नोंके कमरे सब खुल गये।।२३१।।

'आत्माके गुण गाते-गाते गुणी हो गया—भगवान हो गया;'

अंतर निर्विकल्प ज्ञायक प्रभुके गीत गाते-गाते गुणी—सम्यक्त्वी हो गया। क्या कहते हैं? जिसमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि अनंतानत गुण हैं ऐसे निज अभेद ज्ञायक प्रभुकी अंतरमें महिमा करते-करते स्वयं पर्यायमें प्रभु हो गया। अरे! एक स्त्री अच्छी मिली हो तो उसमें जो तृप्त-तृप्त हो जाता है उसे अंतरमें यह भगवान आत्माकी महिमा कहाँसे आयगी? सम्यग्दर्शन—आत्माका अतीन्द्रिय अनुभव—किसी बाह्य क्रियाकाण्डसे प्राप्त हो ऐसी वस्तु नहीं है। प्रभु! जगतसे यह बात बिलकुल विपरीत है। जगतकी दृष्टि बाह्यमें—'व्रत करो, तप करो' आदिमें—है, परन्तु वह सब तो रागकी बातें हैं। रागके गीत गानेसे कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अनंत गुणोंकी अभेद चैतन्यमूर्तिकी अंतरमें महिमा लानेसे, उसपर दृष्टि करनेसे गुणी अर्थात् सम्यग्दृष्टि हुआ जाता है। अरे! जहां अभी सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है उसीकी खबर नहीं है वहाँ सामायिक और चारित्र कहाँसे आ गया?

वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेवने जैसा देखा और कहा उस अनंतानंत गुणोंसे परिपूर्ण निज आत्माके गुण गाते-गाते अर्थात् महिमा करते-करते सम्यग्दृष्टि हो गया, गुणी हो गया। आत्माका आकार भले शरीर प्रमाण है परन्तु उसके गुण आकाशके प्रदेशोंकी अपेक्षा अनंत गुने हैं। अरे, यह कब सुना है इसने? सारा समय इसने भिखारीपनमें बिताया है। सुख और शान्ति मानों बाहरसे—विषयोंमेंसे—आते हो ऐसा मानता है, इसलिये सुखके लिये बाहर भीख माँगता है। भगवानके पास भिक्षा माँगता है कि 'प्रभु शिवपद दीजो मोहि'...क्या भगवानके पास तेरा शिवपद है जो तुझे दे देंगे?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई! तेरा नाथ तो अनंत गुणोंसे विराजमान है। उस प्रभुकी बादशाही तो उसके गुणोंमें है, शरीरादि परमें तथा पुण्य-पापके विकारी भावमें उसकी बादशाही नहीं है। अनंतगुणोंके स्वामीको लक्षमें लेकर भीतर स्वभावमें जाता है तब सम्यग्दर्शन होता है, गुणी होता है। श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ—यह तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव—ऐसी तीन पदवीके धारक थे। छह खण्डमें कहीं उनके जैसा रूप या बल नहीं था। तथापि वह सब वैभव छोड़कर अन्तमें चले गये थे। चक्रवर्ती छह खण्डको साधते हैं' ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें तो वे अखण्ड ज्ञायककी साधना करते हैं।

अहा! आत्माका अनंत अपार गुणवैभव! साधारण जीवोंने तो वह सुना भी नहीं है तो उनके जाननेमें या साधनमें कहाँसे आयगा? गुणीमें—भगवान ज्ञायकमें—एकाग्र होते-होते पर्यायमें अरिहंत भगवान हो गये। वे कहीं व्रत, तप करते-करते केवली हो गये हों–ऐसा नहीं है। छह महीने और आठ समयमें ६०८ जीव सिद्धपद प्राप्त करते हैं। वर्तमानमें यहाँसे नहीं, परन्तु महाविदेहक्षेत्रसे सिद्धपद प्राप्त करते हैं। कैसे प्राप्त करते हैं? अनंतानंत गुणोंके भण्डार ऐसे निज ज्ञायक आत्माके गुण गाते–गाते—अंतरमें एकाग्र होते–होते—भगवान हो जाते हैं, सिद्ध हो जाते हैं। अरेरे! दुनिया सारी विपरीत मार्ग पर चली गई है, परन्तु वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरका कहा हुआ मार्ग तो यही है।

'असंख्य प्रदेशोंमें अनंत गुणरत्नोंके कमरे सब खुल गये।'

क्या कहते हैं? कि–भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी है। जिसप्रकार सोनेकी जंजीर हजार कड़ियोंकी बनी हुई है, उसीप्रकार भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी स्वदेशमें विराजमान है।

प्रश्न :–हमें—पामरको—आप भगवान कहते हो?

उत्तर :–भाई! तू पामर नहीं है, शक्तिरूपसे भगवान है। तुझे अपने स्वरूपकी खबर नहीं है। जैसे जंजीरकी प्रत्येक कड़ीमें पीलापन, चिकनापन और वजन आदि गुणोंसे भरपूर सोना है, उसीप्रकार आत्माके प्रत्येक प्रदेशमें ज्ञान, दर्शन और चारित्रादि अनंतानंत गुण भरे पड़े हैं। असंख्य प्रदेश वह तेरा स्वदेश है और उसमें अनंत गुणोंरूपी प्रजा निवास कर रही है। असंख्य प्रदेशी प्रभुमें अनन्तानन्त गुणरत्न! अहा! उसे पकड़ना—समझना–अभी कठिन लगता है, वहाँ अंतरमें तो कब जायगा? असंख्यप्रदेशी एक आत्मा, उसके प्रत्येक प्रदेशमें गुणरत्नोंके कक्ष—भण्डार भरे हैं। पत्थरके जवाहिरातमें कुछ भी नहीं है अंतरमें है, अन्तरमें चैतन्यके अनन्त दागीने (आभूषण) पड़े हैं। अन्दर चैतन्य स्वभावकी दृष्टि करके जहाँ शुद्धात्मानुभूति हुई वहाँ असंख्य प्रदेशोमें अनन्त गुण रत्नोके कमरे सब आंशिक खुल गये। एक आदमी रत्नदीपमेंसे पत्थर समझकर एक रत्न ले आया। जहाँसे वह लाया था वहाँ वैसे लाखो–करोड़ो रत्न पड़े थे। वह आदमी उस रत्नके प्रकाशमें गृहकार्य करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

था। वहाँ एक सेठ आया। प्रकाश देखकर उसने पूछा अरे! यह तू कहाँसे लाया? इसका तो बडा मूल्य है। करोड़ो स्वर्णमुद्राओंसे भरा हुआ अपना भंडार मैं तूझे देता हूँ, तू यह रत्न मुझे देदे। उस आदमीको आश्चर्य हुआ कि—अरे! यह इतनी बहुमूल्य वस्तु ऐसे पत्थर तो वहाँ लाखो-करोड़ो पडे थे। उसी प्रकार यहाँ तीन लोकके नाथ परमात्मा कहते हैं कि—आत्मा के असंख्य प्रदेशमें अनन्त गुण रत्नोंके कमरे–भंडार भरे हैं। उन्हें अब अन्तरमें ध्रुव स्वभावकी दृष्टि करके खोल...खोल ....राग की एकताके–पुण्य पाप और दया-दानादि मैंने कीये। ऐसे मिथ्यात्वके ताले लगा रखे हैं। उन्हे अब अन्तरमें ज्ञायकके अभ्यास द्वारा खोल...खोल। ज्ञानीके ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुण रत्नोकें कक्ष—भंडार सब खुल गये हैं।

बेन अलौकिक वस्तु हैं; शरीरसे और रागसे भिन्न आत्माको अनुभवती हैं। उन्हें (बाह्यमें) कहीं रुचता नहीं है; वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज करती हैं।

यह (वचनामृत) कोई कथा—कहानी नहीं है, यह तो भागवत कथा है। परमात्मा की वाणीके संकेत हैं। उसका जो अनुभव करेगा उसे खबर पड़ेगी। बेन तो भगवती माता हैं।

–पूज्य गुरुदेव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह सन्तोंका देश है

यह सन्तोंका देश है, दु:खका नहीं प्रवेश है,
स्वर्णपुरी है नाम अहो! यहां नहीं कीटका लेश है;
यह सन्तोंका०

उमरालाके शुभ प्रांगणमें श्रेष्ठी 'मोती' तात हैं;
'उजमबा'के राजदुलारेका मंगल अवतार हैं;
तीर्थसमा पावन मन है, खिला हुआ नंदनवन है,
मनमोहक गुरुमुद्रा पर यह न्योछावर सब जगजन हैं;
-यह सन्तोंका० १

गुरुवरके पावन चरणोंसे फैली हरियालियां,
शांतिपंथका मार्ग दिखाते छाई हैं खुशियालियां;
मुक्तिके दातार हैं, जगके तारणहार हैं,
जगत शिरोमणि 'कहानगुरुवर' शासनके शणगार हैं;
-यह सन्तोंका० २

दिव्यविभूति 'कहानगुरुजी' सिंहकेसरी हैं जागे,
धर्मचक्रीकी अमर पताका देशोदेशमें फहराये;
वाणी अमृत घोली है, सारी दुनिया डोली है,
वीतरागके गुप्तहृदयकी अंतर ग्रंथि खोली है;
-यह सन्तोंका० ३

चैतन्यप्रभुका अजब-गजबका रंग गुरुमें छाया है,
और उसे ही भक्तोंके अंतस्तलमें फैलाया है;
कल्पवृक्ष चिंतामणि सम गुरु वांछित-फल-दातार हैं,
कहानगुरु! तव चरणोंमें मम वंदन अगणित वार है;
-यह सन्तोंका० ४

शाश्वत शरण तुम्हारा हो, चाहें जगत किनारा हो,
भवभवमें तव दास रहें, बस तू आदर्श हमारा हो;
यह सन्तोंका धाम है, साधकका विश्राम है,
स्वर्णपुरीमें मस्त विचरते, गुरुवर आतमराम हैं;
-यह सन्तोंका० ५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com